

हिन्दी षड-परम्परा और तुलसीदास

हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास

[सोपपूर्व प्रकरण]

लेखक

डॉ० रामचन्द्र मिश्र एम ए., पीएच डी
प्राध्यापक हिन्दी-विभाग
धर्मतमाज कनिष्ठ कालीय

प्रकाशक

हिन्दी साहित्य संसार

बिस्फी-६

पटना-४

प्रथम संस्करण
जुलाई १९६०

मूस्य
साङ्गे भारत रूपये
(१२५०)

प्रकाशक
द्विपदी साहित्य संसार
दिसी—६

बाप—
नाराधी राठ
पटना—४

पुस्तक विनिमय एजेन्सि द्वारा गणतन्त्रा प्रेषण दिग्गमि न पुस्तक ।

समपण
पूजनीया
स्वर्गोपा जलनी घोर पितामहो
श्री
पुण्य स्मृति
मे

पूर्व-पीठिका

मोस्वामी तुमसीदास पर अब तक पर्याप्त काम हुआ है। फिर भी यह सच है कि समीक्षकों की दृष्टि प्रायः उनके 'भाग्य पर ही केन्द्रित रही है। जिससे उनकी पक्षसिद्ध दृष्टियाँ किसी प्रसङ्ग में ही विचार और विवेचन का विषय बन गयी हैं और व्यापक अध्ययन से वंचित रह गई हैं। इस विचारधारा को जब मिन गुरुवर आचार्य पं० गन्दुमारे जी बाजपेयी के समस्त व्युत्पन्न किया और 'विश्वपत्रिका' पर काम करने की इच्छा प्रकट की तब उन्होंने समग्रता की दृष्टि से 'हिन्दी पत्र-परम्परा' के सम्बन्ध में 'विश्वपत्रिका' के साथ 'गीताबसो' और 'श्री कृष्णगीताबसो' का अध्ययन प्रस्तुत करने का संकेत किया। साथ ही मेरी प्रार्थना पर तद्विषयक एक रूपरेखा देकर मेरे कार्य की दिशाएँ और सीमाएँ निर्धारित कर दी। प्रस्तुत रचना उनी रूपरेखा पर मेरे किए अध्ययन का परिणाम है।

काव्य की विविध रीतियों का सम्बन्ध पत्र-संघी विद्योप प्रतिष्ठित है। काव्य रीतियों का गमान इसमें भी काव्य के भाव और शिल्प-तत्त्व रहने हैं। किन्तु संगीत-त्मकता भारतीय-साहित्य के कारण यह काव्यों से तुलना में अधिक कोमल मधुर और शास्त्र सिद्ध हुई है। जिसका फलस्वरूप हिन्दी काव्यान्वयत इनका प्रभाव शीघ्र प्रबलमान है।

यह मैं काव्य और संगीत दोनों के तत्त्व समाहित हैं। इसमें संगीत ने काव्य को और काव्य ने संगीत को आनारी दिया है जिससे वह दोनों क्षेत्रों में प्रिय हो उठा है। इसको स्पष्ट करने से यह कहा जा सकता है कि भाव शिल्प धारि में युक्त पद को संगीत की राम रागिनी ने विषय मधुरता और गीत का सम्बन्ध प्रदान की है और समीत की दृष्टि राग रागिनी या केवल-भाव स्वरों के आगाहाबगोह में ही अपने प्रतिफल को मन्निहित किए हैं काव्य का भाव-तत्त्व से युक्त होकर मोरप्रिय और भाव्य हो उठी है। उदाहरण के लिए बरक (शास्त्रीय) माने का 'आनाप गायन' बिना के समझ पाठ है? संगीत बना ने जनभिर्माँ का पत्ने तो सभी कुछ पड़ता है जब गायक शून्य स्वरों की भूमि छोड़कर केवल वक्त्रियों की ध्वनि बनाता है। काव्य के निराल ही रहते हैं। एनी से समीत का मरणाध्य की आकाशकता है और वही उसकी मोरप्रियता का एक विशेष साधन है।

उत्पन्न विद्योपनामों से युक्त पर के तत्त्व तत्त्व और संस्कृत पाति प्राकृत धारि का साहित्य में उल्लेख है। उसका स्पष्ट स्वरूप संस्कृत में उल्लेख है

श्रीतगोविन्द धीर चन्द्र-साहित्य का सर्वापरो मे है। सर्वापरो की परम्परा ही नाम सम्प्रदाय का योगिया के नाम्य मे घनस्तर बही द्वितीय का मध्यरात क निर्मुप (मन्त्र) काव्य मे श्रुति हई है। उमके समस्त ही समुप भक्ति-पारा मे राम धीर कृष्ण-नक्ति का पद-साहित्य भी प्रस्तुति हूया है। जिसरी अविच्छिन्न परम्परा तमिस के घान बार मक्ता के प्रसाम् संगान के बाउल सत्ता के पर व्यदेव क श्रीतगोविन्द, शैविन्द बाविन्द विद्यातिन को पराशर्यी आदि मे उगार्य है। इय स्थान पर मे प्रश्न उमने है कि निगुन धीर समुप मेव काव्य मे कीन अधिक प्राचीन है धीर कीन बिगरा अभिप्ररक है ? इम सम्बन्ध मे मरा इनता हा निपरह है कि गोता के मूय राग केर साहित्य मे है। उमरी अत्रय पागारु बही म प्रवाहित हु भारतीय विचारयो मे उमरे पुन्द किया मुगलमान शासन मे देग की बिदिष्ट परिस्थितियो मे उमका पुण धीर बेगबनी बनाया बही अरने अविच्छिन्न रूप मे भारतीय-मुगल तम उमथय है घनस्तर 'विन्दी मुय' मे पद-साहित्य का स्थान धाधुनिक पीता म मे गिया जिससे वह की परम्परा बबरउ हो उठी।

हिन्दी पद-परम्परा के पावक स्थानी धीर बिस्वायो रहे है बिच्छुने पद के माध्यमे से सकार का शात काम भक्ति योग सात्कार आदि ने गान देकर भारतीय (संगण) सम्प्राय गहर्तन मन्भाबना आदि का सगन रगा है। या स्यय ऐनिसा के काव्य भी उनसे मूय मरी है बिच्छु पद-साहित्य के उगार्यगपी को कर्तव्य सम्पानि ह। मने है के स्या से मरी यह प्रुष गय है।

उपर्युक्त स्या मे पद हिन्दी मे उमरी परम्परा उन्गोविता आदि सक्ता साप्ट है। जिससे बिनेष्प बिन्दय के पूरार्थ की मरुता गरमता मे मजभी या सरउी है मोशामी मुपमीसम क पद-साहित्य का बिबहन मेरा उहंथय का इमने उठे मन्त्र मे हिन्दी पद-परम्परा का सम्बन्ध सासन्ध ही मरी अनिसार्य हो स्या। मिन इम स्यर । मे श्रीतगोविन्द क पद-साहित्य क स्थानागत मर क प्राय समप हिन्दी पद साहित्य का बिबन्ध देमा बिता है।

संग-लीन धीर मर-नन्द मे मरीन हा म्ता साहित्य भी अविच्छिन्न है। इममे मिन इमका सान सम्बन्ध का बिबन बनाय सासाय सास मर म प्रसि म राम तथा बिबिक समारोहु बिच्छु गा-र-ही का क सासाय मे सान बिबन्ध म्ता है।

हिन्दी का सन्दर्भ साहित्य भारिद कर्न मन्भाव म प्रवर हीनी मे बिबिता है उम हीनी के उगासक देवदारम धीर जिवी सासाय क मुय स्यामी ह्यिच्छन रहे है। इण्य सासाय सास धीर उमर है अर बरिच्छिन्न पर भी मिन सासाय सम्बन्ध सासुन बिता है।

हिन्दी पद-परम्परा के बारे सम्बन्धी मे इममे के उमने मरी का म्ता मे है उमे म म सासाय उमर सासुन क सम्बन्ध उगास बिता सा स्या है। बिच्छु म्ता सासाय क इम म्ता सम्बन्ध धीर क सम्बन्ध हो गे हिन्दी पद-परम्परा के सम्बन्ध

है किन्तु 'लोक-गीत और संगीत' पर मे सम्बन्धित है। हमने उनका अध्ययन भी धानुपार्श्विक रूप से किया गया है।

शास्त्रार्थ रामानुज के विनिष्ठाद्वय के मूसल छिद्रान्त और रामानन्द के द्वारा सम्प्रदाय में प्रवर्तित और समाविष्ट नबीन आचार-विचार उपासना आदि तुलसीदास के काव्यों में भीबन्त हो उठे हैं जिससे धार्मिक सामाजिक साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में उनको समान प्रतिष्ठा और मान्यता है। सम्प्रदायगत मिश्रान्त को मर्यादा पुस्तोत्तम राम के इतिवृत्त में भरने के कारण उनको वास्तव में व्यापक हा गई है जिससे उनमें जीवन की सभी स्थितियाँ विविध स्तर के पात्र आचार विचार-मन्त्र हार आदि समाविष्ट हो उठे हैं। इससे उनकी कृतियों में जीवन-सम्बन्धी किसी समस्या का समाधान सरलता से मिल जाता है। राम का अर्चन और मान्यता मिश्रान्त में तुलसीदास के उत्तरकामीन कवियों की भवना के समान प्रस्तुत रहे हैं किन्तु साहित्यिक और धार्मिक काव्य-भाग में कई कवि उनकी काटि में नहीं आ सका यह तुलसीदास की महान् प्रतिभा विचारधारा और समन्वय की बात थी—मानना पड़ेगा।

तुलसीदास के काव्य की सामान्य विशेषताएँ—मन-पद-साहित्य में भी समाहित हैं। यह सत्य है कि 'दीठाबसी' में राम के जीवन की सभी घटनाएँ, जैसी 'रामचरितमानस' में हैं, वही आसानी से उभरे बचन मधुर और कल्प घटनाओं का उपावेश है जो उमर-पद-साहित्य और कीमत कृति के कारण विषय मर्मस्पर्शी हो गई है। फिर भी उनके अविष्ट राम-काव्यों की अपेक्षा इसके 'बालकांड' में राम का बाल-चित्रण और 'उत्तरकांड' में हिंसोला रसन्त आदि के रूपमा से इसमें तुलसीदास की नबीन उद्भावनाएँ हुई हैं। 'श्री कृष्णगीताबसी' में कृष्ण की मुख्य सीमाएँ चित्रित हैं। काव्य छोटा है फिर भी कवि की निष्ठा और भक्ति से धारणा बित है यह उनके उचार और व्यापक हृदय का सजीव प्रमाण है। 'विमलपत्रिका' कवि के भवत हृदय की अर्थाँ है जिसका स्वीकारना उसमें राम की मर्माँ पर छोड़ रगा है। यों भक्ति का प्रस्तुतन 'मानस' और अन्य काव्यों में भी है किन्तु इतिवृत्तान्त के कारण उसकी परिणति पात्रों में यत्र-तत्र होती है जबकि इसमें भक्ति और उद्दिष्ट्यक भूमियों की संकुच भावनाएँ अविष्टरूप से प्रवृत्त हैं जिससे यह अन्य काव्यों से तुलना में अपेक्षा अन्त और वास्तविकता के उदात्त अन्त के लिए एक धार्मिक उद्देश्य धारण है। विषय का ऐसा सम्बन्ध काव्य हिन्दी में ही नहीं भारतीय साहित्य में भी अद्वितीय है।

उत्पन्न विशेषताओं से युक्त गोस्वामी तुलसीदास का पद-साहित्य प्रकृत रूप में उल्लेख के अध्ययन का आधार है जिसमें उक्त परिचय भाग और रस-गीत-गीतियों और भाषा अन्त आदर्शों संगीत मध्ययुगान् साहित्य परम्परा और अन्तों राम-पद-साहित्य में विद्वेष्य पद-साहित्य और उक्तका अन्तिय आदि-आदि

है किन्तु 'सीता-गीत' और संगीत पर मैं सम्बन्धित हूँ। इससे टनका सम्बन्धन भी प्रातुपङ्क्ति रूप से किया गया है।

आचार्य रामानुज के विधिप्यात्रत के मूलगत मिथ्यात और रामानुज के द्वारा सम्प्रदाय में प्रकृतित और समाविष्ट महीन आचार-विचार उपामना आदि तुलसीदास के काव्यों में जीवन्त हो उठे हैं। जिससे धार्मिक सामाजिक साहित्यिक आदि सभी क्षेत्रों में उनकी समान प्रसिद्धि और मान्यता है। सम्प्रदायगत मिथ्याता को मर्यादा पुरपोत्तम राम के इतिवृत्त में भरत के कारण उनको काव्य मर्मि व्यापक हो गई है। जिससे उनमें जीवन की सभी स्थितियों विविध स्तर के पात्र आचार-विचार-व्यवहार आदि समाविष्ट हो उठे हैं। इससे उनकी कृतियों में जीवन-सम्बन्धी किसी समस्या का समाधान सरलता से मिल जाता है। राम का चरित्र और साम्प्रदायिक मिथ्यात में तुलसीदास के उत्तरकाशीन कवियों और मन्त्रा प्रत्यक्ष रह है। किन्तु साहित्यिक और धार्मिक काव्य पात्र में वार्त्तकिक उनकी कविता में नहीं आया यह तुलसीदास की महान् प्रतिभा विचारधारा और समन्वय की बात थी—मानना पड़ेगा।

तुलसीदास के काव्य की सामान्य विशेषताएँ—तब पर-साहित्य में भी समाहित हैं। यह सत्य है कि 'सीतावली' में राम के जीवन की सभी घटनाएँ, जैसी 'रामचरितमानस' में हैं, वहीं आसानी से उसमें केवल मधुर और कल्प घटनाओं का समावेश है। जो उनके पर-सान्निध्य और बोधन कृति के कारण विषय मर्मस्पर्शी हो गई है। फिर भी उनका अक्षरिण राम-काव्यों को अनेकानेक 'बालका' में राम का बाल-विषय और 'उत्तरकाण्ड' में हिंदोला समस्त आदि के बलमा में इसमें तुलसीदास की महीन उद्भावनाएँ हुई हैं। 'सीतावली' में कृष्ण की मुख्य सीताएँ बिभित हैं। काव्य छोटा है फिर भी कवि की निष्ठा और भक्ति में आत्मा बिभित है। यह उनके उत्तर और व्यापक हृदय का सजीव प्रमाण है। 'रिनपरतिजा' कवि का मन्त्र हृदय की धरती है। विगता स्वीकारता उगने राम की मर्त्तों पर छोड़ रगा है। यों भक्ति का प्रस्तुत 'मानस' और अन्य काव्यों में भी है। बिभित इति कृष्णमन्त्रा के कारण उसकी परिधि धरती में मन्त्र-व्यवहारी है जबकि इसमें भक्ति और तद्विषयक भूमियों की संयुक्त भावनाएँ अविच्छिन्न रूप से प्रकृतमान हैं। जिससे यह काव्य काव्यों से तुलना में अधिक अर्थ और दारदासति के उगावक मन्त्रा के लिए एक धार्मिक मन्त्रीय आत्मा है। बिभित का ऐसा सम्बन्ध काव्य हिन्दी में ही नहीं भारतीय साहित्य में भी अद्वितीय है।

असंयुक्त विचारधारा से कुछ नोरयामी तुलसीदास का पर-साहित्य 'रत्न' में उत्तरार्द्ध के सम्बन्धन का आधार है। जिसमें उसका परिचय भाव और रम-रत्नियों और भाषा पर-शास्त्रीय संकीर्ण सम्बन्धित साहित्य परम्परा और राम-पर-साहित्य में विशेष पर-साहित्य और उत्तम संविष्ट आदि-आदि

विषय का मीन वाक्य और संगीत के परिवेश में विवेचन करने का प्रयत्न किया है।

इस स्थान पर मैंने अपने विषय 'हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास' की स्पष्ट रूप रेखाएँ इंगित कर अपने काम की दिशाओं का औचित्य स्पष्ट किया है। यों मूरदास द्विपद हरिदास हरिदास तथा अन्य कृष्ण भक्त कवियों ने पद-रीसी में कृष्ण के नाम वर्णन राधा-कृष्ण के संयोग-वियोग आदि के भावमय अद्वितीय मधुर चित्रण प्रस्तुत किए हैं। उन्हें केवल पद-रीसी में रचना करनी ही और वह भी केवल मधुर भाव में। इससे मूर जैसे महाकवि अपने लेख में यदि अतिरिक्त भी कुछ घाए हों तो भावबर्धन क्या? वह कल्पित शेषों में तुलसी से भले ही घाए हों। किन्तु तुलसी ने परम्परागत समय शैलीका जो धपनाकर काव्य-सर्वना की और राम के समय जीवन की विविध भावनाओं को चित्रित किया। वस्तुतः उनका काव्य-शोक मूर से कहीं अधिक व्यापक है। फिर भी वह अपने पद-रीसी के काव्य के साथ व्यापक कर सका हो यह बात नहीं। इस सम्बन्ध में गीतावली और श्री कृष्णगीतावली का परीक्षण किया जा सकता है। जिनके मधुर और कोमल पद कृष्ण-काव्य के श्रेष्ठ पदों के साथ तुलना के लिए प्रस्तुत किए जा सकते हैं। यही विनयपत्रिका उसका पदों की तुलना में न मूर के पद हैं और न अन्य कहीं भक्त कवि के। अन्ततः मेरा यह निष्कर्ष है कि तुलसी का शैली व्यापक या विविध काव्य-शैलियों में उन्हें रचना करनी की मर्यादा और वास्तव भाव विषयक उनकी साम्प्रदायिक सीमाएँ थीं—इन सब स्थितियों में भी जो गीतावली विनयपत्रिका आदि जैसी अमूर्त्य निधि है सदा हो—यह उनकी प्रतिभा और व्यक्तित्व के लिए कम गौरव की बात नहीं। इसी से तुलसी सबसे ऊँचे हैं, मूर भी वहाँ तक नहीं पहुँच पाते हैं।

अपनी दुर्बलताओं से अलग होना हुआ भी प्रस्तुत गम्भीर विषय के विवेचन में प्रसिद्ध हुआ है। इसमें विषय की व्याख्या में मैं किम स्तर तक पहुँच सका है यह विद्वान पाठक ही अनुभव करेंगे। साथ ही निरूपित निष्कर्षों के सम्बन्ध में मेरा यह निवेदन है कि अपने अध्ययन में मैं जिन परिवेशों पर पहुँचा हूँ मैंने उन्हें स्वभावतः इंगित कर दिया है। सम्भवतः मेरी पंक्तियों से तुलसी-काव्य के अछूते इस विधिष्ट पद्य पर कुछ प्रकाश पड़ ही जाए, मेरी कामना यही है। इस पुस्तक के लिए सहृदय विद्वान मुझे लक्ष्य करने की कृपा करें वह मेरी प्रार्थना है।

प्रस्तुत प्रकाश के निम्न में निर्देशन और मेरी बहिन-सौम्य का समाधान गुणक भी वाञ्छनीय ही मैंने किया है। उनका ध्यान रखते रहने के लिए मैं मेरी मर्यादा है और मैं मन धरित ही। इससे अपने अध्ये के चरमों में मैं समर्पित हूँ।

पारिवारिक समस्याओं के दैय लोभ-नीतों की पुटाने में मुझे धारा भीवास्तव और अनु भीवास्तव एम० ए० कक्षा की सहोदर्य मेरी धाराओं में पूरा महत्व दिया है। उनकी साहित्यिक परिचित दिवानुदिन बड़े उनका प्रति यही मेरी धाराओं और वनक कामनाएँ हैं।

साथ ही मैं अपना खिर-घामार धीर कृतमता प्रकट करता हूँ—सर्मममात्र इष्टर कनिज घनीमङ्ग के संगीताचार्य भी मारलेन्नु जी धीर टीकाराम बाविका महा विद्यालय घनीमङ्ग के संगीत-विभाग के अध्यक्ष थी नापूगम जी वर्मा को जिन्होंने भारतीय संगीत की पद्धतियाँ धीर गिद्यालो को मुझे सचमत कराया धीर तडिपवन घमूस्य साहित्य देकर सम्पन्न महयोग दिया । गुरुकुल बागड़ी के संस्कृतार्थ्यापठ घन स्तर अतिकुल ब्रह्मचर्यायम संसृष्ट महाविद्यालय हरिद्वार के प्रधानाचार्य अष्टम-गुरुष्य साहित्याचार्य भी आचार्यरत्न जी पंडित धीर भारतीय वाग्गाना इष्टर कायत्र पटना बाघ के मेरे महकारी अध्यक्ष साहित्यरत्न थी जगदीशप्रसाद जी मुख्य को जिन्होंने मेरी प्रार्थना पर राम-सम्बन्धी लौकगीत मुझे प्रेषित किए तथा सर्मममात्र नामत्र घनी मङ्ग के संसृष्ट-विभाग के अध्यक्ष प्रो० भीनिबाम मिश्र जिनके अध्यक्ष धीर विभागाय पुस्तकालय का मैंने आभारकृतानुमार साथ उठाया—का भी धारण धामारी हूँ ।

गुरुकुल बागड़ी हरिद्वार

—रामचन्द्र मिश्र

१—७—१२

त्रिपयानुक्रमणिका

१ हिन्दी पर-साहित्य के स्रोत

त्रिपय-विचार हिन्दी भाषा-साहित्य की पृष्ठभूमि वैदिक साहित्य—घ—प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों का साहित्य या—सम्पूर्ण भारतीय धर्म साहित्य—१ पालि साहित्य २ ब्राह्मण साहित्य ३ उपनिषद् साहित्य—क—मिथिला साहित्य ख—वैदिक साहित्य । हिन्दी पर-साहित्य के विविध स्रोत—१ वेदों में गीति-तत्त्व २ प्राचीन भारतीय धर्मशास्त्रों (मनुस्मृत) का गीति-काव्य ३ सम्पूर्ण भारतीय धर्म शास्त्रों का गीति-काव्य—घ—पालि साहित्य में गीतारम्भ—१ धर्म शास्त्र २ धर्म गायन या—ब्राह्मण गीति-काव्य—३ मनुस्मृत ४ गीतबहो ५ धर्म मन्त्रगती । ब्राह्मण काव्य में गीत तत्त्व उपनिषद् गीति-काव्य—१ मिथिला गीतों का गीति-काव्य २ वैदिकशास्त्रों का गीति-काव्य । भिन्नभिन्न (नाय) मन्त्रशास्त्रों और गीत सभ्यता के धारणकर्ता भक्तों का वैदिक काव्य बंगाल के ब्राह्मण सभ्यता और उनका वैदिक काव्य लिख्यं ।

१—१५

२ लोक-साहित्य और लोक-नाट्य में गीत

त्रिपय प्रवेश लोक-साहित्य की विशेषताएँ—समाज स्वयंसेवा और स्वयंसेवा-नाम की शक्ति परम्परा प्राकृतिक और स्वाभाविक स्वयंसेवा जातीय भावना और जीवन का निर्माण स्वयंसेवा संगीत भाषा । लोक-साहित्य के प्रकार—१ लोक-कथा २ लोक-गीत ३ लोक-गीत । लोक-गीत मुख्यतः साहसिक मनोरंजन मुख्यतः गीत विवाह गीत तथा अन्य प्रकार के लोक गीत लिख्यं—लोक-नाट्य में गीत लोक-साहित्य और लोक-नाट्य के गीत की अभिव्यक्ति ।

१७—२६

३ संगीत और उसकी मूल्य परिणति

त्रिपय-प्रवेश संगीत का मूल्य नाट्य, स्वर राग रागिनियों संगीत और काव्य गीति काव्य के तत्त्व संगीतशास्त्रों का धार्मिक-वैदिक विचारों की परम्परा नैतिकशास्त्र भाषा गीतों संगीत की ऐतिहासिक प्रगति हिन्दू-नाम (१००० ई० तक) भारत इतिहास मनुस्मृत काव्य मुख्यतः नाम (१०००—१५०० ई० तक) लोक-नाट्य, गान देव गीतिकाव्य, समीर गुणतो नाट्य राजा मार्कण्डेय पुण्डरीक बिन्दु । संगीत की मूल्य परिणति—मूल-गुणतो का प्रयत्न हरिदास वैदिकशास्त्र शास्त्र संगीत का हिन्दी काव्य पर प्रभाव ।

२७—५३

४ तुलसी से पूव हिन्दी पद्य-साहित्य

विषय प्रवेश सामयिक वृत्ति-विचित्रियाँ—१ निर्दुब बारा—ज्ञानाशयी धाका
 श्रीर पद-परम्परा—श्र ज्ञानाशयी सिद्धान्त—बहु जीव माया रक्ष्य भावना कबीर
 की पद-शैली रैवास की पद-शैली शेख फरीद की पद-शैली स्वामी बाहूबाल की
 पद-शैली बनी बर्मदास की पद-शैली धा सिख-सम्प्रदाय—ग्रन्थ साहित्य गुदनामक
 —पद-शैली वृत्त भङ्ग—पद-शैली मृत धमरदास—पद-शैली मुद्र रामदास—
 पद-शैली ५ सयुगधारा—श्र राम भक्ति धाका श्रीर पद—रामानुज—बहु
 श्रीर विशिष्टाईत—जीव ईश्वर, प्रकृति भक्ति श्रीर मुक्ति रामानन्द—सिद्धान्त—
 रामानन्द की विधेपताई—रामानन्द के गीत धा—कृष्ण भक्ति-साक्षा श्रीर पद—
 श्री बन्तमाशार्म धीर मुद्राईत—बहु जीव जयत माया मोक्ष बन्तमाशार्म से पूर्व
 कृष्ण-श्रीला नाम बमदेव—गीतगोविन्द श्रीर गीति-शैली विद्यापति-पदावली ।
 मुद्राईती पुष्टि सम्प्रदाय में पद—सूरदास लम्बदास कृष्णदास परमानन्ददास कुम्भ
 नदास अनुभूतदास छीतस्वामी याबिन्द स्वामी । पदावलीसमीप सम्प्रदाय—हित
 हरिबंस गीत गण्यदास मराठर भट्ट सूरदास मदनमोहन श्री भट्ट हरिदासी
 (टट्टी) सम्प्रदाय—स्वामी हरिदास स्वतन्त्र—मीराबाई । ८५—१२७

५ तुलसी के गीति-काव्य का विषय

रचनाकास—१ श्री कृष्णगीतावली २ गीतावली—बासकाण्ड प्रयोध्याकाण्ड
 परम्यकाण्ड किटिकाकाण्ड सुन्दरकाण्ड संकाकाण्ड उत्तरकाण्ड ३ विनयपत्रिका
 निष्कर्ष । १२८—१७०

६ तुलसी-पद्य-साहित्य के भाव और रस

१ श्री कृष्णगीतावली—कृष्ण का बाल्य जीवन गोपी-उपालम्भ गोपी-विरह
 तुलसी की धास्वा श्रीर भक्ति । २ गीतावली—राम का बाल-विरह (बासकाण्ड)
 गीतावली के भावनापूर्ण स्वत उत्तरकाण्ड । ३ विनयपत्रिका—कवि की स्वकथित
 कोवनी दर्शन-रत्न बहु जीव माया भक्ति—तुलसी की कथित रस-रत्न । मृदार
 रस—श्री कृष्णगीतावली संयोग वियोग । गीतावली—संयोग वियोग । हास्य करुण
 बीर—गीतावली श्री कृष्णगीतावली रौद्ररस वासस्य—श्री कृष्णगीतावली गीता
 वली भक्ति रस—श्री कृष्णगीतावली गीतावली श्रीर विनयपत्रिका । १७१—२३१

७ तुलसी की गीति-शैली और भाषा

विषय प्रवेश—हिन्दुत्वानी संगीत की गीति-शैलियाँ । १ म्रुपद या म्र वपद,
 २ पमार, ३ क्याक ४ हुमरी ५ टप्पा । येस्वामी तुलसीदास की गीत-शैली—
 १ शैक्षणिक रत्न २ वाचालमक रत्न भाषा । २३५—२७१

८ तुलसी के गीति-काव्य में छन्द

विषय प्रवेश—धावावटी काङ्कुरा बट, मभित विमाध, सारंभ-सूही, सुही

विभावस राग मारठ राम मारु राग मसार, भैरवी भैरव दण्डक बसन्त रामकमी
विभाग खंचरी पनाभी विभावस टोड़ा उँठथी केदार मीरी निष्कप्यं । २७४ २-४

६ तुलसीदास के पद्यों में संमीत का शास्त्रीय स्वरूप

विषय प्रवेश १ राम लघन २ राम-मान-काम ३ राग रस निष्कप्यं ।
२८७ २१८

१० मध्ययुगोत्तर साहित्यिक परम्पराएँ और तुलसी

परम्परा और प्रयोग—हिन्दी काव्य में परम्पराओं की अभिव्यक्तियों हिन्दी
मध्यकास की अभिव्यक्तियों तुलसी पद-साहित्य की बन्तु श्री कृष्णमीतावली—गीता
वली विनयविका रस-परम्परा गीत-परम्परा । २१२ ३१२

११ तुलसी के अनन्तर राम-पद-काव्य की परम्परा

विषय प्रवेश १ सिद्ध साहित्य में रामपदक गीत काव्य रामावत मध्य
राम में भवन कवियों का गीत-काव्य काव्य क्षेत्र की साहित्यिक रचनाओं में गीत
काव्य २ लोको-साहित्य में रामपदक गीत-काव्य । ३१३ ३३२

१२ तुलसी के पद-साहित्य का परिगट्य

विषय प्रवेश तुलसी काव्य की सामान्य विशेषताएँ तुलसीदास के पद-साहित्य
की विशेषताएँ तुलसी का पद-साहित्य और अन्य कवि निष्कप्यं । ३३३—३४०

परिगट्य—१

सहायक ग्रन्थ-शुची

३४१



१ हिन्दी पद्य साहित्य के स्रोत

विषय विचार—एक काव्य की वेद सीमा है जिसमें पीत-तत्त्वों व काव्य धर्म की वियों के काव्य की धारणा साह-व्यक्ति का प्रापाम्य है। प्रथम धरणी महत्त्व मम स्थायिता और विरामन प्रभाव से यह उनम धारिक मयुर मुक्त और मुपाह्य है।

पीत की महत्त्विता को ही यह धर्म है कि वैदिक माहिर्य में मंजर हिली व धार तक के माहिर्य म उमका धरिचिन्त्यन शोन प्रवहमान है। वेद काय के धनलन मन्वृत और पामि तथा प्राकृत पाठ-भाषापा व काव्यो म उमक लक्ष धरुगिन हा उडे है प्रपन्न काव्य म महत्त्वानी गिठ मतो व धर्यापवा म उमका एक मुपल स्वल्प मित उठा है और धनलन हिली व विविध युगा म जीबल बना हुआ वह धरने का गतिगीन रन है। उमका द्धिगत पीत-काव्या की वन्तु और रूप से धनलन प्रवत्य है किन्तु पयता का मम धारण ममी म एक है। जिसम मन्मूर्ध प्रगीत काव्य एक मूष म धरने का माहम किया जा सकता है।

मन्वृत काव्यपास्त्र में पद्यामक मय काव्य व प्रवत्य और मुक्तक का वेद है। प्रवत्य काव्य (महाकाव्य और लघु काव्य) की कथावन्तु उमके पद्या म धरिचिन्त्य एव में ममाहिन गनी है जबकि मुक्तक काव्य धरने एक पद्य म प्राय पूरा होता है। एक की धारणा को म पूर्ण होने पर 'युमक पीत म पूष हान पर उमें 'ममानिक' धार में पूष होत पर 'कमारक धीर पीष म पूष होने पर उम 'युमक कान का विपात मन्वृत काव्यपास्त्र में है।' पर भी प्राय एक पद्य में पूष हाता है और उमकी कावनायें मुक्त होती हैं। इसम उमें मुक्तक व धनलन ही गया जा सकता है।

मुक्तक के मन्वृत में यदि ध्यातक रूप म विचार किया जाता तो मन्वृत है कि पीत पर भी कुछ प्रकाश पड़ जाता किन्तु हमारा मन्मूर्ध पद्यामक काव्य मन्वृत वेद रहा है और उमकी विविध विधाओं की विधेयनायें भी सामान्यत एक ही रही हैं। हमने पीत काव्य के स्वरूप प्रवृत्तियों और विधेयनाया धारि लक्षों पर मन्वृत और

१ धर्मोक्तपर पद्य नेत्र मुक्तक मुक्तकम् ।
 धाम्नां तु युमक ममानिक' त्रिभिगिन्दे ।
 कनापत कनुमिरक पधमि कुचक मनम् ॥

हिन्दी के काव्य-साहित्यों में स्वतन्त्र रूप से विचार करने की कही आवश्यकता नहीं समझी। कबल हमारे काव्य-शास्त्रों में यदि गीत विषयक विवेचन का प्रभाव हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या? इसके विपरीत ग्रीक और रोमन साहित्य में गीत-काव्य की अपनी स्वतन्त्र सत्ता रही है। जिससे उनके काव्य शास्त्रों में तत्त्वम्बन्धी सम्यक विवेचन मसिबिष्ट है। 'डिबेरी-मुम' में जब हिन्दी पारश्चात्य साहित्य से प्रभावित हुई तब इन उसके गीत-काव्य के सिद्धांतों से भी परिचित हुए और हमारे कवियों ने उसके धमिप्रेरणा लेकर स्थायिकी कहे जाने वाले गीत रच डाले। परन्तु यहीं से हमारा येय काव्य एक नवीन विशा की धोर उगमूक हुआ किन्तु फिर भी पद्य की अपनी परम्परागत स्थिति धसुण्य रही।

पारश्चात्य साहित्य में गीत (Lyrio) उम विधिष्ट काव्य की संज्ञा है जो किसी समय Lyro नामक वाद्ययंत्र पर गाया जाता था।¹ धाये बलकर तिरिक वाद्य पारश्चात्य येय काव्य के विधे कड हो गया इसम कवि की वैयक्तिक धन्तर्भावना धावरयक समझी गई।

इससे यह स्पष्ट है कि गीत में संगीतात्मकता धावश्यक ही नहीं धनिबार्थ है। किसी समय गीत (Lyrio) के लिए सायर धावरयक रहा हो किन्तु धाय बलकर उमके लिए संगीत की मस्वरता ही धावरयक रह गई। जो बन्तुत उमका धावरयक सिद्धान्त बना भी गई है। संगीतात्मकता के समान गीत के लिए कवि की धन्तर्भावना भी धावरयक तत्त्व है। धान्यमा काव्य की धान्य विधाधो मे उमकी

1 Lyrical poetry—A general term for all poetry which is or can be supposed to be susceptible of being sung to the accompaniment of a musical instrument

Encyclopaedia Britannica Eleventh Edition Vol VII Page 180

Lyrical poetry is that species of poetry by which the poet directly expresses his emotions.

The New Popular Encyclopedia Vol. VIII Page 437

मुत्त-मुत्त क भावावेधामयी धवस्वा विधेय का धिने-धुन धयरो में स्वर-साधना के उपबन्धत विधध कर देना ही गीत है।

महादेवी कर्मा—साग्यपीत—धपनी बल

2. To return again to Greece there was an early distinction soon accentuated between the poetry chanted by a choir of singers and the song which expressed the sentiments of a single poet. The latter or song proper had reached a height of technical perfection in The Isle of Greece where burning Sapho loved and sang

Enc Brit Vol VII Page 180

कथना जने ही हो जाय किन्तु बहु शीत की सीमा से न बँध सकेगा। कवि की पदसजावना क प्रभाव म स्वरुप भाव ही प्रस्तुति हो सक्ये जो महाकाव्य लघुकाव्य और नाटक आदि के लिए ही उपयुक्त है शीत के लिए नहीं। शीत को संश्लेषता भावना की एकसूत्रता साया-सीमा का साधुर्म आदि तत्त्व बन्तुन कवि की पद सजावना के ही साभित है।

शीत के स्वरुप और प्रकार पर भी पाश्चात्य काव्य-शास्त्रियों ने विचार किया है और के निम्न विषय पर पढ़ेके हैं।

१ शीत काव्य के भाव वा वस्तु सम्बन्धी भव—प्रम प्रमाण लेकिन प्रमाण प्रकृति प्रभाव बुद्धि प्रदान विचार प्रदान सामाजिक व्यवसाय प्रयुक्त आदि।

२ शीत काव्य के रूप सम्बन्धी भव—बनुरीदापदी (Sonnet) मद्योप शीत (Ode) लोक शीत (Elegy) शीत (Song) ईदिव (Idyle) सब पद शीत (Epistle) आदि।

जो पाश्चात्य शीत काव्य के सम्बन्ध म बूझ जानों को सकर विचार कर लिया गया है किन्तु हमने यह न समझा जाय कि हमारा पद-साहित्य इनमें प्रभावित है। 'भाग्येणु युग तक पद-साहित्य का प्रत्यक्ष शीत प्रभावित रहा है और पदसाधन 'द्विबेदी युग 'छायावादी युग और 'प्रगतिवादी युग' म लेप काव्य के रूप में अने ही बर्णिकर्तन होके रहे हो किन्तु पर क स्वरुप पर कोई प्रभाव नहीं पडा। पर में प्रथम लेकिन ठीक और दोप लेकिन 'पदसाधन कहमानी है जिसमें काव्य का नातिक या बसिक पद और अनुकूल बैठने वालो राग रागिनी की व्यवस्था रहती है। जिसमें बह बर संकीर्ण की वेपता में पद उतर जाता है। कवि और

१ शीत यदि दूरे का इतिहास न बहकर वैकल्पिक सुग-दुग ध्वनित कर सके तो इसकी साधिकता विरमय की बन्तु बन जाती है इसमें सन्दह नहीं।

—महादेवी-आर्यपीत—धनी बाज

Hegel who has gone minutely into this question in his *Aesthetik*, contends that when poetry is objective it is epical and when it is subjective it is lyrical. This is to ignore the metrical form of the poem and to deal with its character only. It is as he insists the personal thought or passion or inspiration which gives its character to lyrical poetry. The lyric has the function of revealing in terms of pure art the secrets of the inner life its hopes its fantastic joys its sorrows its delirium.

Enc Brit Vol VII Page 180-181

Lyric has been here held essentially to imply that each poem shall turn on some single thought feeling and situation.

F T Palgrave Golden Treasury Page 9

भरत इसी सरल शैली में पर का निर्माण और मस्ती से गात करते रहे। तुलसीदास ने भी इसी पर-शैली में 'धीरूषण गीतावली' 'गीतावली' और 'वितथ-वचिका' का निर्माण किया था जो हमारे प्रस्तुत प्रबन्ध के सामोप्य विषय हैं।

हिन्दी भाषा-साहित्य की पृष्ठभूमि

वैदिक युग में प्रचलित भाषा में धार्यों ने अपने बहुरा की रचना की थी। उस समय बोलचाल और लेखों की भाषा में किसी प्रकार का अंतर न था किन्तु विकास की प्रयत्न में इनमें परिवर्तन सम्भविष्ट हुए। जिसमें जो विनोद विद्याओं की ओर उनका मुड़ जाता स्वाभाविक हो गया।

पंचमस्य प्रदंश से धार्यों के धार्ये बढत पर उनका धार्यंतर जातियो में संसर्प हुआ फलस्वरूप वैदिक भाषा में उनके भाषा-तन्त्र मिश्रित हो गए। इन तबीत समावेशों के कारण ही सास्क की वैदिक मन्त्रों की व्याख्या करने में कठिनाई का अनुभव हुआ था। इन प्रकार विविध मिश्रणों की स्थिति में भी धार्यों की यह भाषा विद्वानों की परिधिष्ठित भाषा समझी जाती थी और इसी में उनके द्वारा धार्यस्वरूप ब्राह्मण उपनिषद धारि मिल गये थे। धार्ये चलकर भाषा की वर्धम-पूरुता से बचाने और उनमें विभिष्ट उच्चारणों को सुरक्षित रखने के लिए पाश्चिमी ने उसे 'धर्यापी' के सूत्रों में धार्युठ कर दिया फलस्वरूप उन परम्परागत वैदिक भाषा संस्कृत हो गई। इन प्रकार वैदिक भाषा अन्वेष कालीन प्राकृत धार्यस्वरूप उपनिषद धारि की साहित्यिक तथा पाश्चिमी द्वारा प्रतिपादित संस्कृत भाषा इन तीन कक्षाओं का पार करती हुई कठिनाई हो गई।^१ ऐसी भाषाओं के मध्य में धार्य भी बड़े प्रतिष्ठित भाषा धरने काइ मय के द्वारा उनको धर्मिप्रति करनी जाती आ रही है।

बालचाल की भाषा का स्वरूप भी निम्नतर प्रगतिशील रहा। जन-समाज की भाषा होने के कारण इसमें धार्यतर भाषाओं के धर्या का धारिक समावेश हुआ जिसमें संस्कृत भाषा की धर्याशा केम शरुती की पचाल की पाश्चिमी धारिक थी। इसमें इसका संस्कृत भाषा में दूर बड़े जाना स्वाभाविक था। तथा ता यह है कि यह सब धार्यों के धर्याओं में मिश्रण के कारण हुआ। धीरे-धीरे यह धर्य ही धर्य हो गया जिसमें भाषा-परिवर्तन के माध-माध सांस्कृतिक परिवर्तन समाधिष्ट हुए और धार्यों के विरुद्ध धर्यास्वरुपारी जन धोर बौद्ध धर्यों का विकास हुआ जो गिज्ञात्मक धरिक धर्य के प्रतिनिधायक धर्य थे। इन्हीं धर्यधर्या में उनके धर्यतया में लौक-भाषा का धरणी धर्य धार्य माधकर धरने धर्यों का मयाधमध प्रसार किया और जन जीवन में भी संस्कृत की धर्याशा सरलता में धर्यमय हो जाने के कारण धार्य

१. डॉ० सुनीलकुमार धर्यों—भारतीय धार्य भाषा और हिन्दी पृष्ठ १९

हिन्दी पद-साहित्य का स्थान

भाषा का स्वागत किया।¹

बड़े काम की प्रकथित साक-भाषा प्राहुत कहनाता है। "गम्भ म ईदिक भाषा और नम प्राहुत म किमी प्रकार का घन्लर न वा बिम्बु कायाला म दीता म पर्याप्त घन्लर घटित हुए और दाता भाषाएँ एक दूसर म दूर जा परा।² इन दाता क घन्लरयत और बिबेकन की मुकिषा क काग्य विद्वाना म ईदिक घाय भाषा का प्राचीन भारतीय घाय भाषा और प्राहुत भाषा को मध्य भारतीय घाय भाषा की मजाएँ प्रदान का है।

प्रभुत घायाम्य विषय क माल बड़-साहित्य म उपलब्ध हा उ है। घन्लर उन्ही का पापण 'प्राचीन भारतीय घाय भाषा और मध्य भारतीय घाय भाषा क साहित्या म हुआ है। प्रथम की भाषा त्रीमा निबन्ध किया जा कहा है कि पाणिन क घन्लर एक सुम्बिर रूप ग्रहण कर चुकी थी। इसम उसकी प्रगति की सम्भावना ही नहीं थी। फलस्वरूप उसक मनुष्य साहित्य म कम्पुगन और दीसोगन एक मूलना मिल जाती है। इसके बिपरीत द्वितीय की भाषा नाच त्रीबिन म मनुष्य रहन क काग्य प्राय घायने स्वरूप और साहित्य म परिबन्धन महब्रमी रही है। इसम उसक बिबिध रूप म ईबिष्य और पर्याप्त घन्लर मिलन है। बहु पाणि प्राहुत और घन्लर का मामाघा का घनितमय करनी हुई रग की घायुनिक भाषाया म प्रभुति हा उनी है। इसम हिन्दी पद-मग्भरा म संरगन हाते के लिए इनम घयग-घयग उन परम्परा का नाम करना घपिक सर्मीचीन है। हम घयन उह रूप म प्रबिष्ट हा उसम वहन उपयुक्त होना प्रकार क साहित्य म परिबिन हा तथा उचिन है नम गातवाच्य की बिबिध परिबिनिया और मानी की हम मारी प्रकार मयम मकने।

ईदिक साहित्य—श्रवण यमुबेद गामर और घायरबेद बाग बेद है।
 1. प्रयक के का घयग घयग गहिनाएँ बागण उ घायरक और उपनियद तीन बिभाग है। इनम श्रवण मयम अचिक प्राचीन है।
 2. प्रबाच भारतीय भाषा का साहित्य—प्राचीन भारतीय घाय भाषा का

साहित्य बड़ा मयमत्र है। मरा कबिया साक-काग घायरारिका और दासंतिवा न घानी प्रगिभा के रूप मे घायनी रचनाघा द्वारा इन औरबाचिक किया है। कम्पुत मर मरी प्रबाच बिबिष्ट है। इमी काग्य नम भारतीय म्भुति का अनिबिष्य और गार भाषाया के लिए अमिप्रराया क तहक बिदमान है।
 3. इम रूप गुराण बागण घया क अनिबिष्य मामाघा और मरामान घादि भारतीय घाय भाषा के ही उपनीच्य न रहन मनुष्य भारतीय साहित्य क

1 डा० मुनीनिधुमार धर्त्री—भारतीय घाय भाषा और हिन्दी पृष्ठ ६३
 2 डा० इयाममुग्भराय—हिन्दी भाषा—भारतव्य का प्राचीन मजाएँ पृष्ठ ७

अभिप्रेरक और उपजीव्य रहे हैं। इन्होंने हम बिदेसी साहित्य के समझ और आश्रित और महान् सिद्ध किया है। इसी के कारण बिदेसी जिज्ञासुओं ने हमारे साहित्य का सम्बन्ध कर हमारी महिमा और प्रतिभा का मूल्यांकन किया है जिससे हमारी संस्कृति की महत्ता मिश्र हुई है।

महाकवियों के मध्य में कालिदास का प्रमुख स्थान है उन्होंने कुमारसम्भव मंडूत और रघुचर काव्यग्रन्थों के अतिरिक्त मालविकाग्निमित्र विजयोर्वशी और पाकुस्तन नाटक भी लिखे हैं। कालिदास अपनी मनोरम उपमाएँ मरिचक प्रकृति चित्रण स्वाभाविक मानवीय चित्रणों के लिए अद्वितीय हैं। उनके अन्तर्गत भी महाकाव्य की परम्परा समृद्ध रही है। अश्वमेध का बुद्धचरित नारद का किराताभूतीय मट्टि का भट्टिकाव्य माघ का शिशुपालवध श्लेषक के 'गमावन मजरी' और 'मारुतमजरी' भी हर्ष का 'शैष' बिल्हण का 'विजयाश्वमेधचरित' कश्यप का 'राज तरंगिणी' धारि प्रसिद्ध महाकाव्य है। मघ साहित्य में बाणभट्ट के 'हर्षचरित' और काश्यप की लखी का 'बसकुमार चरित' मादक साहित्य में कालिदास के नाटकों के अतिरिक्त विद्यालक्ष्मण का मुद्राराक्षस भूइक का 'मृच्छकटिक' मधुसूति के 'मालती माधव' 'महावीरचरित' और 'उत्तररामचरित' राजसेखर का 'बाण रामायण' जयदेव का प्रसन्नराज तथा भाग साहित्य में 'अनुभूषी सुवराजहस्त रत्नरत्न भाष' काशीपति कृत 'सुकुन्दात्मज भाष' रामचन्द्र वीरचित कृत 'शुभारतिमक भाष' मल्ला वीरचित कृत 'शुभार मर्बस्व' धारि सस्कृत-साहित्य की तीरनाम्नित किमें हुए हैं। साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत भारत का 'नाट्यशास्त्र' भासक का 'काव्यालक्षर' बामन का 'काव्यालंकार मुक्त' रघु का 'काव्यसंसार' घालम्बरचरन का 'अभ्यालोक' लक्ष्मण का 'अलंकार मर्बस्व' पण्डितराज जगन्नाथ का 'रमणभाषर' धारि प्रसिद्ध है। भारतीय साहित्य में दो प्रकार के वर्णनों का विकास हुआ है—(१) नास्तिक वर्णन और (२) वास्तिक वर्णन। प्रथम के अन्तर्गत चार्वाक जैन और बौद्ध वर्णन आते हैं तथा द्वितीय में ग्याय वैदिक साधय गायत्रीयासा वैदिक धारि वर्णनों का विकास हुआ है। उन सभी वर्णनों में पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ है।

घा. मध्य भारतीय भाषा भाषाएँ—इन भाषाओं का मन्त्र २०० ई० पू० में १००० ई० तक सीमित है। १०० ई० के आन-आम मुगलमानी के आक्रमणों विजयों तथा देश में उत्पन्न बम जाने से यहाँ की राजनीतिक सामूहिक चामिक एक साहि रियर परम्पराओं में अडेसन हो उठा था। इनी समय यही भाषाएँ अण्ड्रस में अलप अपनी प्राण-प्रतिष्ठा में प्रवृत्त हो उठी। इस समय के कारण ही २० अटवी १००० ई० को भारत की साहित्य भाषाओं के विचरित होने की धारि तीमा मानन है।^१

- डा पीरेण्ड बर्मा ने उपयुक्त १३०० रूप के समय के निम्न तान विभाजन किए हैं।^१
- १ पानि तथा घासाक की परम-विधियाँ (१० ई० पू० म १ ई० पू० तक)
 - २ माहिगियक प्राहुनि भाषाण (१ ई० म १०० ई० तक)
 - ३ धनप्रग भाषाण (१० ई० म १००० ई० तक)
 - ४ पानि साहित्य—भाषा के लिए इस तरह का प्रयोग १३वीं शताब्दी

म पूर नहीं मिलता। फलन समय को घनेता यह प्रयोग धार्मिक नहीं है। घासाय कुउपोर में चौथी धपका पाँचवीं शताब्दी में इस तरह का प्रयोग धार्मिक 'अच्छतपापा' की 'विशुद्धिमत्ता' में किया है। यह एक निम्नन्देह बड़ा विचाराम्य है किन्तु मात्र यह तरह की माहिगिय के लिए रुढ़ हो गया है।

उपयुक्त के ममान यह किम प्रत्यक्ष ही भाषा है यह प्रत्यक्ष ही विचाराम्य है। मत्र ता यह है कि पौरुष कुउ ने धरने विचार भाषा में ही प्रकृत किए थे किन्तु विधु-विशुद्धियों द्वारा अब के दूरम्ब प्रदेगा मत्र म जाए मए मत्र विविध प्राणिम भाषा मत्रों का उनम मन्विधया हा मया त्रिमम में विज्ञानों के मध्य में पानि-विषयक विचार-विषय प्रस्तुत होता रहा है। बम्भुन मूल पानि मयपी ही रही है।^२

पानि साहित्य में निम्नलिखित वर्णनात्मक भाष्य उपलब्ध हैं—धनात्मकम त्ररुटाहगाथा त्रितामद्वार त्रिनर्त्तित गजमसु मधम्मापादन पञ्चगतिपीपन मोहस्यदीनवार घादि। उपयुक्त के धार्मिकत मय धीर पय मिधित य धाम्पात मी है—एवासाहिनी कुउानद्वार महम्मबम्पुरकरण गत्रापिगत्रविनामिनी घादि।^३

इन भाष्यों के निर्गमों का उद्देश्य केवल धीर की ओर धम के मिज्ञानों का प्रचार और प्रसार ही रहा है फलतः भाष्य के धार्मिकत मत्र उनम उपलब्ध नहीं हाने। उनमें कल्पना और मोहय की धनुमूनि तो दूर रही जीवन का वैविध्य नहीं मन्विध नहीं है।

२ प्राकृत साहित्य—मध्य मागधीय भाषाया म पानि के धनन्तर प्राहुन की प्रतिष्ठा हा उगी है। मत्र ता यह है कि केन्दर्भापीत तान भाषा ही त्रिक विचार प्रत्यक्ष नहीं गई धीर पानि के धनन्तर प्राहुन म उनका मृग्यत्व मन्विध दृष्टिगोचर हुआ बाद में धनप्रग भाषाओं में उनम व्यापक रूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार तान भाषा के विचारों के विविध स्वरूपों में यह मध्य का स्वरूप है डा पानि की घनेता साहित्य क्षेत्र में व्यापक रूप में प्रतिष्ठित है।

उन क्षेत्रों में प्राहुन भाषा के माधुन्य की धनुमूनि हा उगी की त्रिममें विविध विज्ञानों में उनको मराहता की है। तान-साहित्य विचार मृग्यर का प्राहुन

१ डा पीरेण्ड बर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास पृष्ठ ४६ ६८
 २ धी धनन्तर उपाध्याय—पानि साहित्य का इतिहास पृष्ठ ८
 ३ धी धनन्तर उपाध्याय—पानि साहित्य का इतिहास पृष्ठ १८६

प्रतिप्ररक और उपजीव्य रह है। इन्हीं हम विवेची साहित्य के ममस औरभावित और महाम् सिद्ध किया है। इन्ही के कारण विवेची जिज्ञासुधो ने हमारे साहित्य का अध्ययन कर हमारी महिमा और प्रतिभा का नूत्याकन किया है। बिनासे हमारी संस्कृति की महिमा सिद्ध हुई है।

महाकवियों के मध्य म कालिदास का प्रमुख स्थान है उन्होंने कुमारसम्भव मेघदूत और रघुवम काव्यसत्थों के अतिरिक्त मासविकान्तिमिष विक्रमोर्षची और साकुम्तल नाटक भी लिखे हैं। कालिदास अपनी मनोरम उपमाएँ, मरिचक्य प्रकृति चित्रण स्वाभाविक धामधीय चित्रणों के लिए अद्वितीय हैं। उनके अन्तर भी महाकाव्य की परम्परा अलुप्य रही है। अश्वघोष का बुद्धचरित भारवि का किरातावृत्तीय मट्टि का मट्टिकाव्य माघ का छिमुपालवध क्षेमेह के 'रामायण मजरी और 'भारतमंजरी' भी हर्ष का 'नीपथ' बिम्बह का 'विक्रमाकदेवचरित' कश्यप का 'राजतरंगिणी' प्रादि प्रसिद्ध महाकाव्य हैं। कठ साहित्य में बाणभट्ट के 'हर्षचरित और 'कादम्बरी' वकी का 'वसकुमार' चरित नाट्य साहित्य म कालिदास के नाटकों के अतिरिक्त जिज्ञाकरन का मुहारासम शूद्रक का 'मृच्छकटिक' भवभूति के 'मानती मायक' 'महावीरचरित और 'उत्तररामचरित्' राजशेखर का 'बाल रामायण' जयदेव का 'प्रसन्नराज' तथा माघ साहित्य में 'अनुजापी बुधराजह्वन' 'रत्नसदन भाष' काशीपति कृत 'सुकुन्दावन्द माघ' राममह दीक्षित कृत 'शुभारत्निक माघ' लक्ष्मी दीक्षित कृत 'शुभार मर्कस' प्रादि संस्कृत-साहित्य को मीगभावित किया हुए हैं। साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत भारत का 'नाट्यशास्त्र' 'भाषा का वाक्यान्कार' 'वाचन का 'वाक्यान्कार' 'सूत्र' 'रजट का 'काव्यसकार' 'घान्धर्वचर्चन का 'ध्वजामोक' 'लम्बक का 'घनकार' 'मर्कस' 'पवित्रराज' 'जलभाष का 'रमणपाथ' प्रादि प्रसिद्ध हैं। भारतीय साहित्य में दो प्रकार के वर्णनों का विकास हुआ है—(१) नास्तिक वर्णन और (२) धार्मिक वर्णन। प्रथम म अन्तर्गत चार्वाक जैन और बौद्ध दसन प्राते हैं तथा त्रितीय में म्याय वैदों विक साध्व योग भीमासा वेदान्त प्रादि वर्णन का विकास हुआ है। उन सभी वर्णनों में पर्याप्त साहित्य का निर्माण हुआ है।

आ मध्य भारतीय धार्मिक भाषाएँ—इन भाषाया का समय ५० ई० पू० से १०० ई० तक मीघित है। १०० ई० म प्राय-वाम मुगलमाना के प्रायमकों चित्रणों तथा वेस में उनके बन जाने म मही की राजनीतिक साम्बुतिक चार्मिक एवं साहि चित्रक परम्पराया म उद्वेलन हा उठा का। 'मी मयद देवी भाषाएँ अयधरा के अत्य अयनी प्राय-प्रतिष्ठ म प्रबुल हो उठी। इन लम्ब म कारण ही डा० अटनी १००० ई० को भारत की प्राबुतिक प्रायाया के चित्रित होने की प्रादि टीमा मानन है।'

70. बीरोज बर्मा न उपयुक्त १५०० शब्द क समय क निम्न तीन विभाजन किय है।¹
 १ पालि तथा धर्मोक्त की धर्म-निर्णयों (५०० ई० पू० से १ ई० पू० तक)
 २ माहित्यिक प्राकृति भाषाए (१ ई० म ५० ई० तक)
 ३ धर्मग्रन्थ भाषाए (५०० ई० से १०० ई० तक)

१ पालि माहित्य—भाषा के लिए इस शब्द का प्रयोग १३वीं १४वीं शताब्दी से पूर्व नहीं मिलता। कलकत्ता के समय को धरेंदा यह प्रयोग अधिक नहीं है। धाकाय बुद्धकोष ने भी धर्मग्रन्थों की शताब्दी में इस शब्द का प्रयोग अपनी 'संस्कृत-भाषा और 'बिभुजिमम्' में किया है। यह शब्द निरन्तर बड़ा विवादास्पद है किन्तु धारा यह शब्द बौद्ध माहित्य के लिए लक्ष्य हा गया है।

उपयुक्त क समय यह किम प्रत्यक्ष भी भाषा है यह प्रश्न भी विवादास्पद है। मन्थ तो यह है कि गौतम बुद्ध ने अपने विचार मागधी में ही प्रकृत किए थे किन्तु मिथु-निगुणिया द्वारा जब के ब्रह्म प्रदर्शो तक से जाए मण लक्ष विविध प्रारम्भिक भाषा तत्त्वों का उत्तम मन्थिना हा गया जिससे ये विज्ञानों के मध्य में पालि-विषयक विचार-विषय प्रस्तुत होना रहा है। अस्तु मूल पालि धर्मगी ही रही है।²

पालि माहित्य में निम्नलिखित धर्मशास्त्रिक काव्य उपलब्ध हैं—धर्मशास्त्रिक नरकशाहभाषा विनायकद्वारा लिखित पञ्चमधु मधुमोषायन पञ्चगणित्थीयन सोम्यरीतवार पादि। उपर्युक्त के धर्मशास्त्रिक पद्य और पद्य विहित व भाष्याय भी।³

इन काव्यों क निर्माण का उद्देश्य कलकत्ता और बौद्ध धर्म के विज्ञानों का बाग और प्रसार ही रहा है कलकत्ता के धर्मशास्त्रिक तत्त्व उत्तम उपलब्ध नहीं है। उनमें कलकत्ता और मौर्य की धर्मशास्त्रिक तो बुरा रही जीवन का वैविध्य नहीं धर्मशास्त्रिक नहीं है।

२ प्राकृत साहित्य—मध्य भारतीय भाषाओं में पालि के समान प्राकृत की प्रकृति हा उठी है। सब तो यह है कि वैदिककालीन सात भाषा ही विविध विकास ग्रहण करती गई थी पालि क धर्मशास्त्रिक प्राकृत में उनका मुख्य स्वरूप कृष्टिणाकर हुआ बाद में धर्मग्रन्थ भाषाओं में उनका स्वरूप ग्रहण कर लिया। इस प्रकार मौर्य भाषा के विकास के विविध स्वरूपों में यह मध्य का स्वरूप है जो पालि की धरेंदा माहित्य क्षेत्र में स्वरूप रूप में प्रकृष्टि है।

- अन जीवन में प्राकृत भाषा के माधुय की धर्मशास्त्रिक हा उठी थी जिसमें विविध विज्ञानों में उनको मराहना की है। तायक-मायिका विषयक धर्मशास्त्रिक का प्राकृत
- १ डा० बीरोज बर्मा—हिन्दी भाषा का इतिहास पृष्ठ ४६ से
 २ भी धर्मशास्त्रिक उपाध्याय—पालि माहित्य का इतिहास पृष्ठ २८
 ३ भी धर्मशास्त्रिक उपाध्याय—पालि साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३८४

के ललित और मधुर धारों में भी स्वरूप है वह प्रसा उत्कृष्ट में कब पड़ा जाता सम्भव है—जयवन्धु ने 'बज्रालोक' में यह विचार प्रकट किया है। 'साक्षात् सप्तशती' के लघुकाण्ड हाम प्राकृत के माधुर्य को काम कीड़ा में भी मधुच्छर कहते हैं।^१ 'राजशेखर' में कर्पूरमञ्जरी से संस्कृत और प्राकृत का वही अन्तर माना है जो पुष्प और स्त्री में होता है।^२

प्राकृत के उपमन्व्य साहित्य के आधार पर प्राकृत वैद्याकरणों में उनका निम्न पाँच विभाजन किए हैं —

१ शौरसेनी प्राकृत—मथुरा तथा उनके आसपास की सेंट भाषा रही है। मध्य देश की भाषा होने के कारण अक्षिपट प्राकृतों की अपेक्षा इन पर संस्कृत का अधिक प्रभाव पड़ा है। संस्कृत नाटकों और जैन धर्म के ग्रन्थों में यह उपमन्व्य है।

२ मगधी प्राकृत—बिहार प्रांत के अन्तर्गत मगध की भाषा रही है। गौतम बुद्ध के उपदेश और वालि का मूस योग इसी भाषा का पुरुष रूप रहा है।

३ अर्धमागधी प्राकृत—यह काशी और कौशल प्रदेशों की भाषा थी। इसमें मागधी प्राकृत का रूप भी मिलने है। इसका रूप जैन शास्त्रों में सुरलित है।

४ महाराष्ट्रीय प्राकृत—म्हाराष्ट्र के पश्चिमी में इस प्राकृत को ही आधार माना है। संस्कृत नाटकों में अहाँ भी प्राकृत छन्दों में रचना प्रस्तुत की गई है वह इसी प्राकृत में लिखी गई है।

५ वैश्याची प्राकृत—देस की परिवर्तित नामों का रूप ही वैश्याची के नाम में प्रक्याप्त है। मुजाराय ने 'बृहत्कथा' इसी प्राकृत में लिखी थी किन्तु आज यह अज्ञाय है। इसमें किसी भी प्रकार का साहित्य उपलब्ध नहीं है।

इन सभी में महाराष्ट्रीय प्राकृत ही स्थापक और पश्चिमाधिक प्रयोग में रही है। नाटकों और काव्यों में यही व्यवहृत होती रही है।

प्राकृत में दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध है — १ साम्प्रदायिक—जैन धर्म सम्बन्धी और २ साहित्यिक—काव्य और नाटक धारि।

१ जैन धर्म की मधुर्ध रचनाएँ अर्धमागधी प्राकृत में लिखी गई थी। इन रचनाओं में उनका सिद्धांत और टीका बन्ध धारि है। सिद्धांत ग्रन्थों में संस्कृत और मूल मूल प्रयुक्त हैं। इनमें जैन-धर्म के मधुर्ध धारि-विचार वत धनुशासन धारि

- १ ललित मधुरधरण बुद्धसम्बन्धे ललितारे ।
गन्धे पात्रयकम्बे का मधुर्ध मधुर्ध पडितम् ॥
- २ धारि पात्रयकम्बे पडितं नीर्धं य जैन धारिनि ।
कामम्ब तत्तन्नि बुधन्ति त भूँ य मज्जन्ति ॥
- ३ परमा मधुर्ध अथवा पात्रयकम्बे वि ह्यं मुज्जारे ।
पुरम नाट्याय जतिधरिन्तर ललितनिमाजम् ॥

के मन्त्रित और मधुर धारों में जो स्वरूप है वह मला मस्कुत में रूप पड़ा जाना सम्भव है—जयबल्लभ न बज्रबालन म यह विचार प्रकट किया है।^१ 'भाषा सप्तशती के संग्रहकार हाम प्राकृत के माधुर्य का काम श्रीवा ने भी मधुरतर कहेते हैं।^२ गजधेनर ने कर्पूरमञ्जरी में संस्कृत और प्राकृत का वही अन्तर माना है जो पुराण और स्त्री में होता है।^३

प्राकृत के उपलब्ध साहित्य के धामार पर प्राकृत बंध्याकरण ने उनके निम्न पाँच विभाजन किए हैं —

१ छोरसेनी प्राकृत—मधुरा तथा उसके आसपास की सौट भाषा रही है। मध्य देश की भाषा होने के कारण पश्चिष् प्राकृतों की अपेक्षा इस पर संस्कृत का अधिक प्रभाव पड़ा है। संस्कृत नाटकों और जैन धर्म के ग्रन्थों में यह उपलब्ध है।

२ बानबी प्राकृत—बिहार प्रांत के अन्तर्गत मगध की भाषा रही है। गीतम बुद्ध के उपदेश और पालि का मूल स्रोत इसी भाषा का रूप रूप रहा है।

३ धर्मभाषणी प्राकृत—यह काशी और कोसल प्रदेशों की भाषा थी। इसमें मागधी प्राकृत के रूप भी मिलते हैं। इसका रूप जैन धारों में सुरक्षित है।

४ महाराष्ट्री प्राकृत—ब्याकरण के परिष्कार ने इस प्राकृत को ही धारण माना है। संस्कृत नाटकों में जहाँ भी प्राकृत अन्धा में रचना प्रस्तुत की गई है वह इसी प्राकृत में लिखी गई है।

५ पञ्जाबी प्राकृत—देश की पश्चिमोत्तर बोधी का रूप ही पँद्याधी के नाम से प्रख्यात है। गुमाद्वय में बहुत्वका इसी प्राकृत में मिली थी किन्तु धार वह अप्राप्य है। इसमें किसी भी प्रकार का साहित्य उपलब्ध नहीं है।

इन सभी में महाराष्ट्री प्राकृत ही ब्यापक और धार्मिक-साहित्यिक प्रयोग में रही है। नाटकों और काव्यों में वही अ्यवहृत होनी रही है।

प्राकृत में दो प्रकार का साहित्य उपलब्ध है — १ साम्प्रदायिक—जैन धर्म सम्बन्धी और २ साहित्यिक—काव्य और नाटक धारि।

१ जैन धर्म की सम्पूर्ण रचनाएँ अर्धमागधी प्राकृत में मिली गई थी। इन रचनाओं में उनके निष्ठाएँ और टीका अत्य धार है। निष्ठाएँ अन्धा में प्रिबभूत और मूल मूल प्रभुत है। इनमें जैन-धर्म के सम्पूर्ण धामार विचार अत अनुशासन धारि

१ ललित मधुरवकराण बुद्धजयबल्लभे ललितारे ।

गन्ने पाहपकन्ने को लकण्ड मवकण परिडण्ड ॥

२ धर्मिण पाउपकण परिडण्ड नाड ध जे न धामनि ।

कावस्य ततानि बुद्धनि न वही न लज्जनि ॥

३ गण्णा गवक धरन्था पाउपकणो वि हार मुडधारी ।

पुराण धाट्माध जेनिर्माहन्धर नेलियनिमाणम् ॥

के सभी विद्यालय समाहित हैं। धनलाल जैन-बर्म इत्याम्बर और विगम्बर को बिनागो में रूँट गया है। प्रथम में महागायत्री प्राण्य का प्रयोग किया है। इनमें 'ममराइक्य' तथा 'कवकोप प्रकरण' 'वृत्तस्थान' आदि कथा-साहित्य है—तयगवती सुरमुन्दरी चरित कामकायाय कथानक गिरिसरिवासकथा रयतसेहरकथा भी कथा-साहित्य के प्रसिद्ध परिगणित हैं—किन्तु इनमें गद्य के साथ पद्य का प्रयोग भी उपलब्ध है। दियम्बर सास्त्र में सौरसेनी प्राकृत का प्रयोग किया है। इनमें पद्यसमय समयसार नियमसार, छप्पाहुठ वर्णनसार जोबविचार मूलागपना धावकाचार आदि पर्याप्त पद्य साहित्य है। अथर्व पंचासिका महावीर आणिककथावचन आदि जैन सम्प्रदाय के स्तवन ग्रन्थ हैं।^१

२ साहित्यिक क्षेत्र में भी प्राकृत का पर्याप्त प्रयोग मिसता है। इसको मात्रका म मित्य श्रेणी के पाशो का वार्तालाप का साधन बनाया गया है। इसी में मस्तुठ नाटकों में प्राय इयका प्रयोग किया गया है। अथर्वकोप का 'सारियुग प्रकरण एक राजशेखर की कर्पूरमञ्जरी रचनाएँ प्राकृत में ही रही हैं। कर्पूरमञ्जरी रम्भामञ्जरी चन्द्रसेहा शृंगारमञ्जरी धान्य सुन्दरी आदि सभी-प्रधान रचनाएँ रहने के कारण प्राकृत में ही मिली गई हैं।^२

प्रबन्ध और मुक्तक काव्यों की रचनाएँ भी प्राकृत में मिली गई हैं। राजश बहो यद्द बहो लीलावई गिरिविक्रम्य उदाभिषेक अंगवहो आदि प्रबन्ध काव्य तथा 'पाहा मठसई' और 'वज्रनाग' मुक्तक काव्य हैं। उपर्युक्त म 'लीलावई' बृहस्पति के द्वारा १०० ई० में रचित है। इसमें प्रतिष्ठान के राजा मातवाहन तथा विहस की राजकुमारी की प्रेम कथा है। गिरि चिन्म के कवि मुक्त और दुर्गाप्रसाद हैं। बृहती रचना १९वीं शताब्दी में हुई है, इसमें हृष्यसीसा का वर्णन है। 'उपाधिरथ तथा 'कसबहो' के कवि रामपाशिकार हैं। इनमें प्रथम में उपाधिरथ की प्रेमकथा तथा द्वितीय में हृष्य की बामचीका ने माध्यम से कंसक का विचारण प्रस्तुत किया गया है।^३

उपर्युक्त में राजशबहो या सेतुबन्ध नदूखबहो और गाहाखठसई प्रमुख काव्य ग्रन्थ हैं। 'वज्रनाग' एक संघट्टग्रन्थ है इसका संघट्ट अयबल्लम में किया है। इसमें शृंगार और भीति की ७६५ गाथाएँ उपलब्ध हैं। ये सभी रचनाएँ महाराष्ट्र प्राकृत में रचित हैं और इनमें मात्रा छन्द का प्रयोग किया गया है।

अथर्व पंचासिका—जैन-भाषी व सम्मान से प्राकृत क च्युठ हा जाने पर अथर्व पंच व्यावहारिक उपयोग की धनिकारिणी हुई जिसमें लीला प्रयोग हुए और

१ मं बीरेन्द्र बर्म—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ ४६४-४६५
 २ मं० बीरेन्द्र बर्म—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ ४६४-४६५
 ३ मं० बीरेन्द्र बर्म—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ ४६४-४६५

नवीन प्रकार के साहित्य का मूकम हुआ। अतएव इसी के सम्पन्न रूप से देश की सर्वांगीण भाषाएँ अपना जन्म प्राप्त कर अपने अस्तित्व को प्रगति दे सकी। विविध प्राकृतों के अनुसार विविध उपभ्रंश भाषाएँ जन्मी और उनसे हमारी देशी भाषाएँ उत्पन्न हुई। औरसनी उपभ्रंश से ब्रजभाषा कड़ीबानी राजस्थानी पंजाबी मुजराती और पहाड़ी भाषाओं का मागधी उपभ्रंश से जोड़पुरी उड़िया बंगाली व सामी मैथिली और मगही का अर्धभाषणी से पूर्वी हिन्दी और अरबी का महाउड़िया से मराठी का श्रावण से सिन्धी का जन्म हुआ है। इनमें मुजराती और राजस्थानी का सम्बन्ध औरसनी के साथ उपभ्रंश से भी मानते हैं। इन प्राकृतिक और क्षेत्रीय भाषाओं का रूप उस समय विकसित हुआ जब उपभ्रंशों ने सिद्ध साहित्य के लिए साहित्यिक रचनाएँ प्रस्तुत करना आरम्भ किया। अतएव उपभ्रंशों के साहित्यिक रङ्ग में धावण हो जाने पर उन्हीं क्षेत्रों की जनपदीय बोलियाँ वहीं के लक्षणाचारण की भावनाओं की प्रतिबन्धिता का भाव बन कर और विविध बोलियाँ प्रयोग में आ उठी।

उपभ्रंश-साहित्य का मूकम सिद्ध और जैन-सन्तो द्वारा किया गया का अन्तः वह सभी धर्म-मूलक है। उसमें विमुक्त काम्य के स्थान नहीं होते हैं।

(क) सिद्ध-साहित्य—बौद्ध धर्म की परम्परा में कितने ही सद्गुरुवर्गीय सिद्ध सन्तों ने विविध प्रकार की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं जिनमें सरहृषा के दोहाकोष चर्यागीति बोद्धकोष सरहृषा-नीतिका कामकोष-अमृत-नखपीति आदि अक्षरपा के विस्तृतसंगम्योपदेशगीति महाभुजा-नखगीति पद्मसोप आदि भुक्तुपा का सद्गुरुगीति सुईया के अतिप्रथम-विमलगीतिका आदि किरपा के दोहाकोष किरपागीतिका किरपा-व्य-नीतिका आदि बौद्धिया के अक्षरपाकोषद्वयगीतिका आदि किरपा के गीतिका वसन्तविलक नखपीति बोद्धकोष आदि मोरसापा के मोरसा कानी कामुक्तोपदेश आदि प्रसिद्ध हैं।

जैन-साहित्य—उपभ्रंश-काल में सिद्ध-साहित्य के अतिरिक्त यदि कोई साहित्य उत्पन्न होता है तो वह जैनियों का है जिसमें उनका ममप्र पुराण और अरिष्ट-काम्य परिमणित है। साम्प्रदायिक भावनाओं के कारण उनमें केवल आदि सिद्धान्तों का ही अविषय है, मानव-जनीन भावनाओं का नहीं। इन साहित्य में स्वयम्भू के इतिवृत्त पुराण और पद्मचरित पुण्यरत्न के महापुराण जगहचरित और नामसुमार अरिष्ट योनीय के परमात्मप्रकाश बोद्ध और योगार बाहा रानीसह का पाहुँह बोद्ध और बनपाल का अविमलक वृत्त आदि प्रमुख ग्रन्थ हैं। १०० ई० के अन्तर्ग भी जैन-साहित्य का निर्माण होता रहा है जिनमें अरिष्ट-काम्य व्याकरण अथ और अथ रास आदि मौक-साहित्य प्रमुख हैं।

हिन्दी पद्य-साहित्य के विविध स्रोत—वेद प्राचीन भारतीय आर्य भाषा और मध्य भारतीय आर्य भाषाओं के साहित्य से हमने देखा है कि उनका लक्षण रूप देनी

भाषाओं की पञ्चभूमि में विद्यमान है। इन्होंने जिन परम्पराओं और प्रकृतियों का जन्म दिया वे ही भाषाओं की भाषाओं में प्रस्फुटित हुई और उनका धर्मिय संग बन गई। इसी से प्राकृतिक भारतीय भाषाओं के साहित्य की भाषा शब्द बन्धु प्रकृतियों धारि की परम्पराएँ पूर की साहित्यिक गतिविधियों में विद्यमान है। यहाँ उनमें समाहित सब परम्पराओं का विवक्षण न उपयुक्त है और न समीचीनही प्रस्तुत प्रबन्ध में केवल पर-परम्परा पर विचार प्रस्तुत किया जायगा। फलतः उनसे पूर उद्यक मोठों पर दृष्टिपात कर मता उचित है।

१. वेदों में गीति-तत्त्व

धाओं के द्वारा वेदों का निर्माण प्रकृति की रम्य योग में किया गया था जब धाओं की सम्मता और संस्कृति की ध्वनिकरित धारि प्रबन्धा थी। उस जीवन में उन्हें जो भी मय विपाद और हृष की धनभूतियाँ हुई उनको स्तुतियों के माध्यम में उच्चोनि प्रतिबन्धन किया। ये स्तुतियाँ धर्मि मजिना करण मरत विष्णु इन्द्र रड धारि देवताओं के सम्बन्ध में प्रस्तुत की गई थी जिनका मयह श्रवण में उपलब्ध है।

वेदताओं को समर्पित इन स्तुतियाँ म धरि कही मय और विपाद की भावनाएँ विरोधी हुई हैं ता कही हृष और समारोह की और कही मन्थन और युद्ध की। इस तथ्य से उनमें धार्यों का ध्यात्मविश्रमण तो हुआ ही है किन्तु पूर भाव बाध रहने के कारण विचारों की एकलपता भी प्रतिष्ठित है। ये ध्वनिक सम्बन्धी नहीं हैं जो स्तुतियाँ सम्बन्धी हैं उनमें भी मुक्त भाव है और ध्वनिकीय प्रायः चार करण के रस पद्यों में पूर्ण हुई हैं। इस प्रकार उनमें मक्षिप्तता समावृत्त है। श्रवण का श्रवणों के सहिता पाठ और पर पाठ से रूप उपलब्ध है। प्रथम के द्वारा धार्यों की योजना और द्वितीय के द्वारा धार्यों के उच्चारण की व्यवस्था इच्छित है। विच्छिन्न मय उशात धनुदात और स्वरित की ध्वनि का लय करत है। इस प्रकार कर की श्रवणों का पाठ ध्वनि और लय के साथ करत की परम्परा कासात्वर में ही नहीं पाव तक विद्यमान है। इस लय से श्रवण में समीकारमक तत्त्व पूर्ण रूप में विद्य मान है।

श्रवण के प्रतिरिक्त ध्वनिकीय सामवेद यजुर्वेद और धर्मवेद में भी गीति तत्त्व है किन्तु श्रवण के समान नहीं। इनमें सामवेद का धपता विधेय स्वान है यह मन्थन का ही वेद समझा जाता है। इस तथ्यों में वेदों में मीतारमकता विद्य मान है।

२. प्राचीन भारतीय धाय भाषा (संस्कृत) का गीति-काव्य

प्राचीन भारतीय धाय भाषा धपन साहित्य में मित प्रकार सम्पन्न है यह हम विद्यने पुठों में देव बुक है। उनमें गीति-काव्य भी प्रभूत भाषा में मिला गया है

(मैं मुमुक्षु हो गई। मैं बन्धी मुक्त हो गई। तीन टैड़ी बीजों से मेरी मुक्ति हुई—उखासी से मूमन से अपने बुद्धि पति से। मैं जन्म-मरण से मुक्त हो गई हूँ। मेरी भव-बैठी ही विनष्ट हो गई है।)

मुमयम-माता का श्वावस्ती के निबंन परिवार में जन्म हुआ था। एक छाता बमाने वाला उसका पति था। प्रव्रज्या ग्रहण करने के उपरान्त उसने कठोर साधना द्वारा ज्ञान प्राप्त किया। धनन्तर अपने मुख को उसने इस प्रकार व्यक्त किया—

‘सुनूतिके तुमुतिका तापु मुतिकभिहू मुतमरत ।
 प्रतिरिओ मे छतकं वा नि प्रकलिका मे बलिहूभावाति ॥
 रापञ्च ७ह दोतञ्च बिधिञ्चमती बिहुरामि ।
 वा पचञ्चमम पञ्चम एहो मुञ्चति मुञ्चतो भावाति ।

—(परी बाबा २३ २४)

(मुझ मुक्त की मुक्ति साधु है। मैं मृतम से मुक्त हो गई हूँ। अपने स्वामी के बनाए हुए छातों की उच्छिद्यों से भी मेरी देह दुर्बल थी। मेरे जीवन के राव और दोषों का परिधाम कर दिया है। मैं बूल-मूलों का ध्यान करती हूँ। मैं सुखी हूँ और मुझ में ध्यान करती हूँ।)

सैमा धामनी नगर के राजा की कन्या थी। पिता से उपदेश प्राप्त कर उसने बुद्ध-धर्म में शीला ग्रहण की। धनन्तर वह भिक्षुओं बन गई। एक मध्याह्न में श्वावस्ती के श्वावसन में विधाम करने गई। वहाँ श्वावसेधवारी कामदेव ने उसे फुलपावा किन्तु धर्तव्य ज्ञान को प्राप्त करने उसे निम्न उत्तर दिया—

‘ततितुमुचमा कामा श्वावसं धमिदुहना ।
 व तथं काजरति वति धरति दानि ता मम ॥
 लम्बर व बिहता नगि व लमोवसगपो पशानितो ।
 एव कामाहि पाविन निहूतो त्वमति धनकर ॥

—(वही—२७ २८)

(कामदेव ! मोन का मुख मुझे मार्ग के समान लपटा २। जिसे तुम विनास का गुन कहने हो वह मेरे लिए बुधा की बीज है। मेरी भोजामक्ति विनष्ट और धनानामपकार बलित हो चुका है। पापी ! वह लमर ना कि तुम्हारा ही धम कर जाना गया।)

बंधपानी वा बंधानी के राजोपवन में पाम के पेड़ के नीचे जन्म लेने से यह नाम पड़ा। पचस्वा प्राप्त होने पर उसका लीनर्म निगर पाया। उसने विवाह करने की इच्छा करने के कारण बंधपानी के राजकुमारों में परस्पर स्पर्धा हुई। धनन्तर बंधापत के निबंन से वह नर्मी की नामाम्य पत्नी बनी। अपने जीवन के प्रथिम दिनों में जब लीनमबुद्ध बंधानी कण ती यह उमी के उदरन से इहरे। उसने लमवान् बुद्ध से उपदेश ग्रहण किया और धनता उपवन लंन को जान कर दिया। धनन्तर अपने

पुन विमल कौंग्य से उसने प्रकग्या मी । बूडाबस्वा में धरीर क परिबततो को देग कर उधे बुड-बाणी म मत्यठा प्रतीठ हुई । बहु धपने दुर्बस धीर बर्जगिठ धरीर को देनकर कहती है—

कालका मररबपठबिठा बलितग्या मम मुठका धरुं ।
 से कराय साबबाइधबिठा सपबबादिवचनम' मञ्जबा ॥
 बिलकारमुकता ब कैबिता सोमते मु ममका घुरे मम ।
 ता जरान बसीहि पमन्बिता सपबबादिवचनम मञ्जबा ॥
 पोनबहुपहितुमाता उमो सोमते मु धनका परे मम ।
 बरीति बलगबते मोरका सपबबादिवचनम म मञ्जबा ॥
 एबिठो धनु धर्म समुस्तयो जगजरी बहुदुपकावमा'लयो ।
 सो पलेपवतिनो बराधरो सपबबादिवचनम्' मञ्जबा ॥

— (परी याबा मुठा २५२ ५६ २६४ २७०)

(कामे मीरे क रंग क ममान मेरे धुंकराने बाल से । बही धाज बूडाबस्वा क कारण सन क ममान है—मत्यबादो बुड के बचन कमी धम्यबा नहीं होत ।
 बिनकार टाटा बुगसतापूर्वक धडिठ की हुई मरी को धीहि की बही बूडा बस्वा क कारण भूरिया पडकर नीचे लटकी हुई है—मत्यबादी बुड क बचन कमी धम्यबा नहीं होत । पोन गीस धीर उमठ कमी मेरे बोगों स्तन मे बही धाज जम रहिठ बमड की बास्ती के ममान लटके हुए है । मत्यबादी बुड क बचन कमी धम्यबा नहीं होत ।

एक समय यह धरीर इस प्रकार का बा किन्तु इस समय यह जजर धीर कुन्नों का घर है । जीप-मीर्ण पर बैठ बिना निपार्-गुठार् के मिठ बागा है बीमे ही यह धरीर भी धीम्र ही गिर जावेगा । सत्यबादी बुड के बचन कमी धम्यबा नहीं होते ।

२ पर गाबा— बेरगापा में भी 'बेरी याबा क ममान धालाभिधम्यजन का पूर्ण स्वरूप बिद्यमान है । गयी होने के माते निधुनियों की भावनाओं से जो बोमल धमि ध्यंजना है बहु निधुनों को बाबाओं में धबधप नहीं है किन्तु ध्यष्टि ममष्टि प्रहृति प्रादि को लकर उनकी धनस्वन की बापी मस्बर है यह प्र ब मत्य है ।
 बीड बर्म में मीकी बिगठकों से मुमुति का प्रमुल स्थान बा । बहु बर्पाकाम र्म राजपूह में मुन स्थान में रहते मव । बर्पाकाम होने पर भी बर्पा नहीं हावी थी ।
 बिम्बिमार ने जनक लिए एक कुटी बनवा दी जैसे ही जमाने जममें प्रवेन किया बर्पा हो उठी । जमाने कुटी म बैठकर निम्न यापा का बाल किया—
 धग्ना में बुटिका मुजा निबाता । बस देव धबासुख ।
 बिल में मुनमाहित बिमुल । प्रातापी बिहरामि बस देबा'त ॥

— (बेर याबा—

बिषयता के कारण प्राकृत के प्रायः सभी काव्य इसी शब्द में निर्मित हैं। इस स्वस पर कुछेक प्राकृत काव्यों को लेकर उनमें समाहित कीर्तारमकता में परिचित हो सेवा सावयम्प है।

घा—प्राकृत गीत काव्य

१ सेतुबन्ध—इस काव्य का मर्म 'रावणबन्ध' घबका 'वहमुहवही' है। इसके रचयिता काश्मीर मरेज प्रवररत्न है। उनकी कीर्ति-कीमुवी बड़ी उग्वयन है और दूर दूर तक ध्यई हुई है। कवि ने इसकी रचना महाराष्ट्री प्राकृत में की है। जिसमें मूर्तिमों का सामर भरा हुआ है।^१

इस काव्य में १५ धारकास है जिनमें 'सेतुबन्ध' और 'रावणबन्ध' के मजीब विषय कवि द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं। इस काव्य के मरेज हृदयचरित और 'काव्यादर्श' में अनसम्प है। इनमें यह रचना शरीं सवामी में हुई प्रगीत होती है।

रावणबन्ध के लिए जब राम सदन-बन समुद्र के किनारे पहुँचता है तब वह समुद्र की गरिमा देखकर ससिद्धित होने है—

यह केवलय रहस्यमयी बहुत होतसमसुखबोलेबन्धम् ।

ऊनपरततारमकप्र कज्जारम्पस ओष्यर्च व समुद्रम् ॥

(धारकाम २—१)

(इसके धमन्तर धीराम में मकर-कश्मीर प्रादि की भवानवता व काव्य कुर्मननीय बचन समुद्र वन तथा रत्नादि से योग्यमुक्त समुद्र को देखा वह ऐसा ज्ञात होता था मानो धारम्प किण हुए कर्म का मध्य भाग हो।)

राम-बाब में सहायक होने के लिए मुधीव बन्दरा की निम्न भावना में धमि प्रेरना और अनजना प्रदान करता है—

परविपरचे मुघविषय महम्मि सुरामुरा यप्रम्मि समुद्रा

हगतम्पम्मि रहमुहै पक्षि मुहै त्व महमहस्त सहाया ॥

(धारकाम १—१)

(जिस प्रकार नमवान् बिष्णु के पृथ्वी निर्मित करने पर बुजाई, समुद्रमन्थन के समय दूर धीर धनुर धीर प्रलय के समय समुद्र महापव हुआ है उनी प्रकार रावण-बन्ध के इन काव्य में धाय मीम (बन्धर) सहायक होइए।)

१ कीर्ति प्रवरमेगम्प प्रयाता समुद्रोउग्वयना ।

सायगम्प वर पार कविमेवक तेमुता ॥

—हृदयचरित

० महाराष्ट्रीधया भीया प्रहृष्ट प्राकृत विद ।

सावर् मूर्तिरत्नाता सेतुबन्ध्यादि यमबम् ॥

रावण-वध के घनस्तर मीता को प्राप्त कर राम धयोप्या म पधारत है—
 यत्न नक्षत्रतपस्य कञ्चनतद्विष कृष्णवह्निमि विमुञ्चत ।
 पतो वृत्ति रजुर्वर्ष काठ भरहस्त सत्कर्त प्रभुगणप्रभम् ।

(इसके घनस्तर ध्वनि में विमुञ्च हुई कंचन मण्डि की तरह मीता को प्राप्त कर भरत के प्रेम का मञ्जु करने क सिंग राम धयोप्यापुरी पहुँचे ।)
 काव्य के अन्तिम छन्द में कवि का कथन है कि सीता की प्राप्ति के का
 बहो रामायणवध का वर्णन है तथा जिसमें सेतु-बन्ध धीरे रावण वध धारि मीता
 प्रति राम के अनुगम विह्वल है जो सब व्यक्तियों को प्रिय है वह रावणका
 (सेतुबन्ध) काव्य द्वारा समाप्त किया गया है—
 एव तमप्यह एव सोप्रात्मनेव जनिधरामधमप्रभव ।
 रावणवह्नि ति इव प्रभुगणप्रभु तमत्पञ्चविधैतम् ॥

(धाराधाम १५—१६)

सम्पूर्ण काव्य की रचना धीरे धीरे कदम धारि रतों में हुई है। इनमें धारि
 में घात तक स्तम्भक' छन्द का प्रहम किया गया है। स्तम्भक धारिबन्ध का ही एक
 नेर है जिसमें पूर्वार्ध धीरे उत्तरार्ध म धार माथा के घात म न होते हैं। धार्या बन्ध
 के कारण इस काव्य में नेय तत्त्व पूर्ण रूप में विद्यमान है।

१ गौडबहो—धार्यावृत्ति द्वारा रचित एक महाकाव्य है। यह ऽभी वाताङ्गी की
 रचना है। इनमें १२ १ धार्या (गाथा) छन्द है। यह महाकाव्य धाराधाम सर्प का
 काण्ड धारि में विभाजित न होकर कुसुम सीमा में रचित है। कुसुम काव्य की यह
 सीमा है जिसमें एक कुसुम के लक्ष्मी छन्द एक ही भावना में पिरोए हुए होते हैं।

यह काव्य बन्धु कर्त्तव्य के राजा यशोवर्मा का प्रमस्ति-मात्र है। यशोवर्मा
 के द्वारा गौड-नरेश के रूप की बटमा पर ही इस काव्य का निर्मात्र हुआ है। अपनी
 इस विजय के लिए यह पूर्व की यात्रा करता है धीरे बयात तक पहुँचने में मार्ग में
 भी राजा मिलते हैं। उनको यह धपने धार्यावृत्ति करता बसता है।

मधुसूक्त काव्य में धार्या (गाथा) छन्द का ही प्रयोग किया गया है। विषय
 धारिनि हेरि की स्तुति की कुसुम भाषाएँ देखिए—

1 Monier Williams—A Sanskrit English Dictionary

२ चउमता घट्टना पुष्पय उत्तरय होइ मधुसा ।
 ना लक्ष्मणा विद्यापदु विह्वल पमसइ मुडि बहुसंभेमा ॥

(‘मधुसूक्तम्’ निर्णय-भाष्य प्रथम पृष्ठ ५)

बन्दी रय नहिन्द-सुर-कुम-कच्छुम्भोइएहिब तुमाए ।
 माहवि घष्ठा-बायेहि मखिम तोरब-द्वार ॥२८४॥
 भमराबनिघा भदरवि तुम्भं मबघाडरम्मि सामोए ।
 पड-भेत्तुम्भोइय-अणु बिघत-माता-मोक लुडलि ॥२८५॥
 कबु तुम्ह सभरब रबम्मि बिहडलि बान्ध-अडाघो ।
 पुराउ-रिबय बाहब-मइम्भ-त बिघ माउम्भ ॥२८६॥
 तुम्ह बडिब बलब-कमलाभुयलिबो कह नु संबमिउजलि ।
 सेरिह-बहु-सकिउ-महिउ-हीरमाबनब जमेन ॥२८७॥
 तुहिब-इरी बेमि तुमाइ बबय भावेन गारय मोडो ।
 बिम अभायलोकि कन्दर-निघाउ-बलि ऐ कस्सामि ॥२८८॥

[हे विष्णुबासिनि धनि । तुम्हारे द्वारा बन्दीकृत महिषासुर कुल के कल से लौठी हुई घच्छुभियों द्वारा बना हुआ यह तुम्हारा तोरब-द्वार है ॥२-१॥

हे देवि भैरवि ! कुकुम रूप घादि की गन्ध से सुघोमित तुम्हारे घृहाङ्गक में भ्रमराबनिघा ऐसी सुघोमित हो रही है मानो स्तुतिमात्र से जीवों की टूटी हुई ससार की बन्धन-मानाएँ हों ॥२८५॥

हे देवि ! तुम्हारे स्मरणमाय से रक्थेन से हाथियों के लम्बू बिघटित होकर भावने समत हैं मानो वे तुम्हारे बाह्य मूँअ के द्वारा समाए जा रहे हों ॥२८६॥

हे देवि बरिड ! तुम्हारे बरन्धकमला के उपासक भक्त धम के हाथ कैंते बाँधे जा सकते हैं क्योंकि महिषासुर के बच से गडिदुत होकर बम का महिष डर जाता है और धम मज्जित हुए में उम भवन के पाग नहीं जाने हैं ॥२८७॥

हे देवि ! अम्यजनक भाव के कारण हिमालय को तुमने लीरब बिबा है । (हिमालय गौरी का पिता है) तथा विष्णुबासम को भी उसकी कन्दरा में निवास करके उसे बीरबान्वित किया है ॥२८८॥]

‘सितुबाय बीर ‘महुबहा’ बाता प्रबाम काय्य है इनकी बन्धु कथावृत्तों पर आधारित है । इनके प्रतिरिक्त प्राकृत वाक्य में ‘गाबाबल्लगनी और ‘अग्नासम्भ’ दो प्रमुख मुक्तक वाक्य हैं । ये दोनों गण्ड वाक्य हैं । प्रबाम का मयहकली सतबाह्य हाम है बीर द्वितीय का जयबल्लभ । इन दोनों में शृंगार नीति घादि विविध प्रकार की गाथाएँ संघलीत हैं । दावा में गाथा (घार्या) एन्द्र का प्रयोग हुआ है । गाथा लपतानी की वाक्य बरन्ध देगा—

१ गाथा लपतानी— प्राकृत की यह रचना बड़ी प्रमाणात्प्रायक रही है । इमने अणन्दर क काय्य में लतमई (गजतानी) परम्परा को अभिप्रतिष्ठित किया है । यहाँ तक इमने अनुकरता में गाबाबलाबाय न घार्यागजतानी और घमरक ने ‘घमरक गलक घानी-घानी रचनाएँ संरुप म प्ररुप की हैं ।

प्राकृत म स्वयमेव भाष्य समारिष्ठ रक्ता है विन्नु उमर लख शृंगार रम

के समन्वय हो जाने के कारण साबासप्तशती की भावार्थ व्यक्तिक मधुर हो उठी है।
शृंगार की संयोग धीर विभाग की मधुर भावनाएँ पग पग पर उपसम्ब होती हैं।

मानवनी नायिका को मनाते हुए नायक की निम्न भावना देखिए—

हे मुझए पतिप्र एहि मुझों बि सुनहाई कतिप्रभारै ।

एसा मधकिय मधलच्छलकजला मगइ छहराई ॥ (१११)

प्रिय के दर्शनमात्र से ही उनके बिना किसी अनुरोध विषय के ही नायिका ने मान छोड़ दिया है। उनकी इस स्थिति को देखकर उनकी मनीषा मान के मुझों को समझाती हुई कहती है—

पाधपजलैम मुझे रहसबलामोदिवुम्बिप्रभारम ।

बंतगमेपतपले चुबकासि सुहाएँ बहुप्राणम ॥ (११२)

इस जोरते हुए किसान ने ग्योही भोजन माने हुए अपनी सुन्दरी पिपतमा को देखा वह प्रेम-विह्वल हो गया धीर बेमों के बाठ जानने के स्थान पर नाच ही जोस बैठा—

लबकम्मिएण हुप्रपामारेल बठरूख पाठहारीओ ।

भोलखे ओतप्रपाणहुम्मि प्रबहातिपी मुझा ॥ (७-१२)

बिरज-कृषिता नायिका उपपठि की भाषी को सुनकर भेंट के प्रलोभन से बाहर अभी तो आई किन्तु उसका लौट सकना सम्भव न हो सका। अन्तत दूसरों के द्वारा वह ले आई जा सकी। इस घासम के कथन से होती उस उत्साहित करती है—

तुह बंतले समझासई सोउरल सिगपरा आई ।

तइ बोलीले आई पघाई बोइविघा जाला ॥ (१३)

१ प्रिये सुठनु ! प्रसन्न हो जाओ। जोर के धक्कर फिर घाबेंदे किन्तु काउ प्रयोत्सगा से रमणीक धीर सुन्दर लगने वाली यह यात्रि समाप्त हो रही है। घठ इस समय मान छोड़ दो। संश्लेष मुझ प्राप्त करो मान फिर कर लेना।

१११

२ मुझों ! तू तो प्रिय के दर्शनमात्र से ही संतुष्ट हो गई। घठ वीरों पर विरले बसपूर्वक चुम्बन करने धारि घनेक प्रकार के मुझों से तू बंजिन रह गई।

११२

३ इस जमाने में अतन्मस्य किसान ने भाल (भोजन) माने वाली सुन्दरी को देखकर प्रेमाविषय के कारण बसों के बोया जोरन के स्थान पर नाच लौल थी।

७-१२

४ तुम्हें देखने के लिए संतुष्ट नायिका तुम्हारा मन्त्र सुनकर जियने पग बाहर आई तुम्हारे जसे जाने पर वह उठने ही पग दूसरों के द्वारा ले आई गई।

१३

बिदह्नियौ स्वप्न में प्रिय वर्धन के द्वारा धरने को बन करती है किन्तु निम्न कथन करने वाली यह मायिका विशेष धनुरानवती है जो प्रिय के बिना निद्राहिन रहती है ।

यस्या ता महिषाधो वा बह्वर्ष तिबिरण वि वैषडन्ति ।

तिगृ भिष्य तैलु बिन्वा ए एह का वैष्णव तिबिन्म ॥^१ (५-१२)

नाटक के आगमन की प्रतीक्षा में मायिका ने प्रथम वर्षरात्रि तो सुप्त-सूक्त सीमा ही बिठा दी किन्तु उसके न पकारने पर उसका दोष धररात्रि काट सकना दुमर हो गया इस तथ्य को कोई बूढ़ी मायक ठे कहती है—

एवृत्ति तुम तिल लिमिस व जगिष्य जामिलीध नमन्डम् ।

सेसं सेतावपरम्भसाह बरितं व बीलीएम् ॥^२ (५-८१)

उर्ध्वक के समान मायासप्तशती में शृंगार की उक्त कौटि की मायाएँ बंध हीं हैं । इन मन्त्री में माया (धार्या) छन्द का प्रयोग किया है । फलतः उनके माध्यम से इन काव्य में यय लख पूर्व रूप से प्रसन्न रह सके हैं ।

प्राकृत काव्य में गेय तत्त्व

प्राकृत काव्य संस्कृत की अपेक्षा बल जीवन क अधिक समीप था । नाटको में उसके ग्रहण किए जाने से यह तथ्य स्वतः स्पष्ट हो जाता है । इसी कारण से प्राकृत दोष अधिक व्यापक हो रहा था और उसमें 'राजमन्त्री' पीड़कहो 'मायासप्तशती बज्रामगम' धारि स्वतंत्र साहित्यिक रचनाएँ भी प्रस्तुत हो उठी थी । इस संबंध में प्राकृत पालि की अपेक्षा भी अधिक नाम्मानु है क्योंकि बौद्ध साहित्य के धार्मिक संसर्ग उसमें प्राकृत-काव्य क समान किमी स्वतंत्र रचना का सूजन मंत्री हुआ है । कहने का आशय यह है कि प्राकृत धार्मिक लोक-गायकों के अधिक लयार पहुँच रही थी ।

मधुर और सर्वसुमन होने के धार्मिक धार्या का मधीन संस्करण माया जो प्राकृत में प्रस्तुतित हुआ उठी है । इसमें पीठात्मकता के प्रकार और प्रकार में अधिक सुविधाएँ हुई हैं । संस्कृत नाटको में भी पीठात्मकता के सम्बोधन के कारण कितनी ही धार्या (माया) का सम्बोधन हो उठा है इसका उल्लेख किया ही था चुका है । यद्यपि प्राकृत में विवेचित रचनाया को प्राप्त कर अतः यय की पीठात्मकता की तृप्ति हो उठना एकदम स्वाभाविक है ।

१ के स्थिमा धम्य है जो स्वप्न में ही प्रिय को देख लेती है किन्तु मुझे तो नामक (प्रिय) के बिना नींद ही नहीं आती, फिर स्वप्न क्यों देखे ? ५ १७.

२ तुम मायोमें इस माया से उठने (जादिका से) रात्रि के प्रथम अर्धरात्र को पस धर की तरह बिना बिना और न धारि पर मत्ताप से दुःखी होकर दोष धररात्रि को धर्य की तरह बिताया । ५ ८१.

प्राकृत में 'राजपबहु' और 'गौडबहु' दोनों महाकाव्य हैं, इतिवृत्त पर आधारित होने के कारण धातुमिथ्यजन का बीसा सफल स्वरूप इनमें अवश्य नहीं है जैसा गेय काव्य के लिए अपेक्षित है किन्तु छन्द में समाहित इतिवृत्तात्मक वेपता ता बहा है ही इसे भसा कौन प्रस्वीकार कर सकता है ? इन काव्यों ने अपभ्रंश में चरित काव्य रचने की प्रामिप्ररणा ही और भक्तिकाव्य के चरित-काव्य तथा कृष्ण और रामपरक गेय काव्य भी प्रामिप्ररित किए हैं । इन इतिवृत्तात्मक काव्यों ने प्रतिरिक्त 'गाथासप्तशती' और 'ब्रजभासम् मुक्तक' रचनाशा में धातुमिथ्यजन और वैयक्तिक तथ्यों पर आधारित सक्षिणता भरपूर है । इन सम्बन्ध में 'वायासप्तशती' प्रथि सम्पन्न और लोकप्रिय है ।

पालि-साहित्य में गेय-उत्पन्न 'केर गाथा' और 'थेरी गाथा' म ही के यह हम देख चुके हैं किन्तु प्राकृत साहित्य में यह प्रवृत्ति प्रथि सबसे हो उठी है 'वाया सप्तशती' में तो इसका पूर्ण उत्कर्ष ही बिद्यमान है । यह सत्य है कि पाली और प्राकृत काव्यों की सीतात्मकता 'पद' रूप का पूर्ण स्वरूप तो अवश्य प्रस्तुत नहीं करती है किन्तु उनसे के लक्ष्य और प्रामिप्रेरणाएँ अवश्य मप्राप्त और जीवन्त हो उठी हैं जिनसे अपभ्रंशकाल म सिद्ध सन्तों ने राम रागणियों को अपनी भावनाओं के प्रस्फुरण का आधार बनाया और इन सम्बन्ध में पालि की अपेक्षा प्राकृत-काव्य प्रथि सम्पन्न भुब्वर और अपभ्रंश के समीप है ।

इ—अपभ्रंश—गीति-काव्य

अपभ्रंश साहित्य के सम्बन्ध में पिछल पृष्ठा में बर्णन प्रस्तुत किया जा चुका है । उसमें बौद्ध सम्प्रदाय के प्रथमतः सहजवार्ता सिद्ध-सन्तो और जैनाचार्यों का साहित्य उपलब्ध है, जिसमें गीति-काव्य का धरना स्थान है । सिद्ध सन्तों के गीति काव्य ने प्रामिकृतापरक साहित्यिक गीति सिद्धने की यहि प्रेरणा दी है ता जैनाचार्यों के राम पद्य और चरित काव्य म साक-गीतों को प्रोत्साहित किया है । वस्तुतः शोना का गीति-काव्य प्रचूने-अपने स्थान पर महत्त्वपूर्ण है ।

सिद्ध सन्तों का गीति-काव्य

जो बौद्धजन अपनी सरसता, पवित्रता और स्वाभाविकता के बल पर वैदिक

I The Gatha saptashati is an anthology in Maharashtri Prakrit of above seven hundred erotic verses in the Arya metre and occupies an unique place as a lyrical poem in the history of sanskrit poetry

—Gopinath kaviraj

वाया-सप्तशती (निगयमागर प्रम) १९३२

धर्म को पृथ-भूमि में छोड़कर भारत तथा एशिया के पूर्वी और मध्य भाग का प्रमुख मानवतावादी धर्म बना था। उसमें हीम-वार से बच के अनन्तर ही पाइम्बर और कृतिमत्ता के विकार प्रविष्ट हो उठे। धीरे धीरे उसके मीरब के तत्व विनीत हो गए जिसके फलस्वरूप हिन्दू धर्म की प्रतिबोधिता में उसका स्थिर रहना कठिन ही नहीं बनसक हो गया। प्रथम ईसवी सताब्दी में महायान और हीनयान उसके दो सख हो गए। हीनयान में यद्यपि अब तक बौद्धधर्म की चिन्तन तथा आनामन धारि की परम्पराएँ विद्यमान थीं किन्तु महायान स्वयं प्रतिस्पर्धावादी होकर बौद्ध-धर्म के सिद्धान्तों से हीन हो गया। उसने स्वयं-हृदय-मन को अपनाकर एक नीतिक स्वल्प धारण कर लिया। इसमें मन्-तन्-योग के प्रति धर्मिणि जागृत हुई। कालान्तर में महायान ही बज्जयान में परिवर्तित हो गया। महायान की इन बज्जयानी भावा पर प्राचाय द्वाकर के सिद्धान्तों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा था।

महायान की इस नवीन शाखा के अन्तगत सिद्ध मन्ता में धार्मिक सिद्धान्तों को धार्मिक कविता का विषय बनाया। इसमें उनकी मीतिकता समाहित की। जो बज्जयान मध्य मीकृत धारि के स्वीकृत धारणों से समाज में पतित प्रीर हीन हो उन्नत या उन्मत्त फिर इन सिद्ध कविधों ने विभुद्ध धारण और मानवीय धर्म का प्रतिपादन का एक नवीन धारण का पोषण किया।

म० म० हरप्रसाद शास्त्री के 'बौद्धयान धो बूहा क प्रकासनोपरान्त ही धार्मिक-साहित्य क शोध और अध्ययन का कार्य प्रारम्भ हुआ है। अन्तर्गत डा० अहीरुस्ता के 'सा साद्ग मियतीकम क कान्ठ एव सरह' डा० प्रभाकर प्रसादी के 'साद्ग-काव्य' और धी राहुस सांक्रियायन के हिन्दी-नाम्यधारा क प्रकासनो से इन धार का अध्ययन अन्तर और प्रगल्भ हुआ है।

धी राहुन की ने इन सिद्ध मन्तो को संख्या में ८४ माना है। ये सिद्ध सभी कथों के थे। इनमें निम्न सिद्धा म प्रमुखतः काव्य शारा धर्म सन्देश्य के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया था—

- मरुत्पा (म० ८१७) रावत्पा (स ८३७) मुमुक्षुपा (म ८२७)
 नुरपा (म ८८७) विख्या (स ८८७) डोम्बिया (स० ८८७)
 दारिकपा (म ८८७) दुहरीया (स ८८७) कुकुम्बिया (स ८८७)
 कर्मिया (म० ८८७) कर्त्तपा (म० ८ ७) मारत्ता (म० ८ १)
 तिमोपा (म १० ७) धाम्पिया (म० १०२७) धारि'

इन सिद्ध मन्ता का नाव-अव विहार उन्नीया धार्मिक और दिवालय के नीच मगई में काव्यरूप से हिन्दूयान तप किया था। इन कविता प्रार्थना में धर्म हीन क कारण उनकी कविता की भाषा में बहा क तत्त्वा का धर्मिण धर्म बन जाना स्वामा

बिक था। इस प्रान्त में के कारण विद्वानों में उनकी माया प्रमुक्तता बंधना और उद्विग्नता बढाई है। श्री राहुम जी ने उसे मगही कहा है। मगही देश के पूर्वी भाग में व्यापक होने के कारण ये सब भाषाएँ भागभी भागभा के भीतर गमा जाती हैं। श्री राहुम का कथन ही विशेष सतत है।

लोक-जीवन में बुरे मिस होने के कारण इन मिथ्या ने अपने चर्चागीतों और दोहों में जन-भाषी का ही प्रयोग किया था। इस प्रयुक्त तरीक और सरल शैली में इन्होंने अपने सहजवाच सम्प्रदाय के तात्त्विक सिद्धांतों को भरकर जन-जीवन की पुनः अपने मानवीय चर्म की घोर धमिप्रेरित किया। जन-वर्ग उनकी वाचियों से आश्चर्य हो रहा। जीवजर्म के इस परिवर्तित स्वरूप में उनकी भ्रष्टा पुनः वापुत हो उठी। ये सिद्धान्त ही किमी-न-किमी रूप में 'नाथ सम्प्रदाय' और अलखर कबीर के 'सत सत' में प्रकृत कर लिए गए थे। इन सबका विवेकन प्रकृत में यथास्थान किया गया है। अतः उनका सिद्धान्त और उनकी व्यापकता नहीं दुष्टकर हैं। अतः इस स्थान पर यह रेखना ही उचित है कि इन सिद्धांतों ने पद-शैली को कहीं तक अपनाया है।

सांसारिक मुक्त स्पष्ट विषय के निर्वाण हैं किन्तु मानव यह नहीं समझता कि वह स्वयं अपने मिस बन्धन निमित्त कर रहा है। सिद्ध जगम-भरण के नय से मुक्त है। उमकें लिए ये लौकिक मुक्त-दुःख अभिलष्य है। बस्तुतः प्राणी का यही निर्वाण है।

राग-सुखरी

अपने रचि रचि भव निम्बाणा । मिच्छे सोय बंधावद अपरणा ।
अच्छेछ जागहु अचिन्त सोई । काम मरत भव कइलन होई ॥
अइसो काम मरण' भी लइतो । जीवैतें भइलें छाहि बिरोधो ।
आ एवु कामा मरलें बिरोधा । सो करत रत रसाले रे कंधा ॥
जो लखरावर लिखत भमलि । जे अकरामा किम्य न होलि ।
कामे काम कि कामे काम । लखु भएइ अचिन्त तो काम ॥'

मरह का एक गीत और विचारणीय है जिसमें कस्याम के लिए वह अपने मनोराम्य का समर्पण करता है। आत्मज्ञान के लिए अपने मन का विश्राम करने और लीबे-मरम मागों को ही प्रमुक्तता हो। प्रर्थक में पदमा अनुचित है। मरह का कथन है कि मरम (महजयापी) माम पर चलने से विषय परिस्थितियाँ भी अनुत्पन्न हो जाती हैं।

राग-बेधास

नाथ न बिन्दु न रचि-शक्ति-बंदन श्रीमा राघ-सहाये मुक्त ।

हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास

उजु रे उजु छड़ि मा लेहु बक निघड़ि बोहि मा बाहुरे संक ॥
 हायेर ककष मा लेहुं वप्यक अपले भापा बुम्बु निघ-मसु ।
 पार-उघारे सौई मजिई बुग्गणि संगे धकसरि जाई ।
 बाम-बहिज जो बाल बिजाला सरह भजइ वप ! उजु बर भइला ।

— (हिन्दी काव्यधारा पृष्ठ १८)

मनुष्य माया-मोह से मुक्त विश्व प्राणियों में पढ़कर ईश्वर को भूम बाठा है।
 वह धतक प्रबुद्ध है। इसके स्व संबेदन से ही उसके रूप को सोचा जा सकता है।
 धार्लिपा निम्न मीत में रहस्यवाद के विवरण प्रस्तुत करते हुए सहजमानी मार्ग का
 समर्पण करते हैं—
 राग रामकी

तम-संबेधक-सकष विघारे प्रतकक लकख ए जाइ ।

जे जे उजुवाट गेला धकष बाटे भइला सोइ ॥

का प्रकष य कुग्गिधम मुइहि उजुवाट संघारा ।
 (महुघरेहि एकक धमन रासहि कलकधारा ।)

माघा मोह समुइ धत बुग्गसि ताहा ।

घामे धाव नभेला बीसइ भसि न पुच्छसि जाहा ॥

सुतापात्तर धह न बीसइ भासि न घातने जाते ।

एवा घठठ महासिग्गि सिग्गइ उजुवाटे जाघते ।

बाम बाहिल बो बाटा छाडी धासि बोसबेठ संकेतइ ।

घाट ए मुकक कइतइ गहोइ धाले कुग्गिधम बाट जाइउ ।

— (वही पृष्ठ २१८ २४)

माया जीव की प्रहितकारिणी है। वस्तुतः वह जीव के प्रभूत-शरक का पात्र
 कर जाती है। केवल सम्बुद्ध का उपदेश और बोध ही जीवक का सम्भोग कर सकता
 है। निम्न भूमनुप्या ने माया का मूला के साथ कथक बोधा है—

राग बराडी

निमि संघारी मूना करघ धधारा । धमिध धकष मसा करघ धधारा ।
 धार रे जोइया । मता पबना । धेग सुठइ धकषा-नबला ॥

धव बिधारध मूता ललध घाती । धंघल मूता कलिधा लातघ घाती ॥

काला मूता उह ए बाण । घघणे उगि करघ धमिध घाल ॥

तम्ये मूता धंघल धंघल । तनुक बाही कइ सो निचकल ॥

बावे मूना धधार सुदध । मुमुष्टु नचइ तम्ये धंघला फिटुइ ॥

(वही—भूमनुप्या पृष्ठ १११)

जन की आश्रितियों रज्जु-सप के समान सामारिक व्यक्तिमा को बाए जा रही है। इस आति बिनास के लिए गुरु के अनुभवों का साभ उठाना ही धेयस्कर है—

राग बरहु गु ज्वारी

आइएँ अनुभवनाएँ बपरे मन्तिएँ सो पडिहाइ ।

रज्जु-सप देखि ओ बमकिज सवि जिम लोचकाइज ॥

अकट बोइ धारे मा कर हाव लोचू । अइस तहाबैं जइज बुझसि
तुइ यासना तोरा ॥

मर-मरोचि गंधव-जपरी बापण-पडिबिबु बइसा ।

बाताबसैं सो बिइ भइघा । धाये पापर बइसा ॥

बामिमुमा-जिम कैलि करई ओसइ बहुबिहू कला ।

बालुघ तेसे सस-निय प्राकास फलिता ॥

राठतु भगइ बड़मूसुकु भगइ बड़ सघना अइस सहावा ।

बइ तो मूझा अछसि मागती पुच्छहुसबुगुष पावा ॥

(हिन्दी काव्यधारा—भूमिका पृष्ठ ११४)

पच डाम (पंच तत्व) से निर्मित काया के बूझ में काम चंचल चित्त से बिरा बमान है। फिर मानव को मुक्त कहाँ? इनसे मुक्त स पूछकर महासुख की व्यवस्था करना ही उचित है। कपट की भावनाओं का परित्याग कर समाधि का प्राथम सेना ही उचित है—

राग पटमंजरी

नाथा तद्वर पंच' विद्यास । चंचल औए पइदा काल ॥

बिइ करिअ महासुह परिमान । सुई भगइ मुक पुच्छिय जाए ॥

सप्रल-समाहिहू काह करिअइ । मुक-मुक तें निचित मरिअइ ॥

छविअउअर बापकरलकपटेर । घास मुष्ण-पवस मिडि कैहु रें पास ॥

भगइ सुई घाम्हे भ्यले विदु' । बजल-बमएबेलि उपरि बइहा ॥

(वही—भूमिका पृष्ठ ११८)

भारत से मित्र परम्परा और बौद्धधर्म की समाप्ति पर सिद्ध भावना की चिरजीव रखने के लिए जन-जबि के रूप में बिजय भी का बड़ा ही महत्वपूर्ण व्यक्तित्व है। वह अपने गुरु संघराज शाक्यधीभद्र के साथ सं० १२ ३ में तिब्बत गए थे। वहाँ पर्वतीय में उनकी कुछ रचनाएँ मिली हैं। उनका पद देखिए—

विमूल तद्वर डाल न पाती ।

१ राहुस माइतापन—मित्र सख्पाव का 'बाहा कोस

हिन्दी पर-परम्परा और तुलसीदास

निमर कुम्भिसस पैलु बिघातो । प्र. ॥१॥
 मजह बिनयधी लोकी तबधर । पुस्तए कइया फलई धरुतर । ॥२॥
 कइलामोर्बे सएलबि तोसए । फल सपतिए से भव नामए ॥३॥
 से बिस्तामनि के बइस बासए । से फल मेलए नहि ए सीत ए ।
 बर मुब भरतिए बिल पबोही । तहि फल लेहु धरुतरबोही ॥४॥
 गेस्तिमधुं गिरिसिहर रि बस्त । तहि भ्याबिमिल कलिके धन्ते ॥
 हुलकि करनि सहीए एकेरिल । बितरे राज सेलइ लितु पैरतो ।
 तहि भंपइ द्दोस्ति हैरम मेले । बिसप बिसमूमि मा छाडिय हेले
 मजह बिनयधी बरमुब बएले । माह देस्तपरै गमस ॥५॥'

विमय थी ने सद्बिद्या ठरक के बुझा को निर्मूल तस्कर कहा है । जिसमे कइया धीर
 निर्वास के फल फलित होते हैं । इगही से मज-नाथ होगा है । जिसके बिल से गुरु-भक्ति
 है उसे भी निर्वास का फल मिलता है धारि ।

इन सिद्ध सन्तो ने इन प्रकार अपनी सम्प्रदायगत भावनाओं और सिद्धांतों को
 तीर्थों के माध्यम से व्यक्त कर दिया था । धर्म के तात्त्विक सिद्धांत केबल इन मनोरंजक
 सेय रीती से ही सुधाइ हो सकते हैं इसको उन्होंने सभी प्रकार समझा था ।

इस महत्तम उद्देश्य को अपने समझ रखकर ही उन्होंने जन-जीवन में प्रविष्ट
 लोक-रञ्जन करने वाली 'देवी सङ्गीत पद्धति' की स्वीकार करना उचित समझा ।
 जन भाषा का प्रयोग भीतम बुद्ध के समय से मान्य था ही । इस प्रकार व्यावहारिक
 सङ्गीत-पद्धति का अपनाकर वे जन-साधारण के धार्मिक समीप पहुँच गए ।

साम्प्रदायिक भावनाओं के व्यक्त करने में राय-रायिनिवों का व्यवहार सिद्ध
 सत्तों का नवीन प्रयोग ही कहा जावेगा । यह जन-जीवन में धार्मिक-धार्मिक प्रवेश
 प्राप्त करने की प्रस्था से ही सम्भव हुआ । हिन्दू-धर्म और संस्कृत-साहित्य बरतुत इन
 योग धरसर हुए ही नहीं । तब तो यह है कि जन-साधारण की प्रकृति का जो न
 धरमाने के कारण वे जन-जीवन से दूर पडते गए धीर उनके मध्य में एक लम्बी धीर

१ राहुल साहूदायन—सिद्ध मरुदपाद का बोझा कोण परिगलिष्—१ (बिहार
 राष्ट्रभाषा परिषद् पटना)

२ मार्गो देवीति तव इ वा तव मार्ग स उच्यते ।
 यो मानिनो बिरिष्पार्थ प्रयुक्तो भरतादिभि ॥

देवस्यपुत्र धंभोनियताम्युरमप्रद ।

देवो देवो जताना यइ क्या हृदयरञ्जनम् ॥

गीत च बादन नृत्त तद्देवीत्यभिधीयत ।

नृत्त बाघानुप प्रोक्त बाघगीतानवति च ॥

बहुते साईं पढ़ती गईं ।

छिद्र मन्त्रों द्वारा राग रामनिर्मा क प्रयोग से ही पर-परम्परा का स्थायी बिसम्प्राप्त हो गया । पारसि और प्राकृत साहित्य में गीति-शैली का प्रस्युतन म हो सका था । उमका स्पष्ट स्वरूप धपभ्रम काम में ही धम और साहित्य क सामन थाया । धनन्तर इनकी परम्परा ही बल पड़ी और यह काव्य मे धबिन्द्रेण रूप से सम्बद्ध हो गई । हिन्दी साहित्य क प्रत्यक्ष मुग म यह शैली सम्मानित हुई और आज यो काव्य-शैली क धन्तर्मल इनका धपना प्रमुख भाग है ।

बैनाबायो का गीत काव्य

बाबरि रास और फायु धन्म गीतात्मक लक्षा के कारण इन-साहित्य में धारमधिक बहुत्वपूर्ण है । य काव्य पश्चिमीय धपधनन म मिले गए हैं और गुजराती राजस्थानी और हिन्दी की प्राग्मिक रचनाओं के धबिक ममीप है । उनको गीत भाषकों ने केवल धाने के लिए ही लिखा था ।

जो नाता बिलों का निर्माण करता है जो बिल को धीम ही हरथ करता है बिलके बर्धन क बिना पुष्प-प्राप्ति दुर्मम है जिनमे धिन स्मिर होता है—ऐसे मुख के पर कमला को जो प्रथाम करता है बड़ी पुष्प का नाता है जार्धन धाधय की जिनरत्तमृषि की जिन बाबरि बेलिए—

जिन कम नाता बिलई बिल हुरंति सहु ।

तनु इंसकु जिनु पत्रिहि कउ लालइ दुलहु ॥

सारइ बहु पर-मुताइ, बिलई धेव कम

तल पपकमत् जि पणमहि ते लण कउ-मुकय^१ ॥

धधदेव मूरि ने 'धमरमिह' को प्रथमा में—'समर-रास' लिखा था । उमने गीत धर्म का धीपध किया था जिनमे दिनानुक्ति उमकी धभिधृति हुई थी । स्पष्टिक-मधि के लक्षान जिनरु पुन धजान लपी धधककार का बिलष्ट करते हैं जिनमे मकत धूमि में धमूनबाग को बहूया जिनके कमधुप का परास्त कर सतधुग को पृथ्वी पर धधठरित किया जा धामधाम बपी कुन का बध्रमा है जिनके ममान धमी तक कोई उचित नहीं हुआ है जिधने कनिमुप क समय को बठ कर धराधर को प्रधावित किया है—इन भावनाओं मे युक्त समरमिह को जिन प्रधमि का धधदेव मूरि ने धाम किया है—

जिन दिनि दिनु धरनाउ सजासीहि जिन धम्मधमि ।

तनु मुख करउ उरोउ जिन धंपाणइ कटिक मधि ॥

सारइ धधियतधोय जिधि बहावी धरमणइलहि ।

किन्तु कृतबुग प्रकटाए कलिबुगि जोबड बाबुबके ॥
प्रोसबास बुलि बगु उबएउ एउ समान नहि ।
कलिबुगि कालइ पासि छेरीपउ सचराचरहि ॥'

राजसेधर मूरि ने मेमिताम पत्रग' म राजसेदि के शृंगार का बड़ी ही सहृदय
मठापूर्वक बचन प्रस्तुत किया है। राजसेदि के शृंगार का जैसे वर्णन किया जाए
उसके धंग पर बन्दन का सेप है और जो बंधन के पुण क मयात औरवर्ष की है।
जिसकी सूबा जवा पुप्य और कन्दूरी से सुशोभित है और जिसके बाधों में मिथूर की
देखा मोचियो से मरी हुई है। नवरगी कुकम का जिसके तिसक सया है और जिसके
मास पर रत का तिसक है जिसक काम मे मोठी क कुण्डल है जो प्रकटा प्रतिबिम्ब
प्रस्तुत करते है जिसक मत्रा म कज्जम सया है और मुस बमल म ताम्बूल है जिसक
कण्ठ से नाय के उत्र के समान कटुमा सुशोभित है। जिसक जगी के मूम्यवान् बस्त
है और कंबुली पर फूमा की माना पड़ी हुई है जिसके हावो में कंकण और मणि
वटित बसा है जिनको बहु लक्ष्मणी है जिसक कमर से रत्नमय-रत्नमय का सम्ब होजा
बा जिसके पगों में मुरुर बजने से जिसके नाकनीं मे इवेत बर्ष से मिथित आसाम
नया हुमा है जिस की नेत्र वाली राजसेदि को उगवा पठि प्रमपूर्वक देनता है—
तिय किम राजसेदितबड निबगाव भबबड ।

बंयइ मोरी अरघोई धंगि बंयनु लबड ।
कपु अराबिड बाइ कुतुमि कसतूरी सारी ।

लोमंगइ तिहूर रेह मोतोसरि सारी ॥
नवरगी कुकुमि तिलय क्रिय रयकतिसउ उस भास ।

मोती कुडल कलि बिम बिबानिय कर जाले ॥
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुहुकमलि तंतोतो ।

नागोइर कटलउ बंठि अनुहार बिरोतो ।
नरपद आइर कंचयउ कुउ पुम्सह माता ।

करे कंकण नबि बलय बूड बलकावइ बाता ॥
इनुमुपु इनुमुपु इनकनर्ण कडि पापरियाली ।

रिबकिमि रिबकिमि रिबकिमए पयनउर जवली ॥
नहि आसलउ बलबलउ से असुय किमिति ।

प्रकाटपाथी राममइ शिउ जोघई मतरति ॥
उपय वन स्वना पर जब हम दुष्टिपात बगत है तब वे हमे परिफ्र प्रासादिन

र उम-जीवन के समीप प्रणीत होने हैं। उनमें बंसी गम्भीर और दुग्ह हीमी का
ग नही है बंसी उम माप्रदायिक धर्मो मे जगलप्य है। यह बस्तुन उनके नय
१ रामम शिपी बास्य पाग पुष्ट ४४६

होम का कारण ही सम्भव हुआ है। चाकरि राम और धर्म सङ्गीत का ही प्रभाव है और वही मे इनको जैनाचार्यों में घुसने काय्या के लिए प्रवृत्त किया है। इसीमें ये वृत्तों का उतमें सरसता में समावेश हो गया है।

४ मिथु निर्वा (नाथ) सम्प्रदाय और शैल

नाथ सम्प्रदाय अथवाती शाखा के ध्यानगत मिथु परम्परा का परिचित स्वरूप है। मिथु का प्रतिष्ठित योग के मिथुान्तो का यही समावेश हुआ है किन्तु उनकी कुछ नवीन उदाहरणों भी था जो नाथ-सम्प्रदाय की मौलिकता प्रकट करती हैं। मगधान बृद्ध द्वारा प्रतिपादित निराध्वरवादी धर्म्य भावना जो सभी तक मिथुओं में प्रकटित थी वह इन सम्प्रदाय में ईश्वरवादी धर्म्य भावना में परिवर्तित हो गई।

शैलान्तो मिथुओं की परम्परा में यद्यपि गोरक्षनाथ (गोरक्षपा) की वचना भी की जाती है किन्तु धरनी नवीन और मौलिक विचारवादा के कारण उन्होंने अपना सम्प्रदाय ही प्रभाव कर लिया। याज्ञवल्क्य के गुरु मन्वेन्द्रनाथ ने 'योगिनो कौण्ड मार्ग' की जगत्पिया था यही वास्तव्य में नाथ-सम्प्रदाय में बदल गया।^१

नाथ-सम्प्रदाय के अन्तर्गत प्रथम नाथ 'धारिनाथ' हैं। इन सम्प्रदाय में शिव ही इष्ट देवता है। सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा के लिए नाम ही इन प्रकार का संबंध शिव में बढ़ा जावे किन्तु मूलतः गोरक्षनाथ न ही उनको नवीन शिवा प्रथम की। गोरक्षनाथ न 'नाथ पम्पिया' का संकल्पित कर उन्हें १२ ज्ञानाद्या में बाँट दिया था— पत्थनाथी धरनाथी रामधम मन्वेन्द्रकी बन्धुद कपिलानी वैराग धाननाथी धार्ड पाथ धानकपथ्य बज्र।य और धरनाथी धारि।^२

नाथ-सम्प्रदाय का मूल मिथुान्त हठयोग है जो पठकति के योगधारिष्ठ पर धारिष्ठ है। हठयोग में प्राणबाहु की अनुनामित करके कृत्रिमिनी-जापत करने की धारिष्ठकता होती है। यह कृत्रिमिनी धरिष्ठ के पठकता की पार करनी हुई महत्कार्य में जा पहुँचती है तभी शिव के साक्षात्कार होता है। हठयोग में यही धान्य की शिवा है।^३

इन सम्प्रदाय में सभी प्रकार के मयमों और ज्ञान के प्रति बड़ा तथा बर्ष कर्म के बाध्याकरवों और प्रथमों के प्रति धरिष्ठ है। नाथ-सम्प्रदाय में 'गुरु' की भी प्रतिष्ठित शिवा है।

धारिनाथ मन्वेन्द्रनाथ गोरक्षनाथ धार्हिपीनाथ धरिष्ठनाथ धोरिपीनाथ ज्ञानिष्ठनाथ मनु हरि और गौपीचन्द्रमान धारि की वचना ही इन सम्प्रदाय में की

१ डा० इजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ सम्प्रदाय पृष्ठ २

२ डा० इजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ-सम्प्रदाय पृष्ठ १०

३ डा० इजारीप्रसाद द्विवेदी—नाथ-सम्प्रदाय पृष्ठ १२६

जाती है। इनमें केवल गोरक्षनाथ का माहित्य ही उपमन्त्र है।

नाथ-सम्प्रदाय में सिद्धों को परम्पराओं के साथ ही और बोद्धा-सैली को भी स्वीकृत किया था। इसी में गोरक्षनाथ की दोनों शैलियों की रचनाएँ प्रसृत माना में उपमन्त्र हैं।

राग रामरी

आरि पहर आर्जुन निद्रा संतार बाहु विविधा बाधो ।
 अमी बहू गोरक्षनाथ पुकारे, मुल महारो म्हारा भाई ॥ टैक ॥
 अमावस पहिवा मन छह लूनी मूनी ते संतकबारे ।
 भवता पुनता बहुच बह बिचारे, इसरी दोष निबारे ॥१॥
 पढ़वा अतम्हा बीजलि बवा पीची लेवा पाली ।
 आठमि बौरलि बव दुखारतो अलि न लार्जे बासी ॥२॥
 लमी लार्जे सोइवा मर्मे जागिवा लुलबि बेनी पहरा ।
 तोनि पहर पर बीह पण जाइवा तिहाँ छ काल चाइवा ॥३॥
 बीमा अवे सोइवा अमवा भोगवा छने न पीकवा पीची ।
 इसरी अजरारर होइ मछिद्र बोस्यो योग्य बाओ ॥४॥

विषयो में बहने हुए समाज की योगक्षमाय यह नेतावनी व रहे हैं कि अपने मुल (पुत्र) को मत मारो। अमावस और पहिवा के अनाध्याय के स्वान पर मोकी का शून्य में ही मन और मरीर जमाया अमावस और पहिवा मनाता है। प्रतिपदा के अनाध्याय के स्वान पर अज्ञानरु में भीम शोभा ही अयकी प्रतिपदा है। निद्रा की बेसा में भी आरत रहो और बाहु मुकुल में जानो। स्त्री ने दुर रहना उचित है।

काली भुभी अचपूराइ विषय न बीके कोई ।
 कासी नव भुभी रे अमराराम सोई ॥ टैक ॥
 आवन ही गद्य बछ पावन ही जाल
 आवन ही भीवर आवन ही काल ॥१॥
 आवन ही रव्य बाय आवन ही गाइ
 आवन ही नारीला आवन ही पाइ ॥२॥
 आवन ही टारी पहिका आवन ही बंध
 आवन ही नृत्य आवन ही कथ ॥३॥
 ग्हाइजे की तीरथ न बुझि की देव
 अवन गोरक्षनाथ अमन अमेव ॥४॥

१ डा० पीताम्बररत्न बड़प्यान—गोरक्षनाथी पृष्ठ ७३-७६

२ डा० बड़प्यान गोरक्षनाथी पृष्ठ १३७ १३६

५. ब्रह्म के धामधार भक्तों का वेद काव्य

वेदकाव्य ने उपमूर्त जिन श्रोतों का विवरण प्रस्तुत किया गया है वे साहित्य की जगत् परम्परा के मध्य में उपमूर्त होते रहे हैं। इनमें हिन्दी के पद्य-साहित्य प्रकाश पीठकाव्य की जीवन धीरे बस मिलता रहा है। यह भी मन-उत्त नकेत किया गया है। इस प्रकार का सीधा प्रभाव तो धामधार भक्तों के वेद काव्य का हिन्दी पीठ काव्य पर धारण्य नहीं पड़ा किन्तु उसके द्वारायत प्रभाव से हिन्दी क्या कोई धर्म प्राण्तीय भाषा का साहित्य भी नहीं बचा है यह सरस है। फलतः इस महत्त्वपूर्ण श्रोत पर विचार करना भी आवश्यक है।

ब्रह्म के भक्ति-धाम्योलन के मूर्तपाठ करने का वेद धामधार स्रष्टों को है। पीठवे धामधार, मूर्तपाठधार वेदाधार विष्णुवैद्य धामधार, तन्मासधार मधुरकवि परि धामधार धामधार तोषकरविष्णोक्ति विष्णुम विष्णुवैद्यधार—ये धारह धाम धार स्रष्ट ने किन्होंने तमिसनाह धीरे धामधार के क्षेत्र को भक्ति-यस से धाम्यारित कर लिया था। ये धन जीवन् के मध्य में जाकर जयकाम की सीमाधो धीरे उनकी भक्ति की मधुरिमा का सरस वर्णन पदा में किया करते थे धनत जय-जीवन् म धन धाम्य विष्णु के प्रति धाम्य बही धीरे भक्ति भावना का व्यापक प्रचार हो गया। इस स्थिति का नाम धाम्यारधार्य के धाम्यार के विरुद्ध उठे हुए विष्णुवैद्यधार्य (द्वैताईत) रामानुजाधार्य (विशिष्टाईत) धाम्यारधार्य (द्वैत) विष्णुवैद्यधार्य—बभ्रुमाधार्य (इह सम्प्रदाय—धुलि सम्प्रदाय) धाम्य धाम्यार्यो ने उठाया। इन धाम्यार्यो ने धाम्ये गिद्ध धाम्यार्य बहुमूर्त उपनिषद् भगवद्गीता धाम्य की भक्ति परक धाम्यार्य की धीरे धाम्य के धाम्यार्य का धाम्यन बन भक्ति की स्थापना की। धाम्यन धाम्यार्यो के धे सम्प्रदाय धाम्युमें धाम्यन म धीरे धाम्य।

उपमूर्त से यह स्पष्ट है कि बिना किसी माध्यायिक धाम्यन के धाम्यार्यो ने भक्ति रस से धाम्य धाम्यी जिन धाम्यो का प्रस्तुतन किया था उनकी परिभक्ति धाम्यार्यो के धाम्य सम्प्रदायों में हुई। धाम्यार्यन म जय के सम्प्रदाय स्वीकृत हुए तब धाम्यन धाम्यन के धाम्यार्यो के धाम्यार्यो का बहुध किया किन्तु भक्ति का मधुर धाम्यो तो धाम्यार्यो के धाम्यो में ही समाहित था। फलतः प्राण्तीय भाषाधो के साहित्य में भक्त धाम्यार्यो के धाम्यार्य की पद्य-सीरी पर पद्य सिद्ध धीरे धीरे धाम्य रस में धाम्यन शोकर धाम्यन धाम्य। इस प्रकार धम धाम्यी पद्य-सीरी के सम्बन्ध में धाम्यार्यो के धे धाम्य के धी धाम्यी है यह धाम्य है।

• ६. धाम्यन के धाम्यन स्रष्ट और उनका धम धाम्य

धावन्त धाम्य धाम्यन धाम्य के धम में धाम्यन रहने धाम्ये धाम्यार्य धाम्यी है। उनका धाम्यन सीधे धाम्यन धीरे धाम्य-धाम्यन का धाम्ये धाम्यन धाम्यी। उनमें धाम्यी है धीरे

धपना सच्चा मनोरम्य है जिसमें वे स्वच्छन्दता से बिहार करते हैं। वे भ्रमणशील हैं और जग-जीवन के मध्य में पहुँचकर अपने प्रिय के गान गा उठते हैं।

उसका गेय काव्य मौखिक परम्परा में ही रहा है उसका कुछ अंश अब लिखित रूप में आ सका है। बाउलों की परम्परा का पता १५वीं शताब्दी से मिलता है। अनन्तर इनका प्रचार बंगाल के सभी भागों में हो गया।^१ इसका केन्द्र नरिया रहा है, इससे विश्वास है कि उनकी पूर्व-परम्परा का महाप्रभु वैतम्य पर प्रभाव पड़ा हो। वैतम्य की मक्ति भावना से धनुषेणित हो 'गौड़ीय सम्प्रदाय' की परम्परा ही हिन्दी मक्ति-काव्य में उपलब्ध है। हमसे बाउलों की गीत। परम्परा का हिन्दी पर प्रभाव पड़ना भी स्वाभाविक है।

मिटकार्य

हिन्दी पद-साहित्य के सम्भावित सभी स्रोतों पर यहाँ विचार कर लिया गया है। 'वस्तुतः' इनके प्रभाव और अभिप्रेरणा से जीवन प्राप्त कर हिन्दी की पद-शैली का काव्य प्रभूत मात्रा में रचा गया और उसकी अभिव्यक्ति परम्परा गतिशील रही। इस परम्परा और तुलसी के पद-साहित्य का विस्तृत विवेचन प्रबन्ध के अगले पृष्ठों में प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है।



साक-साहित्य और लोक-नाट्य में गीत

विषय प्रवेश—गीत की प्रगति का इतिहास उसका साहित्य और नाट्य में मिल सकता है किन्तु उसका बीज और धतुरे नहीं लोका जा सकता। वह लोक-साहित्य और लोक-नाट्य में अपने प्रादि स्वरूप को अलविहित किए हैं जिसकी अभिव्यक्ति परम्परा हम प्रागैतिहासिक काग तक ले जाती है जब हम अस्त-व्यस्त जीवन के सब सम्यता के प्रादि पथ पर अग्रसर हो रहे हैं। इस काम की संस्कृति और सामाजिकता के विभिन्न तत्वों के मध्य में ही गीत ने भी अपना अस्तित्व और विकास प्राप्त किया है।

सम्य होने से पूर्व प्रागैतिहासिक काम में मानव के समय दिन रात सम्पन्न सूर्य मत्तन वीच कर्पा दीत प्रादि के सम्बन्ध में कितनी ही जिज्ञासाएँ जागृत हुई होंगी चाहते पर भी अभीष्ट के न हान को स्थिति में उस मानवतर क्षण की और इंगित किया होंगा समाज जीवन में उस समय का महापथ रहा हाया उगल रहे अपने स्मरण का विषय बनाया होगा जिसके आधार पर उसने अपने जीवन में पा प्रतिपात हुए-विवाद का मकर उसे कितनी ही अन्तर्भूतियाँ हुई हानी जिसने उन्-तारमकता को परगकर उसमें भी सामाजिक गमाराहा और शून्यको के अक्षरों पर अपने आत्मिक के मध्य में प्रयास का साधन बनाया हाया प्रकृति में समाहित मर्त में प्रत्यक्ष समाज इसी प्रकार प्रयत्नशील हाया है। इन प्रकृतियों में ही उगरी धार्मिक साधारण तार-बाबाएँ साकारितियाँ साक-नाट्य प्रादि समाहित रहते हैं जिसका क्रमिक रूप से विवाम हाया रहता है। ये सब मानव के अन्तर्भाव और अन्तर्गत मानव की उपज है दृष्टी को साक-साहित्य की मंज्ञा प्राप्त हाणी है।

किमी समाज के मध्य और गम्भूत हो जान पर उसका गति-नाम साहित्य का सिष्ट और पुष्ट हो जाना स्वाभाविक है किन्तु उसका अन्वयिक अन्वयिक और अन्वयिक प्रादि रूप भी अन्वयिक बना रहता है जिसमें उग दग की गम्भूतियाँ आक्षर्य और भावनाया का इतिहास समाया रहता है। बायाम्बर में पुष्ट साहित्य सिष्ट समाज का सम्पन्न प्राप्त कर मठा है और उसमें उगी का कर्पा हो उगी है किन्तु उसका परम्परागत प्रादि स्वरूप भी साक जीवन की प्रतिष्ठा से मुरत गत्राय रहता

है। इस प्रकार प्रथम कोटि में देश का चिह्न साहित्य और द्वितीय में लोक-साहित्य प्राता है।

प्रायः क चिह्न नाट्य की परिचयिणी भी मूलतः लोक-नाट्य पर आधारित है। सम्यक्ता क धारि म विरोधियों पर विजय प्राप्त होने पर भी चिह्न के पडित होने कसम के पकने ऋतु-परिवर्तन धारि क समय मानव के प्रत्यक्ष में भावावेग से धन-संचालन होता रहा होगा। धनकर उमने उनके सम्बन्ध म एक स्थायी प्रणामी बना ली होगी। जिसके लिए उनके प्रकृति-वर्षाओं के विरुद्धने धीरे-धीरे नर्तन स मी अभिप्रेरणाएँ सी होंगी। इस प्रकार नाट्य का धारि स्वरूप प्रस्तुत हो गया होगा। कामान्तर म नर्तन धीरे धीरे धारि हर्षोत्सास के सूचक रहने के कारण मानव को उनके एकीकरण में बिसम्बन्ध मना होया। बीदे-बीदे प्रपने हीनपी महापुरणों केबताधा धारि क चरित्रों को जब उमने कथन धीरे उरलेक का विषय बनाया होगा सभी लोक-नाट्य में सवाद भी समाविष्ट हो उठे होंगे। उमके इस क्रमिक विकास म मानव की धारि सम्यक्ता धीरे संस्कृति क मूल धारि को बहु कही मी मही छोड़ सका है। इसी परिस्थितियों में लोक-नाट्य ने समाज में प्रतिष्ठित है किन्तु उसकी पुष्टमूमि म लोक-जीवन म लोक-नाट्य मी चिरजीव धीरे प्रयतिधीन है जिमसे उसकी महत्ता स्वतः स्पष्ट हा जाती है। इस उदित्त विवचन से यह स्पष्ट है कि प्रायः क चिह्न-साहित्य धीरे नाट्य के समय मी उसके पूरु रूप लोक-साहित्य धीरे लोक-नाट्य का धपना स्वान मुरक्षित है, जिसके द्वारा समाज की विविध परम्पराओं क साथ साहित्य की गीति-परम्परा का पोषण होता रहा। प्रायः गीत ने काम्म की विविध विधाओं में धपना प्रमुक्त स्वान प्रकश्य प्राप्त कर लिया है। किन्तु लोक-साहित्य धीरे लोक-नाट्य में वह क्रिय रूप में रहा है। इस स्वतः पर यह देयता मी प्राणायक हो गया है। लोक-साहित्य के विवचन म प्रवेस होने से पूरु उमकी विपयताओं पर विचार करना मी उचित है।

लोक-साहित्य की विशेषताएँ

प्रजात रचयिता धीरे रचना-काल—लोक-साहित्य क निर्माण-कर्ता धीरे उसके निर्माण-काल का पता सया सया बड़ा ही कठिन है। एक व्यक्ति धीरे एक समय म उसके बने होन पर भी मौलिक परम्परा में रहन के कारण उसमें समय-नामय पर परिवर्तन धीरे परिवर्द्धन होन रहत हैं। फलतः उमक निर्माण प्रकार धीरे प्रकार के सम्बन्ध म एक निश्चयात्मक धारणा व्यक्त नहीं की जा सक्ती। लोक-शाखाओं में एति हामिक कयाज के कारण एर बाध-मीमा का निर्धारण हा सक्ता है कि एक विविध लोक-शाखा उमम पूरु में नहीं धा सक्ती किन्तु उम लोक-शाखा का कब धीरे किमसे निर्माण हुआ है—यह कह देना असम्भव है। लोक-गीत या लोक-पाषा का मौलिक स्वरूप स्वरि क रहने के कारण उसकी रचना का साहित्य एर पर न होकर बहुताओं पर

रूपा है।'

बीससवेक रासो क सम्बन्ध में श्री उत्कलीबन बर्मा का यह कथन है—'एक मात्र न लोक-मनोरथकार्य कुछ तुल्यविविधों की भी और यह उन्हें धाकर सोपों को सुनाता फिरता था। पीछे कई शताब्दियों तक यह मौखिक रूप में प्रचलित था और तदुपरान्त किसी न उसे लिपिबद्ध किया। प्रायः तीन पताली से अधिक जो कल्प मौखिक रूपा ही उसमें कितने परिवर्तन हो जाते हैं तथा उनका रूप कितना भ्रम से विरूप हो जाता है। यह सहज ही में अनुमान किया जा सकता है।

धातुसंज्ञक और डोसा भी इसी प्रकार की लोक-भाषाएँ रही हैं जिनमें समय के साथ परिवर्तन और परिवर्तन समाविष्ट होते रहे हैं। डोसा मात्र य दूहा के सम्बन्ध में उसके सम्पादकों का यह उल्लेख है—

'लोक-गीत ऐसा प्राचीन काव्य है कि जिसका निर्माता यदि कोई हो सकता है या वेग विमेष की प्राचीन कालीन परिस्थिति और साधारण जनता की सामूहिक सामाजिक अभिवृत्ति ही हो सकती है। × × × डोसा मात्र की प्रेम-वाचा को किसी व्यक्ति विशेष कवि की कृति न मानकर भी हमको यह कल्पना करने में कठिनाई नहीं होती कि यह काव्य मौखिक परम्परा के प्राचीन काव्य-सुम की विशेष कृति है और सम्भव है कि उत्कलीबन जनता की साधारण अभिवृत्ति को ध्यान में रखकर उससे प्रेरित होकर किसी प्रतिभा-सम्पन्न कवि में जनता के प्रीत्यर्थ उसी के अनो-भावों को वर्तमान काव्य रूप में बद्ध कर उसके समस्त उपस्थित कर दिया हो और

१ Prof Child's theory—Ballads do not write themselves though a man and not a people has composed still the author counts for nothing

Prof F B Gummere—Who claims the Ballad as evidence of a co-operative folk intelligence first expressing itself in dance and choral dance.

Prof Kitteredge He allows an initial creation by an individual author but holds that the processes of oral tradition amount to a second act of composition a collective composition of an inextricably complicated character which is not to be identified with the corruption by scribes and editors of a classical text that the original author is not a professional poet or minstrel but a member of the folk and that the composition is not a solitary act but oral improvisation before an audience in close emotional contact

Enc Br Vol 2

कमता में बड़ी प्रसन्नता से इसे अपनी ही सामूहिक कृति मानकर कष्टस्व किया हो।

उपर्युक्त लोक-भाषाओं के समान गोपीचन्द्र और राजा भरमरी बाबाएँ भी सम्पूर्ण रूप में प्रचलित हैं। धारा तथा उनके स्वरूपों के सम्बन्ध में कुछ निश्चित नहीं है कि उनका कवि और समय के सम्बन्ध में तो निश्चयात्मक बातें कुछ कहना और भी असम्भव है।

मौखिक परम्परा

लोक-साहित्य मौखिक परम्परा में अपने स्वरूपों को समाहित किए रहता है। जब तक कोई मुँही उनको संकलित कर एक स्वरूप प्रदान नहीं कर देता तब तक उसका पूर्व रूप एक ओतस्विकी के समान प्रवाहित रहता है। उसमें परिवर्तन और परिवर्तन प्रारंभ समय सम्भव रहे हैं इससे उसका मूल पाठ प्राप्त कर घना असम्भव है। सम्पादन के दृष्टिकोण से यदि कोई सम्पादक प्रयास भी करे तो वह अपने अल्प धन और प्रयत्न के बल से उनके प्राचीनतम रूप को ही प्राप्त कर सकता है किन्तु कोई उसे ही यदि मूल पाठ कहने का दुस्साहस करे तो वह कोरा बप्प है। अब तो यह है कि उसका प्राचीनतम पाठ के पूर्व भी मौखिक परम्परामें न उसमें न जाने किसने परिवर्तन किए होने का क्या तर्क हीन बोड़े होये।

अपनिक का मूल 'घाण्ड्यण्ड' कुन्वैनी भाषा में था किन्तु उसका भाषा में उसका मूल रूप भुल हो गया। उसके येय हीन के कारण उसका मौखिक रूप धारा भी हिन्दी भाषा-भाषी प्रदेशों में विद्यमान है किन्तु धारा के सम्पादित 'घाण्ड्यण्ड' 'बीसलदेव राधो' 'बोला माक रा हुआ' अपने प्राचीनतम रूप का दावा नहीं कर सकते।

प्राकृतिक और स्वामाबिष्ट स्वरूप

यह साहित्य साहित्य-मास्त्र के रीति-रिवाजों के विधानों पर अपने स्वरूप का निर्माण नहीं करता है। उसका सरस और तरल स्वरूप अलंकार और रम-परिपाक के लिए विधिष्ठ उपमाएँ और उद्दीपन आदि की अपेक्षा न कर सामीप्य और जीवन के निम्न स्तर के भावपूर्ण तत्वों को चुनकर अद्युक्त रहता है। लोक भाषा में सरस और अहमिष्ठ भावनाओं को अभिविष्ट किए पर्यन्तम ओत के समान अन्वय पति से रूपपूर्वक रहता रहता है, जिसका प्रभाव मर्मस्पर्शी और अन्वेष निष्कपट होता है।

लोक-साहित्य का निर्माणकर्ता प्रस्तुत भावनाओं से अति-निश्चीनी भेजे बिना ही उन्हें निस्तुत होने देता है। इस सम्बन्ध में वह अपने बातावरण का भी पूर्ण ध्यान रखता है। इसी से उसकी अभिव्यक्ति में कल्पनात्मकता और काव्य-नीटन का

छिप्ट स्वरूप नहीं पा पाता। यों कला की सार्थकता के लिए ध्वजकार स्वयं एक ठल धारि सभी विद्यमान रहते हैं। किन्तु भाव-भारा क अनुकूल बहु स्वयमेव धारक हैं। इसी से साधारण ग्रामीय समाज को क सब बाह्य हो जाते हैं। उस उनको समझने में मस्तिष्कीय व्यायाम की आवश्यकता नहीं होती।

धाल्हा और झोला को ग्रामीय समाज में जब व्यवस्था होती है। सोय उनको सुनने के लिए दूर-दूर से जिक्र चलें माने हैं। वे माल-मुग्ध हाकर सुनते हुए उनका रसस्वादन लेते हैं। यह सब काम्य के प्राकृतिक और स्वाभाविक स्वरूप के कारण ही सम्भव है। यदि उनका धर्मशा स्वरूप होता तो धण्ड जम-जमाज जमते निराध हो रहता।

'य लोक-गीत जनता के हृदय के सच्चे प्रतिबिम्ब हैं जो साहित्य के विभागों के भीतर नहीं पा सके। किन्तु यथास्थिति में मनुष्य हृदय के सारी जनकर भावों के बाहुमुख्य में मदैव के लिए सुरक्षित हुए हैं। हमने अपनी कौटिलिक धर्ममप्यता में हम ग्राम-गीतों को यसे ही भुजा दिया हा। किन्तु उम्हारे ही सच्चे भारतीय हृदय का निर्माण किया है और इन्हीं की धनिया से हमारे पूर्वजों के हृदय में रक्त का स्पर्शन हुआ है।'

भारतीय संस्कृति और जीवन का निम्न स्वरूप

मानव-जीवन में विविध प्रकार के अतुल्यता सस्कारों और ममम ध्वजसरोँ का धायकन होता है। इन्हीं के सम्बन्ध में लोक-गीतों का प्रचार और व्यवहार ज्येक समाज में है जिनसे सांस्कृतिक भावनाओं और सामाजिक धाचार-विचार का संरक्षण और एक सुवता बनी रहती है।

लोक-गीतों और लोक-वाद्याओं के धाधार पर मानव जीवन का निर्माण स्वरूप पर सम्पूर्ण प्रकाश पड़ता है। जिनमें परस्पर क व्यवहार और विविध सम्बन्धों के निर्वाह में जो अथोचित मार्ग प्रदशन हाता है। फलतः जीवन-निर्माण के सम्बन्ध में जमन बाष्ठी प्रेरणा मिलती है।

संगीत

संगीत में मृत्यु बादन और धाँत का समिधम रहता है। लोक-गीत और लोक-वाद्याएँ ' प्रायः मृत्यु और बादन के साथ गाई जाती हैं। मृत्यु और बादन यों ही अर्धरूपमें हाते हैं। किन्तु जब उन्हे साथ लोक-साहित्य का सामिक भावनाएँ मिधित हो जाती हैं। तब प्रभावात्प्रायक संगीत का स्वरूप प्रस्तुत हा जाता है।

ग्रामीय जीवन में जलोप नील मदैव रिती न रिती बाध पर मृत्यु क साथ

साए जात हैं। इनमें सामूहिक गान होते हैं और गान के साथ सामूहिक नृत्य भी सम्मिलित होते हैं।

भाषा

लोक-साहित्य प्रामाण्य समाज के उपयोग के लिए होता है। जिसमें उसी के स्तर के अनुकूल भाषा का प्रयोग रहता है। फलतः किसी भी देश के साहित्य की मूल्य और मर्मस्पर्शी अभिव्यक्ति लोक-साहित्य का भाषा में ही समाई हुई मिलती है।

लोक-साहित्य के प्रकार—लोक जीवन की भावनाओं की प्रकृतियों पर ही लोक-साहित्य की विविधताएँ अवलम्बित हैं। उमक १ लोक-कथा २ लोक-गीत ३ लोकोक्ति तीन विभक्त किए जाते हैं।

लोक-कथा के धम-गाथा लोक-गाथा और लोक-कहानी तीन भेद हैं। धम गाथाओं की वस्तु मानवैतर ईश्वरीय होती है। इसमें मनुष्य की भावनाएँ धम और ईश्वर की ओर ही उन्मुख रहती हैं। इन गाथाओं में जीवन निर्माण के तत्त्व समाए रहते हैं। इस प्रकार साहित्य की प्रेरणा इनमें धार्मिकता प्रबल रहती है। ये गाथाएँ वस्तुतः धर्म की ध्येय हो जाती हैं।

लोक-गाथाओं में ऐतिहासिक तथ्य रहते हैं। जीवन के उपयोग में आने वाले पारदर्शक वस्तुतः इनमें उपलब्ध होत हैं। इन्हीं के धर्म्य रूप लोक-कहानियों में प्रारंभ की प्रेरणा कौतूहल और मनोरंजन विद्यमान रहते हैं।

लोकोक्तिओं में जीवन की अनुभूतियाँ समाई रहती हैं। प्रतिदिन के जीवन में मानव उन्हें प्रयोग में लाकर सत्य का प्रतिपादन करता रहता है।

धम रहे लोक-गीत व लोक-साहित्य के विविध स्वरूपों में जीवन के समीपतम रहते हैं। जीवन के हर्ष-विषाद किसी भी क्षण में उनका उपयोग होता है। मानव हर्ष और असह्य के समान लोक के समय भी पाता है। इस प्रकार लोक-गीतों की अपनी विशेष महत्ता है।

लोक-गीत

लोक-गीतों में हमारी आत्मीय और सांस्कृतिक भावनाओं की निधि छिपा हुई है। इसी से यदि देश के किसी कोण में हम किसी भाषा का लोक-गीत गकर परी

1 The ballads are incomplete without music. They can not achieve their full effect unless they are sung to their own particular tunes and they can not be understood historically unless their relationship to music is understood

धर्म कर ता भारतीय स्वभाव और विचारों का उद्योग समिधन मिस जायगा। सम्पूर्ण देश की विविध भाषाभाषा में ता अपने अपने लोक-गीत ही विष्णु विविध जातियों में भी अपने-अपने गीत गाए जाते हैं। उन सभी में हम एक सूत्रता पुरोई हुई मिलेगी पढ़े-लिखे प्रोसा की अपेक्षा जनपदों के नयरो की अपेक्षा गावों में पुरयो की अपेक्षा स्थियो के लोक-गीतों को सुरक्षा रखने का अधिक प्रयत्न किया है। धर्म भी वह उच्च घसल्य नहीं है।

जीवन में जन्म विवाह और मृत्यु ऐसी बरतारें हैं जो हमें हर्ष प्रवया विपाद से उन्नेमित करती रहती हैं। उपर्युक्त के प्रतिरिक्त विविध सरकार एवं त्योहार, अतुल्य धारि के घबसरो पर भी हम प्रफुल्लित और प्रामत्थित होते हैं। इन सभी घबसरो पर पारिवारिक प्रवया सामाजिक रूप में इन गीतों के गानों की व्यवस्था की जाती है।

मातृमित्र हमारेहों पर भारतीय जीवन में गीत गाना प्रतिबन्ध रहता है। यदि जन्म क्षयन न हा तो उन्हे प्रमुख और प्रथम मानते हैं। बन्नी-कधी तो ममारोह सम्पन्न होन के दिन से सप्ताहों पूर्ण ही से गीत-गान की बरिपाटी है। इसी प्रकार होली के लिए सम्पूर्ण प्राम्थुन मात्र भर कथ गाये जान हैं। इन गीतों के गान के लिए डोलक मृदंग धारंगी और मञ्जीरा धारि प्रयोग में आते हैं।

हमने अपने जीवन में प्राम्थुन और मयन का सम्बन्ध मूल्य समझ है। इही से उनके सम्पन्न करने की विधि-विधान के साथ हमने प्रवसण के अनुकूल अपने गीतों को भी सुरक्षित कर लिया है। इन परम्परागत भावना व कारण गीतों की परम्परा प्रसूत्र रह सकी है और उनके कारण हमारे सङ्गीत को मार्गी प्रवया बड़ी पद्धति की भी बल मिलता रहा है।

लोक-गीतों में सरस और स्वाभाविक भाषा-शैली के प्रतिरिक्त मयीतामयता धारमाधिर्भ्रज विचारों की एकम्वता और लक्षितता धारि सभी तत्त्वा का उप-सर्धि हर्ती है। इस रूप पर कुछ लोक-गीतों को लेकर हम उनके निष्कण्ड मन्देठ को देन से और देन में कि भारतीय जीवन की जितनी परम्पराएँ और विचारधाराएँ जन्म प्राम्थित हैं।

सोहर गीत

एक भारतीय प्रवया जिसकी गीत सभी तक सुनी है। अपने जीवन के जन्म मृत्यु पर बैठे गीत से पूछनी है कि सोहर में धार हो या प्रियत्रम में मन्देठ भेजा है ? बोले में उत्तर दिया कि मैं सोहर से आया हूँ और मैं प्रियत्रम का जन्म ही लाया हूँ। विष्णु कर्षे कहीं से तुम्हारे पुत्र हुआ। इस जन्मे का मुनकर रनी धारण से कृप लई और बा उद्ये 'हे बाप ! पुत्र होने पर मैं तुम्हें कुछ को रानी हूँ और तुम्हारी बोध का माये में मददा हूँ। गीत के बोले द्वारा उच्च माने की भागीय परम्परा

के साथ पुन बनने को पायी की अभिमाया बड़ी ही सजीव है—
हमारे प्रगत बंधन बिरवा हो बो, सहर सहर करे
सहर सहर करे हो।

एहो बाहि बड़ि बोले एक काय बचन बड़ा सुन्दर बोसिया सुहावन हो।
कि काया नहर स धायो कि हरि जी पठायो हो।

काया ! कोन सवेद्य तुम स यो बचन बड़ा सुन्दर बोसिया सुहावन हो।
न हम नहर स धाय न हरि जी पठाये हो

पनिया। धाज के नभ महिनवाँ होरिसा सोहरे होइहै
सलन तेरे होइहै हो।

बो हमारे होइहै होरिसा तो रूप बुनिया देव हो।
रहो सोन के बोच मइइये बपइया बजबइय हो ॥

बहु सोकर उठी है। रात म प्रथक पहर म जसने एक-एक स्वप्न देसा है।
पीड़ा पर बीठी हुई अपनी सासु स बहु प्रत्येक प्रहर के सपने का उन्मत्त कर विचार
करने के लिए कहती है। पाँचवें प्रहर म उचन एत (पिसा हुमा बाबन) सकर

छड़ी रहते हुए अपने को देसा है। छठे रहने की परिपाटी भारतीय जीवन में पुन
जन्म पर ही सम्पादित की जाती है। इसके शुभ स्वप्न ममम्भकर बहु बहु स पुप
एहने क लिए कहती है। घाठन महीने के वीतन पर नवें महीने के समत ही धानन
बबाइया बज उठी और सोहर राम गाए जाने लग।

राति में बार प्रहर ही होत है किन्तु बहु न अन्तिम प्रहर को पाँचवाँ प्रहर
कहा है जो अचुड है। उसके कथन मे भने ही अचुडता है किन्तु उचका मन्मथ
अन्तिम प्रहर से है। अन्तिम प्रहर का स्वप्न भारतीय जीवन में सत्य माना जाता
है। इसी तन्म के बिस्वास पर गीत का मूक सम्येध प्रादित है—

मंनहि बीठो है सासु तो बहुधरि घरन करे हे
सासु ! सपन का करहु विचार सपन बड़ा सुन्दर हो।

पहुला सपन सासु ! देख्यो मैं पहिले पहरमा हो
सासु ! बग सुख बोनों भइया योग मोरे उइ मय हो।

दूसरा सपन सासु ! देख्यो मैं हूतिरे पहरमा हो,
इसरा सपन सासु ! देख्यो मैं हूतिरे पहरमा हो।

तिसरा सपन सासु ! देख्यो मैं तितरे पहरमा हो
सासु ! राम सजन बोनों भइया योग मोरे किलक हो।

चउथा सपन सासु ! देख्यो मैं चउथ पहरमा हो
सासु ! बुय की बरिया मोरे गाय तो यइया संकतपी हो।

पंचवा सपन सासु ! देख्यो मैं पंचवे पहरमा हो
सासु ! छइपन भरन मोरा हाय तो दइया बरत देख्यो हो।

हिन्दी पब-परम्परा और तुमचीबास

बुप रहो बैरिन बुप रहो बहुहरि । बत मुनि है
 बहुरि सपने का करहु बिचार सपन बड़ा सुन्दर हो ।
 घाठ मात मेरे बीतत नरों के सामत हो

पहो बजे लपि प्रनम्ब बमह्वया उठ तप सोहर हो ।

सोहर गीतों में जल्पा की कामना पीड़ा प्रसन्न घानन्द-बधाव और नम के
 पीठ तथा बंधे क जन्म से बचने पर जलि खड़ा जगमोहन बुपरा और तथा के पीठ
 माए बाते हैं । सम्पूर्ण हिन्दू परिवारों में इन्हीं के सम्बन्ध में गीत गाये की परिपाटी
 है । उत्तर प्रदेश के पूर्वी हिस्सा में मत्त जना गीत गाने की भी पद्धति है । जिस
 प्रकार ब्रज प्रदेश में जगमोहन बुपरा में जल्पा और नन्द के सम्बन्ध में नेप को लेकर नौक-
 भोक चलती है वही विषय 'मत्तरजना गीतों का भी होना है । 'मत्तरजना' 'मत्तो-
 रजना' उत्तम धर्म का ही मत्तरक रूप है ।

मत्तरजना—बुप के जन्म के उपमस में परिवार में मोक्ष की व्यवस्था की है ।
 जल्पा में सामु से भग्दान जिठानी में चौका और धपन प्रियतम से धपने बस का
 हाल पूछा । उनमें यह सुनकर कि नन्द धपिक-स-धपिक में गई वह धांगन में सीटने
 मगती है और यह उठती है कि मेरा नन्दमान क्या हुए जो इस प्रकार मेरा पर
 मुट पया ।

कमरे से निकली जल्पा सात बी स पूछ लागी हो
 कहु सामु भंडार का हाल तो सोचा पानी नितना बया हो ।
 एक सोचा मारु को बीगहा एक बरीबा का बीगहा एक बहुरबा का बीगहा
 सोरहु बोरा लगई ननबिया तो चौका तेरा हर हृष्ट हो ।
 कमरे से निकली जल्पा जिठानी जो से पूछे लागी हो,
 कहु जिठानी चौक का हाल तो जाना पीना कितना बया हो ।
 एक पनरो नन्द का बीगहा एक बारोक का ब ह'एट बहुरबा का बीगहा हो
 सोरहु बाल लगई ननबिया तो चौका तेरा हर हृष्ट हो ।
 कमरे से निकली जल्पा राजा जो स पूछ लागी हो
 कहु राजा बचते का हाल तो महता गीतों नितना बया हो ।
 एक चौक मारु का बीगहा एक बरीबा का बीगहा एक बहुरबा का बीगहा हो
 भारी ननसस लगई ननबिया तो बबला तेरा हर हृष्ट हो ।
 कमरे से निकली जल्पा धपन भर में सोठ लागी हो
 बोती बुरता काइ लागी हो,
 जोर बारो का भय भग्दान सोरा घरा बुबुरबा मुट पया हो ।

संक्षेप में यह का प्रयोग गान का निकट भूत में निमित्त द्वारा व्यवस्था निम्न
 करता है किन्तु फिर भी मगर न गाय साधी की इस प्रकार की प्रतिस्पर्धा नेत्र क
 नेत्र केम से हुआ की है । इसी भावना का प्रयुक्त इन गीतों में हुआ है ।

मामी ने नन्द को पुत्र होने पर गले की तिमरी देने का बचन दिया है। पुत्र ही जाने पर वह तिमरी न बहर बह दनी है कि अपने भतीजे को मसे ही ले जाओ किन्तु मैं तिमरी म भूमी। वह नम ज्ञान पुत्र को म जाती है। इस पर माता का हृदय खुसी हो उठता है। वह विनया हो तिमरी दे देती है और पुत्र उसे पुन प्राप्त हो जाता है। धनन्तर नन्द की विशा-बेना पर वह भट क समय गले की तिमरी तोड़ लेती है—

कोई कोठे से उतरी मबजइया मगरजना
 कोई छोटी ननब मख घेरे अहो मन
 मामी जो हमरे हो।हे भतिजबा मन
 मामी क्या होगी हमको नम अहो मन०
 बीबी जो तुमरे होइह भतिजबा मन
 मुम्हे इमी गले की तिमरी अहो मन०
 कोई मोरे तो दास्य मुनाब मन
 माम जम्मे है कुँबर कइहहि अहो मन०
 कोई धीरे से बैली कबइया मन०
 मो रे छोटी ननब नहीं जान अहो मन
 राजा बीर से बजता बजबइ हो मन
 कोई द्वार बसे छोटी ननबी हो अहो मन
 कोई द्वार वे डाइी ननबिया मन
 मामी मामो गले की तिमरी अहो मन
 बीबी लाई कहूँ से तिमरी मन
 तुम ले जाओ अपना भतिजबा अहो मन
 ननबी ले गई हमरा हारिलबा मन
 मोरा लरज लरज शिया होब अहो मन
 बीबी बैजाओ हमरा होरिलबा मगरजना
 तुम लेजाओ गले की तिमरी अहो मन
 कोई ननबी के घाए तिमइया मन
 कोई ननबी बिबा की बरिया अहो मन
 मन बसते म तोड़ मो तिलरिया मन
 गले मिलते में तोड़ा हाट अहो मन
 राजा कतो में अतुर निकतो मन
 मेने बोनों ही जोब लैमीहो अहो मन

मुग्धन गीत

मेग के लिए यह छीना भगटी मुग्धन गीत में भी है। मुग्धन संसार के रात नाई को एक रूपया दिया जा रहा है किन्तु वह उसका मेगा धरतीकार धपनी मह्यवान माँग प्रस्तुत कर रहा है—

भगारं लडपा मुडन केरि बेरिया
लाख डालिए छुड्यो न हाप से
न सइहोँ एक बप्पा मुडन केरि बरिया
बाँबी का कूरा कटोरो सोन की
तेहपा धरौ बप्पा मडन केरि बरिया
बितन होत सासि लास मपन भए
हाप लिये है लडपा मुडन केरि बरिया
वाँब पत्रियाँ कमल करघनियाँ
हाप में सोन के लडपा मुडन केरि बेरिया।

पुन बडा हाकर धब बसने-फिरने मगा है। माँ कइती है—दलो डूर रोमने मत जाना। मैं माँ-बाप को दुमारी सात माइयों के मध्य म धरुमी बहुत पति की प्यारी हूँ मुग्हेँ बुँडने न जाऊँगी किन्तु पुन क डूर बने जाने पर वह धाकुम हो उठती है और धपन गर्ब को शुष्य ममरु कर उठे बुँडन निकस उठती है। बात्सम्य का मामिक स्वरूप हम सोक गीत म विद्यमान है—

कमर में लोहे करघनियाँ वाँब पत्रियाँ
लसन डूरो अंसन अनि बाहु बुँडन हम न धउब।
सात बिरन की बहिनिया बाप पिया एकै
हरि जी के परम पियारी बुँडन कते धउबै।
ओर भए जिनतला कतेबना की मुनिया
हुर्म कतेबना की बेर लसन बहि धाए।
घोड़े म तातो बिरनबा बाप क महर
दाँडि धीन्हो हरि की तिजरिया बुँडन हम धाइन।
अंते मुग्हार का घोबा ननकि रहै
बेटा बंसई माई का करेजबा बघनि धघकि रहै।

गीत की धलित वक्ति म मागू-दुख्य का बात्सम्य उत्पत्ति पर पहुँच गया है। वह संवन भारतीय माँ ही न रहकर बिन्ध म मागू-नद का प्राणीक हा उगा है।
बिबाह गीत

बिबाह संस्कार न लोह-गीत भी जन जीवन म ध्यायक है। कर-बग्गा बोलों

पक्षों में समान रूप से इस संस्कार के समारोह सम्पन्न किए जाते हैं। बन्धु जब विवाह होता होकर पति-ग्रह में पहुँच जाती है तब यह संस्कार समाप्त हो जाता है। विवाह के समारोह, पीसी बिट्टी मन्म माठ मंगिता छार, ठेस बरात प्रागमन द्वाराचार, माँवर, बङ्गार बिदा बरात का बन्धु को लेकर घर के घर पहुँचना आदि विभिन्न समारोह होते हैं। इन सभी धर्मसंस्कारों पर गीत गाए जाने की व्यवस्था है। विवाह के पक्क हो जाने पर कन्या के प्रतिभाक विवाह में दहेज देने के सम्बन्ध में परस्पर विचार विनिमय करण है। निम्नलिखित गीत में इसी समस्या का समाधान है—

इंदिया पचापो बाबा इंदिया पचापो रे
 इंदिया पचाई बाबा महुला जठापो रे
 ताहि कडि बेटे हं बेटा के बाबा हो
 रामी कचन वैड बनिपा दुलाव रे
 बनिपा दुलावे तेहि पूछे हति बात रे
 कितने बहेज वैही बेटा के ब्याह रे
 हाथी ईब घोड़ा ईब तोरहो तिया र
 महुला हाथी बं ब बेटा के ब्याह र।

यह गीत यही पर समाप्त न होकर कन्या के चाचा-चाची पूछ-पूछी मामा बारात द्वार पर आ गई है। बचते हुए बाबों को सुनकर कन्या की दुःख मन

मन करती हुई माँ से पूछ उठती है कि यह माँ ने कहाँ बच रखे हैं? माँ उसके ब्याह की बात कहती है। वह प्रतिकार करती है कि धर्म तो मैंने डलिया बिनना और गोई बनाता नहीं मोखा है। हे माँ! सामु और ननद मैया को वाली बेंबी मुझ्ने सहा न जानेया। माँ कहती है—बेटा डलिया बिनना और गोई बनाता सीस से। यदि मेरी सामु और ननद मैया को मामी रें तो उन्हे पाँचन पमाण कर न सेना। भारतीय संस्कृति में पत्नी हूँ माठारें धपनी कन्याओं को इसी प्रकार का उपदेश देती हैं।

सोबत रहति में भइया के मोरिया कीबुल पड़ीजें घाधी रतत रे
 केकरे बुपारे भइया बाजन बाजे केहिठर रचा है विवाह
 बाबरी भइलू पू ए मेरी बेंबी नति तोरी गई भरमाह
 तोरुंरे बुपारे बेंबी बाजन बाजे तोहरहि रचा है बिघाह
 नाही सीसो पइया रे डेलिया डेलरिया नाही सीसो राम रतोई रे
 सामु ननद भइया मैया गरिपइह मोरे बूते तइइ नहि साप
 तिख लेड बटी रे डेलिया डेलरिया तिख लेड राम रतोई रे
 सामु ननद बेंबी भइया गरिपइह लतिहों बंभरा पसाप

यह गीत कुछ सभों के परिवर्तन के साथ कविता की मुबरी—अमरपीठ के विवाह-गीतों में भी आया है किन्तु यहाँ विश्व रूप में यह उपलब्ध हुआ है उसके प्रक्रिया का रहा है।

बा-बन्धा की भाँवरो से पूव उमका गठबन्धन हो जाता है। गठबन्धन के धन स्तर से भाँवरे लेते हैं। उमी धनमग पर सञ्चियाँ उनके सौंदर्य का वर्णन करती हैं—

बा-बन्धा की भाँवरो से पूव उमका गठबन्धन हो जाता है। गठबन्धन के धन स्तर से भाँवरे लेते हैं। उमी धनमग पर सञ्चियाँ उनके सौंदर्य का वर्णन करती हैं—

वदित बँठ के वेव उरचारे गाबहिं सतिषा सहैलरिया रे
तुलहा के तोहे केतविया जामा तुलहिन के तोहे चुनरिया रे
सोई सुहायिन क भाज जतरिया जयमग क्वीति उजरिया रे।

बा-बन्धा की भाँवरो से पूव उमका गठबन्धन हो जाता है। गठबन्धन के धन स्तर से भाँवरे लेते हैं। उमी धनमग पर सञ्चियाँ उनके सौंदर्य का वर्णन करती हैं—

बाबा बाबा गोहराऊँ बाबा न बोलई

पहनी भवरिया क भीतर धब डू तुहार

बाबा बाबा गोहराऊँ बाबा न बोलई

दुनरी भँवरिया के भीतर धब डू तुहार

जामा जामा गोहराऊँ जामा न बोलई

तिसरी भवरिया के भीतर धब डू तुहार

कया कूका गोहराऊँ कया न बोलई

जउबी भवरिया के भीतर धब डू तुहार

मीता मीता गोहराऊँ मीता न बोलई

बँबबी भवरिया के भीतर धब डू तुहार

बाबू बाबू गोहराऊँ बाबू न बोलई

घउबी भवरिया के भीतर धब डू तुहार

भइया भइया गोहराऊँ भइया न बोलई

सतबी भवरिया के भीतर होइ गइ पगई।

कया जब विन्-गुह से बिदा होनी है उमक ममदा बाप जीवन के गुण। पीर सापिया के बिबिय विश्व विषय जान है। कतन उमरा बिल दुगी हा उठता है।

बा-बन्धा क निम्न गान न समाधि विषय का भाव बड़ा ही मायिक है—

हम कय बीरो न समे काहे बी क्याही बिदेन
भइया को बी हा मरत धरिबा
जने तो बिही है परदेत हने कय०

कहाँ मिलिहूँ बाबुस कहाँ मेरी मइया
 तबियन धुएत कसैत हमें कधु
 छुटा की पइया तमिहि सोटे
 हमें तो सवा को बिदेत हमें कधु
 भाव पकी मन गइया जो छोड़ी
 छोड़ा सखियों का स्नह हमें कधु
 मया अमना बंसी मइया जो छोड़ी
 छोड़ा सहेलियों का हैस हमें कधु

उपर्युक्त दोनों संस्कारों का अन्तर्गत मृत्यु जीवन का अन्तिम संस्कार माना है। इसका प्रतिष्ठित होना पर सामाजिक जीवन में कुछ अन्तर्गत और उदासीनता आ जाती है। फलस्वरूप गीत गाने के उत्साह और उत्साह बिनष्ट हो जाते हैं। डॉ० सत्यप्र ने एक जीवन में अनुभवियों का महा मरण-गीत गान की परिपाटी का उल्लेख किया है उन्हीं के 'अन्तर्गत साहित्य का अन्वयन' में 'मरण-गीत' उद्धृत किया जा रहा है—

बाएँ के कारण जो बएँ, और काहे के हरे हरे बाँध ।
 हरि रे किसन कैसे तिरपयो ।
 माता परम के कारण जो बएँ मरण के काहे हरे हरे बाँध ।
 हरि रे किसन कैसे तिरपयो ।
 बेटी में ध्याणी धायने, महेह न सोयो कम्पावान ।
 हरि रे किसन कैसे तिरपयो ।
 बाएँ के कारण गऊ बई काएँ के द्विए मजवान ।
 हरि रे किसन कैसे तिरपयो ।
 पार के काहे गऊ बई और तरन कू बएँ मर बाण ।
 हरि रे किसन कैसे तिरपयो ।

अन्य प्रकार के सोक-गीत

उपर्युक्त के अतिरिक्त स्थावर वस्तु देवी औरता टमू आदि के गीत और अनुभवों के गीत (सावन में मसूरा क्वार में बिजबारी काठिक में रिवासी धागुन में धाम र्जन में बीती गीत) तथा जातीय गीत (भोवियों के बुबियाऊ बीमरों के बीमर याऊ और गइरियों के मइरियाऊ गीत) आदि-आदि गान की पद्धति प्रत्येक प्रायः में प्रचलित है।

एक देवी गीत देखिए, जिसमें यादिका संघों को मेन छोड़ी को काया और गीत को पुन प्रदान करने की बेबी न प्रार्थना करती है।
 भाव मेरी पूरन करो माता
 कि हारी देवा काहे का तेरा संवप

काहे के चार जन्मे लये माता प्राप्त
 कि हारी मानिन लीने का मोरा मंजन
 केसे के चार जन्मे लये मानिन प्राप्त
 कि हारी देवा काहे का लीरा बीरा
 काहे के चार ठपे लये मस्ता प्राप्त
 कि हारी देवा हरिमाई को बीरा
 जये के चार ठपे लये माता प्राप्त
 कि हारी देवा अणन को माँजी कोड़ी को कामा
 बसिन को बासक देको माता, प्राप्त

बेटी बसन्तकामीन मीठ है। बसन्त में प्रकृति के प्रफुल्लित और मुरझित हो उठने पर पशु, पक्षी मानव प्रादि सभी में आनन्द का उदक हो उठता है और मानकता कमक उठती है। एक छोटी बबुरया की आत्मनि मनुष्य ममर दही बेचने को चल सी। वह जहाँ जहाँ मटकौ रचती है राजा का कुमार जहाँ-जहाँ लम्बू सववा देता है। आत्मनि के वह कहने पर कि तुम प्राये-प्राये जसो नहीं तो दही के छीटे पड़ जायेंगे। वह उत्तर देता है कि जिसे तुम दही के छीटे कहती हो मेरे लिए तो वे देवता द्वारा बरसाए जाने वाली धरत और जन्मन नो बरसा है। इस प्रकार साकर एक मपी एक बिरहिन को समझ रही है।

राजा सीटि मोटि आत्मनि सिर तो मटुकिबा हो राजा।
 बलि भइल मबुरा नगर दही बेचन हो राजा।
 रामा जहाँ जहाँ आत्मनि परले म्भुदिय, हो राजा।
 तहँ तहँ क बर लवावे लमुदा हो राजा।
 रामा प्रायु होय प्रायु होल राजा के भुँवरबा, हो राजा।
 परि कहई दही के टिटकबा, हो राजा।
 रामा तोरा लेखे आत्मनि दही के टिटकबा, हो राजा।
 मोरा लेखे अणन जल देव बरिसे हो राजा।
 रामा बड़ से बड़तबा बड़त पाँटी पाके, हो राजा।
 बाइ भाइ बिरहिन लति सजुभावे हो राजा।

इस प्रकार मोन-वीठों के प्रस्तुतन में हम देखते हैं कि जन्म जीवन की रत्नात्मकता माया-बीबी की स्वाभाविकता और सरमता तथा संरुति की प्रतीकतामकता सदैम विद्यमान नहीं है। इन्हीं लम्बा के कारण वे हमारे जीवनो में बुझे मिले रहे हैं तथा संकील और साहित्य के लिए अभिप्रेरणात्मक रहे हैं। जन्मे वैदिक्य और स्वल्प के लक्षण्य में भी सत्यार्थी को का जपन है—

"जहाँ से प्राये हैं एतने यौन मोन-जीवन मे ? बुद्ध कामे बारसों से बस
 बरगने को तैमार बुद्ध इगुपनुव के सुयोरय मे लाल-भाल या फिर सुयारिठ की रत्न

रसियों से बहुत घबिर का घबस छुटे माय क बुधिया मिष्ठ खास से उगते गेहूँ
 से चाय से या फिर किसी घनाज से फसल काटते मस्त रूपक के रसि स घाम
 छीसती गारी बुनगी से अस्त-व्यस्त स्मरण-बिभ्रमण की घोंठ मिचौनी से । जीवन
 के खेत में उगते हैं य सब गीत । कल्पना भी करती है अपना काम रस-भूति और
 भावना भी मूल्य का हितारा नी । पर य सब है खाद । जीवन क मुक्त जीवन क
 पुष्प य हैं लोक-गीत क बीज । लोक-गीत रूप क खेत म उगते हैं । मुक्त क मीन बर्मा
 क जोर से जन्म मठ हैं और बुन क गीत तों लीनत सहू से पमपने हैं और घानुषों
 क मारी बनने हैं ।^१

प्रबन्ध गीत

धमी तक लोक-जीवन म प्रतिष्ठित लोक-गीतों की परम्परा की हमन देखा
 है । इनमें गीतों का मुख्य रूप ही मिश्र हुआ है । किन्तु इनक साथ उनका प्रबन्ध
 रूप भी था जो समाज में उल्हाह और मनोरंजन की प्ररणा क लिए व्यवहृत होता
 रहा है । पारिवारिक जीवन में इन प्रबन्धात्मक गीतों का प्रयोग 'बिबाह-सम्पन्न' से
 मिलता है । किन्तु गीत के गीतों म य घबिजाबिक प्रयुक्त हुए हैं । उस समय गियों
 क सर्वांग समय का अभाव नहीं होता । जनन के लम्बे पीठ मुबिबा म माठी रूनी
 है । पुनरुत्पन्न भी इन गीतों क परिबन्धित अथवा परिबन्धित रूप को अपने परिमित
 समाज या बिनाम जन-समूह म नरक अन्तर्गत और प्रख्याहित होता है ।

इन प्रबन्ध गीतों में रामायण महाभारत इतिहास धारिक के कृतों की प्रतिष्ठा
 रहती है । कभी-कभी स्वाभाविक घटनाओं पर अकस्मिकत अथवा वास्तविक कृत भी
 स्वीकृत कर लिए जाते हैं । मुख्यक गीतों के समान इनक भाग भी हमारे संस्कृति
 साधार-विचार और धारणों का संरक्षण होता रहा है और संगीत तथा साहित्य को
 प्ररणा मिलती रही है ।

राम और रूप्य के खल्ल-वस्तु प्रबन्ध गीत अन्य गीतों की अवेष्टा धारिक
 उपयोग में आए हैं । गीरीजन्य राजा भरपरी होमा आल्हा पून मगत हीर
 राजा ऐसे प्रबन्ध गीत हैं जिनमें ऐतिहासिक कृतों क साथ कल्पना क वस्तु मिले हुए
 है । इस स्थल पर यह नी ध्यान रखने की बात है कि इन प्रबन्ध गीतों का किसी
 विविष्ट समाज और प्रायः में ही प्रयोग नहीं है । ऐतिहासिक रूप से उनकी घट
 गारें भले ही अलग-अलग प्रवेग में हुई हों । किन्तु मात्र के सम्पूर्ण राष्ट्र और समाज
 की निधि हैं । कभी समाज रूप से उनसे प्ररणा लते हैं ।

पदि गीरीजन्य राजा भरपरी और पून मगत के प्रबन्ध बीराम्य की प्ररणा
 देते हैं तो गैता और हीर-गैमा प्रय के संदीप और बिबोध की तथा आल्हा और

रस की। इतने स आत्मा ऐसा भीर-गीत है जो समाज के भ्रमरस्य तथा निष्कर्मता को उच्छेदन करने में विशेष सफल रहा है। धर्मों से प्रेम और वैराग्य के क्रमसमाप्त ही मिलते रहे हैं। गोपीबन्ध का वैराग्य बंगाली जड़िया भोजपुरी पंजाबी मछली भुजराती और दूसरी भाषाओं के लोक-नाट्य गीत प्रेम काव्य का विषय रहा है और प्रथमी वैरागी मिथारियों के हाथ हिन्दुस्तान और पश्चिम में गाया जाता है। डा० बटर्जी का यह कथन यद्यपि गोपीबन्ध के सम्बन्ध में ही है, किन्तु यह राज-मरचरी पुरमनगत होमा प्रादि सभी के साथ सत्य है।

निष्कर्ष

लोक-साहित्य के अन्तर्गत लोक-गीतों में हमारी परम्परागत भावनाएँ, भाषा-विचार स्वभाव प्रादि तो छिपे हुए ही हैं परन्तु उनमें संगीत तत्त्व भी कम नहीं है। उसका भी मूल तत्त्व उसमें घन-मिले हैं। फलस्वरूप उनमें साहित्यिक गीतों के सोठ के साथ संगीत के सोठ भी प्रकाशित हैं। 'भीरे बहो बंगा' की भूमिका-बंध में इसी तत्त्व पर डा० बाबुदेवचरण प्रथमान ने विशेष बल दिया है—

‘भारतीय संगीत के प्राचीन इतिहास और विचार का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्न-निम्न स्थानों में धीरे जातियों में गाए जाने वाले गीतों के स्वर-रस का प्रथम ध्यान रखना चाहिए।’

उसी ग्रन्थ में 'लोक-गीत की परत' के अन्तर्गत श्री देवेन्द्र मर्याधी ने भारतीय संगीत पर उसका महान् व्यापार माना है—

‘हमें यह मानकर बसना पड़ेगा कि लोक-गीत बहुत संगीत है फिर कुछ धीरे। धर्म देशों में लोक-गीत के अनुगम्यता तथा पुनरुत्थार में बड़े-बड़े संगीतज्ञों ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय देकर इसका हाथ देना ही भारतीय भाषाओं को गौरव प्रदान किया है। जहाँ तक हमारे देश का सम्बन्ध है। हम इतना ही जानते हैं कि प्राचीन में मार्गी धीरे-देवी इन दो भाषों में संगीत को किमन्तु विषय गया है धीरे यह बात भी छिपी हुई नहीं कि मार्गी संगीत के विचार में देवी संगीत में काफी हाथ बढ़ाया होगा। श्री डी० पी० मुकुर्जी ने मठानुसार दूसरी टप्पा वादरा कीर्तन

—

1 Gopichanda's renunciation is the theme of a large mass of folk poetry songs ballads and romances in Bengali Oriya Bhoj pari Hindi Punjabi Marathi Gujrati and other languages and is the subject even now sung other by itinerant Yogi beggars in Hindustan and Deccan

Dr S K Chatterjee—The Origin and Development of the Bengali language Vol I Page 121 (Edition 1916)

मजन इत्यादि 'बेटी' या 'सोक-गीत' क अर्थो हूँ ।"

विद्वानों क उपर्युक्त अभिमत म सोक-गीतों का महत्त्व स्वतः ही स्पष्ट है । सांस्कृतिक साहित्यिक और सांगीतिक मूल बातों और तथ्यों में धनगत होने के लिए हम सोक-गीतों को ही परकमा पढ़गा यह प्रथम मत्व है ।

सोक-नाट्य में गीत

शिष्ट नाट्य प्रस्तुत होने से पूर्व हमारे देश में सोक-नाट्य का परम्परा विद्यमान रही है कल्पनात्मकता क अभाव म उक्त धारण्यक परिवर्तन और परिवर्तन करक शिष्ट नाट्य कसा का सुषपाठ किया गया है इनका बहु मकीन स्वल्प ही रासाध्य और सम्प्रातों की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका है जिनसे अभिप्ररिठ हुआर ही भास कामिदास परबभोय भवभूति धारि ने अपन-अपन नाटककी रचनाएँ की थी जिनको साहित्यिक प्रतिष्ठा क साथ शिष्ट रंगमंच का सम्मान भी मिला । इनकी विकास की प्रगति क साथ सोक-नाट्य की पठि-विधि अवरुड नहीं हो गई, बहु मी उसका समानांतर अबाध रूप म अपने का अक्षुण्ण किए रही । जन जीवन क मनोरंजन का एकमात्र मापन होने क कारण उसका अकाम निवृत्त म हो सका ।

पानि प्राइठ और अषभय क साहित्यों में सोक-नाट्य क उक्त मिसने स यह सिद्ध है कि बहु समाज ही रहा है । अमन्तर देवी भाषाभाषा क विकास क साथ उमने अपने स्वरूप से उन्ह नाटक रचन और अभिनय करने की प्ररमार्ण ही । ये सोक-नाट्य समूर्ण देश में प्रचलित थे और धाम मी किसी न किसी रूप म जन जीवन के मनोरंजन की अ्यवस्था कर रहे है ।

'हमारी देवी भाषाओं म साहित्यिक नाटक क पूर्व जन-नाटक अशाश्रिमा से अभिमोठ होते धा रहे थे । बंगला में पाशा और बोटनिया नाटक बिहारी म बिदेधिया अकपी पूर्वी हिन्दी इन तथा खड़ीबोली में राम लीरकी स्वाय भाड राजस्थानी में राम भूमर, दोसा मार गुजराती म भवाई महाराष्ट्री में सडिठ और तमारा धांअ भाषा में भगवतमेन धादि नाटक विद्यमान थ । जन-नाटक क उपर्युक्त ममी जिनमेने में सामान्य रूप से संधीत की अ्यवकता थी और मछ-भाग प्राय उपेक्षित रहा । रंगमंच का कोई महत्त्व न था और बेसमूपा तथा प्रमापन अरयन्ठ गीत समन्ते जाने थ ।

इन सोक-नाट्यों में अधिकांशतः भगवान विष्णु क असावतार क कृषों के पतिरिक्त प्रतिष्ठा देवताभा की कपाएँ स्वीकृत होती है । कमी-कमी प्रदगन क लिए जनम बाहर सोक जीवन की कपाओं को भी अन्मा लिया जाता है । य कपाएँ गीता के साम्यम स अषमर होती रहती है । जिन प्रकार नाटक म पात्र अबाड क लिए अष्ट

१ डा० इधरय घोम्य—हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृष्ठ १७

२ डा अश्रमानगुप्त—Indian theatre—The Folk Tradition

रस की। इसमें सं ग्राम्हा ऐसा भीर-गीत है जो समाज के ग्रामस्य तथा निष्कर्मता को उन्मेषण करने में विशेष सफल रहा है। श्रव्यों से प्रेम और वैराग्य के क्रोमस मात्र ही मिलते रहे हैं। गोपीचन्द्र का वैराग्य बंगाली उड़िया भोजपुरी पंजाबी मराठी गुजराती और ब्रूचरी भाषाओं के लोक-काव्य गीत प्रेम काव्य का विषय रहा है और प्रथमी वैरागी निष्कारियों के द्वारा हिन्दुस्तान और दक्षिण में गाया जाता है। डा बटर्जी का यह कथन यद्यपि गोपीचन्द्र के सम्बन्ध में ही है ' किन्तु यह उक्त मरघरी पूरनमगत डोसा प्रादि सन्नी के साथ सत्य है।

निष्कर्ष

लोक-साहित्य के धर्मगत लोक-गीतों में हमारी परम्परागत भावनाएँ, आचार विचार स्वभाव प्रादि तो छिपे हुए ही हैं परन्तु उनमें संगीत उत्पत्ति भी कम नहीं है। उसके भी मूल उत्पत्ति उसमें घने-मिसे हैं। फलस्वरूप हमने साहित्यिक गीतों के क्षेत्र के साथ संगीत के क्षेत्र में प्रभावित हैं। 'बीरे बहो नंगा' की भूमिका-धंस में इतने उच्च पर डा बामुदेबघरण प्रथमान ने विशेष बल दिया है—

भारतीय संगीत के प्राचीन इतिहास और विकास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए निम्न निम्न स्थानों में धीरे जातियों में गाए जाने वाले गीतों के स्वर-रास का अध्ययन करना चाहिए।

उसी ग्रन्थ में 'लोक-गीत की परत' के धर्मगत धी देवेन्द्र सत्यार्थी ने भारतीय संगीत पर उसका महान् प्रभाव माना है—

'हमें यह मानकर चलना पड़ेगा कि लोक-गीत पहले संगीत है फिर कुछ और। प्रायः देशों में लोक-संगीत के अनुसन्धान तथा पुनरुत्थार में बड़े-बड़े संगीतज्ञों ने अपने जीवन का बहुमूल्य समय देकर इसके द्वारा देश की वास्तविक धारणा को नीरव प्रयास किया है। जहाँ तक हमारे देश का सम्बन्ध है। हम इतना ही जानते हैं कि धारकों में मार्गी धीरे देशी इन दो भागों में संगीत को विभक्त किया गया है धी यह बात भी छिपी हुई नहीं कि मार्गी संगीत के विकास में देशी संगीत ने काफी हाथ बटाया होगा। धी डी पी मुकर्जी के मतानुसार कुमरी टप्पा दाबरा कीर्तन

1 Gopichanda's renunciation is the theme of a large mass of folk poetry songs ballads and romances in Bengali Oriya Bhoj pari Hindi Punjabi Marathi Gujrati and other languages and is the subject even now sung other by itinerant Yogi beggars in Hindustan and Deccan
Dr S K Chatterjee—The Origin and Development of the Bengali language Vol I Page 121 (Edition 1976)

मजबूत इत्यादि 'देसी' या 'लोक-गीत' के बंधी हैं।
 विद्वानों के उपर्युक्त धर्मिमठ से लोक-गीतों का महत्त्व स्वतः ही स्पष्ट है।
 सांस्कृतिक साहित्यिक और सापीतिक मूस अतो और ठप्यो से अवगत होने के लिए
 हमें लोक-गीतों को ही परसना पडया यह प्र व सत्य है।

लोक-नाट्य में गीत

शिष्ट नाट्य प्रस्तुत होने से पूर्व हमारे देश में लोक-नाट्य की परम्परा विद्यमान
 रही है, कल्पनात्मकता क प्रभाव म उनमें प्राबल्यक परिवर्तन और परिवर्द्धन करके शिष्ट
 नाट्य कला का सूत्रपात किया गया है। इनका यह मनीम स्वरूप ही राजाभय और
 सम्राजों की प्रतिष्ठा प्राप्त कर सका है जिससे धर्मिप्ररित होकर ही माठ कामिवास
 धरबबोध भवमृति धादि में धपन-धपने नाटको की रचनाएँ की गी जिमकी साहित्यिक
 प्रतिष्ठा के साथ शिष्ट रगमंच का सम्मान भी मिसा। इनकी विकास की प्रगति के साथ
 लोक-नाट्य की गति-बिधि धरबड्य नहीं हो गई, बहु भी उसका समानांतर प्रभाव
 रूप से धपने को प्रसुण्य किए रहीं। जन जीवन क मनोरजन का एकमात्र साधन होने
 के कारण उसका विकास निधम म हो सका।

पाति प्राहृठ और धपभरु के साहित्यो में लोक-नाट्य क तत्व मिसने से यह
 सिद्ध है कि बहु सप्राय ही रहा है। धनस्तर बेसी भापाधो क विकास क साथ उगने
 धपन स्वरूप से उन्हे नाटक रचने और धर्मिमय करने की प्ररणाएँ दी। ये लोक-नाट्य
 सम्पूर्ण देश में प्रक्षमित के और धात्र भी कियो म कियो रूप में जन जीवन के मनोरजन
 की ब्यबस्था कर रहे है।

'हमारी बेसी भापाधो में साहित्यिक नाटक क पूर्व जन-नाटक उदाहरणों से
 धर्मिगीत होते धा रहे ये। बंगला में यात्रा और कीर्तनियाँ नाटक बिहारी में बिदेगिया
 प्रवधी पूर्वी हिन्दी ब्रज ठपा काड़ीबोसी में राम मीनकी स्वयं भौड राजस्वानी म उन्नु
 मूमर, डोसा माक गुजराती म मधारी महाराष्ट्री में लरिठ और ठनाया धांभ भाग
 में मगबठमेम धादि नाटक विद्यमान थे। जन-नाटक के उपर्युक्त मनी बिनेदों में धानान्य
 रूप से संकीठ की ब्यापकता भी और मध माध प्राय उपेक्षित रहा। रणनर का काई
 महत्त्व न बा और बेधमूपा ठया प्रभाव धरपन्ठ गीप ममठे जाठ म।

इन लोक-नाट्यों म धमिकीधठ भयवान बिन्दु क दगावजार क बठा क
 धतिरिक्त प्रतिष्ठित बरठाधों की कपाएँ स्वीडठ होता है। जनो-जमी प्रसन क लिए
 उनसे बाहर लोक-जीवन की कथाधों को भी धपना निया जाता है। म कपाएँ गीतों
 क माध्यम त धपसर होती रहीं हैं। निम प्रकार नाटक म पाठ संभव क लिए डठ

१ डा० बरारम घोस—हिन्दी नाटर उन्ध और विरुज पृष्ठ १७
 २ डा० बन्धमानगुप्त—Indian theatre—The Folk Tradition

का प्रयोग करते हैं इनमें उनके स्थान पर गीत का उपयोग होता है। इस प्रकार ये गीत बहुत होते हैं।

उपर्युक्त में 'माया' और 'रास' दोनों की बीर्भ परम्पराएँ हैं जो हमें घटीत भूत में पहुँचाती हैं। रास-अपभ्रंश के रासक शब्दों पर आधारित रहने के कारण हमें अपभ्रंश काल में और 'माया' वैदिक काल से पूर्व काल में ले जाता है। 'माया' में देव प्रतिमा की लेकर चलते हैं और उपासक मन्त्र मृत्यु संवीत और नाट्य द्वारा उस देवता की कथा का पाल करते चलते हैं। यह पद्धति हमने उस समय प्रह्व की होगी जब हमने माया की भावना जागृत हुई होगी। वेदकाल में तो इस प्रकृति के प्रभाव हैं ही किन्तु यह उससे पूर्व घटस्य रही होगी।

'माया-नाटक की घिसी को देखकर हमें यह प्रतीत होता है कि यह वैदिक काल से भी पूर्व विद्यमान रहा होगा। देव प्रतिमा के जसुस के साथ इसका सम्बन्ध इस बात का प्रमाण है कि यह नाटक मानव-इतिहास के उस युग में प्रचलित हुआ होगा जब संसार की विभिन्न जातियाँ प्रारम्भ में अपने उपास्य देव की प्रतिमाएँ जसुस के रूप में निकालकर मृत्यु और संवीत के साथ अभिनय करती थी।"^१

इस प्रकार माया की परम्परा वेद-काल से लेकर आज तक समुच्च है और अपने साथ मृत्यु संवीत और अभिनय के तत्त्वों को भी सुरक्षित किए हैं। अपभ्रंश के रासक काव्यों के तीन प्रवाह हैं—(१) वीनाचार्यों के वृत्त (२) बीरों के वृत्त और (३) श्रुदार वृत्त। प्रथम के अन्तर्गत वैशम्पुमार रास मेमिरास आदि द्वितीय के अन्तर्गत मरुतेरार बाहुबलिपाल समरतिह रास आदि और तृतीय के अन्तर्गत लकुटरास तास रास आदि आते हैं। इनके आने भी वीन धर्म के रासक शब्दों की परम्परा चलती रही है। इनमें उनके विद्वान्तों का प्रतिपादन हुआ है।

रासक काव्य अभिनय भी होते रहे हैं इस सम्बन्ध में प्रयुक्त-हमाल का अपने 'सन्देश रासक' में यह कथन है, 'कहीं पर बनुषेरी (बारों बेशों के धीनिज) बेशों की व्याख्या करते हैं और कहीं बहुकविने अर्थात् अभिनेता सुसम्बन्ध रासको का कथोप कथन रूप में प्रदर्शन करते हैं।'^२ इस कथन से यह स्पष्ट है कि रासक काव्यों का जन-जीवन में अभिनय होता रहा है। बर्म-प्रचार की भावना के लिए इस पद्धति

१ डा. बरारम घोषा—हिन्दी नाटक उद्भव और विकास पृष्ठ ४४

२ कहु न ठाह पडिइहि बेज पपासियइ।

पहुषहु लविनिबडड उठउ आसियइ ॥

इसी की एक व्याख्या में इस प्रकार धर्म मिलता है—

कुषापि बनुषेरीभि-बेव-प्रकारयते।

कुषापि बहुकविमिनिबडो रासको भाव्यते ॥४३॥ —(सन्देश रासक

डा० बरारम घोषा—हिन्दी नाटक उद्भव और विकास से उद्धृत पृष्ठ ८

को उपयुक्त समझ कर ही जैनाचार्यों ने धार्मिकाधिक रासक काव्य लिखे हैं।

इस स्थल पर यह प्रश्न विचारणीय है क्या सभी रासक या रासो काव्य जो जैनाचार्यों और उनके प्रतिरिक्त जैनेतर कवियों के द्वारा रचित हैं (जैसे बीचमदेव रासो सुमांग रासो पृथ्वीराज रासो प्रादि) धर्मनिरत हुए हैं ? मेरा तो यह विश्वास है कि न तो जैनाचार्यों के और न इतर कवियों के सभी रासो काव्य संघर्ष पर प्राए होंगे। प्रारम्भ में उनका इस रूप में उपयोग भले ही प्राठा रहा हो किन्तु धनन्तर विद्वानों ने इसे काव्य के लिए उपयोगी ठीसी समझ कर रासो-परम्परा को जीवन्त-वात दिया होगा।

यह सम्भव है कि प्रायों की धर्षणा मञ्जुर और प्रेमपरक रासक या रास काव्यों का धर्मनिरत होना रहा हो और उन्हीं की धर्मविध्वंस परम्परा को नविक्रम में कल्पोपासक मन्त्रों ने धर्षणा लिया हो। ब्रज में रास-परम्परा को पुष्ट करने के लिए स्वामी हरिदास हितहरिबध और प्राचार्य बल्लभ ने पूर्ण प्रयत्न किया। धनन्तर इन्प्य की सम्पूर्ण सीमाएँ इन रास-नाटकों का विषय बन गईं। प्रागे चलकर रामो-पासक मन्त्रों ने भी धर्षने सम्प्रदायों में रास की प्रतिष्ठा की और उनका प्रदर्शन हो उठा।

इन रास-नाटकों में शिल्प नाटकों के समान सुसज्जित रंगमंच की प्राबल्यकता नहीं होती। मंच पर सभी धर्मनिरता बैठे रहते हैं और कथासूत्र के अनुसार धर्षने धंघ का गान करते हुए धर्मनिरत करते हैं। इनके द्वारा भी धार्मिक भावनाओं के साथ नृत्य और संगीत की परिपाटी सुरक्षित रही है।

सोक-नाट्यों के इस संक्षिप्त विवेचन के प्राचार पर यह कहने का साहस किया जा सकता है कि उनके द्वारा नृत्य संगीत और धर्मनिरत को सरक्षण मिलता रहा है। उनकी सोक-प्रियता से प्राकपित होकर सहृदयों ने इन धीवि-नाटकों की रचना की जिनके धर्मनिरत से जन-जीवन रजन का अनुभव करता रहा और प्राज भी करता है।

इन धीवि-नाट्यों का प्रभाव सामारण जन-जीवन तक ही सीमित नहीं रहा है। धीर्षनास से न हमारे जीवन से घुसि हुए हैं। उनसे नाटक और नृत्य तो धर्मि प्ररिग रहे ही हैं, किन्तु उनसे भी धार्मिक उनके द्वारा हमारे धीवि-परम्परा को प्रेरणा प्रा-बल मिलता रहा है। इस प्रकार सोक-नाट्य सामारण जीवन से लेकर सम्प्राप्त जीवन को भी चिर-प्राभायी किए हुए हैं।

सोक-साहित्य और सोक-नाट्य के गीत की धर्मिप्रेरणा

सोक-साहित्य और सोक-नाटकों के गीतों में उपयोग में विषयवार्थों की धर्षणा साम्य धर्षिक है। सोक-गीतों में धर्मनिरत तो नहीं हाता किन्तु सोक-नाट्यों के गीतों के समान उनमें संगीत के तत्त्व धर्षण्य प्रात है। यह एक ऐसी भूमि है, जहाँ

दोनों को समान प्रतिष्ठा है। कलात्मक ग्रंथ होने के कारण लोक-नाट्य के बीतों को लोक-गीत के अत्यन्त प्रबल-बीतों में सरसता से मिला जा सकता है।

दोनों प्रकार के बीतों का निर्माण सपढ़ और अत्यन्त बत-बौबत द्वारा किया गया है, जिसके मानस न परिभाजित होते हैं और न चिष्ट बीबन से परिचित ही। इससे उनमें परिष्कृत कलात्मकता का अभाव यह जाना स्वामाधिक है। इस तथ्य के होते हुए भी उनकी भाव-व्यक्ति भारतीय संगीत को अभिप्रेरणा देती है।¹ यों साहित्यिक गीत के लक्ष्य भी उन्हीं विद्यमान हैं किन्तु 'लोक-गीत' पहले सपीठ है फिर कुछ और। डा० देवेन्द्र शर्माजी के इस कथन से मैं पूर्ण सहमत हूँ।

③

-
- 1 Classical music picks up the thread where folk music leaves it. In folk music there is no conscious aim of understanding the musical weaving of tones or of extending it further for artistic effect. The evolution of folk music is inherently a process of an unconscious synthesis of musical material both good and bad. Classical music on the other hand leaves nothing to chance, makes a conscious effort of isolating the good material from the bad and always aims at an intellectual understanding and interpretation of such material for further artistic effect. When such material is subjected to a conscious analytical process it becomes evident that the various musical elements and operations hinge upon certain physical laws of broad and universal nature.

G. H. Ranade—Hindustani Music The outlines of Indian Music Chapter V Page 81

संगीत और उसकी नवीन परिणति

विषय प्रवेश—विद्यमान होने पर मध्यम के अनुशीलन के मध्य में यत्र-तत्र यह कहा जाता रहा है कि गेय काव्य संगीत से सम्बद्ध है। इस कथन के अन्तर्गत एक पहलू-बने के लिए संगीत और काव्य के परस्पर सम्बन्ध का विशेषण प्रतिपादित है। पद्य स्वरूप संगीत और तत्सम्बन्धी राग रगणियों ऐतिहासिक प्रवृत्ति मध्यकाल में नवीन परिणति हिन्दी-काव्य पर पड़े प्रभाव आदि तथ्यों का विशेषण इस अध्याय में प्रस्तुत किया जा रहा है।

गीत के शब्दों में समाहित कवि की आत्मनिष्पन्न भावनाएँ स्वर-साधना के प्रथम से प्रस्तुत होती हैं।^१ इसमें शब्दों की प्रकृति स्वरों का ही अधिक मूल्य है, जिसका धारोहासरोह ही उसकी मूलगत भावनाओं का बिम्ब प्रस्तुत कर देता है जिससे वह अधिक प्राण और मनोरम हो जाता है। संगीत में गीत के स्वरों के आधार पर वादन ध्वनि और नर्तन त्रिमाधों का प्रस्तुत कर उसे सजीव बना देता है। इस प्रकार उपयुक्त तीनों का समन्वय भोज होते हुए भी संगीत^२ सदा के लिए उनका मिश्रण प्रतिपादित है।

संगीत के दो भेद हैं—(१) मार्गी और (२) देशी। 'मार्गी' संगीत पूर्वतम देशी है जिसे ब्रह्मा ने काव्य विद्या और भरत मुनि ने महादेव के समक्ष प्रस्तुत किया। अन्तर्गत देवताओं के मध्य में इगला धम्मुरय हुआ। देशी स्वरूप के कारण जन-धर्म की यह बोधमय न हुआ। फलतः यह उसके उपयोग का साधन न बन सका। इस कठिनाई के कारण मार्गी संगीत का सर्व सुसम्पन्न संस्करण 'दिगी सङ्गीत' अन्तर्गत मध्य में व्यापक बना और अधिकाधिक उसके उपयोग में आया। दश के प्रत्येक भाग में

१ 'सुख-दुःख की भावनेसमयी अवस्था विशेष का गिने-बुने शब्दों में स्वर साधना के उपयुक्त चित्रण कर बना ही गीत है।

महादेवी वर्मा—शास्त्रगीत—अपनी बात

२ गीत शब्द तथा नृत्य अर्थ संगीत मुख्यतः

शास्त्रदेव—संगीत रत्नाकर १२१

गीत शब्द मन्तव्य अर्थ संगीतमुख्यतः

शामावर—संगीत दर्पणम् १३

वहाँ की व्यवहृत रीतियों और प्रजासियों के अनुसार इनके वहाँ के निवासियों को रंजन किया। फलतः इसकी 'रस संगीत' की संज्ञा सार्थक हुई।^१

संघीत की राग-रागिनियाँ ही काव्यात्मकता की ओर प्रतिष्ठित हुई हैं। फलतः काव्य और संगीत का सम्बन्ध विवेचित करने से पूर्व उनकी प्राक्-प्रतिष्ठता का आचार और उनके परिवार से परिचित हो लेना आवश्यक है।

रायोत्पत्ति के साधन

राग की उत्पत्ति में नाद उत्पन्न होने के शरीर के विभिन्न अव्यय भुक्तियों का कुछ स्वर बीच बिहृत स्वर तथा बायीं सबायीं अनुबायीं विबायीं चार स्वर-श्रेण्यव्ययक होते हैं।^२

(अ) नाद

संगीत का नाद से मुख्य सम्बन्ध है। गीत नाद और मूल्य प्रादि तीनों ही नाद साध्य से संगीत के स्वरों का निर्माण करते हैं। केवल संघीत ही नहीं किन्तु हमारा सम्पूर्ण वर्तन और आध्यात्मिक चिन्तार्यों का आचार भी नाद ही है।^३

नाद से अर्धे अर्धे से पद पद से भाषा और भाषा से सम्पूर्ण विश्व का व्यव-

१ मार्गो वेद्योति तद् द्वेषा तत्र मार्गं स उच्यते ।

यो मार्गतो विरिञ्चामी प्रयुक्तो भरतादिभिः ॥

देवस्य पुरतः श्रान्तिप्रताम्बुजक प्रद-

देते देये जगताम ब्रह्म्या हृदय रञ्जकम् ॥

गीतं च वाचनं मूलं तद्द्वेषीस्वभिधीयते ।

मूलं वाचानुपं श्रोतं वाच पीतानुवृत्ति च ॥ —संघीत रत्नाकर १-२२-२४

मार्गद्वेषी विनायेन संगीत द्विविधं मठम् ।

ब्रह्मिणेन मरुत्भिष्टं प्रयुक्तं भरतेन च ।

महादेवस्य पुरतस्तम्भार्यास्य विमुक्तिदम् ॥

तत्तदेवस्वभा पीरया मत्स्यात लोकाणुरंजनम् ।

देसे देये तु संघीत तद्द्वेषीस्वभिधीयते ॥

—संघीत रत्नम् १-३-३

२ शरीरं नादसंभूतिं स्वाभावान् भुतवस्तुषा ।

तत् शुद्धास्वरा तत्त विहृता ह्यार्याप्ययी ॥

वाचादिभेदव्यवहारो रायोत्पादमहत्तव ॥

—संघीत रत्नम् १-३-४

३ गीतं नादात्मकं वाचं नादव्यक्तया प्रकल्पते ।

तद्द्वेषयानुवृत्तं मूलं नादाधीनमतस्त्वयम् ॥

—संघीत रत्नाकर—वि० प्रकरण १

हार है । फलस्वरूप सब विद्वद् ही मादाधीन हैं ।^१

नाद के दो भेद हैं—(१) प्राहृत धीर (२) घनाहृत ।^२ भृनि धीर भावक 'घनाहृत' मा घनाहृत की साधना करके मुक्ति प्राप्त करते हैं । इसमें उन्हें मूर्ख से पण्डित सहायता लेनी पड़ती है ।^३ हमने विपरीत 'प्राहृत' नाद से ही संगीत के स्वर नाम धीर मूर्च्छनापूर्ण धारि का निर्माण है । यही सोक रंजन का कारण है ।^४

'नाद' शब्द में 'नकार' वायु धीर 'दकार' अग्निमूषक वर्ण है । मूलतः वायु धीर अग्नि के समिधक से ही 'नाद' की उत्पत्ति होती है ।^५ प्राण की वायु की प्रेरणा से चित्त की अग्नि प्रेरित हो उठती है धीर इन प्रवीण अग्नि व प्रथम से ही ब्रह्मअग्नि में स्थित वह अस उठती है ।^६

इस प्रकार अग्नि से प्रेरित वह जगत् ऊर्ध्वगामी हो उठती है । वह माभि हृद्य कण्ठ सिट, दुल धारि सभी भंगों में प्रसारित हो जाती है । यही मानवीय शरीर में 'नाद' को ज्वलित करती है ।^७

धरीर में तीन प्रकार के नाद उत्पन्न होते हैं—(१) हृद्य म 'म' (२) कण्ठ में 'मध्य' धीर (३) शीर्ष में 'तार' ।^८ वायु के घावाट में हृद्य नाद उत्पन्न होते हैं । इन्हीं को संगीत धात्व में स्तुतियाँ कहा जाता है । इनकी संख्या २२ है ।^९

१ नवित व्यङ्ग्ये वर्णं पदं वर्णित्वाद्यथ ।

नवसो व्यबहारेण्यं मादाधीनयतो जगत् ॥ —संगीत रत्नाकर, २

२ प्राहृतोऽप्राहृतश्चेति द्विधा नादो विगद्यते । —वही ३

३ संगीत वर्णम् — १ १६

४ वही — १ १७

५ नकारं प्राचानामानं पदारमनसं विदुः ।

पाठं प्राचान्निधयोपात्तेन नादोऽग्निधीयते ॥ —संगीत रत्नाकर— १ ३ ६

६ आत्मा विषद्यमानस्य मनः प्रेरयति मतः ।

देहात्वं बह्विमाहृति सः प्ररयति मारुतम् ॥ —वही— १ ३ ३

७ ब्रह्मअग्निस्थितः सोम्य क्रमा दूष्यपणे चरत् ।

माभिहृत्कण्ठमुर्धस्थेऽग्निविभविमिति ध्वनिम् ॥ —वही— १ ३ ४

८ व्यबहारे त्वसो जमा हृदि मद्रोऽग्निधीयते ।

कण्ठ मध्यो मूर्ध्नि तारो द्विमुण्डचोत्तरोत्तरः ॥ —वही— १ ३ ७

९ तीवाकुमूडतीमंदाग्नेन्दोवत्पस्तु पद्मगा ।

व्यावती रंजनी च रजित्वा वर्णमे स्थिता ॥

रीडो शोषी च मांवारः क्विक्वाऽप्य प्रमारिषी ।

प्रीतिश्च माजनीत्येता अग्नयो मध्यमापिता ॥

चिती रक्ता च संकीर्ण्वासापिग्यपि पंचमे ।

वहाँ की व्यवहृत रीतियों और प्रथाओं के अनुसार रहने वहाँ के निवासियों को रंजन किया। फलतः इसकी 'रस संगीत' की संज्ञा सार्थक हुई।^१

संगीत की राग रागिनियाँ ही काव्यान्तर्गत गीतों में प्रतिष्ठित हुई हैं। फलतः काव्य और संगीत का सम्बन्ध विवेचित करने से पूर्व उनकी प्राग-प्रतिष्ठा का आचार और उनके परिवार से परिचित हो लेना आवश्यक है।

रागोत्पत्ति के साधन

राग की उत्पत्ति में गाय उत्पन्न होने के घटीर के विभिन्न भ्रम श्रुतियाँ बाध घुटा स्वर, पाँच विहृत स्वर तथा बारी सबाही अनुबाही बिभाही चार स्वर-श्रेर सहायक होते हैं।^२

(घ) गाय

सगीत का गाय से मुख्य सम्बन्ध है। गीत काय और गाय भादि लीको ही गाय घायय से सगीत के स्वरो का निर्माण करते हैं। केवल सगीत ही नहीं किन्तु हमाय सम्पूर्ण वर्सन और वाक्यात्मिक चिन्ताओं का आचार भी गाय ही है।^३

गाय से कर्ण कर्ण से पद पद से नाया और भाषा से सम्पूर्ण विन का व्यक

१ मार्को वैसीति तद् द्वेषा तत्र मार्गं स चञ्चले ।

वा मीयिता विरिञ्चार्थं प्रमुक्तो भरतादिभिः ॥

वेकस्य पुण्यं क्षमानियताम्बुधय प्रच-

वेधे वेधे जनाना यत्र क्या हृदय रञ्जकम् ॥

गीतं च गायनं गृत्तं तद्द्वैतीयमिधीयते ।

गृत्तं भाषानुचं प्रोक्तं गार्थं यीतानुवर्ति च ॥ —संगीत रत्नाकर १ २२-२४

मार्गदेषी विभाषित सगीतं द्विविधं मत्तम् ।

इ हिंजम परम्बिष्टं प्रमुक्तं भरतेन च ।

महादेवस्य पुरतस्तम्पार्थिन् विमुक्तिरम् ॥

ततदेधस्वया रीत्या बत्स्याव लौकानुरजनम् ।

वेधे वेधे तु संगीतं तद्द्वैतीयमिधीयते ॥ —संगीत रत्नम् १ १ २

२ घाटीरं गायसंभूतिं स्वानामि श्रुतमस्तथा ।

तत्त घुटा स्वरा सप्त विहृता द्वारधाप्यथी ॥

बाध्यादिश्रेरकस्वागो पद्योत्पादनहेतव ॥ —सगीत रत्नम् १-७-८

३ गीतं नायागमकं गार्थं गायकस्या प्रचस्यते ।

तद्गृह्यमानुष्यं गृत्तं भाषाधीनमत्तप्रथमम् ॥

—संगीत रत्नाकर—वि प्रकरणा १

हार है। फलस्वरूप सब बिरल ही मायावीन है।^१

माद के दो भेद हैं—(१) धाहृत् और (२) घनाहृत्।^२ मुनि और माषक 'घनाहृत्' या प्रमहृत् की साधना करके मुक्ति प्राप्त करत हैं। इसमें उन्हें मुक्त से यच्छ सहायता सेनी पड़ती है।^३ इनके विपरीत 'धाहृत्' माद से ही मंगोत क स्वर धाम और मुष्माधो धादि का निर्माण है। यही लोफ रंजन का कारण है।^४

'माद' धम म 'नकार' बायु धीर 'दकार' धमिभूषक बप है। मूलतः बायु धीर धमि क समिपय से ही 'माद' की उत्पत्ति होती है।^५ प्राय की बायु की प्ररपा से बिरल की धमि प्ररित हा उठती है धीर इस प्रवीण धमि क प्रथम से ही बह्यप्रति म स्थित बहु कम उठती है।^६

इस प्रकार धमि से प्ररित बहु कमय ऊष्वगामी हा उठती है। बहु नामि हृदय कष्ट बिर, हुन धमि सभी धर्यों में प्रसारित हो जाती है। यही मानवीय धीर में 'माद' को धमि क करती है।^७

धरीर म तीन प्रकार के माद उत्पन्न हाने हैं—(१) हृदय म 'मन्द्र' (२) कष्ट में 'धम्' धीर (३) धीर्य में 'गार'।^८ बायु के धाघात में हृदय माद उत्पन्न होते हैं। इन्हीं को समीप धास्व में मृतिपा कहा जाता है। इनका मख्या २२ है।^९

१ नरिन व्यम्नेने कर्षे परं कर्षातिशायक ।
बषठी व्यवहारोऽय मायावीनयो जगत ॥ —मनीष रत्नाकर, २

२ धाहृतोऽनाहृत्स्येति त्रिपा मादो निगणन । —वही ३
३ समीप कर्षणम्, — १ १६

४ वही — १ १७

५ नकार प्राधानामर्षं हवारननर्षं विदु ।
जात प्राथानिधंयोपात्तेन मादोर्मिधीयते ॥ —संक्षिप्त रत्नाकर— ३ ३-६

६ धास्वा विवक्षमायेर्षं मन प्रेरयति मन ।
वेहास्यं बह्निमाहृति स प्ररयति मादम् ॥ —वही— ३ ३ ३

७ बह्यप्रतिबिम्ब सोऽय क्मा वृष्वपक करतु ।
नामिहृत्कष्टमुर्वात्येधाविभविमति धमिन् ॥ —वही— ३ ३ ८

८ व्यवहार त्वयो तथा हृति मद्रोऽनिरुत् ।
कम् मयो मृजि ताये सिन्धुः शायते ॥ —वही— ३ ३ ५

९ मीबायुमुद्रतीर्मकाध्दोऽवपस्तु पररत्त ।
व्यावठी रंजनी क रक्तिका कर्षे विष्ण

१० रीती कापी क गांधार बयिकरत्त ३ ३ ६ ६
श्रीनिवध मायावीनयो धम्ना ३ ३ ६ ६

११ सिती रत्ता क मदीयिका ३ ३ ६ ६

तीसरा कुमुदती मन्त्रा सुन्दोवती दयावती रंजनी रक्षिका रौत्री कोची
 बन्धिका प्रसारिणी प्रीति मार्जनी शिरी रक्ता संदीपिनी आसापिनी मर्दती
 रोहिणी रम्या उषा शोमनी धारि ।

(घा) स्वर

बेहों में स्वरों का उदात्त धनुदात्त और स्वरित तीन विभेद करके उनको
 महला की स्वीकार किया गया है। इनकी व्यापक शक्ति के सम्बन्ध में यह आस्थीय
 कथन है—“स्वर की शक्तिमें धमन्त हैं और वे आकाश के समाग ही व्याप्त होने वाली
 हैं।” बर्णों से निर्मित काव्य के अन्त इतने प्रभावोत्पादक और प्राण्य नहीं होते जितने
 संघीत स्वर। संगीत के स्वर किसी भी भावना को सजीव और मञ्जुर बना देते हैं।
 जो पाद ध्वनि यति उत्पन्न करे और प्रतिध्वनि का रूप धारण करे यदि
 वह स्निग्ध और रजक है तो वह स्वर कहलाती है।

दुःख स्वर सात है और विद्वृत स्वर पाँच है। स्वरों के धारोद्धारोद्घ को
 ‘मूर्च्छना’ कहा जाता है। स्वरों के समूह ‘धाम’ कहाते हैं। इसके ‘पञ्च’
 ‘मध्यम’ और ‘गायत्रार’ तीन भेद हैं। इनमें प्रत्येक धाम में सात-सात मूर्च्छनाएँ रहती
 हैं। श्रुतियों में पहल अक्षर वा बार मध्यम पञ्चम बैषठ त्रिपाद—सात स्वर माने
 जाते हैं। इन्हीं के प्रारम्भिक बर्णों से इन्हें स रि व म प न नि कहा जाता है।
 इन स्वरों का निर्माण विविध पद्म-पक्षियों की बाजियों पर आधारित है। मञ्जुर की
 बोली से पञ्च षाठक से अक्षर ध्याय से गायत्र कीच से मध्यम कोकिल से पञ्चम

मर्दती रोहिणी रम्येष्टैठास्तिभस्तु भैबठे ॥
 उषा च शोमचीति द्वे निपादौ बधत्त श्रुती ।—स० रत्नाकर—१ १ १५ १६

१ व्यापिनीर्ध्यामि रम्या स्तुरमन्ता स्वर शक्य—गीतमीय तंज
 २ श्रुत्यन्तरमात्री य स्निग्धोऽमुरधनात्मक ॥

X X X

स्वतो रञ्जयति धीवृषिच स स्वर उच्यते ॥—संघीत रत्नाकर १ १ २४ २५
 १ मूर्च्छते येन रायो हि मूर्च्छनत्वमिच्छिन्नता ।
 धारोद्धारोद्घ्व क्लेश स्वर सप्तकम् ॥ बृहद्देवी १४

४ धाम स्वरसमूह स्वाग्मूर्च्छतीऽन्त्रे समाभय—संगीत रत्नाकर १ ४ १
 ५ श्रुतिभ्य स्तु स्वरा पद्मर्षमयाचारमध्यमाः ।
 पञ्चमो बैषठत्रिपाद त्रिपाद इति सप्तकै ।
 तेषा सक्ता सरितामपञ्चनीरवपरा मता ॥—संघीत रत्नाकर १ २१-२४

१ से सुर्द्धे सप्तत्रिः सार्धं मन्त्रवेकोनिषाति ।
 मञ्जुरषाठकध्यामनीऽचकौकिलरद्वुरा ॥
 च सप्त पद्मारीऽन्त्राऽन्त्राऽन्त्रायत्तयमी ।—बही—१ १ ४६ ४७

रागुर से संबन्ध और गत्र म निपाह—स्वरों का निर्माण है। इन स्वरों से बन बनत है। इनके अपने धर्मकार' और घट्टारह जातियाँ हैं।^१

राग-रागिनियाँ

स्वर और बर्णों से युक्त जो ध्वनि मानवोपचित का रजस करे वही राग है।^२ मलय और कस्मिनाथ क मग से राग व तीन नेब हैं—(१) मुड (२) छाया

मलय और (३) मंकीर्यं । छायाय विधि-विधान से मुड राग विधि रागों क विधय से छायायम और मुड तथा छायायम क मिथित स्वरूप म मंकीर्यं राग जम-वर्ष का मपोरंजम करते हैं।^३ उपर्युक्त क धनिरिक्त स्वरों के माध्यम से भी रागों क तीम मेद माने जाने हैं—(१) पाँच स्वरों क राग को 'ओठक (२) छ. स्वरा क राग को 'पाठम' और (३) सागों स्वरा से युक्त राग मन्पूर्व' कहतान हैं।^४ इनक पारिवारिक स्वरूप क सम्बन्ध में संगीत-शास्त्र में कई मत प्रचलित हैं। सभी मत छ पुरुष राग तो मानते हैं किन्तु सभी के एक ही राग नहीं है। उनमें म कुछ उनसे तीस रागिनियों की उत्पत्ति मानते हैं और कुछ छतीस किन्तु विभिन्न मता के आधार पर उनकी एक रागिनियाँ नहीं हैं।

रागोद्भव क सम्बन्ध म यह एक धार्मिक विश्वास है कि निव-उत्पत्त बना

१ मन्दीत रत्नाकर १६

२ मन्दीत रत्नाकर १-३

३ यौत्नी ध्वनिविभापस्तु स्वरवर्णविभूषण ।

रजसको जम चित्तार्ता स राग कपितो मुषं ॥

रजसता-त्रायन रागो म्नुपति म्मुसाहृता ।

प्ररवर्णविद्वज्ज वा यौगिकी मन्पाशिवन् ॥—मन्त

स्वगर्णविगितेन ध्वनिमेदेन वा पुन ।

रागते देन सन्वितं स राग ममत मत्राम् ॥—संगीत मममारा,

—संगीत रत्नाकर (The Adyar Library Series No 43) पृष्ठ ३ से उद्धृत

४ मुडा-छायासगा प्रोक्ता मंकीर्यंश्च तर्पेवच—संगीत दर्पणम् ३४

५ तत्र मुडरायसक नाम शास्त्रोक्तनियमान् रजसत्वं नभवति ।

छायासगतं नामान्यच्छायासग स्वेतयुक्ति हेतुत्वं भवति ॥

मंकीर्यं रागत्वं नाम मुडच्छायासगमुक्त्यन्वैतयुक्ति हेतुत्वं भवति ॥

६ ओठक पंचमि प्रोक्त स्वरै पडमि-च पाठक । मन्पूग मन्मिर्षेय एवं रागस्त्रिया मत् ॥

परं चिन्मये सद्योक्तं मुखं से यीरागं बामदेव मुखं से 'बसन्त' धनोर मुखं से 'भैरव' तत्पुरय मुखं से 'पंचम' ईशानमुखं से 'मेघराग' तथा पार्वती के मुखं से सास्यमूर्य प्रसंग मे 'नट्टनारायण' राग की उत्पत्ति हुई है ।

चिन्मये सद्योक्तं यही पुरय राग कहे गए हैं । धनन्तर इममे प्रत्येक से छ' छ' रागनिर्गमों की उत्पत्ति है । 'यी' राग' से मातङ्गी त्रिवेणी गौरी केवारी मनु मानवी पाहाडिका बसन्त से वेणी बैबगिरि, बराटी लोडिका मसिता द्विन्दोमी मैरवी से मैरवी गुर्जरी रामकिरी मुगकिरी बंगामी सैन्धी पंचम से विमापा मूपासी कर्पाटी बज्रहंसिका मासवी मेघराग से मस्तारी शीरटी छात्रेरी कौशिकी गाम्भारी हरशुंगारी नट्टनारायण से कामोदी कल्याणी धामीरी नाटिका शारंगी नट्टहवीरी रागनिर्गमों की उत्पत्ति है ।

'हनुमान मठ' से मैरवी कौशिकी द्विन्दोली शीपक शीराग एव मेघराग छ' पुरय राग है । 'मैरवी' से बंगामी मनुमाषवी बराबी चिन्मू, मैरवी कौशिकी से टोडी सम्भावती गौरी ककुमी मुगकरी द्विन्दोली से बेसावती बेघाल रागकरी

१ शिबसक्ति समायोमात्राणां संभवो भवेत् ।
पंचस्यात् पंच रागा स्तु पट्टस्तु गिरिजामुक्ताय ॥

सद्योक्तान्तु यी रागो बामदेवावसंतकः ।

मनोरार्ध भैरवोऽभूत्तत्पुरयात्पंचमोऽभवत् ॥

ईशानास्यान्नेघरागो नाटमारधे विबाहमुत् ।

गिरिजाया मुक्तास्तास्ये नट्टनारायणोऽभवत् ॥—संवीत दर्पणम् २ ६ ११

२ मासवी त्रिवेणी गौरी केवारी मनुमाषवी ।
तत् पाहाडिका ज्ञेया यी रागस्य बरायना ॥

वेणी बैबगिरि चैव बराटी लोडिका तथा ।

मसिता चाऽन द्विन्दोली बसन्तस्य बरायना ॥

मैरवी गुर्जरी रामकिरी मुगकिरी तथा ।

बंगामी सैन्धी चैव भैरवस्य बरायना ॥

विमापा चाऽन मूपासी कर्पाटी बज्रहंसिका ।

मासवी पटमंजरी छात्रेया पंचमायना ॥

मस्तारी शीरटी चैव छात्रेरी कौशिकी तथा ॥

गाम्भारी हरशुंगारी मेघरागस्य बोधित ॥

कामोदी चैव कल्याणी धामीरी नाटिका तथा ।

नारपी नट्टहवीरा नट्टनारायणज्ज्ञता ॥ —संवीत दर्पणम् २ १५ १६

१ भैरव कौशिकीचैव द्विन्दोली शीपकस्तथा ॥

यी रागो मेघरागस्य पठेते हनुमन्मया ॥

पटमञ्जरी जसिठ हीपक से केवारा कानरा देवी कामोद बिहानरा श्रीराम से बसन्ता मालक मासयी पमायी बसावरी मेघउग से बसारी देसकारी भूपामी टट्टु मुबरो प्रादि रागनियों की उत्पत्ति है ।^१

'रागान्तक यत से शैरब पचम नाट मस्नार मौड मालक देघ छ पुरय राम है ।' शैरब राग से बंमामी गुणकिरी मध्यमादि बसग्न बनामी पंचम राग से सकिता गुर्जरी देवी बपडी रामकिरी नाट से मट्टुनारायण याग्वार मालक केगार कर्नाट मस्नार से मेघ मस्नार माल कौशिक पटमञ्जरी घाघावरी पीड मासय से हिंदोल त्रिबभ धाधारी गीरी पट्टुसिका देघ से भूपामी कुडामी कामोदी नाटिका बैसावली प्रादि रागनियों ने जन्म प्राप्त किया है ।^२

उपर्युक्त प्रमुक्त तीन मठों से विविध राग रागिनियाँ व्यबहार में आ उठी हैं । मानवीय रंजन का मूल सिद्धांत होते हुए भी संगीत के विद्यापकों ने अपने अपने दृष्टिकोणों से उनमें परिवर्तन और परिवर्धन कर अपनी प्रगतिशील भावना का परिचय दिया है । उनके मध्य में विपरीतता के उन्मेष का विवेचन बस्तुतः आलोच्य विषय की सीमा के बाहर भारतीय संवीत-शास्त्र से सम्बन्धित है । इस स्वतः पर पुनः बहु सम्बन्धित उचित है कि छ राग और क्षीम रागनियों का उन्मेष ही विद्यापकों को मान्य है ।

राग बडक रागिण्य बट विघ्नत बाध विघ्नहा ।

घावतत बहू-तदति बहूअप्यय तमुपासते ॥^३

इस प्रकार छ राग और क्षीम रागिनियों का बहू के विघ्न से जन्म लेना और उनका उन्मी की उपासना और सम्मान में स्तुति-मान स्वीकार किया गया है ।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि उपर्युक्त हैबी धाधार धामुक्तिक युग में अधिक विरवस्त और मनोवैज्ञानिक न हो किन्तु राग रागिनियों के अस्तित्व और प्रभाव से सभी सहमत हैं और वे सर्वमान्य हैं । उपर्युक्त हैबी प्रमाण के स्थापन पर यह सिद्धांत सरलता से माना जा सकता है कि प्रागैतिहासिक काल में मानव ने अपनी अनुकरणात्मक प्रवृत्ति द्वारा प्रकृति की संवीतात्मकता को संवीकृत कर संगीत का क क म सीपा हो और विकासवाद की धमिप्रेरणा से वह प्रगतिशील हो सका हो । धनन्तर इतिहासकाल में बहु प्रगतिशील रहा और आज भी है ।

१ मैपिल कवि सोचन—राग तरङ्गिणी—द्वितीय तरङ्ग (दरमङ्गा-रागप्रेश)

२ शैरब पचमी नागे मस्नारी गीडमालक ।

देवात्म्येति पहराया प्रीष्यन्ते लोक विभूताः ॥ —संवीत दर्पणम् २ ३०

३ संवीत दर्पणम् २ ३१५८

४ नारदाय पचम—सार संहिता ।

(G C Gangoly at Ragas and Raginis) से बद्ध

संगीत धारण में राय-सेना और अनुभूति के सम्बन्ध में भी विशेषण प्रस्तुत किया गया है। और राय रायनिर्वाह किञ्च किञ्च समय और अनुभूति में पाई जाये। यह सिद्धांत भी सर्वमान्य रहा है किन्तु इसके साथ निम्न विकल्प भी जोड़ दिया गया है—

राजाधमा सदा पया न तु कालं विचारयत् ।

राज रायनिर्वाह के द्वारा ही सगीत में 'प्रबन्ध' भी गाने की जरूरत है। इनका अध्ययन प्रस्तुत करना भी विद्ययात्तर है। केवल इस स्वस पर यह उल्लेख ही सभी चीज है कि इन 'प्रबन्धों' का आकार साहित्य-क्षेत्र में स्वीकृत हुआ अथवा इनके नाम से ये परम्परा का मूलपाठ हो उठा।

यों सगीतसास्त्र में कितने ही प्रबन्धों के विवरण मिलते हैं^१ किन्तु उन सब में न ब्राह्मण वैदिक ऋषि-प्रबन्ध चर्चा प्रबन्ध रासक प्रबन्ध आदि के संबंध में विचार कर लेना आवश्यक है क्योंकि इनसे हमारा आलोच्य विषय हिन्दी-व-हिन्दी रूप से सम्बन्धित है।

प्रथम अध्याय में सहजभाषी सिद्ध सन्तो में चर्चागीत और वीणाधारों ने रासक ऋषि और पद्म काव्य लिखकर हिन्दी की रीति पद्धति का मूलपाठ किया—उल्लेख था चर्चा है। वस्तुतः उक्त पद्धतिपरी सङ्गीतसास्त्र से ही सम्बन्धित है।

'चर्चा पद्धती या राहुरी धर्म में बढ होती है, पादास्त अनुप्रास युक्त होता है और उसकी भाव-व्याज आध्यात्मिक रहती है।^२ जो उद्योगी विधि में सङ्गीत विषयक तालों का भी उल्लेख किन्तु काव्य की ये परम्परा में चर्चाओं की सङ्गीत विठामने के लिए ये ताल भी पर्याप्त है।

चर्चारी ब्रह्मोत्सव में रच्य होती है और रेश भाषाओं में रची जाती है।^३ रासक रास ताल के अन्तर्गत रच्य होती है। इसके चार भेद हैं (१) विनोद रासक कीतुक की परिस्थितियों में (२) बरह रामक रच्यार्यों की स्तुति में (३) नन्द रासक अर्थात् रास में और (४) कुम्भुज रासक कर्णा रस में रच्य होती है।^४

१ संगीत रत्नाकर अध्याय ४ (The Adyar Library Series)

२ पद्धती प्रवृत्तिरक्षण पादास्तप्राप्त भोमिता ।

अध्यात्मगोचरा चर्चा म्याहृदित्तिपारितान्त ॥

—सङ्गीत रत्नाकर अध्याय ४ २१२

३ मर्यादा पौडसमाना स्तुतौ की च माससंस्तुती ।

या ब्रह्मोत्सव देवा चर्चारी प्राकृतै परै ॥

श्लो—४ २१५

४ रामको गसतासेत स चतुर्षा निरपित ।

विनोदो बरहो नन्द ब्रह्मजडवेति धार्तिना ॥

धामापास्त अरपदादिनोद कीतुक मवेत् ।

अ वादासापमम्यात् बरहो वैवतास्तुती ॥

'श्रुति' की परम्परा का सङ्गीत में प्रवृत्त रहना नहीं है किन्तु वह अपनी प्रकृति में बहुत कुछ शब्दों पर ही आधारित है।

संगीत और काव्य

संगीत रचना और काव्य मानव प्रदान करता है जिनकी परिधि रसानुभूति रहती है। तद्विषयक कला-कृति में चाहे वह राग रागिनी हो चाहे कविता सामाजिक की इस अनुभूति में जितनी अधिक निमग्नता होती है उतनी ही अधिक उसकी सफलता और सामर्थ्य भी बढ़ती है सम्पन्न उसे विषय ही समझना चाहिए।

रस-निष्पत्ति दोनों कलाओं का आधार होते हुए भी उसकी अनुभूति और वास्तविक के बीच अन्तर-अन्तर है। उसके लिए सामाजिक को सङ्गीत में स्वरों और काव्य में शब्दों के धारित होना पड़ता है। स्वरों के आरोह-अवरोह और शब्दों के उचित विसम्मित विभिन्न प्रकारों से राग रागिनी की निर्धारित ध्वनिमात्रा निर्मित होती जाती है, जिनके उदार-वक्राकार और सम की स्थितियों में सामाजिक अपनी वैयक्तिकता और चेतना को भूल जाता है। यह स्थिति ही उसकी सदाकार परिधि है और यही सङ्गीत की रस-रक्षा है। संगीत के स्वरों के समान काव्य में रस-रक्षा माने का काम भाव करते हैं। जब काव्य के विभिन्न विषयों के मार्गिक भाव सामाजिक की अन्त-चेतना को स्पष्ट कर उसे समझ और निमग्न कर देते हैं तब वह अपने को विस्मृत कर उस भाव-वाता में बह उठता है। उस दम प्रस्तुत भावना को वह स्वयं की ही अनुभूति करता है। काव्य में यह स्थिति ही रस-रक्षा है दोनों कलाओं के लिए यह रसानुभूति प्राथमिक ही नहीं अनिवार्य है।

यह सत्य है कि संगीत में भाव काव्य की अन्वेषण पद्धतियों का मान होता है, किन्तु भावनाओं के समाहित रहने पर भी वाक्य स्वरों के प्राथम्य से ही संगीत का सीन्धु प्रस्तुत करता है भाव के आधार पर नहीं। भाव के आधार पर सीन्धु प्रस्तुत करने का काम ही काव्य का है। इसी से 'रसानुभूति काव्य' और 'सम्पन्न सङ्गीत काव्य' काव्य के प्राथम्य प्रतिष्ठा है। वे अनिवार्य शब्द हैं संगीत के लिये उनकी आवश्यकता नहीं है। संगीत में बुद्धे हुए शब्दों को अग्राह्य है निरर्थक भावना से जस बरसाया है और निरर्थक तथा निष्प्राय को सङ्गीत और संपन्न किया है। यह उसकी स्वरोच्चियों का ही प्रभाव है भाव का नहीं। निरर्थक शब्दों-वाक्य भावना को बोधप्रमत्ता ही क्या? इससे संगीत स्वर-प्रधान ही सिद्ध होता है।

तद्वदमाद्य द्विजशब्दस्वोद्भाहृत्वाभापनिमित्तम् ।
 यस्यासौ रामको नन्दो पीयूषो चार्मुने रवे ॥
 यानापादेर्मुक्तशालकम्बुजं कञ्ज मन्व ।
 सर्वेषु रामनेत्रेषु द्विसंघोद्भाहृत्यना ॥

काव्य भावों पर आधारित है। इसमें मानव-जीवन के समस्त व्यापारों मानवोत्तर पदावली और बरबरा के सम्मिश्रण की भावनाएँ सन्निविष्ट रहती हैं। सब ठीक यह है कि भावनावादी की व्यापक सुलभता के कारण काव्य धर्म कलाओं की अपेक्षा सामाजिक की भावनात्मक सत्ता का अधिकाधिक प्रसार करता है, जिसमें उसमें सिद्ध-तत्त्व की उपलब्धि अधिक सरल और स्वाभाविक रहती है। अब यह विचारणीय है कि क्या काव्य के लिए संगीत के स्वरों की आवश्यकता है? वस्तुतः नहीं है क्योंकि काव्य की पंक्तियों के अर्थों का उच्चारण किण्वित मीन पाठ से ही उसकी भावना का धारण लिया जा सकता है। काव्यात्मक के लिए आवश्यक नहीं है कि वे जोर से या लय के साथ पढ़ी जाएँ। इससे यह सिद्ध है कि काव्य में संगीत के स्वरों की आवश्यकता नहीं है।

संगीत और काव्य के मूल तत्वों पर विचार करने से यद्यपि यह स्पष्ट है कि शरीर का काव्य के भावों की और काव्य की संगीत के स्वरों की आवश्यकता नहीं है किन्तु नाव-मुक्त और स्वर-मुक्त पद्य की पंक्तियों से शरीर और काव्य अधिक समानोपयोगी और मूल्यवान् हो उठते हैं यह निस्सन्देह सत्य है। इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण दोनों कलाओं में देखा जा सकता है—गायक प्रायः भावापन्न पीठ ही काठा है और कवि काव्य की मानिक या कविक वृत्त के लय के अनुसार ही पद्यता या पद्यित करता है। जिस प्रकार वे पंक्तियों के भाव गायक के लिए कवि के समान मूल्यवान् नहीं है उसी प्रकार काव्य के वृत्त का लय कवि के लिए गायक के समान मूल्य नहीं रखती है। फिर भी शान्ति तत्त्व अपने-अपने स्वर पर उपर्युक्त है और कला की शोभा की अधिवृद्धि करते हैं।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कला के उत्कर्ष के लिए संगीत काव्य तत्त्व और काव्य संगीत-तरंग को अपने में सहेजे हुए है। अब यदि यह कहा जाए कि संगीत कला से काव्य को अपने स्तर पर और काव्य कला से संगीत को अपने समकक्ष समानुक्त कर लिया तो यह स्वर ही कला के दो स्वरूप हैं। क्योंकि एकीकरण दोनों स्थितियों में है जिससे शान्ति की समान प्रतिष्ठा है। इस समस्थिति पर ही साहित्य में शान्ति की प्राप्ति-प्रतिष्ठा हुई है।

गीत-काव्य के तत्त्व

गीत-काव्य अपने जीवन के लिए संगीत पर आधारित है। यह हम विगत पृष्ठों में देख चुके हैं। इस स्थल पर गीतात्मकता आत्मविश्रुति विचारों की एक रूपता सन्निविष्टा और मधुर भावा-शैली के प्रयाग प्रायः उगक तत्वों पर विचार कर लेना आवश्यक है।

संगीतात्मकता (Lyrical Elements)

मानव अपनी सभ्यता के प्रायः जीवन में तरल और मधुर प्रकृति के मध्य में

रहा। वह स्वयं धार्मिक संगीत से युक्त थी। जब भावनिरेक से बाधित हो मानव उनकी धनकृति के लिए विवश हुआ तब अपनी रमातुभूति के अनुकूल ही उनमें नाद किया। यह मात्र ही माहित्य और संगीत के स्वर बने। अतएव मानव ने माहित्य का मृजन कर टामा और संगीत की परम्परा को प्रस्तुत कर दी। यदि मैं काव्य और संगीत परस्पर में गुंथ कर ही बन। वेद इनके प्रमाण हैं—हमारे माहित्य और संगीत के धारि लूक उनमें विद्यमान हैं।

यह प्रारम्भिक रूप अज्ञेयता ही रहा। इन दोनों को मानव ने धार्मिक स्वरूप दे डाला। किन्तु सौक्य परम्परा को वह भी न छीन सका। वह दोनों प्रसूत रहे। दोनों के धार्मिक विकास के समानांतर उनका सौक्य-रूप प्रकटित रहा। इन दोनों का समन्वित रूप ही गीति-काव्य की सजा को प्राप्त कर सका।

धार्मिक चरकर माहित्यिक गीत और सौक्य-गीत इनके दो भेद हुए किन्तु संगीत की राग रामनिया के प्रथम और स्वरों के भागेहावरोह का परिव्यास वह भी न कर सके। इसी से गीति-काव्य के लिए संगीत का संग्रह होना अनिवार्य है।

आत्मनिष्पन्नता (Subjectivity)

गीति काव्य की वस्तु कवि के अन्तरगत से उत्पन्न होती है। इससे उभय कवि की आत्मनिष्पन्नता स्वाभाविक है। गीतिकार बन्धु-वर्णन का अपने गीति-काव्य का विषय नहीं बनाता। वस्तु बचन में चित्रण ही प्रस्तुत होते हैं जो कवि भी काव्य की मायिका और स्वाभाविकता के लिए जातक हैं। गीति-काव्य कवि की भावना-जगत की मधुर सृष्टि है। इससे उसमें स्पष्टता को न विरोध कर वस्तुतः और सूक्ष्म को ही प्रमुक्तता देता है।

विचारों की एक रूपता (Centralised Thoughts)

गीति काव्य में विचारों का एक रूपता धारणाकारक है। अतएव काव्य के रस परिपान में अन्वयान पड़ेगा। अतएव सत्य वस्तुतः एक ही गीत अथवा एक ही भावना के गीतों के सम्बन्ध में मात्र है अतएव विचारों की एक रूपता यह ही न सचगी। इस तरह का मूल अर्थ ही है कि एक गीत में एक भाव काय विरोध हुई हो। यदि एक के अतिरिक्त भाव कारण समाहित हों तो वह गीत मर्म न होगा। वाक्य या श्लोक का मर्म सरलता के अन्वय का छोड़कर अन्वय-भाव का मर्म पर जा पहुँचता तब काव्यानन्द धारणा-सुख होना।

संक्षिप्तता (Brevity)

आत्मनिष्पन्नता और विचारों की एक रूपता के युक्त गीत में संक्षिप्तता

प्रिय सभा । गुरु नामकदेव ने सत्यमत की भावनाओं पर 'मिथ सम्प्रदाय' खड़ा कर दिया । ईश्वर में एकनिष्ठ होना और आत्मबल सत्य करना इस सम्प्रदाय के प्रमुख सिद्धान्त रहे हैं ।

गुरु नामकदेव ने इस सम्प्रदाय का प्रवर्तन किया था । इससे प्रथम गुरु की प्रतिष्ठा का अर्थ उन्हीं को प्राप्त है । अन्तिम वसुधे गुरु गोविन्दविद् थे । उनके अनन्तर सिद्ध सम्प्रदाय में गुरु की परम्परा समाप्त हो गई और 'ग्रन्थ साहित्य' के सिद्धान्तों की मायता की ही परिपाटी चल पड़ी ।

ग्रन्थ साहित्य

'घादि ग्रन्थ' या गुरु ग्रन्थ साहित्य' मिथ-सम्प्रदाय का पवित्र ग्रन्थ है । इसमें नामकदेव अंगद अमरदास रामदास अर्जुन तेगबहादुर घादि गुरुओं की पवित्र बाणियाँ संप्रहीत हैं । छठे घातवें घाटक गुरुओं में जिनक नाम ब्रह्मा हरगोविन्द हरराम हरकृष्णराय व । उन्हींने किसी प्रकार की रचनाएँ ही नहीं की थी । सिद्धों के वसुधे गुरु गोविन्दविद् में आप की अकाल उस्तव बचितर नाटक देवी माहात्म्य प्राप्त परबोध किया बरितर और जठरलामा घादि रचनाएँ की थी किन्तु उनकी बाणियाँ 'ग्रन्थ साहित्य' में मकलित न की जाकर अक्षय से पुस्तकाकार में संप्रहीत कर ली गई हैं ।

इस पवित्र ग्रन्थ का संग्रह पाँचवें गुरु अर्जुनदेव के इंगित से गुरुदास ने गुरु-मुखी लिपि में किया था । सम्पूर्ण ग्रन्थ महमा १ से महमा ६ तक विभाजित है । एक महमा में एक गुरु की रचनाएँ संप्रहीत हैं । इस गुरुओं के अतिरिक्त कबीर, नामदेव रविदास बिसोचन सेरकरीर घादि की रचनाएँ इसमें उपमल्य हैं ।

'गुरु ग्रन्थ साहित्य' में निम्नलिखित रागों में सभी गुरुओं तथा निश्चितर मन्त्रों की बाणियाँ संप्रहीत हैं—

मिरी मउड़ी भाषा मूजरी बंध संजारी बिहागड़ा बड़हस सोरति बना
छठी ठोड़ी वैराड़ी तिमंग सूही जिलाबधु, गौड़ रामकसी गट नाराइन मउड़ा
मार गुलाठी केवारा मीरव बनत सारंग ममार कानड़ा कनिषात प्रनाती
पैजाबती घादि ।'

उपर्युक्त सभी राग सभी गुरुओं द्वारा पंजाबी और हिन्दी भाषा में लिखे गये हैं । गुरु नामक अंगद और अमरदास की रचनाएँ पंजाबी में रामदास की रचनाएँ कुछ पंजाबी और हिन्दी में अर्जुन और तेगबहादुर की सम्पूर्ण रचनाएँ हिन्दी में की गई हैं ।

'गुरु ग्रन्थ साहित्य' में गुरुओं-रचित हिन्दी की कविताओं के होने से तो हिन्दी संत सुभाषार—बियोमीहृदि, पृष्ठ १६६

साहित्य में उनका मूल्य है ही किन्तु उनमें कबीर नामदेव भादि की बहिष्कारों को भी सुर्क्षित रखा है। यह कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस भावना से प्रेरित होकर ही गोस्वामी तुलसीदास से पूर्ववर्ती युद्धों की बाणी में पर-परम्परा को देखता है कि उन्होंने कहीं तक इस विविध धर्मों का प्रयोग किया है।

सिद्ध धर्म के प्रथम चार युद्धों के काव्य को ही मैंने अपने अध्ययन का विषय बनाया है। पाँचवें युद्ध धर्म-तटन का जन्म-काल १९२ वि० सं० है। गोस्वामी तुलसीदास की कृप्य पोतावली की रचना १९२५ वि० सं० है। गोस्वामी पितृव्यविका का १९११ वि० सं० है। १९२५ वि० में युद्ध धर्म-तटन के काव्य का प्रथम ही नहीं काव्य ही न इससे तुलसी ने पर-साहित्य के समस्त उनके काव्य का प्रथम ही नहीं उठता है। इससे उनके काव्य को विवेचना का विषय नहीं बनाया गया है।

१ एक मात्र (ब्रह्मसूक्त १ १३२६ वि — धार्मिक सूर्य १ १३२३ वि) — माहीर ने सभी तमकड़ी (मानकाल साह्य) ग्राम में जन्म हुआ था। उनके पिता क मुच्य मे उनके अध्ययन की मुख्यबन्धा की थी। उन्होंने अपनी ब्रह्मचार्य प्रतिमा से पञ्चाधी हिन्दी संस्कृत कीर पारसी का अध्ययन किया था किन्तु बाध्य काल से ही पाल-विद्यन के कारण वह एकान्त सेवी बन चुके थे। पिता ने कितने ही ब्यवसायों में आपको डाला किन्तु आप उनमें बसफ्त मित्र हुए। धर्म में अपने धर्मिण साधी मर्यादा को लेकर वह यात्रा के लिए निकल पड़े। कुश्नेक हरिद्वार, काशी कामरूप गया बलिय भारत तथा पश्चिम में मक्का मदीना की आपने यात्राएँ की थी।

इन यात्राओं में सर्वत्र ही ईश्वर भक्ति का आपने प्रचार किया और केवल धर्म का अनुकरण करने के लिए कहा। उन्होंने अपने प्रिय शिष्य महिषा को अपनी पत्नी का उत्तराधिकारी बनाया।

पत्र धर्म — युद्ध तानकदेव ने अपने जीवन में कितने ही पदों की रचना की थी सब वे 'युद्ध धर्म साहित्य' में विभिन्न पदों के अन्तर्गत समाविष्ट हैं। उनके वे पर और इसी प्रकार मर्यादा के दबाव के स्वरो से ध्वनित भी हुए थे।' उनकी रचनाओं में सर्वश्रेष्ठ कीर सिद्ध-धर्म में सर्वश्रेष्ठ उनका 'अपुत्री' है इसमें ३८ अक्षर है कीर धर्म में एक इसी प्रकार है, जिसमें उक्त धार्मिक रचना का चार समाविष्ट है। द्वितीय महत्त्वपूर्ण रचना 'घसा की बार' है। यह ईश-स्तुति है, इसमें २४ पौष्टिकाएँ हैं। 'उद्दिष्ट' तथा 'साहित्य' के अन्तर्गत धर्म युद्धों के साथ इनके पर का संबंध है जो कम्य-सुप्रसिद्ध कीर धर्म के समक पड़े जाते हैं। उनके पदों में बड़ा भावा नाम युद्ध तथा भक्ति विषयक सामग्री उपलब्ध है।'

१ सत्य मुवासाद, पृष्ठ २३
 २ उत्तर भारत की सत्य परम्परा पृष्ठ २१७

पंडितवादी मिथ्यान्त क समान बह्य ही केवल सत्य है और बिम्ब की विविध परिस्थितियों में वह सत्य रहता है। वह धनादि और धनन्त है—

इच्छाकार सति तौमु करता पुङ्गु निरखत ।

निरखत अकाम मूरति प्रजुनी सैमं मुद प्रसादि ।

धादि सच्चु बुयादि सच्चु है भी सच्चु नामक होमो भी मख ॥

—(बपुजी प्रथम गीत पक्षिपदा)

बपुजी के मध्य में परमात्मा की संबंधितमत्ता निरंजन स्वरूप परमात्मा के सम्बन्ध में गूढ की महत्ता तीर्थात्म ठप धादि की निस्सारता धर्म ज्ञान कर्म धादि विषयों पर सामाजिक शोषी म मानकदेव ने लिखा है। उसका अन्तिम समीक बलिष्—

पबच्चु मुद पायो रितः माता धरति महतु ॥

बिषमु राति बुद बाई बाइया सेल सगत जगतु ॥

बदि धाईया बरिधाईया बाब धरमु हूरि ।

करमी सापो धापणी क नई के बूरि ॥

बिनी नामु पिधाइया मए मसकति धाति ॥

मानक ते मुल उज्जले केतो सुद्री नामि ॥

लौकिक धर्मग्रन्थों के निर्बिकापी प्रकृति क उपमान मानव-जीवन क निष्कृति क कितने बड़े माधन और धर्मप्ररक हैं। ये उमी मुषी को अनुभूति-गम्य हैं जो जीवन को प्रतीकिक पथ पर से चलने के लिए अरा भी चिन्तित और व्यग्र हैं। राम नाम के धर्मग्रन्थ से भक्त स्वयं का ही कस्मान नहीं करते परन्तु उमक माध धर्म भी मत्पथ पर सपते हैं।

'बपुजी' सिद्ध-धर्मावमन्त्रियों की वह पीठा है जिसका पाठ और गान जीवन क लिये श्रेयस्कर है।

परमात्मा के बिना जीवन में वास्तविक मुक्त नहीं। लौकिक बिकार सभी प्रकार का ग्रहित करन के लिए उम विपति में ही धक्कर पा जाते हैं। उक्त संयोग से ही कुछ गुण में और पीड़ा धाङ्कार में परिवर्तित हा जाने हैं। निम्नमैह परमात्म निमत जीवन का सबसे बड़ा संयोग है। मानक की भक्ति भावना और बिगह की अनुभूति विचारणीय है—

रामु सारग

हरि बिनु किउ रहिए दुपु ध्याये ।

बिहवा ताडु न कीकी रत बिनु बिनु प्रमु काम सताये ।

अब लपु बरमु न परत प्रोतन तब लपु मुलि विघानी ।

बरतनु बैपत ही मनु मानिघा जल रसि कमल बिपारती ॥

धनदि धनहव गरज बरसे कोबिल मोर बीरानी ।

तरवार बिरब बिरुप मुझम घरि विर घन लोहार्ये ॥
 कुबिल कुकष कुनारि कुलबनी विरु कउ धहनु न जानिषा ।
 हररिघ रवि रसन नही तुषनी कुरमति बूस समानिषा ॥
 भाद न जार्ये ना कुल पारी ना कुल दरदु तररीरे ।
 मानक प्रभु ते महम सुहनी, मय देवत ही ननु बीरी ॥

—(सप्त-सुधासार पृष्ठ २४३)

सम्पूर्ण बिरब माया के नसीमूठ हो चकर काट रहा है । मानक मन को उत्पन्न रूप परमात्मा का भक्त होने के लिए मनेठ करते हैं और उसी में बीबन की कुशलता धाँकते हैं—

रामु सूही

अतरि बलै न बाहरि जाइ । अमृत खोड़ि काहे बिज जाइ ।
 ऐसा बिधान अपहु मय मेरे । होवहु जाकर जाये केरे ॥
 मिजानु बिधान तनु कोई रवे । बीबनि बाधिषा तनु जनु मय ॥
 सेवा करे नु जाइर होइ । बलि बलि महीजनि रनि रक्षिमा होइ ॥
 हन नहीं बंदे कुरा नहीं कोइ । प्रथमतु मानकु तारे सोइ ॥

—(सप्त सुधासार, पृष्ठ २४३)

यूव नामक की बरामनियों में तात्त्विक बर्ष की सीधी-घाधी व्याख्या मिलती है । उन्होने 'बनुबी' के अतिरिक्त अपनी अन्य बातियों में धार्मिक बर्षों पर प्रकाश डालकर उनका महत्व भाष्यरूप में बताया है । जिनसे केवल सिद्ध ही नहीं हिन्दू और मुसलमान दोनों ही प्रभावित हुए हैं ।

२ युव धरम—(११६१ वि०—१६ १ ब०)—नामक के यह बिन्दु और मन्त लक्षणा ही युव धरम के नाम से प्रख्यात हुए । उन्होंने ही युवसूची विधि का प्रवर्तन किया और उनमें ही युव नामकरण के पर्यं, पीढ़ियों और समूहों का संघट्ट बताया था ।

युव शैली—युव धरम की धार्मिक रचनाएँ नहीं हैं । जो हैं वे 'युव-वन्द्य साहित्य' के महत्ता २ में संघट्टित हैं । वे मिला-मिला रूपों में लिखी गई हैं । इनमें नाम, सोरठ, सूही रामकली और मत्तार की चारें प्रमुख हैं । सारंथ नाम की रचना को उन्होने बुधमुखी भाषा के निर्मित हो जाने पर धार्मिकपूर्वक बताया था ।

धार्मिक-साहित्यकार को मिटाने में जितना युव धरम है उतने में ही अन्यथा और व ह्वार पूर्व । युव की महत्ता असाधारण रूप से धार्मिक है ।

धारा की चार

ये सज बन्धा उपरहि, सुख बड़हि ह्वार ॥

एते जानय होदिषीं मुच बिन धार धंवार ॥

—(सप्त-मुवासार पृष्ठ २५६)

मानव चिन्ता न कर । जब ईश्वर ने जन्म दिया है तब वह पापम भी करेगा । वस्तुतः आत्मसमर्पण की यह सच्ची कसौटी है और भक्त के लिये अपने प्रिय में धारवस्त हो जाना आवश्यक ही नहीं धनिबाम भी है ।

रामकसी की धार

मानक बिता नति करहु बिता तिसही हूइ ॥
बल नहिं भंत उपाइवनु तिनो मो रोखी वैइ ॥
प्रोब हदु न चलई ना को किरस करेइ ॥
सजवा मूलि न होबई ना को लए न वैइ ॥
बीघा का घाघाव बीघ जान एहु करेइ ॥
बिबि उपाए ताइरा तिनो भि सार करेइ ॥
मानक बिता मत करहु बिता तिसही हूइ ॥

—(सप्त मुवासार पृष्ठ २६८)

मानव में ईश्वर का बिरह आवश्यक है अन्यथा उसका शरीर और बीब ध्यर्ष का भार है—

सिरी राग की धार

जिमु विघारे सिउ मेहु तिसु धर्म नरि चम्पिए ।
प्रिमु ओवण लंसार ताके पाछे ओवणा ॥
जो तिक साई न जिबे सो तिक बीबे धारि ॥
मानक जिमु विजर नहिं बिहू नहो तो विजर ले धारि ।

—(सप्त मुवासार पृष्ठ २७७)

गुरु धर्म की प्रेम बिरह और वैराग्य की अनुभूत भावनाएँ विविध रागों की धनियों से बड़ी ही हृदयस्पर्शी हैं । उनमें प्रयुक्त प्रासादिक भाषा में तो उनके पदों को धीरे भी मधुर और प्राण बना दिया है ।

१ वह धर्मरदास (१५३६ वि०—१६३१ वि०)—गुरु धर्म के धनन्तर सिद्ध-धर्म की गुरु-वरम्परा धरने का अर्थ गुरु धर्मरदास का है । यह एक निष्ठ वैष्णव थे । गुरु धर्म की पुत्री बीबी धर्मरो से मानक के पद का मायन सुनकर वह मुग्ध होमए और धनन्तर गुरु धर्म का उन्होंने शिष्यत्व ग्रहण किया । यह प्रारम्भ से ही मराठारी सहजगीत और कवनिष्ठ थे । उनका स्वभाव भी बड़ा सरल मधुर था ।

पद-वरम्परा

गुरु धर्मरदास के भक्ति रस के पद शिष्य वर्ग में बड़े ही प्रिय हैं । उन्होंने.

हिन्दी पद-परम्परा और तुलसीदास

विभिन्न रागा की बाबो न घपनी रखनाएँ प्रस्तुत की भी । उनकी 'धामजु' नाम्नी
रचना बड़ी ही विस्वात है और धर भी धामजु-ममारोहों में उसका नाम दिया
जाया है ।

बहु सतगुरु के प्राप्त हो जाने से सात्विक धामजु में पुनः है । उत्तम राग
और स्वर की धम्पराएँ उस गुरु के गुण-मान करने के लिए प्रस्तुत हो गई है ।
राग रामकली

धामजु भदया मेरी माए सतिगुरु भं पाईया ॥
सतिगुरु त पाईया सहस सेती मनि बजोया बजाईया ॥
राम रतन बरवार परीया सबह वाक्य भाईया ॥
सबहो त वाक्यु हरी केरा मनि जिती बसाईया ॥
कई नामहु धामजु होया सतिगुरु मे पाईया ।

— (सत गुणासार पृष्ठ २८२)
मनु की विचित्र मति होती है वह लौकिक विकारों का परित्याग करके
नी वासनाओं को हरि में केन्द्रित कर देता है । रामकली राग में गुरु का कल्याण
भगता की बाल निराली ।

बाल निराली भयतगु केरो बिलस मारमि बालना ॥
लजु लोभ ग्रहंकार लजि तुलना बहुत नहीं बोलना ॥
पतिघटु तिलो बालहु भिकी एतु मारमि जाया ॥
गुरु परशाही जिन्ही धापु लजिघा हरि बासना समाया ॥
कई नामहु बाल भयता गुपहु लजु निराली ॥

(सत गुणासार पृष्ठ २८५)

मानव-जाति की कसौटी बड़ा है जो उच्छ्वस्त में क्षम सेने का दर्श कर
है, उसे मूर्ख ही कहना चाहिए । एक ही बड़ा से सभी बनों की उत्पत्ति है फिर जैन
जीव का प्रसन्न क्यों उठता है ? इस प्रकार का प्रसन्न उठने वाले ही बिकाठी है
कर्म का बन्धन ही जीव को बंदे है उसकी निष्कृति बिना गुरु के कठिन ही नहीं
सम्भव है ।

राग भैरव

जाति का परब न करियहु कोह । बड़ा बड़े सो बड़ाच होव ॥
जाति का परब न करि मूरख मबारा । इतु बरब ते बलहि बहुत बिकारा ॥
बारी बरन पाई सब कोई । बहु-विमुते सम शोपति होई ॥
माटी एक सयल संघारा । बहुबिनि भांडे कई कुम्हारा ॥
बस तसु जितो बेहो प्राकारा । धरि बयि को करे बीकारा ॥

कहतु नागक इहि जीउ करमबंधु होई । बिन सति गुह भटै मस्त म होई ॥

—(संत मुभासार, पृष्ठ ३०४)

ब्रह्म-निष्ठा के विरोधी तत्वों और विकारों का गुह धरबास ने मुक्त कण्ठ से बणम किया है। लौकिक तत्वों को हम जितना सत्य धीर हितकर समझते हैं। उतने ही धार्मिक तत्व हमें दूर पड़ते जाते हैं। यह तथ्य ही वह तथ्य है जिसको सन्त-परम्परा के सन्तों के प्रतिरिक्त प्रप्य मन्तों ने भी समझा है। इसी को पृष्ठभूमि में करके भक्त कवि धार्मिक भावना की श्रेयस्कृता के सम्बन्ध में अनुभूत धीर कल्याणप्रद कह पाता है।

गुह धरबास की भाषा सरस परावसी में ही प्रत्युत्पि हुई है। उन्होंने अपनी भावनाओं द्वारा सिद्ध-धर्म के भाग को प्रकट किया है।

४ गुह रामबास (१२२१ बि०—१२२८ बि०)—गुह रामबास गुह धरबास के आमाता ने। गर-मही पर बैठने से पूब उनका नाम खंडा था। उन्होंने अपना जीवन काम में प्रभूतमर का निर्माण कराया था और मिल बम-प्रचार के लिए उन्होंने मंसद नियुक्त किया था।

पद-शैली

प्रत्येक राग पर ही इनके पद मिलते हैं। इनका आमा राग था 'सा पुरान' पर बहुत लोकप्रिय और प्रख्यात है। उक्त पद के समान ही सुही राम की छत न चार पदों का प्रयोग सिल लोप बिबाह-संस्कार में करते हैं। बिबाह भ केरों के समय उनका गान किया जाता है।

'सो पुरान' में निरंजन और धमय से भी धमय हरि के महारम्य का गान किया गया है। राम के प्रारम्भिक शब्दों के आचार पर ही यह 'सो पुरान' पर कह जाता है—

राग भासा

सो पुरानु निरंजन हरि पुरानु निरंजनु हरि धमया धमय धपारा ॥
 सभि पिमाबहि सभि पिमाबहि तुषु बी हरि सच्चै सिरजबहारा ॥
 सभि बीष तुन्हारे बी सु बीषा का दातारा ॥
 हरि पिमाबहु संतहु बी सभि दुष बिसारथ हारा ॥
 हरि भावे ठाहुष हरि भावे सैबहु बी पिमा नागक अंत बिचारा ॥
 तु घट घट अंतरि सरब निरंतरि बी हरि एकी पुरध समाजा ॥
 इकि बाते इकि भेजारी बी तेरे बीज बिजाया ॥

—(संत मुभासार, पृष्ठ ३१)

नकर रूप शरीर में काम जोब प्रभूत भाजा में भरे हुए हैं किन्तु सतजनों

की सपत्ति से दोनों के लज्जा-अलज्जा हो जात है। मृत से जेंट हो जाने के कारण ही यह जीव हरि भक्ति में प्रवृत्त हो गया। प्रथम हीर नास्तिक मता हरि भक्ति रम को क्या समझे ? धार्मिक भक्त ही ब्रह्मानन्द में डूब कर धार्मिक रस का पात्र बनने में सफल होता है अन्य नहीं—

रागु गजड़ी पुरबी

कामि करीबि तपस बहु परिषा मिलि लंडल खंडा है ॥
 पुरबि लिखत लिखे मुख पाइया मनिहरि तिव मंडल खंडा है ॥
 करि सायु धंजुनी पत बड्डा है उंडउत पुगु बड्डा है ॥
 साकठ हरिरम साठु न जाबिजा तिन प्रतीर हउमै बण्डा है ॥
 जिउ जिउ बलहि कुभं कुल पाबिहि कमकालु छहहि सिरि उंडा है ॥
 हरिकन हरिहरि नामि लमाथे कुषु अगम मरम नब खंडा है ॥
 हरिनाथी बुबक पाइया परमेतब बहु सोना खंडा बहमण्डा है ॥
 हम मरीच मसकीन प्रमु तेरे हरि राकराखु बड्डबड्डा है ॥
 बन नातक नाम प्रभाव डेक है हरिनाथे ही कुषु मंडा है ॥

—(स मुखा साठ, पृष्ठ ३२)

रागु सुही-अलज्जा के प्रथम चार पदों में धार्मिक विवाह की व्यवस्था प्रस्तुत की है। प्रथम पद के प्रथम चोरे में परमात्मा ने प्रकृतिक कर्म को दूक किया है। प्रथम पद के द्वितीय चोरे में उसने सबपुर से जेंट करा दी है। तृतीय पद के तृतीय चोरे में उसने धानन्द-उस्ताह और बीराम्य की परम्परा को प्रस्तुत किया है और चतुर्थ पद के चतुर्थ चोरे में धर्मिणाथी प्रमु का प्राप्ति और ज्ञान के प्रकाश का मत में प्रसार किया है। चतुर्थ पद वृष्ट्य है—

रागु सुही धत

हरि बड्डबड्डा लार्बे बनि लहनु लइया हरि पाइया बलि राम की ॥
 बुधमखि तिलिया मुभाइ हरि मनि लनि मीठा लाइया बलि रामकी ॥
 हरि मीठा लाइया मेरे प्रमु पाइया धनबिनु हरि तिव लार्ई ॥
 बन बिदिषा फनु पाइया मुधामी हरि नामि बनी बाबाई ॥
 हरि प्रनि ठाकुर कानु रबाइया पन हिरदे नामि बिपामी ॥
 बन नातकु बोले बड्डबी लार्बे हरि पाइया प्रमु धबिनासी ॥

—(संठ मुखासाठ पृष्ठ ३३२)

सिद्ध कर्म के पूर्व गुरुघो की आज्ञाओं की परम्परा का पालन मुख रामदास की बाणी से हुआ है। धार्मिक धर्मों के निस्तुत कर्मों के साथ उनका पत्रावली में प्रेम और विषय बड़ा धार्मिकता से स्पष्ट हुआ है।

९ सगुणधारा

ध—राम भक्ति-शाखा और पद—हिन्दी काव्य में राम भक्ति का मूल स्रोत धरने तर्कों के लिए रामानुजीय सम्प्रदाय का धारापी है। उसके तात्त्विक सिद्धान्त रामानन्द के द्वारा स्वीकृत किए गए। भगवन्तर उनकी कुछ मौलिक विचारधारों के साथ रामानुजीय सम्प्रदाय का एक महीन संस्करण रामानुजी सम्प्रदाय के रूप में प्रस्तुत हुआ। इस प्रकार रामानुज का विधिपट्टाईत ही एक प्रकार से रामानन्द और उनके भगवन्तर के राम भक्ति के तुलसीदास तथा अन्य कवियों की दार्शनिक भाव धारों का पोषक रहा।

प्रस्तुत सम्प्रदाय का धार्मिक विषय तुलसी से पूर्व की मीति-परम्परा का विवेचन है। वस्तुतः तुलसी से पूर्व हिन्दी में रामानन्द के धर्मरिक्त इस शाखा में अन्य कवि हुआ ही नहीं है। हमने रामानन्द ने पदों का विवेचन ही हम स्वयं पर उपयुक्त है। रामानन्द पर रामानुज का प्रभाव है और भगवन्तर के कवियों पर रामानन्द का। फलस्वरूप रामानुज और रामानन्द की दार्शनिक विचारधारों का उल्लेख प्राथम्यक ही नहीं धर्मिचार्य हो जाता है।

राधानुज—धार्मिक रामानुज का विधिपट्टाईत वेदान्त का धर्म और भक्ति परक सम्प्रदाय है। इसके माध्यम में बहु वेदान्त के सिद्धान्तों को जन-जग में व्यवहार करने योग्य बना सके यही धार्मिक रामानुज की मीतिरता है।

धार्मिक धारुण का धर्म केवल नियुक्त ब्रह्म को ही प्रमुखता प्रदान करता है। उसके धर्मगत ईश्वर, जीव और प्रकृति धार्मिक का निजी अस्तित्व नहीं है। वे सब धर्मिकधर्मिय माया के धार्मिक ब्रह्म के केवल विवर्तमान हैं। इसके विपरीत धार्मिक रामानुज ने उन सभी की सत्ता स्वीकार की और माय में नियुक्त ब्रह्म और ईश्वर की धर्मिता को प्रमाणित कर उनके समुच्च स्वल्प को प्रतिपादित किया। जोध और प्रकृति में बैठन ब्रह्म की बैठना के समावेश में वे ब्रह्म के ही धर्मिभावा धर्म धर्मका धर्मि हैं। इन विधेपताओं के धर्मरिक्त धार्मिक रामानुज ने भक्ति बोध को धर्ममज्ञान और मोक्ष का धर्मम तिष्ठ किया। इस प्रकार वेदान्त के धर्ममज्ञान में उनकी निजी माय्य ठाई थी। उसी ही धर्मिपट्टाओं ने ही वस्तुतः धर्मिधारा के धर्मोचकों और भक्ति धर्म के धर्मरिक्त धर्मधार्मिक धर्ममधार्मिक धर्मम और रामानन्द धर्मि को विधेप रूप से धर्मरिक्त किया।^१

ब्रह्म और विधिपट्टाईत—रामानुज का विधिपट्टाईत भी धर्मि की कसा का ही धर्मम करता है वह धर्मि होता हुआ भी धर्मिपट्ट है। हमसे पहले उसकी धर्मिपट्ट

१ डॉ० देवराज—भारतीय धर्मशास्त्र का इतिहास—'विधिपट्टाईत धर्मका रामानुज धर्मि' (एकेडमी)

छापी पर ही विचार करना उचित है। अन्तर धार्या के तात्त्विक सिद्धाण्टों के बिने जग में सुविधा होती।

चित् (बीज चेतन घोर धार्या) घोर चचित् (बड़ प्रकृति घोर माया)--- ये दोनों ही तत्त्व ब्रह्म (ईश्वर परमात्मा परमेश्वर भगवान श्रीराम धारि) में व्याप्त हैं। इन दोनों तत्त्वों का यह विषेय स्वरूप ही ब्रह्म के साथ अनेकता अथवा अणु अणु का परिचयक है। इसका यह गुण इसकी विविधता को प्रकट करने के कारण ही 'विशेषक' है घोर ब्रह्म से अनेकता के कारण उनमें ब्रह्मांस का होना स्वयंतिष्ठ है। इस प्रकार ब्रह्माणी होकर ये 'विशेषक' भी हैं। ब्रह्म अजर, अमर घोर नित्य है। अमरस्वरूप चित् घोर चचित् भी इसी विविधताओं के धारिकारी हुए।

चित् घोर चचित् की भी दो परिस्थितियाँ हैं। दोनों सूक्ष्म घोर स्मृत होते हैं। चित् तो सूक्ष्म ही रहता है, किन्तु जब उसका संसर्ग स्मृत के ही जाता है तब चित् की भी स्मृत में ही गमना होने समती है। सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व चित् की स्थिति सूक्ष्म ही थी किन्तु सृष्टि के उपरान्त यह स्मृत हो गई है घोर स्मृत के अन्तर्गत ही उसकी गमना होती है।

चित् घोर चचित् ब्रह्म के भी सूक्ष्म घोर स्मृत दो भेद हुए। इसी के आधार पर ब्रह्म को 'सूक्ष्मचित्चिद्विचिद्विष्ट ब्रह्म घोर 'स्मृत चिदचित्चिद्विष्ट ब्रह्म' कहते हैं।

इस प्रकार की प्रतिपादित विशेषताओं के संयुक्त होने के कारण ही रामानुज का ब्रह्म विचिद्विष्ट है घोर चित्-चचित् के असे ही व्याप्त होने के कारण यह प्रकृत भी है। इसीसे उनके सम्प्रदान का नाम चिद्विष्टाईत पड़ा।

बीज

धार्या रामानुज ने बीजात्मा की निम्न परिभाषा की है—'बीजात्मा यह स्वरूप है जो देवता घोर अणु अणु धारि के मध्य में प्रकृति के परिणाम द्वारा प्रस्तुत अन्तर रहित ज्ञान घोर धार्या से युक्त हो। जब देवता घोर अणु अणु का अन्तर, जो कर्म के कारण

१ 'बीजात्मास्वमित्तं सर्वं यत्किञ्च अमर्यादपठ'—बीजात्मास्योपनिषत्

२ 'ब्रह्मैवमवस्थितामित्पदैवर्षावर्षमृतप्रकारतमैव विविधचेतनाचेतमात्मकं प्रपञ्चस्य स्मृतस्य सूक्ष्मस्य च अमर्याद'। तथा च बहुधा प्रजायेत्येवमर्ष-सम्पन्नो भवति तस्मैदेवस्य कार्यतमा कारणतमा च नातासंस्वानसंस्वि-तस्य संस्वानतमा विविधस्मृतपत्तिमिति।

—(रामानुजाचार्य—वैश्वानर—११)

"विविधस्मृतो अतीत्यमाञ्जुत्तिष्ठत्येव प्रकारत्वं तद्विचिद्विष्टस्य ब्रह्मत्वं अतिरिक्त्येव प्रकारित्वं धार्याधिक्येव"

उत्पन्न होता है, नष्ट हो जाता है तब उनका वास्तविक धारण रह जाता है जो वाणी से अकल्प्य है और जिसको स्वयं धारणा ही ज्ञान तकली है। इस प्रकार धारणा ज्ञान स्वरूप है और वह सभी में समान है।^१

इस प्रकार धारणा का स्वरूप बड़ा ही पवित्र और विमुक्त होता है। वे प्राणी जो धर्म धीरे कण्ट रहित होते हैं समझतीं होते हैं। किसी के प्रति उनके हृदय में उपेक्षा और घृणा की भावना नहीं होती।^२

इस त्रिगुणात्मक विश्व में धारण जीवात्मा में विकारों का समाहित हो जाना स्वामात्रिक है। उस ब्रह्मा में वह नटक उटती है किन्तु ब्रह्म तब भी सहयोगी रहता है। ब्रह्म के निर्विकार होने से संसार के त्रिगुण उसको प्रभावित नहीं कर पाते। इससे मनवान् को भीष के धारणसमर्पण में ही उसकी निष्कृति है। फलतः धारणसमर्पण ही प्रकृति की सर्वमासा का प्रथम बर्ण है।

जीव की स्वामात्रिक स्थितियाँ निम्न हैं—(१) वह कर्म पर बाधित रहता है (२) दुःख से पीड़ित रहता है (३) सर्व-ज्ञान नहीं होता (४) उसका निर्माण इश्वर

‘इश्वर संसार के निवर्तन (विहरता) का हेतु है जबकि बिद् धीरे प्रकृति जन्मन स्थिति धीरे प्रसय के प्रपंच से मुक्त है। समस्त प्रवृत्तियों से रहित धीरे धनन्त कस्यापि से मुक्त वह, जो स्वयं धर्म वस्तुओं से विसदाक है धीरे जिसमें प्रति धम प्रसक्त कस्यापि के पुत्र मरे हैं वेदात्त में सर्वज्ञ परब्रह्म पर ज्योति पर तत्त्व परमात्म सत् प्रादि धर्म-वेद से अन्तर्गामी पुण्योत्तम भयबन्धारायण के सय से प्रवगत होता है। बिद् धीरे प्रकृति वस्तुओं की अन्तरात्माओं का नियमन करने वाले उसके जीवन का धुतियाँ ‘तच्छक्ति’ ‘तवध’ ‘तद्विभूति’ ‘तद्वप’ ‘तच्छरीर’ ‘तत्तनु’ प्रादि

१ जीवात्मनः स्वरूपं देवमनुष्यादि प्रकृति परिणामविशेषरूपतानात्रिक भेद रहितं ज्ञानानन्वीकमुष्णं तत्सर्वतस्य क्रमदृष्ट्यदेवादिभेदेऽनात्मस्ते स्वरूपभेदो बाधाययोग्यः स्वसर्वेषु ज्ञानस्वरूपमित्येतावदेव निर्देस्यम् । तच्छ सर्वेषां मात्मानां समानम् ।

—(रामानुजाचार्य—वैदार्थसंग्रह—१)
२ विद्या विषय सम्पन्ने ब्राह्मणे नहि हस्तितानि ।
शुनि चैव स्वपाके च पण्डिता समदक्षिण ॥

३ मन्वारक—श्री कृष्णमाधाय—‘वैदान्त धार’ पृष्ठ १४ (मदवार साइबरी)
—(गीता २ १५)

सर्वों और समासाधिकरण से प्रतिपादन करती है।^१

ईश्वर अपने विपुल स्वरूप में ज्ञान और ध्यान की निधि है। उसमें अनन्त मूल है। वह इन्हीं मूलों के कारण चेतन और अचेतन पर धारण करता है। ब्रह्म का 'परम पद' जो विष्णु का पूर्ण स्वरूप है कर्मों के धापीन होने के कारण मातृग प्राप्त नहीं कर पाता। जब वह कर्म से मुक्त हो जाता है और सकर्म तथा पुण्य-बन्ध से जब उसे आनामम की बाधता नहीं रहती तभी उसे विष्णु का वह स्वरूप उपलब्ध हो पाता है।

ईश्वर की निम्न स्थितिमा होती हैं—(१) निर्विकार रहता है (२) सर्वज्ञ ता है (३) सत्त्व सकल्प होता है (४) सर्वेश्वर धमना परमात्मा होता है।^२

ति (माया)

आत्मा और प्रकृति के मध्य के अन्तर को स्पष्ट करने के लिए वायुपुराण का यह कथन है—'आत्मा धान्त्य और पवित्रता-युक्त होती है जबकि प्रकृति दुःख प्रज्ञा और क्लृप्त-युक्त होती है।'^३

प्रकृति अचेतन है इसके उसमें बढ़ता का अंश स्वाभाविक है। प्रकृति के साथ अचेतन जीव का संसर्ग होने के कारण जीव के समान प्रकृति भी ब्रह्म की धरणी होती है अर्थात् पहले कहा जा चुका है। प्रकृति (माया) अपने स्वूम स्वरूप से जीव के चिर्बन्ध को निरप्ट कर देती है उस स्थिति में उसमें लौकिक विकार प्रयुक्त मात्रा में समाधिष्ट हो जाते हैं किन्तु उसके सकर्म और पुण्यो से तथा ईश्वर की जीव की निष्कृति भावना से उसका माया-तत्त्व तिरोहित हो जाता है। धनन्तर वह भगवान् के कल्याण-पद आध्यात्मिक पद में अचेष्ट हो उठता है।

१ एवं विचक्षित्वात्मकप्रपञ्चसोद्भवस्त्विप्रलपसंसारनिवर्तनैकैतुमुक्त समस्तहेम प्रखनीकृत्यान्त कल्याणतया [न स्वेतरसमस्तवस्तुनितलाय स्वरूपीज्जन्मविकाटिधवा संख्येयकल्याणयुक्तमुक्त] सखरिमपरब्रह्मपरब्रह्मोति परतत्त्व परमात्म तथादिसम्भवेरैतिमितवेदान्तवेद्यो मयभारायमम पुरयो-त्तम इत्यन्तर्गामिस्वरूपम् । अस्य च बीभभप्रतिपादन परा मुक्तयः स्वेतर समस्तविश्ववस्तुज्ज्ञानात्पारमत्तमा निश्चितनियमन तन्व्यकित्तवरीधवादि मूर्तिवत्पतञ्जरीरततनु प्रकृतिमि सम्बैतस्तस्यमागिभ्ररभ्येन च प्रति पारयन्ति ।

—(उमानुजाचार्य—वैशार्य संग्रह १)

२ सं० बी० कृष्णामाचार्य—वैशान्त सार' पृष्ठ १४ १५

३ निर्विकल्प एवावमात्मा ज्ञानमयोभक्त ।

दुःखाज्ञानमता कर्मा प्रकृतेस्तै न आत्मन । —(वायुपुराण १-७-२२)

भक्ति और मुक्ति

'भक्ति' शब्द प्रीति का समानार्थी है। किसी क प्रति प्रीति का सृजन उच्च धर्मिक ज्ञान पर आधारित होता है। ब्रह्म सर्वसक्तिमान् निबिकारी होने के कारण भक्ति का समीप स्वस्व बन जाता है। आचार्य रामानुज का सिद्धान्त है कि छात्रों के अध्ययन से उच्च ज्ञान का अजन कर जो भक्त स्वकर्मों को पूर्ण करता हुआ ब्रह्म के प्रति अपनी निष्ठा रखता है वही भक्ति है। प्रेम से ध्यान की उपसम्यि होती है और वह ध्यान जो ज्ञान पर आधारित होता है वह कुछ विशेष ही होता है।^१

ध्यान स्वस्व ब्रह्म के ज्ञान में लगे का भाष्य ही है कि ब्रह्म में लीन हो जाता। इस प्रकार भक्त का अहंकार धीरे-धीरे समाप्त कर उठता है। भक्त में अहंकार के निवृत्त हो जाने से वह ब्रह्म के समीप पहुँचकर निर्वाण का अधिकारी बनता है।

त्रिगुणात्मक विश्व में मानव का पाप-शुद्ध से कलङ्कित हो जाता स्वाभाविक है। उसको दूर करने के लिए उत्कर्म करने की परम आवश्यकता है। इन उत्कर्मों की प्रेरणा ब्रह्म के एक मात्र आश्रय में ही जाने से उपलब्ध होती है। यह भी वस्तुतः भक्ति का एक मूल है।

पश्यन् त पर. पाव भक्त्या सम्यक्त्वगमया ।

भक्त्या त्वत्त्वया शक्योऽहमेवंविधोऽङ्गु म ।

अर्जु बर्तु च तत्त्वेन प्रवेष्टु च वर्तय ॥—(गीता १८ ५५)

भक्ति ज्ञान है। यह सभी को धारमसात कर लेती है। जिस व्यक्ति ने यह ज्ञान प्राप्त कर लिया उस ब्रह्म स्वयं अङ्गीकृत कर लेता है। अन्तस्वरूप उसका ब्रह्म से एकाकार हो जाना स्वाभाविक है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में जीव की अप्रकृता धीर ब्रह्म की अपनी धारमा के समान अपाशना करने के सिद्धान्त का प्रतिपादन है।^२ 'बेदान्तसार' के प्रथम अध्याय के प्रथम पाद में आचार्य रामानुज ने 'तत्रिण्डस्य मोक्षोपदेशान्'^३ उपदेश दिया है कि जो सत् (ब्रह्म) क प्रति निष्ठा रखता है उस मुक्ति मिलती है।

१ ब्रह्मब्रह्मसुखामयं वास्वाभिमततत्त्वज्ञानपूर्वक स्वकर्मानुष्ठीतभक्तिनिष्ठा साध्यात्मभक्तिकारिणम प्रियविद्यतम प्रत्यज्ञतापमानुष्मानरूपपरभक्तिरैव सुकृतम् । भक्ति सत्त्वस्य प्रीतिविशेषे वर्तते । प्रीतिरत्र ज्ञान विशेष एव । तद् न च मुक्तं प्रीतिरित्यतमन्तिरम् । मुक्तं च मानविशेषसाध्यं परार्थान्तर मिति हि मौक्तिका । नैवम । येन ज्ञान विशेषस्य तत्साध्यमित्युच्यते स एव ज्ञान विनय मुक्तम् । —(रामानुजाचार्य बेदार्य ग्रंथ १४१)

२ अहस्तनीं ह्येष आत्मेत्येवोपासीत—बृहदारण्यक उपनिषद् १ ४-७

३ बेदान्तसार—१ १-७

रामानन्द

रामानुजाचार्य के अनन्तर रामानन्द के व्यक्तित्व ने बिशिष्टाईत को एक महीन दिया की ओर मोड़ा। उन्होंने उनके प्रतिपादित सिद्धान्तों को व्यापक बनाया और व्यावहारिकता प्रदान की। परम्परागत बिशिष्टाईत के सिद्धान्तों में उन्होंने अपनी कुछ महीन उद्भावनाएँ भी सम्मिश्रित की। इससे रामानन्दी सम्प्रदाय के लोग उन्हें उसकी सीमा से बाहर भी मानने लगे हैं। किन्तु यह सम्प्रदायगत पक्षपात की विचारना है निष्पक्ष भावना नहीं। बिशिष्टाईत के विचारों में रामानन्द ने समयानुसार जो परिवर्तन और परिवर्द्धन किए वह उनकी मौलिकता प्रबन्ध है। किन्तु वह परम्परागत सम्प्रदाय को महीन बिधा देने के लिए ही है स्वतन्त्र व्यक्तित्व प्रमाहित करने के लिए नहीं।

रामानन्द सम्प्रदाय के आचार्यों ने अपने प्रवर्तक के जीवन का बड़ा ही प्रतिरंजनापूर्ण वर्णन किया है। रामानन्द को राम का अवतार कहा गया है। उनके जन्म से पूर्व ही देवताओं का घाकर प्रसूतिपृष्ठ का निर्माण प्राकृतिक हो जाने पर देवी देवताओं का धाममन रामानन्द से समीप घाकर सरस्वती का विनाय धारि के प्रति समोन्मिषुर्ण वर्णन है।^१

रामानन्द के जीवन के सम्बन्ध में इतना ही बहना उचित है कि श्री पुष्पसदन और तुसीता उनके पिता-माता का नाम है। प्रदाय में उनका जन्म तुषा बा। बिशिष्टाईती रावबालन्द उनके गुरु थे और उन्हीं की अनुमति से उन्होंने अपना प्रसन से रामानन्दी सम्प्रदाय बनाया बा। उन्होंने सम्पूर्ण देश की यात्रा की और अपने सम्प्रदाय को व्यापक बनाया।

सिद्धान्त

रामानन्द के 'रामार्चन पद्धति' और 'वैष्णवमताम्बमास्कर' दो सिद्धान्त ग्रन्थ हैं। प्रथम ग्रन्थ राम की अर्चना के बाह्य स्वरूपों का विचार करने वाला कर्मकाम्यी ग्रन्थ है जबकि द्वितीय सिद्धान्तों पर पर्वान्त प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ में श्री सुरसरानन्द ने रामानन्द से (१) उरव क्या है? (२) क्या अपना चाहिए? (३) किसका ध्यान करना चाहिए? (४) मुक्ति का साधन क्या है? (५) दोष वर्म क्या है? (६) वैष्णव कितने प्रकार के हैं? (७) उनके लक्षण क्या हैं? (८) वे कैसे कामसेप करें? (९) उनका प्राप्य क्या है? और (१०) उन्हें कहीं निवास करना चाहिए? इस प्रसन पुषे हैं। रामानन्द ने उनके उत्तर दिए हैं। बिग पर उनका रामानन्दी

१ भयवशाचार्य—रामानन्द विभिन्नय प्रथ्याय १ १ ४ १ धारि।

—(श्री रामानन्द साहित्य मन्दिर, प्रमबर)

सम्प्रदाय स्थिर है ?

(१) केवल ब्रह्म ही एक तत्त्व है। अर्थात् (प्रकृति माया आदि) चिद् (जीव) और ईश्वर उसके तीन भेद हैं। अर्थात् (माया) विकार रहित सम्पूर्ण विश्व का कारण अनेक बर्णों से युक्त त्रिगुणात्मक अणुवत्परमाणु सुमी परार्थात्प्रा महात्म्य और महाकार आदि की उत्पादिका है।^१ चिद् (जीव) ब्रह्म नित्य युक्त तीन प्रकार है। वह नित्य अन्न ईश्वरार्थित और अणु परिमाण है। कम और योगी पर अभिमान करता है।^२ ईश्वर समस्त विश्व का आचार सर्वव्यक्तिमान संसार का वर्ता वर्ता धरता है। अपने नाम में स्थित केवल श्रीराम ही ईश्वर पद के अधिकारी हैं।^३ अर्थात् और चिद् दोनों ही ईश्वर के आर्षित होने से उत्त्वरूप है। माया ईश्वर से अभिप्रेरित हो सृष्टि का कारण है। इस प्रकार ब्रह्म के ये तीनों तत्त्व अपने स्वर्णों में रामानुज के सिद्धांतों का ही प्रतिपादन करते हैं।

(२) इस सम्प्रदाय में तीन मन्त्र अपने का विधान है—प्रथम श्रीराममंत्र 'रां रामाय नमः' इसमें 'रां' से भी उक्त है, जो अथ का आचार है। यह अणु का प्रकाशक उत्पादक एवं अभिव्यञ्जक नाम रूप अथ गुण स्वरूप एवं मन्त्र आदि इसमें समाहित महाशक्तिशाली विश्व का कारण स्वरूप है। इस विशेषणों से युक्त राम को ममस्कार का विधान है। द्वितीय मन्त्र 'द्वय मंत्र' कहा जाता है इसके दो भाग हैं 'श्रीमद्भगवत्प्रवरणी धरत्यं प्रपद्ये। श्रीमते रामचन्द्राय नमः।' इसमें शीला और रामचन्द्र दोनों के धरत्यं की अभिव्यञ्जना है और उन्हीं को नमस्कार

१ तत्रं किं किञ्च ज्ञप्य किमञ्च शुभकरं वैष्णवैर्ध्यातमिष्टं मुक्ते किं साधनं ससुमतिमतिमतो बर्मे एकीरित करच। बर्मायां वैष्णवास्ते मुस्वर कठिना सज्ञचं किं च तेषां कालोप किमाप्य कवमुदशुमद कुत्र कार्यो निवास ॥

२ नित्याज्ञाचेतना सा प्रकृतिरधिकृतिरिस्वयोनिं शुभैका। नाताबर्मासि काजा त्रिगुणानुसिमाप्यक्तशब्दाभिधैवा निर्व्यापाय परार्थां महद्ब्रह्मिति सुरध्वते तत्त्वविधिम्। (बही—१)

३ अल्पज्ञरचेतनोऽत्र सतत्परबन्धः सुदमतोऽप्यस्तमुदमो मिश्रोऽज्ञादिभेदै प्रति कुत्रापमौ नैक्या मूरिषर्षे। धी धान्तास्तासपरयो त्रिजङ्गतिरमनुत्तमहा योमिमानी धीबोसी प्रोष्यते धी हरिचरचरेत् तत्रबजिज्ञासुभेषः। (बही—७)

४ विरलं जात यतोऽज्ञस्तदवति नितिय मरच नीनाति यस्मिन् गुणो यत्तत्र सेसु सक्तमभिरत्तं प्राशययेत् वेप। मद्भीत्या बानि बातोऽनिरपि मुतमं याति नैवेदचरोसी छासी नूटस्य एको भित्तिससुममुच मन्त्र गबेदेो। (बही—८)

है। तृतीय मन्त्र 'अरण मंत्र' है—'सङ्करोव प्रपन्नाय उवास्मीति च याचते। अमनं सर्वभूतेभ्योऽवाम्भेतद्वर्तत मम। यह मन्त्र भगवान की प्रसांगता वा सम्प्राप्तन और भगवान पर ही हमारा कस्याव निर्भर है यह बिरबास वाहुत करता है।

(३) अथठारि रूप से भुजाओं से युक्त राम का ध्यान करना ही इष्ट है। (४) मुक्ति के साधनों में भक्त को पंच संस्कार रखना आवश्यक है—अनुप-बाध की उत्पत्ति उर्ध्वपुण्ड्र, वैष्णवतासूचक नामकरण श्रीराममंत्रोपदेश प्रह्वन और तुलसी कथ्यारण। इन संस्कारों से युक्त ही भगवान की रामभक्ति करे। श्री रामनवमी श्री जानकी नवमी श्री हनुमन्जयम नृसिंह जयन्ती श्री कण्ठ जगदाष्टमी बामनडा बहीबत धारि समारोहों को सम्पन्न करे। इन सभी के मध्य में भगवान की कृपा होती है जबकि उद्ये जीव का कस्याव होता है। (५) श्रेष्ठ धर्म में अहिंसा को प्रमुखाता प्राप्त है और उद्ये साथ राम की धर्चना करना और भक्ति की कामना करना श्रेष्ठ धर्म है। (६) चारों बगों के लोग जिन्हें मुक्ति की कामना है वैष्णव हैं। भगवान में क्या और वात्सल्य गुण है उद्ये उनकी बुद्धि में जाति-बन्धन नहीं है। (७) जो पंचसंस्कारी है और राम-कथा कहता और मुनता है—यही वैष्णव के लक्षण है। (८) विकास सम्यक ध्यान और भगवत्पूजन करके भक्त को समय बिताना चाहिए। तीर्थों में भी साधु-सङ्गीत करके समय व्यतीत करना चाहिए। (९) सीता सहित राम की मुमुक्षुओं को प्राप्य है। (१०) वैष्णवों के आवाज के सम्बन्ध में रामानन्द के ये श्लोक हैं कि बिरबत वैष्णव भक्त अयोध्या लखिमपुर, बिजकूट और नापी में निवास करें। प्रह्वस्व वैष्णव बही रहें जहाँ उनके पिता पितामह रहते हैं। यों वह कहीं भी रहें किन्तु सर्वत्र राम की ही पूजा करें धारि।

रामानन्द की विशेषताएँ

रामानन्द ने 'राम' की उपासना पर बल दिया जबकि रामानुजीय सम्प्रदाय में 'श्री विष्णु' की उपासना प्रचलित है। उनके ३५ नामों 'नारायणनाम' मन्त्र के खान पर रामानुजीय सम्प्रदाय में 'श्री रामायणनाम' का प्रचार हुआ। इनके अतिरिक्त साम्प्रदायिक उपासना में अत्यन्त धरतर है। 'श्री माप्य' श्लोक हुए भी रामानन्द ने ब्रह्मसूत्रों का 'आनन्दमाप्य' किया। ब्रह्म जीव और प्रकृति के सम्बन्ध में एक ही भावना है। सबसे अधिक जन्तुजनीय बात रामानुजीय सम्प्रदाय में अन्ध और नीच बगों की समांगता है। मक्ति भावना के क्षेत्र में दोनों समान हैं।

पञ्चायतानुवा भुवि बल्लवा य द्विजागणस्तत्रिभुवैश्वनुवा। त्रिभुवस्तथाप्यपि च त्रिभुवपत्रपत्रप्रया विवधीसा ॥ (श्री वैष्णवमताम्बभास्कर १५)

रामानन्द की 'रामरसा' 'आनन्द लीला' 'योग विद्यामयि' 'ज्ञान तिलक' धारि अन्य रचनाएँ भी हैं, जिनमें उनके आध्यात्मिक सिद्धान्तों का उल्लेख है। इनमें उन और मन्त्र के योग तथा गुण की महत्ता पर विशेष प्रकाश पड़ता है।

रामानन्द के पर

रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में उनकी पराबलियाँ भी उपलब्ध हैं। इन परों में ईश्वर की सत्यता और ध्यायकता जग की प्रसारणा भारतभोजन के तन्त्र मरे हुए हैं। भयवान् के बिना जीवन व्यर्थ है। जैसे ही लौकिक विमर्शों से मानव सुधो भिन्न हो किन्तु यम का हाथ उसको पीड़ित करना ही।

हरि दिन जन्म हुआ घोषो रे ।

कहा भवो प्रति माग कड़ाई मन मर ग्रम प्रति लोको रे ।

प्रति जलग तब देपि सुहायो, लैबन कुसुम लुबा लोको रे ॥

सोई कम बुध कलत्र बिप्य सुध प्रति लीस पनि धुनि रोयो रे ।

लुमिरन भजन साथ की संसति संतरि मन धेन न पोयो रे ॥

रामानन्द रतन कम प्राते श्रीवति बर काहु न जोयो रे ॥

—(रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पर १)

संसार की प्रसारणा भी बड़ी ही सुन्दर है। उसके ध्यायक और प्रतीक मन को सुख करते हैं किन्तु जाहतावस्था में उनमें कोई सार-तत्व न प्राप्त कर भ्रात्या का धाकुम हीमा स्वभाविक है। इसके राम ही जीव का प्रमुद प्राप्य है।

तात कजु रे संसार ।

देरे राम को नाथ प्रपारा ॥ टेक ॥

बुड़ बीडा बुड़ पाई। पुत्र माहि रही लपटाई ॥

बड़ रती एक बीठा होई। बाघ हुए पारब लोई ॥

मुपनांठर राखा होइए। नामा बिपि के लुब लहिए ॥

ऐसा लुब करो लुब होई। जाम्या ब भूठा लोई ॥

मं जेरो ध्यान नताई। लखी प्राल्य समाधि न पाव ॥

रामानंद पुत्र यमि माय। लखी भिन भिन लमभ्याई ॥

—(रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पर ३)

लौकिक पुत्र ही काम-प्राप्त कर नाम हो जायेंगे जबकि भक्ति ही स्मर रह जायेगी। जय और उपासना के विधान से ही भक्त को स्वामी का सामीप्य प्राप्त करना चाहिए और ब्रह्मानन्द का ध्यान ही ऐसा धनक है जिसका पान करके ही जीव धनुमान नहीं लया सकता—

लहक लहके सब गुन जाइला। भयबत भयता एक पिर पाइला ॥

मूकिन भईला जाब जयीला। यो लैबन स्वामी लय रहीला ॥

प्रमूत लुब निधि धंत न बाइला। पीबन ज्ञान न कहे प्रबाइला ॥

रामानंद विनि लय रहेला। जब लग रत ठब लग पीबेला ॥

—(रामानन्द की हिन्दी रचनाएँ, पर ४)

रामानन्द की भावनामा से भक्ति-तत्व प्रमाण ईश्वर की प्रकृतता तथा प्रद

तता पर सम्यक प्रकाश पड़ता है। उनकी इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर कबीर और तुलसी ने अपने अपने मार्ग पर अग्रसर होकर उनकी भावनाओं को व्यापक बनाया। उनके उचार तथा व्यावहारिक सिद्धांतों को लेकर कबीर जैसे जिससे सामान्य जन-जीवन में अहमि प्राथमिकता के लिए अनुसूचित बड़ा। उनके सांस्कृतिक तत्त्वों को लेकर तुलसी ने मर्यादा पुस्तोत्तम राम का चरित्र-नाम किया जिससे भारतीयता प्रबुद्ध रह सकी। यद्यपि कबीर और तुलसी में अपने-अपने निजी तत्त्व भी थे किन्तु मूलतः रामानन्द तत्त्व ही उन्हें अग्रसर होने के लिए इंगित करते रहे।

कृष्णभक्ति-शास्त्र और गीत

इस चारा को प्रवाहित करने का श्रेय गौडीय पुष्टि मार्गीय राधाकृतभीय और हरिकानो सम्प्रदाया को है। इन सम्प्रदायों में राधा-कृष्ण की भक्तिपूर्वक धर्मता और उपासना होती है। सभी में माधुर्य भाव का स्वरूप विद्यमान है।

श्री ब्रह्मभाचार्य और सुद्धाईत

ब्रह्मभाचार्य ने विष्णुस्वामी सम्प्रदाय को उन्मिष्य गरी पर बैठकर सुद्धाईत सम्प्रदाय को लीन जीवन दिया था। इनका सम्प्रदाय प्रेम और माधुर्य भावना के धामित है। भयवान के प्रति प्रेम और माधुर्य प्रदान भक्ति उची स्थिति में बाधुत होती है जब उनका अनुग्रह हो। भयवान का यह अनुग्रह ही सुद्धाईत के मार्ग का पोषण करता है। इसी से इस सम्प्रदाय को पुष्टिमार्गीय कहा जाता है।

सुद्धाईत में माया विमुक्त ब्रह्म ही अथ का कर्ता-कर्ता है। उससे मुक्त ब्रह्म अथ का कार्य और कारण कुछ नहीं है। माया-विमुक्त ब्रह्म ही 'सुद्ध' है। इसी कारण उसे सुद्धाईत की संज्ञा दी जाती है। पुष्टिमार्ग पर प्रकाश डालने के लिये ब्रह्म अथ अथ माया और मुक्ति धारि तत्त्वों पर विचार करना आवश्यक है।

ब्रह्म

भाचार्य अक्षर के सिद्धान्त से केवल ब्रह्म ही सत्य है जबकि अथ और अथ अथ है। भाचार्य ब्रह्म ने ब्रह्म की सत्यता के साथ इनको भी सत्य माना है। पुष्टिमार्ग में अर्द्ध भावना का यही आधार है।

अथेतन तत्त्वों से रहित सन्निकृष्टान्द गुणों से मुक्त सर्वव्यापक सभी प्रकार की अथितियों में स्वतन्त्र और सर्वज्ञ ही ब्रह्म है। इन विद्येयताओं से मुक्त होने के

१ पुष्टिमार्गीयसुद्धाईत साध्य — अनुभाव्य

२ सन्निकृष्टान्दस्य तु ब्रह्म व्यापकमव्ययम् ।

तत्त्वसन्निकृष्टान्दस्य सर्वज्ञ तुल्य विचरिते ॥ (तत्त्व हीय निबन्ध)

कारण ब्रह्म निर्गुण और समुण दोनों हैं।

उपर्युक्त सभी पुणों से मुक्त कबल भीदृश्य ही सच्चिदानन्द रूप हैं। वह नित्य है इससे उनकी भीमाएँ भी नित्य हैं। वह अपनी सम्पूर्ण शक्तियों के साथ मोसोक में निवास करते हैं। अपने प्रवतार में केवल रूप न बन्म ही नहीं मिया किन्तु उनके साथ सम्पूर्ण आह्लादितौ शक्तियों में भी स्वरूप प्राप्त किए। मोसोक ही मोकुल के नाम से प्रतिष्ठित हुआ।

बीज

आचार्य बसन्त के सिद्धांतों से जीव में सत् और चित् दोनों तत्त्वों का समावेश है। ब्रह्म के सच्चिदानन्द स्वरूप के केवल घनत्व तत्त्व के प्रभाव के कारण वह कुबी होकर मटकता रहता है। भगवान के घनत्व तत्त्व के बसन्त में ऐश्वर्य बीज यद्यपि ज्ञान और वैराग्य पुत्र माने हैं। इनके प्रभाव से जीव बीजता हीमता आपत्ति धर्तकार विपमाशक्ति प्राप्ति में निमग्न रहता है।

घनत्व प्राप्ति के लिए जीव के लिए भगवान का भजन करना आवश्यक है। उस स्थिति में ही वह भगवान्नुद्ब्रह्म का अधिकारी होकर पुष्ट जीव हो जाता है और मुक्ति का अधिकारी होता है।

जगत

बह जगत भी ब्रह्म से उत्पन्न होने के कारण उत्पन्न है किन्तु उसमें चित् और घनत्व का तिरोभाव रहता है। बसन्त सम्प्रदाय में जिस प्रकार जीव नित्य है उसी प्रकार जगत भी नित्य है। उसका प्राविर्भाव और तिरोभाव भसे ही हो किन्तु प्रसक्त नाश नहीं हो सकता है। ब्रह्म के सर्वत्र समाहित रहने के कारण जगत में ब्रह्म का स्वरूप ही भासमान होता है।

माया

भगवान की शक्ति माया के (१) विद्या माया और (२) अविद्या माया दो रूप हैं।^१ माया भगवान के उद्योगिनी है। वह उनको प्रभावित न कर जीव को प्रभावित करती है। प्रथम के द्वारा संसार की उत्पत्ति स्थिति और प्रलय हाठी है जबकि द्वितीय जीव को लौकिक विकारों में प्रसक्त रखती है। जन्म विविध दोष उत्पन्न होते हैं और वह भगवान से दूर रहता है।

जीव जब अविद्या माया के प्रभाव को समझकर इससे मुक्त होने का विचार करता है तब विद्या माया का समावेश होता है। कहने का आशय यही है कि जीव म

१ विद्याविद्ये हतेः शक्ती माययेव विनिमित्ते ॥ तत्त्व बीज निरूप्य

सङ्गातना का विकास केवल विद्या भाषा पर आधारित है। यह स्थिति मयवस्तुत्पन्न प्रथमा पुष्टि पर आधारित है।

मोक्ष

संसार के दुःखों का नाश और ब्रह्म-सत्य की अनुभूति ही जीव का मोक्ष है। वेद-शास्त्रों के विचारों द्वारा भगवान का सामुख्य प्रवचन मिलता है किन्तु वह सामान्य और सरल व्यक्तियों के लिए दुस्तथाय है। इसी से आचार्य बल्लभ न जीव को सरल स्वभाव के आचार पर प्रवृत्त करना आवश्यक बतलाया है। उस स्थिति में भगवान की पुष्टि मिलना स्वाभाविक है। इस पुष्टि भक्ति के माध्यम से जीव ब्रह्म की मोक्षीक सीमा के ध्यान का लाभ प्राप्त करता है।

उपर्युक्त विवेचित तात्त्विक सिद्धान्तों का प्रयोग बल्लभाचार्य की विषय प्रधिष्य परम्परा में आज भी विद्यमान है। अष्टाष्टाप कवियों तथा अन्य कुण्ठाभक्त कवियों ने प्रेम मसला प्रवृत्त को मूर्त करने के लिए कृष्ण-सीमाओं का बड़ी सङ्गातना सं गान किया जिससे उन्होंने मधुर पद-शैली को अपने काव्य का आधार बनाया।

इस गीति-शैली के प्रारम्भ होने से पूर्व राधा-कृष्ण की सीमाओं का स्वच्छन्द गान भी देश के बातावरण को मधुर बनाए हुए था। बल्लभाचार्य द्वारा सम्मोहित येय परम्परा के विवेचन से पूर्व उक्त इज्जित भावना पर दृष्टिपात कर लेना उचित होया क्योंकि व्यक्त और प्रत्यक्त रूप से इसने हिन्दी की ही नहीं किन्तु देश में प्रचलित कृष्ण-भावना को अभिप्रेरित किया है।

बल्लभाचार्य से पूर्व कृष्ण-सीमा-गान

बल्लभ से पूर्व राधा-कृष्ण की सीमाओं का गान प्राथमिक न था। उनके मुद्राईत के प्रतिपादन में ही राधा-कृष्ण विधिष्ट धार्मिक शक्ति-सम्पन्न कहे गये हैं। निम्बाक और विष्णुस्वामी सम्प्रदायों में राधा का स्वरूप प्रमुखता प्राप्त किए हैं। अनन्तर बल्लभ ने जो विष्णुस्वामी सम्प्रदाय की उच्छिन्न गद्दी पर बैठे थे राधा को कृष्ण (ब्रह्म) की धर्मिण शक्ति कहा है।

राधा-कृष्ण विषयक विचार किस प्रकार प्राथमिक क्षेत्र में प्रतिष्ठित हुए, इसका पूर्व रूप अवश्य का गीत गोविन्द प्रस्तुत करता है। उनके राधा-कृष्ण ईश्वरीय सम्बन्ध से ग बुँबे होकर शृंगार के लौकिक रूप को प्रस्तुतित करते हैं। इसी परम्परा का विघापति ने अपनी परावली द्वारा व्यापक बनाया है।

निम्बाक सम्प्रदाय से अवश्य जो कृष्ण और राधा के धर्मिण सम्बन्ध की प्रेरणा मिली। प्रथम के अधीभूत हो के किस प्रकार एक दूसरे की प्रपेरा करते हैं इसका स्पष्ट रूप उससे सिद्ध हो जाने के कारण अवश्य ने उनकी सीमाओं को शृंगार परक ही वर्णित किया है। नायक और नायिका के अनुकूल चरित्र मिल जाने पर भी

जयदेव से पूर्व पूर्वीय प्राणों में सिद्ध और निर्मूर्खीय सम्प्रदायों के शाबक विविध राग रागतिमें में आत्मा-परमात्मा के गान या ही बुके थे इससे उनको उनकी वेद परम्परा की सीमी पक्ष करने में कठिनाई नहीं हुई।

गीति-काव्य की परम्परा पूर्व में ही विद्यमान न थी किन्तु पश्चिम में भी व्यवहृत थी। काश्मीर के कवि होमन्त्र ने भी हृष्य विषयक गीतों का निर्माण किया था।^१ इस प्रकार पूर्व और पश्चिम की कृष्ण राजा विषयक परम्पराएँ सुरदास जैसे ब्रजभाषा के प्रथम कवि को धार्मिकरूप प्राप्त हुई। उन्हें धार्मिक ब्रह्मन् की धिताओं को राम रागियों की सीमी में पिरोने में कोई कठिनाई नहीं हुई।

जयदेव की गीत गोविन्द की परम्परा को मिथिला के विद्यापति और बंगाल के चण्डीदास ने अपनी-अपनी पदात्मियों में प्रतिष्ठा दी। महाप्रभु चैतन्य इन तीनों की पदात्मियों में ब्रह्मानन्द की अनुभूति करते थे।

विद्यापति चण्डीदास की गीत गोविन्द।

एक हीम गोते कराय प्रभु घाम् ॥^२

जयदेव—गीतगोविन्द और गीति-शैली

जयदेव का जन्म केन्दुबिन्दु ग्राम में हुआ था।^३ भोज पिता और बामा माँ थी। उन्होंने परासर घाटि जैसे बन्धु के गाने क लिए गीतगोविन्द के काव्य का निर्माण किया था।^४ उमापति घर घरन धार्मिक पोषकन बोधी घाटि कवियों क बहु सम कामीन थे।^५ इनके साथ बहु भी राजा महमनसेन के राजकवि थे। महमनसेन का

१ का हजारीप्रकाश द्विवेदी—हिन्दी साहित्य पृष्ठ ११३

२ हंसकुमार ठिकारी - बंगला और उषा साहित्य पृष्ठ १० (राजकमल प्रकाशन, बिस्ती)

३ कविर्त जयदेवकैल हुरैरियं प्रबन्धन।

केन्दुबिन्दुसमुद्रसामबरोहिणी रमणन।—(गीतगोविन्द तृतीय सर्ग)

४ श्री भोजदेवप्रमदस्य बामा—

देवीमुत्तम श्री जयदेवकस्य

परासपति त्रियबन्धुकः

श्री गीतगोविन्दकवित्वमस्तु।—(गीतगोविन्द द्वारण सर्ग)

५ बाबू परमबहायुमापतिवरः शब्दभंगुदि विरतं

पानीते जयदेव एव वारण शमाप्यो दुकहृष्टे।

शुंगारोत्तरसत्प्रमेय रचनैराचार्यबचन

रपठौं कौप्रपलविभूतस्त्रिभुवने बोधी कवि समापति ॥

—(गीतगोविन्द प्रथम सर्ग)

राज्यारोहण १११६ ई० है। इससे इस समय के उपरांत ही जनना राजाभय में घाना प्रमाणित है।

जयदेव ने भीतगोविन्द के अन्तिम छंद में कहा है कि 'भवीतकसा में निपुणता वैष्णवभावना का प्राक्स्य शृंगार तथा का परित्राण काव्य का अमत्कार यह छंदी पुन सज्जनों को एक ही जगह कृष्णमकत कवि जयदेव के 'गीतगोविन्द' में मिलेंगे।' उपर्युक्त पुणों में गीत कसा म निपुणता और काव्य का अमत्कार' ये काव्य के कला पर से तथा 'वैष्णव भावना का प्राक्स्य और 'शृंगार तत्त्वों का परित्राण ये काव्य के भाव पर से सम्बन्धित हैं।

काव्य के उपर्युक्त दोनों अङ्गों पर विचार करने से जयदेव की विचारधारा पर प्रकाश पड़ सकेगा। जयदेव जनभाव की-मगवान की प्रतिमा के समझ भीत गाया करते थे। विद्याहोवरान्त अपनी पत्नी पद्यावती के साथ वह इस कार्य को करते सने। इस प्रकार 'भीतगोविन्द गोविन्द के लिए गाए हुए गीतों का संग्रह है। गीत-गोविन्द के प्रभाव के सम्बन्ध में कितनी ही किंवदन्तियाँ हैं। यदि हम उनको छोड़ दें तो भी काव्य का अन्तस्वास्त्य कवि की वैष्णव भावना को प्रमाणित करता है।

जयदेव ने काव्य के प्रथम सर्ग में मगवान के बधावतार की बन्दना की है। बन्दना की अन्तिम पंक्तियाँ देखिये—

श्री जयदेवकवेरिबनुदितनुवार

शृंगु सुखदं सुनह भवसार

देखत पतवधविभरुप

जय जयहीत हरे ।

अन्तर कवि ने एक श्लोक में बधावतारी कृष्ण को पुन अमत्कार किया है—

वेदानुवरते अवगित बहते शृंगोलमुद्रिभते

ईत्थं धारयते वनि धनवते कावलयं कुर्वते

बोलस्त्वं अहते इत्थं कलयते काव्यमातन्वते

स्नेहशान्तिमूर्ध्वयते वद्याकृतिकृते कृष्णाय तुम्हं नम ॥

इसी भावना के साथ उनकी वे प्रास्था प्रथम पंक्तियाँ रची जा सकती हैं। जिसको कवि ने गीतों के अन्त में अस्वाग भावना से अतिश्रेष्ठ हो दिया है।

शोषीनां निमुत्तनिरीक्ष्य वनिताकांशविचरं विलसन्

अस्तमुन्वमनोहरं हरतु व श्लेष्मं नव केधव

१ यद् वाच्यवकतासु कीदृशपनुष्मानं च यद् वैष्णवं
यद् शृंगारविशेषकत्वमपि यद् काव्येषु भीतापितं
तद् सर्गं जयदेवपंक्तिष्वे कृष्णैकतानात्मनः
सामन्वा परिधीयन्तु सुविधः श्रीभीतगोविन्दतः—(गीतगोविन्द १२ सर्ग)

सम्मान्य मधुसूदनस्य मधुरे राधाभक्त्या मधु—
स्वयं कम्बोसिताङ्गिणं वधतु वः शनं कटाशोभय ।

जयदेव की शैल्य भावना के समान उसमें शृंगार-शक्तों का समावेश भी पूर्ण प्रकार से है । लौकिक शृंगार का प्रत्यक्ष धङ्ग उसमें प्रस्तुत है । राधा-रूपन की काम केसि, परिचयन विलास आदि सभी कुछ कवि द्वारा बर्णित किया गया है ।^१ इन शृंगार-शक्तों के कारण विशेषकर उद्ये घटनील और मन्म-वर्जन कहल हैं । इन्हीं में इन्हीं शैल्य भावना का काव्य न मानकर वः शृंगार काव्य मानते हैं ।

इस स्थान पर निष्कर्ष रूप से हमें यह कहना है कि शृंगार शक्तों के कारण हम इस काव्य को शैल्य भावना से दूर नहीं ले जा सकते । यह निर्णय हमारा न होकर स्वयं कवि का है । डा० प्रियदर्शन तथा काव्य के प्रायः समर्थका के समान राधा-रूपन को आत्मा-परमात्मा का प्रतीक मानना विशेष बौद्धिक प्रतीत होता है । हम उससे सहमत नहीं हैं । यह मन्मव है कि कवि के रचना-काल में धार्म्यात्मिक भावनाओं के साथ इस प्रकार की भावनाओं का वर्णन अनुचित और घटनील न समझा जाता हो ।

यस काव्य न कलापरा पर विचार करना है । जहाँ तक काव्य के चमत्कार का प्रश्न है उसमें यमक और अनुप्रास की सुन्दर और मर्मित छटा विद्यमान है । मधुर और प्राणादिक वाच्यों की योजना करने में कवि बड़ा ही निष्णात है । द्विव सख्य विरहित गीतगोविन्द की रसायित पवित्रता बड़ी ही मधुर और प्रिय लगती है । यस रहा काव्य में संगीत का पक्ष । वह भी हमसे पून रूप से सरल उत्तर है । कवि ने अपने से पून सिद्धों और निर्गुणियों की गीति-शैली को अपनाकर राधा-रूपन के विषय और संयोग के गीत विविध राम रायनियों में बड़ा किए हैं ।

गीतगोविन्द में मालव-वीह नुर्वरी बसन्त रामकिरी कर्षाट, देवाम देरी बराड़ी गोंडकिरी मामव देस बराड़ी भैरवी बराड़ी विभास आदि राय रायनियों एवं रूपक नि सार, यति एक तान एक तानी अष्ट आदि तानों का प्रयोग किया गया है ।

बसन्त के दिन ये । राधा-रूपन को, सुँडन-सुँडने हार गईं किन्तु रूपन के न प्राप्त होने पर वह हार ताकर बैठ गईं । काम-ज्वर पीड़िता शक्तिसे सखी सरम शैली में बसन्त-गीतवर्णन का वर्णन कर रही हैं—

बसन्त राग-यति तान

सहितसर्गलतापरिशीलनकोमल नलय समीरे
मधुकरनिहरकराश्रितकोदिलकूजितापुञ्जकुडीरे
बिहुरति हरिहरि सरसवसन्ते

१. जयदेव—गीतगोविन्द पद्य सर्ग द्वारा सर्व आदि

मृत्यति मुक्तिजनन समं सति बिबिहितनस्य दुरगते
 उगमदमदनमनोरथपथिकवपुजनजनितविलापे
 धमिदु लतं कुलकुमुमसमृद्भिराकुलवकुलकमानो
 मृतमृदतीरभरभसवधम्बदनबदनसमासतामने
 पुत्रजन हृदयविचारनमनसिजनकवर्षिकिगुण आते
 मदनमहीमतिजनकवर्षिकिद्वैदारकुमुन विक्राते
 मिसितमिसीमुखपाटसि पदलकृतहरनरतुष विभाते
 विपलितलज्जितजगदबलोकनतपथकवचकृतहासे
 बिबिहितकस्तनदुस्तमुष्माकतिकेतिकिद्वन्दुरिताद्ये
 भावविकल्पपरिमलनसिते नवभातिकमार्तिसुगम्भी
 मुनिमनसापि मोहनकारिणि तदव्याकारवकाशो
 इन्दुरवतिमुक्तलतापरिरम्भमपुनकित मकमित श्रुते
 बम्बावन विविने परितरपरिगतयमुनावनवृते
 श्री अयवेदमभितमिदमवपति हरिचरणस्मृतिस्तारं
 सरसवतलासमयवनवर्षनमनुगतमदनविकारं ॥

कृष्ण के विरह का वर्णन छापी राधा से बहती है—

बेसी बराकी राम—कृष्णक ताल

बहतिमलपद्मरीरे जहननुपनिबाध
 स्फुरति कुमुभनिकरे बिबिहितुदपवलनस्य
 सखि हे सीबति तब बिरहे बनमाली
 बहति छिछिरमपूछे करननलकरोति
 बतति मदनबिसिखे बिलपति बिकलतरीप्रति
 ध्वनित ममुपतमूहे अचनमपिवाति
 मगति बलितबिरहे निबि निधि बजमुपयाति
 बलति बिपिनबिताने तबजति ललितननि काम
 मुठति करनियपने बजु बिलपति तबा नाम
 बनति कवि अयदेवे हरिबिरहुबितासितेन
 मगति रमलबिसबै हरिकरधनु मुकतेन ।

काम्य-सौष्टव से परिपूर्ण बबदेव की यह शीति-शैली भारतीय साहित्य और
 धर्म को व्युत्पन्न है। उनके गीतगोविन्द से ही राधा-कृष्ण के सम्मिलित स्वरूप की
 प्रतिष्ठा हुई। उनके काम्य में समाहित मधुर भावनाओं के अनुकरण पर राधा-काम्य
 की सीमाओं का गान सम्पूर्ण देश में ही छटा और उनके द्वारा प्रतिपादित शीति-शैली
 कृष्ण-काम्य का एक प्रमुख सङ्ग मान ली गई। इस भाव और शैलीकठ विशेषताओं

के कारण बयदेब का भारतीय संस्कृति पर बहुत बड़ा प्रभाव है।

विद्यापति-पदावली

विद्यापति ने अपनी पदावली की रचना से बयदेब के गीतयोगिन्द्र में राधा कृष्ण की व्यापक परम्परा को व्यापक बनाया। पदावली की लोकप्रियता के कारण मिथिला के होते हुए भी बंगाल ने उन्हें अपना सफल कवि कहा और हिन्दी भाषी उत्तर प्रदेश ने उन पर अपना अधिकार सिद्ध किया। जब तो यह है कि पदावली में समाहित अग्रिम मङ्गुरता के कारण यह एक विशेष प्रान्त के होते हुए भी सम्पूर्ण राष्ट्र के है।

उनकी पारिवारिक परम्परा मिथिला के राज-वंश से सम्बन्धित थी। वह स्वयं राजाघर में रहते थे किन्तु हिन्दी की बीरसाया और रीतिकाम के कवियों के समान उनके काव्य में अग्रिमियों की चाटुकारिता में बाधों मिश्रित नहीं हुई। इसी से उनके काव्य में सार्वजनीन भावना का उत्कर्ष प्राप्त होता है।

'कीर्तिसता' कीर्तिपठाका 'भूपरिक्रमा' 'पुन्य परीक्षा' सिकतावली 'धन सर्वस्वधार' 'गङ्गाबाणवावलि' 'दानवाणवावली' 'बिनामधार' 'अर्पणस्य' 'गयापतन' आदि उनकी विभिन्न प्रकार की रचनाएँ हैं। यों तो इन सभी रचनाओं की अपनी महत्ता है किन्तु उनका हिम-विप्लव तक व्यापक मध्य केवल उनकी पदावली पर ही आधारित है।

राधा कृष्ण के प्रेम-मान के लिए विद्यापति असन्धिकर रूप से बयदेब का प्रामाण्य है किन्तु उन्होंने अपनी कोविल-बाणी से प्रेम की तबीन उद्भावनाओं को रेश के कोने-कोने तक में ध्वनित कर दिया इसका श्रेय उन्हीं को है। उनकी राधा भावना जनत की अपूर्व मूर्ति है। उनकी पदावली की मङ्गुरता को बंगाल में बण्डीशाम ने व्यापकता दी। महामुनि वैतण्य ने उसको अपना कीर्तन-वाक का आधार बनाया। उनके द्वारा पदावली की यह प्रतिष्ठा हिन्दी के अष्टछाप के कवियों को भी मार्य हुई। जब तो यह है कि उनकी इन पदावलीयों में रेश को विशेष रूप से रसात्मकित कर दिया।

विद्यापति की पदावली के सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक है कि उसके दो भाग हैं—(१) शृंगारी पद और (२) भक्ति-पद। प्रथम प्रकार के पदों में राधा कृष्ण के संयोग-विशेष के घमर पद हैं, जिनमें मानवीय प्रेम का उद्गम स्वरूप है। इसी पदावलीयों को अयदेब की शृंगारिक रति-भावना को घमर करने का श्रेय है। राधा-कृष्ण को इन प्रेम-सौताओं में धारणा-परमात्मा का रूपक भावना, पदावलीयों के साथ धर्याय है। इन पदावलीयों में वैष्णव भावना ईश्वर नामे सहृदय यह सत्ये

हैं कि यह तो एक महाकवि की भावनाओं की उपरान्त है। इस स्वतः पर उन्हें यह समझ लेना चाहिए कि विद्यापति वैष्णव न होकर शैव थे। उनकी धारणा का स्वरूप उनके द्वितीय प्रकार के पदों में विद्यमान है। इस भाग में धिब बुर्जा बज्जा धारि की स्तुतियाँ घाटी हैं। प्रथम प्रकार के गीत यदि मनोरञ्जनों और विवाहोत्सवों में गाए जाते हैं तो द्वितीय प्रकार के गीत सामिक कृत्यों के अवसर पर।

अनकन माधव भाषव सुमरइत

सुम्बरि भेलि मयाई ।

ओ निब भाव सुभाबहि बिसरल

अपने गुन सुबुबाई ।

यदि उपर्युक्त पंक्तियों में भुमार का सार्वक स्वरूप विद्यमान है तो—

करबन हरब बुज मोर

हे भोलानाथ ।

बुकाहि जलम मेल बुकाहि ममाएब

सुख लपनहु नहि मिल हे भोलानाथ ।

इस सर्व सुलभ पंक्तियों से धाव भी वैधिल अपने जीवन के पापों और अनाथों का प्रस्तावन कर जानना चाहता है।

इस पदावलिमें से सब तो यह है कि मानवीय भावनाओं का एक ताना-बाना बुना हुआ है जिससे उनमें सभी श्रेणी के व्यक्तियों के लिए आकर्षण है।

विद्यापति कवि ही न होकर एक सफल संगीतज्ञ भी थे। इसी से उनके शैलों स्वरूप उनकी पदावलिमें स्पष्ट हो उठे हैं। उन्होंने अपनी पदावलिमें से मालव बनघी धासावरी मसारी मालवी धामरी धहिरानी केदार, कानन फोसार, सारजूी मुंबरी बरनी ललित लट विभास बसन्त धारि धारि राज रापनिशों को प्रकृत किया है।

कृष्ण (नायक) राधा (नायिका) को छोड़कर किसी अन्य स्त्री में अनुरक्त हो गये हैं। इस रसा में दूरी नायिका को शैव-भारत का सम्बन्ध प्रदान करती है—

मासव रागे

पुख बत अपुख भेला लम

बसे तेहजो दूर बेला ॥ १ ॥

काहि निबेबजो कुगत पहु

परम हो पर रत ओ लहु ॥ २ ॥ अर्ब ।

तोहुँहुँ मानवि ओ अविमानी

बरजना ओ बड बज हानी ॥ ३ ॥

हरज-वैदन राबिस गोए

जे किमू करिष नुजिष छोए ॥ ४ ॥
सबहि साजनि वंरज सार

गोरस कह कवि कच्छहार ॥ ५ ॥
कवि ने उपर्यक्त गीत में अपने मन के स्थान पर अपनी उपाधि 'कच्छहार'

का उपयोग किया है।

दूरी राबिका को समेट करती है कि बरषो के मुपुरोँ धीर मुखरित मेखला
की ध्वनि को बन्द बरक काल बस्य से घरीर को प्रागुठ कर धग्गकार के मार्ग पर
बस। सीध ही बस धम्यया बकोर मयी 'निमुग-सोचन' तुम्हे बेस मेमे। धसकों
धीर धङ्को की साज-मज्जा मत कर य सब तुम्हे बाबक हो उठेयी। तू प्रमिका है
बह प्रमी है फिर भूपनो की धाबस्यकटा नयो ? प्रिय मिसन क सिमे उत्सुका धमि
मारिका राधा की दूरी का कवन देखिये—

कानल रागे

बरष मुपूर उपर सारी मुखर मेखला करे निबारी ॥१॥
धम्बरे समरि बेह भपाई बलहि तिमिर तिमिर पब(हि) समाई ॥२॥अ बं॥
समुब-मुमर रभस रसी धबहि उगत कुगत सतो ॥३॥
धाएस बाहिस मुमुनि तोरा पितुन-सोचन भम(ए) बकोरा ॥४॥
धनक तिसक न करक राधे धान्न बिलेपन करहि बाधे ॥५॥
तन धनुगिनि धो धनुरायो हुवस लागत भूपन सायो ॥६॥
मने बिघासति तरस बनि भुवति-कुस-सरोवर-रवि ॥७॥

रति की सकयता क लिए बिघापति ने राधा-कृष्ण के सयोग-विभोग के विविध
विषय अपनी पदावली में द्वारा चित्रित किए हैं। वैचित्री माया का सुलभ माकुप
प्रेम की भावनाओं को मजीब कर देने में सफल ही उठा है। संगीतात्मकता प्रासादि
कता सपुरता धीर बाष्प छोटक से मुक्त उगकी पदावतियाँ विविधा की प्रादेशिक
धोमा में ही न बँधकर सामंसेविक हो गई हैं।

१ सुझाड़ ती पुष्टि सम्प्रदाय में पर

मूरबात—जयरेव धीर बिघापति ने कृष्ण राधा क श्रुङ्गारिक लीला-मार्ग
के मोत को हैलकर जब मूर बिरचित मूरसागर पर वृष्टि जाती है तब धबाक रह
जाता पकटा है। वह क्लिती प्रतिभा लेकर जगमे से महमा मोष चकना कठिन है।

१ डा सुमद्र भ्य—बिघापति-गीत-संग्रह १६८२
२ डा सुमद्र भ्य—बिघापति-गीत-संग्रह १०

माना राजा-कृष्ण की काम्य परम्परा अपदेव और विद्यापति से उन्हें मिली थी माना शार्दूलिक दृष्टिकोण उन्हें प्राचार्य बल्लभ से सुलभ हुए थे माना ब्रजभाषा का शब्द उन्हें पूर्ववर्ती कवियों से थरोहर स्वरूप मिला था किन्तु ये सब सूर की भावना से नहीं पीछे छूट गए हैं। उन्होंने अपनी सरसता मञ्जुरता और भावुकता से इनको इतना सुन्दर बना दिया है कि ब्रजभाषा में सभी लिये जाने पर भी वह न मिला गया जो सूर की वाणी के समकक्ष रखा जा सके।

सूर के पास रहने को अधिक नहीं था किन्तु उन्होंने जो कहा—इतनी विविधता से कहा कि मानव उसका धर्म स्वरूप सोच ही नहीं सकता। उस विविधता को माधुर्य से रसात्मक कर इस विरवाच और निष्कपटता से कहा कि सामाजिक को बरा भी पुनरक्ति प्रखरती नहीं। प्रातःकारिक कवियों के समान टीसी के सम्मोहन के लिए प्रसकारो की कृषिम लखियाँ उन्होंने कही प्रस्तुत नहीं की। जो उनके पर उपमा रूपक उत्प्रेला प्रादि से प्रसङ्गत हैं किन्तु वे कवि की भाव-धारा के साथ स्वयं प्राकर उसके प्रामारी हो उठे हैं। कवि के पास प्यारे की लीलाओं की मञ्जुरता ही क्या कम थी जो प्रसकारो की ओर बेलकर परमुखापेक्षी होता। अन्य भीमान के स्वरूप की सेवा में उनके निरव्य और नैमित्तिक प्राचरणो में सम्मिलित होकर प्रास्था और भक्ति में निमग्न हो उन्होंने जो हरिसीमा के गान किए उनका समग्र ही सूरसागर के नाम से हिन्दी की धर्मस्य निधि है। उनके गीतों की समीचता भी अतिथी है उन्हें अस्मान्य कहा जाता है। यदि वह अस्मान्य होते तो हरिसीमा में वैविध्य प्रस्तुत करने में उन्हें कठिनाई होती। विषय कही-न-कही लक्षित हो जाते और उद्य स्विति में गीतों में रंगों की व्यवस्था देना सबैक अनुभूत न रहता। वह धर्म तो वे किन्तु अस्मान्य न थे। जब धर्म हुए तब उनको प्रत्यम्बोति मिल चुकी थी मही समीचीन समता है। इसी से समीचता गीतों की चिरसंगिनी रही है।

पुष्टि मार्गीय मन्त कृष्ण के अनुग्रह से प्रामारी और उद्यकी भीमाओं के माधुर्य न दूबा रहता है। इसके फलस्वरूप ही पुष्टिमार्ग में कृष्ण के जीवन के वास्तव्य और शृंगार की विशेष माय्यता है। प्रेम लक्षणा प्रकित होने के कारण जीवन के इन दो प्रयोगों से माधुर्य की विशिष्ट अनुभूति हो सकती है धर्मों से नहीं। इसी से सम्पूर्ण अष्टहाप के कवियों में इन्ही दो प्रयोगों के वर्णन पर विशेष बल दिया गया है। जो मन्त होने के नाते विनय की पदावसियों में वास्य और सध्य भाव की भाव नाई भी मिलती है उद्य रक्षा में भी इन भावनाओं को वह त्याग नहीं पाता है।

उनके सूरसागर में यों माधुर्य की पूर्ण कथा ही निबद्ध है किन्तु कृष्ण के वास्तव्य और शृंगार के विषयों में ही सूरदास की अतिरिचि का परिचय मिलता है। धर्म रूपक तो कवि ने कथा की सम्पन्नता की प्रावश्यकता से मिल कर दिए हैं। वास्तव्य में कृष्ण के बाल जीवन के किसी भी विषय की उपेक्षा नहीं है। उसी प्रकार शृंगार के संयोग और वियोग दोनों पक्षों को उन्होंने सफलता से प्रकित किया

है। सभी ही अर्थम धीर बिबरण मतमोहक धीर मर्मस्पर्शी है।

उपर्युक्त मधुर विषयों के साथ सूर ही क्या अन्य कृष्ण मधुर कवियों ने भी पीति-सैली को ही हरि-सीता-राम का धारण बनाया है। इससे सीतामो के माधुर्य की धामिभ्यंजना द्विगुणित हो चली है। पीति-सैली में विविध राग रागिनियों का प्रहण किया गया है। सूरसागर में निम्न राग रागिनियों का प्रबोध मिलता है—

राम बिजाबन काहूरी मारु बनाथी रामकसी मट सारम करारी ममार परज बिहागरी सौरो सौरठ, भासावरी दबमंधार, टोड़ी म्मिथीटी बिहाम जैतथी महीरी नटनारायम मुलतानी धमाभी तिताभा मुमतानी तिताभा कस्याम मूजरी बिमास सैरो भोपासी बसंठ गौड़ी ममार नायकी मान्यार कापी बीजे बन्दी रागिनी धी हठी सूही बिजाबन सूही मलित नट नाचमपी मुड ममार गौड़ पुर्बी सूही बीड़ ममार, सुबरई, मेक ममार, सूही बिजाबन धड़ाना परासी ममार कमोद बिजाबन रामकसी धड़ानी हमीर, नुन सारब पुरिया नुनकसी राडी हठीमी बिजाबल घसहिया गूड देबसारब ईमन गभारी धनहिया संकरा मरन कुरंग कर्नाटी बँचटी भातकोस सागुठ रात्री ममार रात्री धीहठी होपी भाहठी भी ममार रागिनी टोड़ी बसठी रामगिरी देसकार, बमार देबगिरि, पटपटी धादि धादि।^१

इतने को चार राग ही ऐसे हैं जिनका मूल प्रबोध हुआ है, अन्यथा सभी का प्रभूत मात्रा में उपयोग किया गया है। ये सब उनके महाकवित्व के साथ उनके प्रबोध संगीतज्ञ के स्वरूप को स्वतः सिद्ध करते हैं। हिन्दी काव्य में आज तक सूरदास के प्रतिरिक्त इतनी राम-रागिनियों में कोई भी कवि पीठ रखना नहीं कर सका है। राग रागिनियों के साथ वह भावनाओं को भी प्रस्तुत करने में पूर्ण सफल हुए हैं। कुछेक स्वस दृष्टव्य हैं—

मधुर कवि भगवान् को सामर्थ्य की अनुभूति कर धारवस्त हो जाता है। शोक सदा है, जीवन की निष्कृति अक्षय्यम्भाषी है, फिर इतस्तुत भटकना कहीं की बुझिमानि होगी। वह विर-व्यात्म समर्पण कर बैठा है धीर उच्च स्थिति में बिरवाण के साथ अपने पार्षी धीर लौकिक विकारों का मुक्त कण्ठ से बसलप कर भगवान् की हृषा को कामना करता है। पूर व 'बिनय' से मिया हुआ धात्मनिबन्धन का यह पद देखिए—

राग धनाभी

धापी कू ली धन, त्रि बिबर ।

तउ कपान कबनामय केसव प्रभु नहि धीय पर ।

जैसे जननि-जठर घग्गतरवत सुत घपराय करे ।
 तोड़ बतन करे प्रक पोषे निकले प्रक भर ।
 जघपि मलय-मुच्छ उड़ काटे कर कुठार पकरे ।
 तउ मुभाष न सीतल छोड़ि रिपु-तन-ताप हर ।
 बर बिससि नल करत किरपि हल जाणि बोज बिकर ।
 सहि सम्मुख तउ सीत उचल कीं सोई सुकल करे ।
 रसना द्विज बलि बुझित होति बहु तउ रित कहा कर ।
 धमि तब जोभ कु छोड़ि छोरी रस न समीप सेबर ।
 कारण-करन बयलु बयानिय निज मय बीम डरे ।
 इहि कसिबाल-ब्याल-मुक-पातित मुर सरन उबर ।

—मुरसागर (ना० प्र० स०) पद ११७

बीमारमा घबिघा माया क प्रभाव से भटक उठी है ।

राग मट

घापुनपी घापुन ही बिसरयो ।
 बीसै स्वान कीच-मंवरि मे भमि भमि भूठि पर्यो ।
 क्यों घोरन मुप-नाभि बसत है हुम-लुन सुबि किर्यो ।
 ज्यो सवने मे एक रूप बयो तसकर धरि पकर्यो ।
 क्यों केहरि प्रतिबिम्ब बैकि क घापनु रूप पर्यो ।
 बीस बज लकि पटिक सिता ये बसनि जाइ धर्यो ।
 मरुंर भूठि छोड़ि नहि बीनो, घर-घर-डार किर्यो ।
 गुरदाठ नलिनो की सुबडा कहि कीने पकर्यो ॥

—मुरसागर (ना प्र स) पद ११८

कृष्ण क सीता-नीतो से से एक सजीव बीतो की योजना की गई है । कृष्ण घुटनों के बल चलने लगे है । अपने प्रतिबिम्ब को पकड़ने क लिए बीड़ने से उनका बहुरूप धिय गया है—

राग बिसाबस

बाल बिनोद करो जिय भाबत ।
 मुक प्रतिबिम्ब पकरिबे कारण हुलही घटदबनि घाबत ।
 धकिन बहू उ-खंड की महिमा सिमुला नहि गुराबत ।
 बय छोरी बोखी बाहुत है प्रपद धबन नहि घाबत ।
 कमस नैन माजन मागत है करि-करि सैन बलाबत ।
 गुरदाठ स्वामी मुक सागर अनुमति-प्रीति बड़भवत ॥—(बड़ी—पद ७२)

हज्ज बड़े होने पर गोपियों के घर में बुझकर कमी किसी का मखन पाठे है कमी उसे फेंक ही देते हैं। विविध प्रकार के उत्पावों से वे खीझ उठी है। धर्म में एक दिन यह पकड़ ही लिए गए। गोपियों से हज्ज की करतूत सुनकर मसोबा उन्हें बहिष्कृत करने के लिए बहसुर होती है। हज्ज की व्युत्पत्तमति का प्रमाण देखिए। पय में धमिनबागसक तरह कूट-कूट भर दिए गए हैं—

राग-रामकली

मेमा में नहिं काजन जायी ।
 क्याल परे में लला सब मिलि मेरे मुख लपटायी ।
 बैलि सुही सीक पर भाजन ऊबं जरि लदकायी ।
 हाँ बु कहत नछहे कर धरन में केश करि पायी ।
 मुख बधि वीरि बुझि हक कीन्ही बोना मोठि बुरायी ।
 जरि मोठि मुमुकाइ जतोबा स्यामहिं कंठ लमायी ।
 बाल-बिभोद-मोह मन जोह्यो भक्ति प्रताप बिकायी ।
 सुरदास जसुमलि को यह सुख तिव बिदरिहि नहिं पायी ॥

—मूरसायर (भा० प्र० स०) पद ६२२

हज्ज इन बाध-वेमिया के मध्य में बड़े हो गए हैं। उनकी रूप-भापुटी अपना प्रभाव छोड़ने लगी है। गोपियाँ उनकी मुक-सखि के बर्धन के बिना घाकुल हो उठती हैं। उनके रूप-सौरभ के समझ एक गोपी की बिबागाता देखिए—

राग धड्ढामो

मेरो मन पोपाल हूयो रो ।
 जितबठ ही उर पैठि मन-मन, ना जानी पीं क्हा कयो रो ॥
 मज्जु-विता-पनि-बंभु धजन जन लखि धायन सब भवक मरयो रो ।
 लोक-बैर प्रतिहार पहूसा दिनहुं पे राखयो न पर्यो रो ॥
 बर्म चीर कुलकानि कंकी करि तिहि तारो बं बूरि कयो रो ।
 पलक-कचट कठिन उर धंतर हतौहुं जतन कजुब न तर्यो रो ॥
 बुधि-बिबेक-जल-सहित सँख्यो नखि, सु धन घटल कबहुं न टयो रो ।
 लियो बुराइ बित्त बिन लजनी सुर लोख तनु जात कयो रो ॥

—मूरसायर (भा० प्र० स०) पद २४६०

पुष्टिपार्थीय भक्ति में बंध-बिहित सिद्धांत धीरे जाक-मर्पाचारें भक्त के लिए कोई व्यवधान प्रस्तुत नहीं कर सकती। भक्त भगवान के समझ लिखा बला बाठा है। इसी रूप भापुटी की धकसा में मूर ने मुरसी-भापुटी का भी उन्वय किया है।

मोपियो मे सपत्नी भावना में भरकर उस बहुत कुछ उपात्म बिए हैं ।

कृष्ण जब ब्रूमने फिरने लगे हैं तभी उनका राधा से परिचय हो जाता है । राधा भी कम सुन्दरी नहीं है । दोनों प्रेम में घाबड़ हो जाते हैं । यह प्रेम का स्वामा बिक्रम बिदास ही कृष्ण भक्ति की मधुरतम निधि है ।

बीड़ा क सिए निकले कृष्ण ने एक दिन राधा को देख लिया । मेम नीर बग की राधा की तन-सधि देखकर मुग्ध हा गए । साहस करके कृष्ण पूछ ही बैठे—

राग टोड़ी

बुद्धत स्वाम कोन तू गोरी ।
 कहाँ रहनि काकी है बेटी देखी नहीं बहू बज कोरी ॥
 काहे को हम बज-तन प्रावति खोजति रहति प्रापनी पौरी ।
 मुमत रहति सबननि बह-डोटा करत फिरत माकन-दधि खोरी ॥
 मुग्धरी बही खोरि हम लीहें कलन बली संग मिलि खोरी ।
 पुरवास प्रभु रसिक सिरमनि बातन धुरइ राबिठा भोरी ॥

—मूरसागर (ना प्र स०) पद १२९१

अब राधा कृष्ण के घर भी जाने-जाने लगी है । यद्यपि उनकी माँ-बोटी करती है खान को 'तिल काँचरी बटासे मेवा' देती है और कृष्ण के साथ खेलने की अनुमति भी देती है—

खेली जाइ स्वाम संव राधा
 वह धुनि कंबरि हरव जन कीन्हों, भिटि गई घंतर-जापा ।

—मूरसागर (ना प्र० स०) पद १३२३

अब राधा की यह स्थिति है—

चित्त खंचल कुंबरि राधा खान पान मुलाई ।

× × ×

कबहुँ बिहूसति कबहुँ बिलपति लकुष रहति लजाइ ।

—मूरसागर (ना प्र स०) पद १२९६

राधा बलभी उसकी इस विचित्र स्थिति को देखकर उससे कह छठी है—

सरिकिनी लखनि अट, तोसी नहि कोउ निअट,

बलति नन चित नहि तकति बरनी ।

लिखी बेटी कोन करे करता कोन

लोइ हूँहैं खु [होनहारि करनी ॥

—मूरसागर (ना प्र स०) पद १३१६

सबोध क अगम्यर विद्योग के धाम चटित होतै है । यह भी बड़ा मर्मस्पर्शी चिन्तित किया गया है । कृष्ण के मधुरा बने जाने पर कब की वो स्थिति है

वह वर्धनातीत है। सम्पूर्ण अमर-गीत कृष्ण-विरह के सम्बन्ध में वज्र की बियाग
याथा है—

राग सौरठ

पिय बिन नागिनि कारी रात ।
जो कहूँ जागिनि जबति जगहूँया उति जलबी हूँ जात ॥
जब न फुरत मंत्र नहि लापत प्रीति सिरानी जात ।
सुर स्वाम बिनु बिकली बिरहिनी मुरि मुरि लहुरै जात ॥

—सूरसागर (भा प्र० म) पद ३८६०

ऊषी के पधारन पर ज्ञान का सम्बन्ध प्राप्त कर तापिसी उत्तर-प्रत्युत्तर में
उमस बहुत कुछ कहती है। उनका प्रेम वस्तुतः ऊषी के ज्ञान पर बिजयी है। यह
मग यद्यपि धम्मवज रूप से पुष्टि सम्प्रदायी भक्ति की ज्ञान-योग पर सर्वोपरिता ही
सिद्ध करने का प्रयत्न है किन्तु उसमें गोपिया ने बड़ी बिनभता घोर धैर्य के साथ
ऊषी जैसे ब्रह्म ज्ञानी की निरन्तर किया है। ऊषी जहाँ धपना गिद्यान्त मनमाने के
लिए घाए वे वहाँ गोपिया के घण्ट प्रेम के मकड़ होकर कृष्ण के समीप सीटते हैं।
उमक चलने सगने पर राधा के धातिरिक्त सभी न कृष्ण के लिए सम्बन्ध भेज है।
राधा साहस ही न जुग मकी जो धपने प्राण-प्रिय ने लिए धपनी बात कह पाती।
मरगोश के सम्बन्ध में कात्मत्य के मजीब बिज है—

राग विसावस

अद्यपि मन समुभाषठ, भोग ।
मूल होत नबनीत देखि देरै, मोहन के मुक भोग ।
प्रातकाम उठि माजन-रोटी को बिनु मांगे रह ।
को नेरे बा काहूँ कुबर कैं, दिन दिन संकम लंह ॥
कहिषी पबिकु जाइ घर घाषटू राम कल्प होइ भंदा ।
सुर स्वाम बत होत कुजारी जिनके मो सी भंदा ॥

—सूरसागर (भा प्र० स०) पद ३०६१

दुखय पीत भी कृष्ण्य है—

तारंग

सैनेनी देखको सी बहियो ।
हो तो पाइ तिहारे मुत की मया करत ही रहियो ॥
अदवि हेब सुम जागति उनको लरु मोहि कहि घाई ।
प्राण होत मेरे सात सड़ते माजन रोडी भाव ॥

तेल छबटमो घब तानो बल ताहि बेलि भजि जाते ।
 बोइ बोइ भाँवत सोइ सोइ देती कम कम करिक गहाते ॥
 घुर पबिइ मुनि मोहि रंगि बिन बडयो रहत उर सोब ।
 मेरो घनक लइतो मोहन लई करत लँकोब ॥

—सूरदासर (ना प्र स) पद ३७६३

कृष्ण के समीप पहुँचने पर ऊँची ने ब्रज की रक्षा का उत्सव किया। वड़े हुए सम्बन्ध भी कह दिए किन्तु राधा का सम्बन्ध न प्राप्त कर प्राकृतता से उनका हृदय छत्रपटा उठा। राधा जो सबसे अधिक उनके समीप भी बही धरना सम्बन्ध न मेम मकी। कृष्ण किर्कसव्यविमूढ़ हो गए। ऊँची कहे ता बबा कहे। सम्बन्ध क स्वत पर वह राधा की वस्तुस्थिति का ब्यपन कर उठे—

राग केवारी

बिल ई तुमो स्वाम प्रबोध ।
 हरि तुम्हारे बिच्छु राधा ने बु देखी बोन ॥
 तज्यो हैल तमोल भूवन अंग बसन मलीन ।
 कंठना कर रहत नाहीं बाइ भुज गहि लीन ॥
 बब लदेयो कहन सुन्दरि मबन जो लन कीन ।
 छुटी छुडावलि बरन प्रबन्धी बिरी बल हीन ॥
 कँठ बचन न बोलि धारं हृदय बच्छिस भीन ।
 नैन बल भरि रोइ बीनी प्रसित धापव हीन ॥
 बडी बहुरि सँभारि बड क्यो बरन प्राहस कीन ।
 घुर हरि के बरत कारण रही प्राता लीन ॥

—सूरदासर (ना प्र स) पद ४०२३

राधा का पूरा भिन्न घुर ने उठार कर रल दिया है। 'नैन बल भरि रोइ बीनी प्रसित धापव हीन'—बिबध हो वह दुःख के बूँट पीकर रह गई है। जो कृष्ण की कहने के लिए क्या उनके हृदय में भावनाएँ न थी? थी हृदय ही बियोग से उठेलित था फिर सम्बन्ध क्यों न होते? भावावेग ने छोड़े बिबध कर दिया फलत सम्बन्ध के स्वात पर अपने प्राण प्रिय के लिए धम्म-बिग्युषों की मूक मँट ही मेजने म वह समर्प हो सकी। वस्तुतः राधा का बरिज भारतीय ललना का प्रतीक बनकर प्रस्तुत हो सका है जो अपनी तुलना में अद्वितीय है।

वस्तुतः राधा का बरिज स्वयं में पूष है। उसकी पुर्यता के लिए धर्म की अपेसा नहीं है। वह संयोगवत में पूर्ण संयोगिनी है और बियोग म पूष बियोगिनी। कुरघेन के मुख में धनस्तार कृष्ण और राधा का एक बार फिर मिलन हुआ है—

राग धनाभो

राधा माधव भेंट भई ।
 राधा माधव माधव राधा ओट भूष मति छुँ बु गई ॥
 माधव राधा के रंग राधे राधा माधव रंग रई ।
 माधव राधा प्रीति निरंतर रसता करि सो कहि न गई ॥
 बिहोसि कहुटी हम तुम नहिं अंतर यह कहिके उत अत्र पठई ।
 सुरदास प्रभु राधा माधव अत्र बिहार नित नई-नई ॥

—मुरसायर (मा प्र स) पर ४६१०

कृष्ण आए राधा से मिलन भा हुआ किन्तु उनका बन जाने पर राधा के हृदय की बिभद्यता उसके अन्तरतम को फिर कभीट उठी है—

राग धनाभो

करत कछु नाहीं पावु बनो ।
 हरि आए हो रही ठगो सी जैसे चित्र बनो ॥
 धानस हरवि हृदय नहिं बोहो कमल कुटी अयनो ।
 म्योदावर उर अरय न नमनि बलपारा बु बनो ॥
 लंबुको तं कृष कलस प्रगट छुँ दृष्टि न तरकि तनो ।
 अत्र उबजो घति साज अनहिं मन समुझन निज करनो ॥
 मुझ हेअत म्यारो सा रहि गई बिनु बुधि मति लजनी ।
 तबहिं सुर मेरो यह अकृता संयत माहि पनी ॥

—मुरसायर (मा० प्र० स०) पर ४६११

राधा का चित्र अस्तुत बड़ा श्री मधुर और धानसपूर्ण है ।

मुर क गीतां तथा अन्य रूप अक्षि काव्य का धानस्य भेन क लिए यह समझ रचना आश्चर्यक है कि भगवान का गायोक्त ही गायुक्त है । गोपिनी कृष्ण क धानस्य तब का व्यापक बनाने वालो अक्षिमा है और राधा धानस्य की मिष्ट अक्षि है । इसी में कृष्ण सब रज-सक्तिमा क मध्य में धानस्य की मिष्ट अक्षि राधा के रंग में रहत है । यह लक्ष्य लभने बिना मुर अथवा अन्य वैष्णव भक्त क वाक्य का यदि हम धानस्य सेना चाहेंगे तो कबि के साथ अस्याय हो जाने की आशंका है ।

मुर ने कृष्ण की सीमाओं क गान म साक जीवन का कहा भी परिचाय नहीं किया है । इसी विषयमा के कारण उनका चित्रध चिर-परिचित से प्रतीत होत है । इससे साध ही अयनी मंगलता और प्रामादिकता के कारण के किमा भा महदय को आर्षपित करन म मयम है । इन सभी सटनताओं के प्रमुख आधारों म एक आधार उनका पीनि-पीनी का है । अक्षि म निरुत उनका हृदय रूप की मधुर सीमाया का

मीलानु के स्वरूप क समस्त स्वच्छन्दता से मान करता हुआ अपनी धर्मता और बन्दना करता जसा है। जस जसु जा ही मुक से भगवान ने अस्तम्योति से ही ही भी फिर उनक लिए अभाव हो गया या ? इसी से अतन पयो क द्वारा बहु जो से सके है बहु हृदय को मुदमुदा देता है। अस्तुत उनका भीति-साहित्य हिन्दी की अपूर्व निधि है।

नन्ददास

विद्वानाथ इनक बीसा मूक ब। पुष्टि सम्प्रदाय म अष्टछाप कवियों क मध्य म गुरदास क अन्तर इन्ही का नाम प्रतिष्ठित है। बाता के आचार पर यह तुलसी दास के छोटे भाई ब किन्तु इसका साहित्यिक अथवा ऐतिहासिक प्रमाण उपलब्ध नहीं है। यह अवश्य सत्य है कि यह गुरदास और तुलसीदास क समकालीन ब। गुर और तुलसी को समान सिन्धुनद घाम की कानानी पर घासकत होन की एक प्रेम-बन्धा इनसे भी सम्बन्धित है।

इनम मीनिक काव्य रचन की पूर्ण प्रतिभा थी। इसी से 'और कवि यद्विवा नन्ददास यद्विवा' कहा जाता है। रामचन्द्रायामी अनेकार्थमञ्जरी भैरवगीत अनेकार्थ माता आदि इनक प्रमुख काव्य है। इनके सिधे हुए मुस पर भी मिसे है।

'दास चन्द्रायामी' से भागकत के २६ स ३३ क अष्टम्य एक क पाँच अष्टम्यो के आचार पर दास-मीला का अर्थ प्रस्तुत किया गया है। अनुप्रास युक्त अथवेन की 'गीतगोविन्द' धेमी पर इसकी रचना हुई है। रोमा अन्ध के साथ कही-कही बोहा का भी प्रयोग हुआ है।

'माधुन' की दृष्टि से हिन्दी-साहित्य मे दास-चन्द्रायामी सर्वश्रेष्ठ है। जब तुलसी की कविता मागीरबी सी और गुर की पदावली अमुना के सवृष्ट है तो नन्ददास की मधुर कविता सरस्वती के समान होकर कविता-निबेधी की पुति करती है।^१

'भैरवगीत' इनकी द्वितीय महत्वपूर्ण रचना है। यह गुरदास की 'भ्रमरगीत' परम्परा मे लिखा हुआ गीत-काव्य है। नन्ददास ने रोमा और बोहा दोनों अर्थो को समन्वित कर इस भाषा की पकित ओड़कर पकितयो का प्रवाह सुकर कर दिया है। डा रामकुमार बर्मा म रोमा और बोहा के समन्वित अर्थ को गुरदास के 'भ्रमरगीत' से लिया सिद्ध किया है और इस भाषा की पकित को नन्ददास की मीनिक उद्भावना कहा है किन्तु यह असत्य है। गुरदास क काव्य मे इसी अर्थ मे दास-मीला के संदर्भ का एक सजीव और सुविशुद्ध चित्रण प्रस्तुत किया गया है।^२ गुरदास के उक्त चित्रण में रोमा और अन्ध का परस्पर का सवार है। 'भ्रमरगीत' म भी ओपियों और

- १ डा रामकुमार बर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १२६
- २ डा० रामकुमार बर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ १६१
- ३ गुरदास (भा० प्र सभा संस्करण) पर २२३६

उद्भव क मध्य में बाधाभाप की योजना है। इसी में नन्ददास ने उसको अपने भँवर गीत के लिए उपयुक्त समझा है। मूरदास के इस पद क राय का नाम 'राय रात्री हौसी' अंकित है। फलस्वरूप हम यह सकते हैं कि नन्ददास का 'भँवरगीत' भी उक्त राग में लिखा हुआ गीत-काम्य है।

हठ छोड़ी नन्ददास बान तुमको नहि देह ।
 बिना यह बज-लोग कहा काहुँ पतिपैहै ॥
 नाज नहीं तुम घासई बोलत ही मतगई ।
 कहूँ अंत मुनि पाइहै महत फिरीये पाइ ॥ कहति बजनायरी ॥
 गुनत हूँसे नंददास वबारि जिय तामस माग्यो ॥
 सींचयो अमृत बीन कोप अग्यत नहीं जाग्यो ॥
 कहीं बसित ही भागति, तो बर मुग्ध वैबार ।
 बज-बातो यह जानही तामस को व्यरहार ॥ कहत नंददासहै ॥
 मूर-मागर (ममा संस्करण) पद २२११

नन्ददास का भँवरगीत अमरिगण्य रूप में एक सफल रचना है। मूरदास के अमर गीत से इसकी अमर विभिन्नता सिद्ध है। मूरदास की गोपियाँ और राधा अपने प्रेम क बस में ऊँची को निरंतर करती हैं जब नन्ददास की गोपियाँ तक और युक्ति ने बस पर। सब तो यह है कि नन्ददास की गोपियाँ मुक्त हो गई हैं। अमरगण्य भँवर गीत में बिना किसी भूमिका क ऊँची अपना अस्वैय्य रहता प्रारम्भ कर देता है और गोपियाँ उत्तर देने लगती हैं। अंधार अभिनयारम्भ है।

जो उनके गुन होंए बैद क्यों नति बखाने ?
 निरगुन लगन आत्म रचि ऊपर सुख माने ।
 बैद पराननि सोबिक पायो कितहूँ न एक ।
 गुन ही के गुन होहि ते कहुँ अकालहि देक ॥ तुमो बजनायरी ॥
 जो उनके गुन नाहि और गुन भए कहीं लें ।
 बीज बिना तब जम (घोहि तुम कहुँ कहीं त ।
 या गुन की बरदाहि री माया बरपन बीज ।
 गुन ते गुन म्यारे भए, अमर वारि मिलि बीज ॥

तत्ता सुब रमाय के ॥

इस प्रकार ऊँची और गोपियों में उत्तर प्रत्युत्तर चलता है। एक पदा ज्ञान पर बटा है तो दूसरा ज्ञान की युक्ति को बाटकर रूप के प्रति अपने अमर प्रेम की सर्वोपरिता सिद्ध करता है। पुष्टिमागीय रूप में अंधारमागीय कल्पना क लिए अक्षि ही सर्वश्रेष्ठ है। यह सिद्धांत ही इस भँवरगीत में प्रमाणित किया गया है।

नन्ददास ने पद-रामी में भी रचनाएँ की हैं। अमर-रूप क सम्मिलित भाषा के स्मरण का बचि का पाठ्य देगिए—

राग भैरव

राम कल्प कहि उठि भोर ।
 वे प्रब्रजया धनुष कर चारे यह ब्रज-मादन-बोर ॥
 उनके पुत्र खबर तिहासन भरत लखहुन लक्ष्मण बोर ॥
 इनके सकुड़ मकुड़ पीताम्बर नित गायन सँ मँदकिसेर ॥
 उन सागर में तिला तराई इन राक्षसी गिरिनक्ष की बोर ॥
 मँदबास प्रभु लख लजि नजिए, जैसे निरतत खँद खबोर ॥

ब्रजरत्नदास—मन्दबास प्रत्याबसी पदावली २

कल्प घोर मोघ ग्वासों के कारण मन्द-शाम की विशिष्ट गोमा है। वहाँ कल्प सभी को सुलभ है इसीसे वेच घोर महामुनि भी अपना आशारा बनाए हैं। ब्रज-महिमा का उल्लेख देखिए—

राग बिलास

मध-गाउँ नीकी सागत रो ।

प्रात समे बनि मधत ग्वालिनी विपुल मधुर बुनि मन जापत रो ॥
 धन मोषी, धन ग्वाल सँग ब्रज के जिनके मोहुन जर जापत रो ॥
 हुलकर सँ सक्ता लख राजन गिरिधर सँ बनि माँगत रो ॥
 जहाँ बसत सुर देख महामुनि एको पल नहि त्यापत रो ।
 'मँदबास प्रभु कपा का इहिकल गिरिधर देख मन जागत रो ॥ वही—२१
 मोक्षार्थन सीमा क प्रसन्नवत निम्न नीत बड़ा ही भावुकतापूर्ण है। मोक्षार्थन को हाथ पर धारण किया हान म कल्प को बहुत बिलम्ब हो गया। सपी में सवेचना जापति हुई। फलस्वरूप कल्प को भी परिहास सूझ उठा—

राग भङ्गानो

प्रब लेकं हमहि हेतु कागह गिरिधर ।
 गुम्हे लवे बकि बार गई है कृषि कटे छै हे कोमल कर ॥
 ननि विष परे बवे सब ब्रज जन भयो है हाथ पे प्रति भर ।
 लख कसे इहि बचन बैलिकहँ ताते जिय में बड़ो यहो डर ॥
 जानि लखनि की हेत लु मोहुन दयो मचाय लखु प्रपनो कर ।
 'मँदबास' प्रभु भुजा लटक गई लवे हँस सागर नवबर भर ॥

—वही—११७

बोसोस्वभ मे राजा-कृष्ण को गोपियाँ मृता रही है। वह वृत्त बड़ा ही मधुर है।

राग सारंग

ब्रज की मारी डोल भुलावं ।

सुख निरञ्जत मन में सखु पाबं मपुर मबुर कल पाबं ॥
 रतन लखित तिहासन तोभित मनो काम की डोरि ।
 बठ त्यामा त्याम झुलत हूं नील-कमल पिय राजा गोरी ॥
 सुरत बुरत बोज रतीली उपमा नहि तम तोल ।
 नबदात प्रमु को तख निरञ्जन इपति झलत डोल ॥

—बही—१६५

गण्धर्वान ने भी सुरदास के समान कृष्ण सम्बन्धी सीलाघोषों का पदा में गान किया है। इसके लिए उन्होंने परम्परागत राम रागनिर्मो की मधुर सीमा ही ग्रहण की थी। उनकी पदावलिमें म निम्न राग रागनिर्मो का प्रयोग हुआ है—

राग धैरव विभास रामकली सारंग हृषीर देवमदार विलासम माक
 यनाथी मसार धामावरी काकी जैबैठी रामगो पुरबी टोड़ी ईमल कदारो
 कस्मान् यदानी केदार चौताल नट बिहाग गौरी गौड़ा पंचम सलित प्रब-पद
 मालकोम सारंग नायकी बिहागडो कागहरा मस्हार बसन्त धारि धारि ।

कृष्णदास (स० १५६० वि०—१६६५ वि०)

कृष्णदास बंसभाचार्य के शिष्य थे। अष्टछाप के कवियों में आपका सुरदास और गण्धर्वान के अनन्तर नाम आता है। आप छूह आठि के थे। 'ब्रजममान-चरित्र' भ्रमरगीत और 'तख निकपथ' आपके काव्य हैं। आपने राजा-कृष्ण के प्रेम को लेकर गुरुनारणक परों की रचना की है।

भगवान् की पुष्टि प्राप्त कर भक्त कवि की माया का उन्मूलन हो गया है और वेद बिरहित मार्ग मूढ़ हो गया है।

देवगंधार

जब तें स्वाम-सरन हूँ आयी ।
 तब तें भेंट भई थी बसन्त निज बलि नाम बतायो ॥
 और लखिछा दीकि मलिन मति म्मुदिपप छाह बुझायो ।
 'कल्पदास' जन बहूँ जग जोजत सब निहूँ मन आयो ॥

—(ब्रजमाधुरी सार-कृष्णदास—१)

कृष्ण की स्थापक रूप-माधुरी ने उन्हें अपनी अनन्य बना लिया है अब वह वही अन्वय देगता भी नहीं चाहते हैं।

गौरी

जो मन विरिजत छवि रं छरयो ।
 ललित निर्भय बाल रं बलिकं बिबुक बाध मकि बरयो ॥

राग भरव

राम कल्प कहि उठि और ।
 मे अक्षय्य धनुष कर चारे यह ब्रज-माखन-ओर ॥
 उनकें धुब खँबर तिहासन भरत सत्रुहन सप्रमन ओर ॥
 इनके लकड़ मुकुट पीताम्बर नित गायन संप नैदकिसोर ॥
 उन सागर में निमा तराई इन राख्यो विरिगख की ओर ॥
 मरदास प्रभु तब तजि मजिए बसे निरतत खंड बओर ॥

बजरत्नदास—मयदास प्रभाकरी परावसी २

कृष्ण और गोप-आशो के कारण मय-प्रास की विधिष्ट मोभा है । वही कृष्ण समी की सुमन है इसीसे देव और महामुनि भी अपना आवास बनाए हैं । ब्रज-अहिमा का उल्लेख देखिए—

राग बिभावभ

तब-गाउँ नीकी जागत री ।

प्रात लमे दधि मखत खालिनी विपुल भबुर बुनि मन जायत री ॥
 बन गोपी बन खाल सँग ब्रज के जिनके मोहन उर जायत री ॥
 हलधर लन सला तब राजत गिरिधर ल दधि मागत री ॥
 वही बतत सर बैच महामुनि एको पल महि त्यागत री ।
 'नैदबास' प्रभु कपा का इहिकल विरिधर बैच मन जागत री ॥ वही—२१
 गोवर्द्धन लीला के अन्तर्गत निम्न गीत बड़ा ही भावुवतापूर्ण है । गोवर्द्धन को ह्वाव पर चारण किया होने में कृष्ण को बहुत विलम्ब हो गया । सभी में सचेदना बावृति हुई । अत्यस्वल्प कृष्ण को भी परिश्रम घूम् उठा—

राग अङ्कानो

अब मेकं हनहि बैहू काम्ह विरिधर ।
 तुम्ह लये बड़ि बार भई है बुलि उठे छै है कोमल कर ॥
 ननि शिय परै बसे तब ब्रज बन भयो है हाव न घति नर ।
 तब कँठे इहि बदन बैलिहू तातै जिय नें बड़ो मही डर ॥
 जानि तखनि की हेत सु मोहन बयो नबाय नकु अपनो कर ।
 'नैदबास' प्रभु भुजा लटक परै तब हँस जावर नगवर वर ॥

—वही—११७

दोस्तोस्वम में राम-कृष्ण को गोपियाँ मूसा रही हैं । वह वरम बड़ा ही मयुर है ।

राग सारंग

ब्रज की नारी डोल नुनाबे ।

सुख निरखत मन में सखु बाबे मधुर मधुर कल पाबे ॥
 रतन कचित सिहासन सोभित मनौ काम ली डोरि ।
 बठ स्यामा स्याम झुलत है नील-कमल विय राधा पोरी ॥
 सुरत मूरत बोज रसीली उपमा नहि सम तोल ।
 तरबास प्रभु को सुख निरखत रूपति प्रसत डोल ॥

—बही—१६५

तरबास में भी सुरबास के समान कृष्ण सम्बन्धी सीलाघो का पदो में पात किया है। इसके लिए उन्होंने परम्परागत राग रागिनियों की मधुर शैली ही ग्रहण की थी। उनकी पदावधियों में निम्न राग रागिनियों का प्रयोग हुआ है—

राग मीरब बिभास रामकली सारंग हमीर देवघार बिलासम मारु
 बनाभी मलार, घामावरी काफ़ी जैजैवती रायसी पुरबी टोडी ईमन केदारो
 कस्याम धकामो केदार बीनाम नट बिहाम पीरी गीरी पंचम ललित प्रब-पद
 मालकोम सारंग नायकी बिहागडो बाहुरा मस्तार बसन्त प्रादि प्रादि ।

कृष्णदास (सं० १५६० वि०—१६६५ वि०)

कृष्णदास बसन्तभाष्य के शिष्य थे। अष्टछाप के कवियों में घापका सुरदास और मरदास के प्रसन्न नाम धाटा है। घाप सूड बाठि के थे। 'सुगमभात-वर्तिन' प्रमरगीत धीर 'तल निरूपम' घापने काव्य है। घापने राधा-कृष्ण के प्रेम को लेकर श्रुंगारपरक पदों की रचना की है।

मगवान् की पुष्टि प्राप्त कर सकत कवि की माया का उगमसंग हो गया है धीर वेद-बिहित मार्ग सुदृढ़ हो गया है।

देवगंधार

जब तें स्याम-सरन हूँ पायो ।
 तब तें प्रेड भई थी बसन्त निज पति नाम बतायो ॥
 धीर घदिघा क्षांति ललित मति स्तुतिपत्र घाइ बुझायो ।
 'कलकदात' जन कहुँ जय कोजत सब निहूर्ण मन घायो ॥

—(बसन्तभाष्य सार-कृष्णदास—१)

कृष्ण की श्यामक रूप-भाबुरी ने उन्हें अपना प्रानय बना लिया है सब कह करही प्रयत्न बेगता भी नहीं चाहते हैं।

गौरी

मो मन पिरिबर-छवि र्घ घटवयो ।
 ललित विर्धन जास व ललित चिबुक बाध पड़ि कटवयो ॥

राजस स्वामधन-बरन लीन हूँ किरि बित प्रगत न भटवधो ।
‘कवचदास’ किए प्राण निछावर यह तन जय सिर पठवधो ॥

—(ब्रजमाधुरी सार, कृष्णदास—७)

रास शौडा का बिज भी कवि ने बड़ी सरन माया में प्रस्तुत किया है—

विभास

रास रस मोबिह करत बिहार ।
सुर-सुता के पुलिन रम्य महुँ फले बंद-बेदार ॥
घटभुत सतहन बिकसित कोमल मुकुलित कुमुद बन्हार ।
मलय पवन बहु सारदि पुरनछग्न मधुप भँकार ॥
सुबाराय लंपीत-कलानिधि मोहन लख कुमार ।
ब्रजभाषिनि-लैंग प्रमुदित भाचत तन बरचित मनसार ॥

—(ब्रजमाधुरी सार, कृष्णदास—१)

इन कठिपन उदाहरणों से स्वतः प्रमाणित है कि कृष्णदास न पर-शैली की परम्परा को कृष्ण भक्ति-काव्य में प्रसरत किया है ।

परमानन्ददास (रत्ननाकास—१६०६ बि०)

प्री बत्सभाचार्य के बड़े कृपा-पात्र विध्य में । बहु कमीज दिवासी ये ।
इनका ‘परमानन्द सागर’ एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसमें ८१२ पर है । ‘परमानन्द प्री’ का पर ‘दानभीला’ और ‘अवचरित’ इनके अन्य ग्रन्थ भी उपलब्ध हुए हैं । इन्होंने शृंगार के संयोग और बियोग बीला पक्षों का बरन किया है । इनके पर बड़ ही सरन और भावपूर्ण है ।

निम्न पर में भक्त का सच्चा मनोरम्य विचारणीय है । ब्रज के मनोरम बाताबरन के समझ उन्हें बेकूष्ठ भी उपेक्षणीय है—

कहा करी बेकूष्ठहि जाव ।
जहुँ नहि नंद जहाँ न असोबा जहुँ नहि घोषी खाल न गाय ॥
जहुँ नहि बल बनूना की निरमस धोर नहुँ कबमन की धाय ।
परमानंद ब्रजु कतुर खालिनी बररख तनि मेरो नाम बलाय ॥

—(ब्रजमाधुरी सार, परमानन्ददास—१)

कृष्ण के बिरह के कारण बसोदा तथा ब्रज की बड़ी कष्टन दया है । पर की स्वाभाविक मायिकता प्रभावोत्पादक है—

ब्रज के बिरही लोप बिचारे ।
बिनु मोपान्त टो से ठाढ़े घति दुर्बल तन हारे ॥
जात असोबा पंच निहारत निरखत लीन-लकारे ।

जो कोई बान्ह-कान्ह कहि बोलत भोजियन बहुत पनारे ।
यह मबुरा काजर को रेखा जे निहसे से करै ।
परमानर स्वामी बिनु ऐसे क्यों बंदा बिनु तारे ॥

—(परमानरबास ?)

कवि के भक्ति मिळ हृदय से अनुभूत भावनाएँ पदों के द्वारा स्वामाधिक पशुरता से प्रवाहित हो चठी हैं । इनके पद बेजग भक्त प्रायः गाते हैं ।

शुभनदास (रचनाकाल—१६०६ वि०)

ये बसन्तप्रार्थम्य के छिप्य परमानरबास के समकालीन थे । आपकी कविता बड़ी ही रसीली और भावपूर्ण है । आप स्वयं अर्धशे गायक भी थे ।

'भार्ती' के आधार पर यह प्रमाणित है कि एक बार अकबर ने इनको पठह-पुर सीकरी बुलाया था । आप वहीं गए अथवा किन्तु आपको इसका आश्रय प्रस्तावीत रहा—

संतन को कहा सीकरी तौ काम ।

भावत जात पशैयाँ इटी बिसार पाबो हरि-नाम ।

जाकी मुच देखे पुन लार्थ ताकी करिबे परो सनाम ।

'शुभनदास' नात गिरधर बिन, और सब बेकाम ॥

—(ब्रजभापुरी धार-शुभनदास २)

इसकी रूप-भाकुरी ने प्रभाव का एक गोपी कथन कर रही है—

धावत मोहन मन कु हरुषी है ।

हो गृह अपने सखु सौ बंठी निरखि बरम लखनु बिसर्यौ है ॥

रज-निमान रतिक मंडनदन जस्यौ हिय धीरजन पर्यौ है ।

'शुभनदास' प्रभु मोबर्जनघर अंग अंग प्रेम-सीपूष कर्यौ है ॥

—(शुभनदास ३)

अनुभूत-भाव—मोसाई विद्वानाथ के आप छिप्य थे । 'दासप्रिय' 'भक्ति प्रथाप' 'हिंदू को संनत' आपकी रचनाएँ हैं ।

कसीबा ! कहा कहीं हो बाग ?

तुम्हरे पुन के करतब मो रं कहत कहे नहि जात ॥

भाजन धोरि, धारि सब बोरस, सं जाजन बनि जात ।

जो बरजो तो धौलि बिचार्य रंघट नाहि लकात ॥

धीर अडपटी कहेँ लो बरती छवत बानि सौ पात ।

बाग अनुभु अ गिरधर पुन ही कजति कहति सकुचात ॥

—(रामदास गुप्त—हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७६)

छोतस्वामी—(रचनाकाल १६१२ वि)—आप विद्वानाथ के छिप्य थे ।

प्रापके पदों में मन्त्रित के लक्षण पूर्ण रूप से विद्यमान हैं । इनके रचित पदों में संकीर्ण लम्बता पूर्ण रूप से सुरक्षित है—

राधिका स्वाम सुन्दर को प्यारी ।

नय सिद्ध धन्य धनुष बिराजत कोटि बंद बुति बारी ।

एक दिन संन न लोडित मोहन निरखि निरखि बलिहारी ।

छीत स्वामी गिरिधर बस जाके लो भुवनानु तुसारी ॥

मेरी अजियन बैको गिरिधर भाबे ।

कहा कहीं लोना लनि राजनी उतही को उठि जाबे ॥

भोर मुकड कानन कुंडल मति तन पति सब बिसराब ।

बाजूबंद कंठ लनि भुवय निरखि निरखि लखु पाबै ॥

छोत स्वामी कटि छुड घंटिका नुपुर पर ही घुमाबे ।

इह छवि बसत सदा विदुल उर मो मन मोद बढ़ाबे ॥

—(सोमनाथ गुप्त—घट्टघाण पदावली)

गोविन्द स्वामी (रचनाकाल १६००-१६२५ वि० के मध्य)—प्राप भी विदुल प्राप के सिष्य थे और प्रणये संगीतज्ञ थे । तानसेन जैसे संगीतज्ञ भी कभी-कभी प्रापके बान मुग्धों के लिए प्राया करते थे । प्रापने स्तुति पदों की रचना की है ।

कहा करें बंकेठहि जाय ।

बहुं नहीं कंज लता मति कोकिल मंद सुगंध न बामु अहाय ॥

नहीं बहो मनिपत बंती नून कुम्प न मुरत घबर लगाय ।

सारस हंस मोर नहि बोलत तहूँ को कतिबो कोन लहाय ॥

नहीं बहो बज बुवावन बीचन गोपी मंद अतोबा प्राय ।

गोविन्द प्रभु गोपी करनन की बजरज लनि बहो जाय बलाय ॥

कवि की इन पंक्तियों में मन्त्रित का लम्बा मनोराम्य है । धार्मिक से सम्बन्ध होने के लिये बज का बातावरण उसे इतना प्रिय है कि वह वैकुण्ठ की भी कामना नहीं करता है ।

अही दधि मन्त्रित गोप की रामी ।

दिष्य और पहरे बलिब को कटि किङ्किनी लनभुन वाली ॥

सुत के करम पावति प्रानन्द जरि बाल चरित जानि वाली ।

भन बल रामे बबन कमल पर मन्तुँ सरब बरपायी ॥

पुन लनहु बुबात बपोबर प्रमुहित घति हरसायी ।

गोविन्द प्रभु घट्टुबनि बलि प्राए पकरी रई मनायी ॥

यद्योबा के वासुदेव के शान कृष्ण के बाल-रूप का मधुर और सजीब चित्रक कवि द्वारा प्रस्तुत किया गया है ।

राधाकृष्णभक्तियोग सम्प्रदाय

हितहरिबंध (रचनाकाल १६-१७-१८ वि०)—भाप मध्यागुपायी श्री गोपाय मठ के अनुयायी थे किन्तु स्वप्न में श्रीराधिकाजी से मंत्र प्राप्त कर भाप उन्हीं के भक्त हो गए और अनन्तर भापने 'राधाकृष्णभक्तियोग सम्प्रदाय' का प्रवर्तन किया।

भाप संस्कृत के पद्य कवि थे। 'राधासुधा निधि' भापका संस्कृत का काव्य बड़ा ही मधुर है। भापने ब्रजभाषा में मधुर पद्य भी लिखे हैं जिनका संग्रह 'हित श्रीराधी' के नाम से प्रसिद्ध है।

भापने अपने सम्प्रदाय में कर्म और ज्ञान का लक्षण कर प्रेम-परक भक्ति पर ही विशेष बल दिया है। यों तो इस सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण दोनों की ही उपासना होती है किन्तु राधा की उपासना शीघ्र ही पद्मदायिनी है यह भापका विश्वास था। भापने अपने सम्प्रदाय में राधा-कृष्ण की संयोग की सीताओं का ही ध्याय देने का संकेत किया है वियोग की भावनाएँ इस सम्प्रदाय में माय्य नहीं हैं।

प्रेम भावना प्रमाण होने के कारण भापके गीत बड़े ही सरस और मधुर हैं—

गौरी

(श्रीश्री) 'हित हरिबंध' प्रबंध बंध सब काल ज्ञान की छाया।

मह जिय जानि स्वाम स्वामा पद कमल संग तिर नायी ॥

—(ब्रजभाषुरी सार—हितहरिबंध १)

राधिका से युक्त ब्रज मुवतिनी कृष्ण से मिलने जाती हैं—

सारंग

साम्भु नोकरी बनी राधिका नामरी।

ब्रज मुवति कुच में रूप सब चतुरई।

सीत सिवार पुन लबनि तें धायरी ॥

कमल बधित्त भजा बाम भुजा प्रसु लपि।

पावती सरत जिति मधुर मुर राग री ॥

सरल विद्या बिहित रहति हरिबंध हित।

जितत नव बंध बर स्वाम बड़ भाय री।

—(हितहरिबंध १७)

प्रेम-मार्ग में लौकिक मर्यादाएँ स्वतः स्थगित हो जाती हैं। इसी भावना से भर कर वह अपने अपने को केवल श्रीकृष्ण के अनुयाय में ही समर्पित करना चाहते हैं—

विहंग

प्रीत न काहु कि कानि बिचारे ॥
 मारग अपमारग बिचकित मन को अनुतरत निचारे ॥
 ज्यो पावस सलित्त बल उमयति सतमुक्त तियु सिघार ॥
 ज्यो तावहि मन बिये कुरंगनि प्रपट पारधी मारै ॥
 (जै श्री) हित हरिबंतहि नप सारंग ज्यो सतय तरीरहि चारै ।
 ताहुक निपुन नबल मोहुन बिनु कौन अपनबो हारै ॥

— (हितहरिबंध, १०)

बंसी और रूपमाधुरी की सम्मिलित छटा-प्रधान निम्न पद भी बड़ा मनोरम है—

मोहुन बेनु बजावे । इहि रज नारि बुलावै ॥
 भाई बजनारि तुनि बंसी-रज गृह पति बंधु बितारे ।
 बरसन मदन पुपाल मनोहर मनसिब ताप निचारे ।
 हरपित बदन बंक अममोहन सरस भयुर मुनि गारै ।
 मधुमय स्वाम समान अक्षर बरे मोहुन बेनु बजावै ।

— (हितहरिबंध २१)

इस प्रकार राधा कृष्ण प्रेम माधुरी प्रधान हितहरिबंध के भीत बड़े ही सरस और भावपूर्ण है । हितहरिबंध और इस सम्प्रदाय के अन्य भक्त कवियों के शृंगार प्रधान पद्यों का प्रभाव बल्लभभाचार्य के पुष्टि सम्प्रदाय पर भी पड़ा है । इसी से शृंगारिक कवियों का समावेश अष्टछाप के कवियों में भी उपलब्ध है ।

शैलीय सम्प्रदाय

गयावर भट्ट (रचनाकाल १५५०-१६ वि०)—घाय श्री वैतन्य द्वारा प्रवर्तित 'शैलीय सम्प्रदाय' के भक्त कवि थे । घायन वैतन्य महाप्रभु से मुक्त बीसा ली थी । घाय भाववत वैतन्य को सुनाया करते थे । संस्कृत के पंडित होने के कारण घायकी पदावली पर संस्कृत का पूरा प्रभाव है । वैतन्य महाप्रभु से भक्ति के लिए माधुर्य भावना पर विशेष बल दिया था । इसी से भट्ट भी के गीतों में मधुरता की अनुभूति है—

विभास

दिन हुलहु मेरो कंधर कहीया ।
 नित प्रति सजा तिनार लोबाएत नित धारती उतारति मीया ॥
 नित प्रति गीत बाध बंधन मुनि नित सुर-मुनिबर बिरब-कहीया ॥

विर पर भी बजराम राजवित तेसे ही द्विम बलनिधि धनमैया ॥
 निध प्रति रासबिलास ध्याहृ बिधि नित नुरतिय सुमननि बरसेया ॥
 नित नव-नव भावद बारिनिधि नित ही मदावर नत बसेया ॥

—(ब्रजमाधुरी सार—मदावर भट्ट १)

भूमा का सजीव बिज निम्न गीत म प्रस्तुत किया गया है—

हिंडोल

भूसत नामरि नामर जात ।
 नंद नंद छब लखी भुसाबति पाबति नील रसात ॥
 करभुराति पदपीत नील के अर्धस बबल जात ।
 भगधुं परस्पर जमीय ध्यान-द्विधि प्रपद भई तिहि काल ॥
 तिलतिससत अति प्रिया-सीत लें सटकत बेगी नाम ।
 लनु पिय-मुकुट-बरहि अमबस तहुं ध्यासी बिकल बिहाल ॥
 स्यामल गीर परस्वर प्रति छवि, सोभा बिसद बिभाल ।
 निरलि मदावर' रतिक कुंवरि-भग, पद्मी [नुरत बंजाल ॥

—(ब्रजमाधुरी सार मदावर भट्ट—१८)

सूरदास मदनमोहन (रचनाकाल १५१ — १९० वि के मध्य)—घाय
 चैतन्य के गौड़ीय सम्प्रदाय में प्रसिद्ध हुए थे । घायके स्फुट पद मिलते हैं ।

घरघर के समय में घाय संकीर्ण (दूरबोई) के प्रमीन थे । घायने एक बार
 घरकारी कोप का समी रूपमा साबु-सन्तों को तिला दिया था । जब घरघर को यह
 माल हुआ ठब उसने इन्हे धमका कर दिया किन्तु उद्य समय घाय साधु-जीवन स्वी
 कार कर चुके थे ।

घायके गं बड़े ही सरल हैं—

सस्मित

पाछे ललितता भाये स्याया प्यारी
 ता घाय पिय आरय फूल बिदाबन जात ।
 कठिन बली बोन-बीन प्यारी करत
 प्यारी के चरन बोनन जानि सनुबत त्रिय परिबेद उरध ॥
 भीषं लता करतों निरवारत पाछ
 महे डारि सीत नाहिं बरसत पसब जात ।
 'सूरदास मदनमोहन पिय की अर्पित ताई
 बेकत मेरी रे नैन धिरल ॥

—(ब्रजमाधुरी सार—श्री सूरदास मदनमोहन १)

मसार

नीर नोबिद नवल किसोर लखी बित खोर
 छाड़े हूँ इम की छहिर्षी ।
 धनर घरे मरली अँचे सुर लीमें सुनि तोहि बुसाबत है
 माई री तु कठ कहति नहिर्षी ॥
 बिन ही अँजन अँजन से मना पिय-मन-रँजन
 रही तिरछी हूँ पिय मन नहिर्षी ।
 'सुरदास मदनमोहन' के ध्यान तेरो बिसि बासर
 लखी कीन प्रकृति तो पहिर्षी ॥

—(सुरदास मदनमोहन—७)

श्रीमद्—(रचनाकाल १६२५ वि) श्री निम्बार्क सम्प्रदाय के केशव काष्ठ
 मीरी के शिष्य थे। 'आदिवासी' श्रीर 'सुनस घटक' ध्यापके दो काव्य हैं। 'सुगत
 घटक' में ध्यापके १० पर संवहीत हैं। ध्यापके पर बड़े ही सरस श्रीर मधुर हैं।
 अपने पर पाठे समय इनको मगवान् के तत्काल ही बर्णन हो जाते थे। ध्यापके पदों
 का माधुर्य देखिए—

मदनपुपाल सरन तेरी धाम्यो ।
 बरनकमल की तरन बीजिए, बेरी करि राखी घर धाम्यो ॥
 बनि बनि मख पिता मुठ बँबू पनि जननी बिन खेत बिलायो ।
 बनि बनि बरन बलत तीरज की बनि नुबजन हरिमान मुनय्यो ॥
 जे नर विमुख भए नोबिद लोँ जनम धनक महादुख पायो ।
 श्रीमद् के प्रनु दिपो धामय-यव धम डरप्यो जब बास कहायो ॥

—(बनमाधुरी सार, श्रीमद्—१)

कुपलकितोर हमारे ठाकुर ।
 तदा लखँदा हम बिनके हैं जनम जनम घर जाए बाकर ॥
 बूठ परे बरिहुरे न कबहूँ लखही भाँति ब्या के धाकर ।
 बी 'श्रीमद्' प्रयत्न जिबुबन में प्रबतनि पोवत परम मुधाकर ॥

—(बनमाधुरी सार, श्री मद्—२)

हरिदासी (दृष्टी) सम्प्रदाय

स्वामी हरिदास (रचनाकाल १९ — १९१० वि) — निम्बार्क सम्प्रदाय
 के अन्तर्गत हरिदास ने दृष्टी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। ध्यापके इस सम्प्रदाय में
 राधा-रूपन की सुनस उपासना में केवल लखी भाव पर विशेष बल दिया था।

ध्यापकानेन के इतिहास प्रसिद्ध मुद्र के। स्वर्ण धाकर ध्यापके संपीठ की

मुने के लिए साधारण व्यक्ति के भेद में घापक पास धाया था। घकबर ने उन्हें पुरस्कृत भी करणा चाहा किन्तु घापने कुछ भी ग्रहण नहीं किया। घाप एक स्यागी घौर भजनानन्वी संत थे। सगीत कला के दृष्टिकोण से घापके पर बड़े ही सफल हैं। घापने सिद्धांत घौर भुंगारपरक बहुत से पर सिखे हैं। 'हरिदास के ग्रन्थ' 'स्वामी हरिदास जी के पर' 'हरिदास जी की बानी' इनके तीन ग्रन्थ उपलब्ध हैं। उनको रघ-भापुरी निम्न पद्यों में दृष्टव्य है—

कन्याप

हरि को ऐसोई सब जान ।

मृगतुम्हा बग व्यापि रही है कहे बिजोरो न बल ॥

बन-मर जोबन-पर घौर रासमर ज्यों पक्षि न बल ।

कहि 'हरिदास यहै किय जानी तोरब को तो मल ॥

—(बजमापुर सार-हरिदास—७)

राधा-कृष्ण की एक-कपठा नियमक यह पर देखिए—

कान्हुरा

प्यारी, बडे ठेरो घासिन में हौं उपलवी

देखत तैते मुम देखति ही कियो नखी ?

हौं तोसों कहीं प्यारे घासि मूदि

रही नाल निकसि कही बखी ॥

मोकों निकसिब को घौर बतयो,

साथो कहीं बलि जाये, साथो बखी ।

थी हरिदास के स्वामी स्वामा

मुमहि देख्यो जाहल घौर मुब लागत नखी ॥

—(बजमापुरी सार—हरिदास—११)

केबारा

कूलत डोल कुलहिमो कुलह ।

जगत घबीर कुमकुमा घिरकत खल परस्पर मूलह ॥

बाबत लल रबाब घौर बहु तरनि लनदा कुलह ।

(थी हरिदास क) स्वामी स्वामा कबिहारी को संत नहि कुलह ॥

—(बजमापुरी सार-हरिदास—१६)

बीराबाई (१५५५ १६३० वि०)—बीराबाई मेरुता के राठीकुंबंध क रल सिह का पुत्री घौर राब कुडारी को पीत्री थी। उनका बिबाह हरिदास प्रसिद्ध बीर

राजा सांगा के पुत्र राजा भोजराज से हुआ था। मीरा की माता का बेहान्त उतकी छोटी भवस्था में ही हो जाने के कारण राजा डूवाजी ने उनको मेकला ही बुलवा लिया था। बुवा भी स्वयं बेप्यब थे। इससे उनकी वैष्णव भावना का धर्मित प्रभाव उनके हृदय में बचपन में भर कर गया था। इसी भवस्था में बाबा के समीप पधारे एक वैष्णव साधु से उन्होंने कल्प की मूर्ति साग्रह प्राप्त की थी। यह मूर्ति ध्याबीजन उनकी चिर-संनिधी और निराशाओं में भी एक भाषा रही।

मीरा का वैवाहिक जीवन सुखी न रहा। दस वर्ष के बाद पति का बेहान्त हो गया। अन्तर स्वसुर कुल में उनकी भक्ति भावना साधु-संनधि ध्याधि पर ध्यान्तिर्वा प्रसारित की गई जिनके फलस्वरूप उनको क्लिती ही यस्तनार्ण सहन करनी पड़ी। इन मौकिक विपदाओं के मध्य में भी कल्प भक्ति भावना का धकुर उनसे चिर-नोपित रहा और वह इन सभी को अपने प्यारे की मकुर धरुंको वेकती हुई सहन कर गई। स्वसुर-कुल का परित्याग किया पितृ-बृह छोड़ा तीर्थयात्रा को निकस पड़ी बृन्दावन पहुँची अन्तर द्वारिकाधाम के भी दर्शन किए। चित्तौड़ के राजा विक्रमाश्रित्य ने उन्हें फिर बुलाया किन्तु वह न गई और द्वारिका में ही उनका शरीरान्त हो गया।

मीरा ने सत रैवास को अपना बुह बनाया था। स्वसुर कुल के संघर्षों में ही उन्होंने गोस्वामी तुलसीदास को पथ सिखाया जिसके उत्तर में गोस्वामी जी ने विनयपत्रिका का यह पद लिख भेजा था।

आके प्रिय न राम बँदेही ।

तखिप ताहि कोटि बीरो सम अछपि परम सनेही ।

यों मीरा के जीवन के सम्बन्ध में प्रामाणिक सामग्री का अभाव है, फिर भी उपर्युक्त सर्वमान्य है किन्तु भक्ति-भावना और कल्प के प्रति उनकी अन्तर्मता में किसी की दो रायें नहीं हैं। जानावाच ने अपने भक्तमाल में उनके सम्बन्ध में यह क्षय्य लिखा है—

सबुम योपिका प्रेम प्रगट कलिमुर्बहि दिखायो ।

निर संकुप्य प्रति निबर रसिक अस रतना पायो ।

× × ×
भक्ति निजाम बनाय के कहुँ ते नाहिन लबी ।

लोक नाब कुल भु खला तजि भीरां गिरिधर भबी ॥

मीरा की भक्ति पाधुर्भ भाव की थी। वह कल्प की पति रूप में उपासना किया करती थी। इस भावना में अमेरता के कारण मस्त उन्मुक्त और स्वच्छन्द हृदय से सभी कुल कहता है। इसी से मीरा के पदों में अपूर्व स्वाभाविकता और प्रासादिकता है। उनके पदों में समाहित इन विधिष्टताओं की तुलना में हिन्दी का कोई कवि खड़ा नहीं हो सकता न तुलसी न सूर।

मीरा की सम्पूर्ण रचना गेय है। मौकिक सम्बन्धों से विहीन अपने प्रभु

निरिहार नागर' के समस्त जम्होने बिरहिणी वृद्ध से नृत्य करते हुए क्या मही पाया है ? इसी से उनके पद-साहित्य में बियोग, बीभत्स और धात्मसमपन्न के सभी तत्त्व सरलता से मिल जाते हैं। ब्रजभाषा के कव्य भक्त कवियों के समान उन्होंने कृष्ण के भोजन-पान नहीं किए। किन्तु अपने प्रिय में लग्नम और निमल होकर मायाभंग में जो बाणी से तिसुत हो गया वहा उनका सर्वस्व है। इसके लिए उन्होंने सत्य और अस-कारों की कमी अपेक्षा ही नहीं की। प्रिय की मधुर भावनाओं में के स्वयं प्रवाहित हो उठी है। मने ही दण्डशास्त्र के आचार पर उनके पदों में शोष ही। किन्तु मेघना और संमीक्षात्मक तत्त्व उनमें घट प्रतिघट है।

मीरा के पद राजस्थानी ब्रजभाषा एक मुजराती में उपलब्ध है। कहीं-कहीं इन पदों में इन भाषाओं का अपूर्व समिभन्ध हो उठा है। यह सब मीरा के पदों की लोकप्रियता और नय परम्परा में धाबड होने के कारण हुआ है। जो वह राजस्थान के बाहर ब्रज और मुजरात में रही भी है। इससे भी यह प्रसम्भाषित सा नहीं मपता। मीरा के विप्रसन्न की धनुमूति बड़ी मायिक है—

ते बरब नहि जायुं सुनि रे बंध बनारी ।
 तु का बंध घर घापने रे तुम्हें बबर मोरो माहीं ।
 मोरे बरब का तु सरन नहि कार्य करक कलैजा रे माहीं ।
 प्राण जाण का लोभ नहि मोहि नाच बरत सी धारो ।
 तुम बरतन बिन भिन्न पूं तरलीं जूँ बल बिन पनचारी ।
 कहा कहुँ कछु कहत न धारो सुनि ज्यो घाप मुरारी ।
 मोरीं के प्रनु कबरे मिलोमे जगम जगम को सं चारो ।

—(मीरा वृद्ध पद-संग्रह १६)

जन्म कायान्तर का सम्बन्ध होते हुए भी कव्य की अपेक्षा है इससे बिरहिणी मीरा रहे तो कैसे रहे।

प्रिय बिन रह्योई न जाइ ।
 तन मन मीरा बिधा पर बरि बर बर बलि जाइ ।
 निरत हिन कोळें बाह बिधा को कबरे मिलोमे प्राइ ।
 मीरा के प्रनु प्राप्त तुम्हारी लीजो कष्ट लमाइ ।

(पद्यावती धवनम—मीरा वृद्ध पद-संग्रह ४१)

इस बिरह-रथा में पवीहा को बिधा हुआ मीरा का वह उपासम्भ भी बिहार मीरा है—

रे पपडवा प्यारे कज का बंध बिताएयो ।
 म सुती ही जगम भजन में, प्रिय बिन करत मुघरयो ।
 बाव्या ऊपर लूच लपायो, हिवडो करबत सारयो ।
 जड बँडो बृष्य की डालो, बोल बोल बंड सारयो

मीरा के प्रभु गिरिधर नाथ पर हरि करवाँ बित्त पाव्यौ ।

—(पद्मावती धवनम—मीरा बृहद् पद-संग्रह ४२)

मीरा को पारिवारिक जीवन में संघर्षों से साक्षात्कार करना पड़ा किन्तु वह अपने बिरदास यास्या और दुःखता से सभी पर विजय प्राप्त कर गई ।

राजा की म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारे हो

राजा की म्हारे गिरधर प्रीतम प्यारे ।

प्यापक होय रह्यौ घट बर में है लख ही से प्यारे ।

सबको सरबज्य हारो घन्तर घट की सब ही जानै ।

घाय लो मग्यो बिघरो प्यासा है मीरा ने मारो ।

कर करनामूठ पो गईं की गिरिधर संकट हारो ।

जनमजानम रो पति परमेश्वर राखो की कोन बिचारो ॥

मीरा के प्रभु गिरिधर नाथर साथी बंत्तरो बारो ।

—(पद्मावती धवनम—मीरा बृहद् पद-संग्रह १२२)

बिच्छ के घन्तर मीरा ने मिलन (संयोग) के पीठ की पाएँ हैं—

सहेलियाँ साजन बर घायो हो ।

बहोत बिना की बोलती बिरहिन फिर पाया हो ।

रतन कर्क^४ बछ्पारो ने धारती लानू हो ।

पिया का दिया लनसड़ा, ताहि बहोत निबाजू हो ।

पाँच सखी इकट्ठी गईं मिति मंगल बाबै हो ।

बिघ की रसो बजावणां जानब रंगि ब पाई हो ।

हरि सापर सू नेहरो लैना बाग्यो सनेह हो ।

मीरां सखि के प्रागै बूयां बुझां मेह हो ॥

—(पद्मावती धवनम—मीरा बृहद् पद-संग्रह २१६)

उपर्युक्त सङ्ग्रह वस्तुतः मीरा की आत्माभिन्वित के सफ़ल प्रतीक हैं । उनके सम्पूर्ण पदों में प्रिय विषयक मञ्जुर भावना पिरोई हुई है जो सभी को धार्कपित करने में समर्थ है । उनके गीतों ने भक्ति-रत्नों को प्रकाश कर व्याप्यारिभक्ता को लो घामापी किया ही है किन्तु हिन्दी भी उनके बिर-अजी है । मीरा के मञ्जुर पदों का अग्र्युर्भ निधि से वह वस्तुतः गौरवप्राप्तिनी हो उठी है ।

पद विकास पर बिहंगम दृष्टि

इस अध्याय के द्वारा पद-परम्परा के विकास का स्वरूप प्रस्तुत किया गया है । भक्ति-काल में सभी सम्प्रदायों के भक्तों ने पद-रैसी के माधुर्य पर ध्यान होकर उसे निस्संकोच रूप से ग्रहण किया था । बार्मिक सिद्धान्तों और स्थापनाओं के सम्बन्ध क सम्बन्ध में वे सहजवानी सिद्ध और निर्मुक्तियाँ सन्तों की सफलता देख ही चुके थे ।

इससे उसके ग्रहण में उन्होंने धामा-वीक्षा नहीं किया। इस सम्बन्ध में यदि कोई सम्प्रदाय उदासीन रहा तो सूफी प्रभावहीन शास्त्रा के कवि ही। मूलतः इसका एकमात्र कारण यह था कि प्रेमाख्यानों में अविच्छेद समग्र जीवन की कथा प्रस्तुत करने में बर्नतात्मक शैली ही स्फुट शैली से अधिक उपयोगी थी। स्फुट शैली से प्रेम-तत्त्व की रसात्मकता में बाधा पड़ती इससे सूफी शक्तों ने उल्लेख परित्याग ही उचित समझा। सन्त रामाबद् धीर कृष्णाबत सम्प्रदायों में तो सम्यक् प्रयोग हुआ ही है।

सम्प्रदाय के मिश्रणों के प्रतिपादन और उपदेशों के लिए ही अभी तक पदों का प्रयोग जमा था रहा था किन्तु कृष्णाबत सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने सबप्रथम कृष्ण-चरित क वर्नन क लिए पदों को स्वीकार किया। प्रेम-भाषुयी की उपासना के कारण भक्त कवियों की पृष्टि मुख्यतः कृष्ण के बास और मुखा जीवन पर ही टिकती थी। कथा-वृत्त कम होने के कारण वे एक-एक घटना के लिए पदों में पुनरुक्ति नही कर आते रहे हैं किन्तु रसात्मक के कारण यह पठित प्रचरती नहीं है। कृष्ण चरित में स्फुट-शैली शक्य है जबकि सूफी-सन्तों में प्रेमाख्यानों में नहीं। इसका कारण यह है कि कृष्ण चरित की कथा भागवत से उद्भूत है जो साक-विभूत है जबकि प्रेमाख्यानों का इस प्रकार का कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। उनकी कहानियाँ लोक-जीवन के प्रत्येक स्तर की हो सकती थी इससे प्रेम-तत्त्व के माध्यम से सूफी दासनिवृत्ता स्पष्ट करने के लिए बर्नतात्मक शैली ही अधिक उपयोगी थी। राम चरित क लिए पद-शैली का प्रयोग सर्वप्रथम तुमसीबाब द्वारा भीताबनी में किया गया।

पद-शैली के विकास का उत्कर्ष कृष्णाबत सम्प्रदायों में ही प्राप्त है। पृष्टि उपासकसन्तों में गौरीय हरिदासी प्रादि सभी सम्प्रदायों ने काव्य में मात्र पद-शैली का प्रयोग किया। इनमें कृष्ण और रामा की चर्चना-बन्दना के लिए शरीर की पूर्ण व्यवस्था आवश्यक समझे जाती रही है इससे उनमें वेप पदा का ही रचा जाना आवश्यक रहा है।

रस-तत्त्व

कबीर और उनके सम्प्रदाय के सन्त जीवन से विरक्त थे। इससे उनकी कविता में निर्बेह स्वाधीभाव के कारण शान्त रस का ही प्राधान्य है। निष्कृति के लिए मानव-मान को जीवन की अस्थिरता विरक्त के मुद्र-विनाश की प्रसारता माया की प्रकृतता का उल्लेख कर के ब्रह्म-मायुज्य के लिए जीवन में मारिचकी वृत्तियों का समावेश की अपिप्रेरणा देते थे। इसके लिए शान्त रस क अनिश्चित कोई अन्य रस उपयोगी न था। कबीर अपने काव्य में 'हरि जलनी में बालिक छोरा' और 'हरि की बहुरिया भी बने हैं। ऐस हयनों पर बालकस्य और गुंमार रनों का धामाप्त होता है किन्तु पद की समाप्ति तक निर्बेह भाव का भा जाना आवश्यकताही रहा है। शिष्ट गुणों की पलायनी में भी शहीतो बह्य के लिए शान्त रस का ही प्रयोग है।

रामानन्द की हिन्दी रचनाओं में भी शास्त्र रस ही प्रबल है। कृष्णावत सम्प्रदायों के भक्त कवियों ने कल्प्य चरित्र के धृतिरिक्त विनय के पर भी लिखे हैं। इन परों में निर्बल स्थायीभाव ही है। कल्प-काम्य में वात्सल्य और शृंगार की ही अपूर्व रूपा विद्यमान रही है। वात्सल्य से शृंगार का संयोग पर बड़ा जाता है। अन्तर कल्प के प्रवास में चल जाने पर मधोरा नन्द गोप मोपियां सभी के लिए 'विशेष पक्ष' भी बटित हो जाता है। अचतारी कल्प के वात्सल्य तथा शृंगार के संयोग और विरोग दोनों परों में इन भक्त कवियों की जो भाव-वारा प्रस्तुति हुई है वह भारतीय साहित्य में बेबीड़ है। माधुर्य भाव के ऐसे स्पर्शों के मध्य में वच-तन एकाध परों में धन्य रसों का स्वरूप भी उपलब्ध है। किन्तु उनमें कवि-हृदय की वृत्ति समीचीन नहीं है। प्राच्य वात्सल्य और शृंगार का ही रस है।

भाषा-तत्त्व

कबीर की भाषा-शैली में राजस्थानी भाषा के अधिक शब्द हैं। यत्र-तत्र अमय करते रहने के कारण विविध भाषाओं के शब्दों का प्रयोग उनकी पदावधियों में मिलता है। शेष फरीद तथा सिद्ध गुरु पंजाब के थे। इससे पंजाबी भाषा के शब्दों का उनकी वाक्यों में प्रवेश है। शेष अन्य कवियों की भाषा ब्रजभाषा की ओर उन्मुख है।

रामानन्द की पदावधियों में काशी के समीप की पूर्वी भाषा का प्रयोग हुआ है। कृष्णावत सम्प्रदायों में मीरा के धृतिरिक्त सभी भक्त कवियों ने ब्रजभाषा को ही अपनाया है। कल्प का सम्बन्ध ब्रज से रहा है। इससे कवियों की भावनाओं में ब्रजभाषा स्वयं प्रतिष्ठित हो उठी है। मीरा मेरठ के धृतिरिक्त मुनरुत और मुन्दा-वन में भी रहीं थीं। इससे उनके परों में राजस्थानी मुनरुत और ब्रजभाषा प्रायः के प्रयोग उपलब्ध हैं।

पर-शैली संगीतात्मक शब्दों के कारण मधुर और कोमल है। इसी कारण उनमें मधुर भावनाओं के साथ मधुर भाषा का प्रयोग न्यायोचित समझा जाता है। हिन्दी भाषा के अन्तर्गत सभी भाषाओं में ब्रजभाषा मधुरतम है, इससे हिन्दी की पर-शैली में उसका ही अतः प्रतिष्ठित प्रयोग हुआ है।

गोस्वामी तुलसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के लिए अवकाश

मुसलमानों की आधीपटा तथा सामिक भावना के प्रचार और प्रसार के कारण भारतीय संस्कृति सामिकता तथा जीवन के सभी क्षेत्रों पर दृष्टि का लयता जाता था। यदि इस दयनीय संकल्पित-वेला पर दक्षिण के आचार्यों ने आचरण का नव-सन्धेय न किया होता तो निस्सन्देह देस को अघास लय जाता और हम तथा हमारी संस्कृति के अस्तित्व की भी विमुक्त हो जाते। उन्हीं के दृष्टि पर कबीर

समान्य बस्त्रन्यासि देश की सङ्कट-निवृत्ति के स्थान पर अशुभोद्यम साने के लिए प्रयत्न हुए। वे सफल भी हुए यह देश का सामान्य वा किन्तु उनमें प्रभाव या जिससे देश धारकस्त न हो सका। जिसकी पूर्ति में तुलसी का व्यक्तित्व और कठित्व उपयोगी सिद्ध हुआ। कलक देश समाधान और आस्थासून के साथ निष्कृति के पथ पर धारक हो सका।

कबीर ने भद्रैतकारी ब्रह्म का ही प्रतिपादन था। इससे उनका सम्प्रदाय लोक-जीवन में अस्त्युहस्वो की अयोग्यता ज्ञानियों और विरक्तों की ही अतिरिक्त उपयोगी था। उनकी वाणियों और ब्रह्म में लोकार्थ का कहीं भी संकेत न होने के कारण उनसे जन-जीवन का रजन न हो सका। ज्ञानार्थी दासा म बड़ी सबसे बड़ा प्रभाव था जिससे उनके सम्प्रदाय अफल न हो सका। इसी प्रकार के प्रभाव कल्याणत सम्प्रदायों में भी थे। मातृसौपासना की स्वीकृति के कारण उनमें कल्प के समय जीवन की मायता न थी। उनके बात और युवा जीवन के केवल मधुर धारण तो सामने था सक किन्तु पूर्ण जीवन की कल्पना विरोधित ही रही। कल्प के जीवन के इन अर्थों के विकास के कारण गौतम विहारी निष्कृ के अति-दीन-सौद्यम इन तीन अर्थों में केवल सौद्यम का ही प्रस्तुतन हो सका। अति और दीन के प्रभाव में उनके द्वारा लोक-जीवन की पूर्णता और धारण सामने नहीं था सके। भारत की अपनी अत्यन्त विभूति से इन धारणों की पूर्ति करनी थी। ऐसी आवश्यकता के समय ही ताना पुरान निरामय से ज्ञान भक्ति कर्म मर्त्या लोकार्थ जीवन की पूर्णता धारि अर्थों के साथ तुलसीदास ने आत्मिक के राम को अवगत रूप से कुण्ड कर देश के समस्त प्रस्तुत कर दिया। अति दीन सौद्यम से युक्त तुलसी के राम अर्थों के लिए सभी समय उपयोगी सिद्ध हुए। सब तो यह है कि तुलसी के व्यक्तित्व और कठित्व से देश को धारक ही नहीं मिला किन्तु निष्कृति का धारक अर्थ ही मिला।



तुलसी के गीनि काव्य का विषय

रचना काल—‘दृष्य गीतावली’ ‘गीतावली’ एवं ‘विनयपत्रिका’ यो० तुलसीदास के तीन पर-काव्य हैं। कुछ विद्वान इन तीनों को ही स्फुट काव्य मानते हैं किन्तु विनयपत्रिका अपने स्वरूप में उक्त त्रय की अपवाद उल्टी है। इस काव्य में धारि से लेकर अन्त तक सभी पर विनय भावना से प्राप्तावित राम भक्ति की प्रोर समुच्च हैं और राम भक्ति भावना उत्तरोत्तर विकास-प्राप्त होती हुई अन्तिम पर में विराम ले उठी है। इससे भक्ति भावना की अभिव्यक्ति के द्वारा उसे अस्फुट काव्य ही सिद्ध करती है।

‘कृष्ण-गीतावली’ और ‘गीतावली’—ये दोनों रचनाएँ बेभीमावदास ने अपने ‘गोसाईं चरित’ में संख्या १६२८ की मानी है।^१ गोस्वामीजी ने उक्त सम्बन्ध से पूर्व इन दोनों काव्यों के पदों की रचना अथवा स्फुट रूप में कर डाली होनी। तभी सं १६२८ में उन्हें संग्रहित कर उनके आधार पर इन दोनों काव्यों का नाम-करण किया गया।

बेभीमावदास के आधार पर ‘विनयपत्रिका’ का निर्माण-काल गोस्वामीजी की मिथिला-यात्रा से पूर्व का है। इस प्रकार इसका रचना-काल सं १६३६ उल्टा है किन्तु डा. श्यामसुन्दरदास को सं १६६६ की विनयावली की एक प्रति प्राप्त हुई है। इससे अब यह विचारवार मान्य हो रही है कि तुलसीदास की मिथिला-यात्रा से पूर्व सम्भव है कि विनयपत्रिका का कोई-न-कोई रूप प्रस्तुत हो गया हो किन्तु सं १६६६ में १७५ पदों का यह काव्य सं १६६६ से पूर्व २७६ पदों में तुलसी के द्वारा विनयावली से विनयपत्रिका का नाम प्राप्त कर गया है वह सत्य है। इस काव्य में काशी की महामारी (१६६६ वि.) का उल्लेख न होने के कारण यह प्रमाणित है कि विनयपत्रिका की रचना यह स्वरूप सं १६६६ और सं १६६६ के मध्य में मिसा गया।

तुलसी के इन पर-काव्यों के सर्वांगीण अध्ययन में प्रवेश करने से पूर्व इनके विषयों से परिचित हो लेना उचित है। इसी से प्रस्तुत अध्याय में उनके तीनों काव्यों का विषय-परिचय प्रदान किया जा रहा है।

१ अब सोरह से बसु बीच बह्यो पर बोरि सब सुनि ग्रन्थ पढ़्यो।

तेहि राम गीतावलि नाम बह्यो अब दृष्य गीतावलि राखि चर्यो ॥

१ कृष्ण-गीताबली

श्री गोस्वामीजी राम के अनन्य भक्त थे किन्तु राम के चरित्र के समान कृष्ण चरित्र को भी अपने काव्य का विषय बनाकर उन्होंने अपनी उदार-भक्ति और हृदय की विद्यासता का परिचय दिया है। श्री गोवर्धननामजी के दर्शन के लिए जाने पर तुलसीदास ने उन्हें अपना मस्तक नहीं लगाया। एक देवता के स्वरूप की उपेक्षा की बटना का उल्लेख 'दो छी बाबन बैष्णवन की बाठ' में भले ही हो किन्तु तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य इसके समर्पण में किसी प्रकार का अन्तस्साध्य प्रस्तुत नहीं करता। जिसकी बाधी 'सिया राम भय सब जन जानी' का उपयोग करती हो वह कभी अनुपार नहीं हो सकती यह चिर सत्य है।

कृष्ण भक्त कवियों के समान ही गोस्वामी तुलसीदास ने कृष्ण के निम्न चरित्रों को अपने स्फुट वीथों का आधार बनाया है—बाल-लीला गोपी उपासना उमूखन बन्धन इन्द्रकोप और गोवर्धन चारण जो चारण भक्तवा छाक लीला यमुना-तट पर बंधी-बाधन कृष्ण-शोभा-वर्णन गोपी बिरह (भ्रमरगीत) एक भक्त (शोपरी) मर्यादा रसाव।

इस छोटे से काव्य में कवि की दृष्टि प्रमुख रूप से बाल-लीला और गोपी बिरह पर टिकी है अथवा बटनाओं के वर्णन में कवि ने एक-एक बी-दो पद रच कर अपने कवि-कर्म की समाप्ति कर दी है। कृष्ण भक्त कवियों में प्रमुखतः सूर ने उपर्युक्त स्वसों में भाव निमग्न होकर बहुत कुछ कहा है। एक-एक बटना के वर्णन में सूर ने अपनी स्वच्छन्द भावना को उनकी स्वाभाविक स्थिति तक अग्रसर होने दिया है। इसी से कृष्ण-चरित सरसता से 'सूर-सागर' हो सका है। सूरदास के द्वारा प्रतिपादित 'कृष्ण चरित' के सम्बन्ध में उक्त कथन का यह मन्तव्य नहीं है कि तुलसीदास में भावुकता का अभाव था। उनकी 'कृष्ण वीताबली' में भी कवि-मुसम भावुकता का उपयोग है जिसका विवेचन पहले अध्याय के लिए सुरक्षित है।

'कृष्ण वीताबली में अन्त-तब भास्तिव भावनाएँ समाहित हैं। इस काव्य में भी कृष्ण-चरित को देखकर देवगण पुष्प-वर्षा करते हैं।' शोपरी की मर्यादा रसाव के उल्लेख में भी तुलसी का राम भक्त कवि जीवन है।^१

१ तुलसी गिरधिर हरपथ बरपथ पूस।

मूरिमागी ब्रजवासी बिबुब सिद्ध सिहात। —(कृष्ण-गीताबली—२)

२ पुग पुग अग लार्के केसव के

समन कनेस कुसाव सुसाजी।

तुलसी को न होइ मुनि कीर्तति

कृष्ण कृपानु भमठि पव राजी। —(कृष्ण-गीताबली—११)

तुलसी के गीति काव्य का विषय

रचना काल—‘कृष्ण वीठाबली’ ‘गीठाबली’ एवं ‘बिनयपत्रिका’ गो० तुलसी-बास के तीन पद-काव्य हैं। कुछ विद्वान इन तीनों को ही स्फुट काव्य मानते हैं किन्तु बिनयपत्रिका अपने स्वरूप में उक्त तथ्य की अपवाद ठहरती है। इस काव्य में शारि से लेकर अन्त तक सभी पद बिनय भावना से घाण्णित राम-भक्ति की ओर उन्मुख हैं और राम भक्ति-भावना उत्तरोत्तर विकास-प्राप्त होती हुई अन्तिम पद में विराम ल घटी है। इससे गक्ति भावना की अविच्छिन्न धारा उसे अस्फुट काव्य ही सिद्ध करती है।

‘कृष्ण-गीठाबली’ और ‘गीठाबली’—ये दोनों रचनाएँ वैष्णोमाधवराय ने अपने ‘बीसाई चरित’ में संख्या १६२८ की मानी हैं।^१ मोस्वामीजी ने उक्त सम्बन्ध से पूर्व इन दोनों काव्यों के पदों की रचना अथवा स्फुट रूप में कर डाली होती। तभी सं० १६२८ में उन्हें संघीय कर उनके आधार पर इन दोनों काव्यों का नाम-करण किया होगा।

वैष्णोमाधवराय के आधार पर ‘बिनयपत्रिका’ का निर्माण-काल मोस्वामीजी की मिथिला-यात्रा से पूर्व का है। इस प्रकार इसका रचना-काल सं० १६३६ ठहरता है किन्तु डा. क्यामसुन्दरराय को सं० १६६६ की बिनयाबली की एक प्रति प्राप्त हुई है। इससे अब यह विचारप्राय मान्य हो रही है कि तुलसीबास की मिथिला-यात्रा से पूर्व सम्भव है कि बिनयपत्रिका का कोई-न-कोई रूप प्रस्तुत ही गया हो किन्तु सं० १६६६ में १७१ पदों का यह काव्य सं० १६६६ से पूर्व २७६ पदों में तुलसी के द्वारा बिनयाबली से बिनयपत्रिका का नाम प्राप्त कर गया है यह सत्य है। इस काव्य में काव्यी की महामापी (१६६६ वि.) का उल्लेख न होने के कारण यह प्रमाणित है कि बिनयपत्रिका को अपना यह स्वरूप सं० १६६६ और सं० १६६६ के मध्य में मिला होगा।

तुलसी के इन पद-काव्यों के वर्गीकृत अध्ययन में प्रवेश करने से पूर्व इनके विषयों से परिचित हो लेना उचित है। इसी से प्रस्तुत अध्याय में उनके तीनों काव्यों का विषय-परिचय प्रदान किया जा रहा है।

१ अब छोड़ें ही बहुत बीस चर्यों पर जोरि सबें सुनि अन्ध गद्यो।

देहि राम वीठाबलि नाम चर्यो अब कृष्ण वीठाबलि रतिं सूर्यो ॥

१ कृष्ण-गीताबली

श्री गोस्वामीजी राम के अनन्य भक्त थे किन्तु राम के चरित्र के समान कृष्ण चरित्र को भी अपने काव्य का विषय बनाकर उन्होंने अपनी उदार-वृत्ति और हृदय की विशालता का परिचय दिया है। श्री गोवर्धननाथजी के वर्णन के लिए बान पर तुलसीदास ने उन्हें अपना मस्तक नहीं लगाया। एक देवता के स्वरूप की उपेक्षा की घटना का उल्लेख 'दो सौ बावन ब्रह्मचर्य की बातों' में भले ही हो किन्तु तुलसीदास का सम्पूर्ण काव्य इसके समर्पन में किसी प्रकार का अन्तस्साध्य प्रस्तुत नहीं करता। जिसकी बाणी 'सिया राम सब जग जानी' का उद्घोष करती हो वह कभी धनु धार नहीं हो सकती यह फिर सत्य है।

कृष्ण-भक्त कवियों के समान ही गोस्वामी तुलसीदास न कृष्ण के निम्न चरित्रों को अपने स्पष्ट गीतों का आधार बनाया है—बाल-सीसा मापी उपामन्त्र उकूलन बन्धन इन्द्रकोप और गोवर्धन धारण गोधारण भयबा छाक सीसा यमना-तट पर बंधी-बालन कृष्ण-सीमा-वर्णन गोपी बिरह (भ्रमरगीत) एक भक्त (दापरी) मर्यादा रक्षण।

इस छोटे से काव्य में कवि की दृष्टि प्रमुख रूप से बाल साता और गोपी बिरह पर लिक सकी है, अन्य घटनाओं के वर्णन में कवि ने एक-एक बा-दो पाए रख कर अपने कवि-कर्म की समाप्ति कर ली है। कृष्ण भक्त कवियों में प्रमुखतः मूर ने उपर्युक्त स्थलों में भाव-निमग्न होकर बहुत कुछ कहा है। एक-एक घटना के वर्णन में मूर ने अपनी स्वच्छन्द भावना को उनकी स्वाभाविक स्थिति तक धपसर होने दिया है। इसी से कृष्ण-चरित्र सरलता से 'मूर-सागर' हो सका है। मूरदास के द्वारा प्रतिपादित 'कृष्ण चरित' के सम्बन्ध में उक्त कथन का यह महत्त्व नहीं है कि तुलसीदास ने भावुकता का अभाव था। उनकी 'कृष्ण गीताबली' में भी कवि-मुक्त भावुकता का उपयोग है, जिसका विशेषण अगले अध्याय के लिए सुरक्षित है।

'कृष्ण गीताबली' में यत्र-तत्र धार्मिक भावनाएँ समाहित हैं। इस काव्य में भी कृष्ण-चरित्र को देखकर देवमन पुण्य-वर्षा करते हैं।^१ दोपरी की मर्यादा रक्षण के उल्लेख में भी तुलसी का राम भक्त कवि जीबन्ध है।^२

१ तुलसी निरन्तर हरपत भरपत फूल ।

मूरिमागी ब्रह्मदासी विबुध सिद्ध सिहात । —(कृष्ण-गीताबली—२)

२ बुन बुन जब साके केशव के

उपन कसेम कुसाब तुमाजी ।

तुलसी को न होइ मुनि कीरति

इप इपानु भवति पप राबी । —(कृष्ण-गीताबली—११)

तुलसी के गीति काव्य का विषय

रचना काल—'दृष्य गीतावली' 'गीतावली' एवं 'बिनयपत्रिका' गो० तुलसीदास के तीन पद-काव्य हैं। कुछ विद्वान इन तीनों को ही स्फुट काव्य मानते हैं किन्तु बिनयपत्रिका अपने स्वरूप में उक्त उष्य की अपवाद द्खरती है। इस काव्य में धारि से लेकर अन्त तक सभी पद बिनय भावना से आत्मावित राम-भक्ति की धोर उम्मुख हैं और राम-भक्ति-भावना उत्तरोत्तर विकास-प्राप्त होती हुई अन्तिम पद में बिराम से उठी है। इससे भक्ति-भावना की अविच्छिन्न धारा उसे अस्फुट काव्य ही सिद्ध करती है।

'दृष्य-गीतावली' और 'गीतावली'—ये दोनों रचनाएँ बैनीमाधवदास ने अपने 'बोसाई चरित' में संख्या १६०८ की मानी है। गोस्वामीजी ने उक्त सम्बन्ध से पूर्व इन दोनों काव्यों के पदों की रचना अथवा स्फुट रूप में कर डाली होती। तभी सं० १६२८ में उन्हें संग्रहित कर उनके आचार पर इन दोनों काव्यों का नाम-करण किया होगा।

बैनीमाधवदास के आचार पर 'बिनयपत्रिका' का निर्माण-काल गोस्वामीजी की निधिसा-यात्रा से पूर्व का है। इस प्रकार इसका रचना-काल सं० १६१६ द्खरता है किन्तु डा. स्वामसुन्दरदास को सं० १६६६ की बिनयावली की एक प्रति प्राप्त हुई है। इससे अब यह विचारचार्य माग्य हो रही है कि तुलसीदास की निधिसा-यात्रा से पूर्व सम्भव है कि बिनयपत्रिका का कोई-न-कोई रूप प्रस्तुत ही गया हो किन्तु सं० १६६६ में १७५ पदों का यह काव्य सं० १६६६ से पूर्व २७६ पदों में तुलसी के द्वारा बिनयावली से बिनयपत्रिका का नाम प्राप्त कर गया है यह सत्य है। इस काव्य में काशी की महामाटी (१६६६ वि०) का उल्लेख न होने के कारण यह प्रमाणित है कि बिनयपत्रिका को अपना यह स्वरूप सं० १६६६ और सं० १६६६ के मध्य में मिला होगा।

तुलसी के इन पद-काव्यों के बर्णिकृत अध्ययन में प्रवेश करने से पूर्व इनके विषयों से परिचित हो लेना उचित है। इसी से प्रस्तुत अध्याय में उनके तीनों काव्यों का विषय-परिचय प्रदान किया जा रहा है।

१ जब सोरह से बसु बीस चर्यों पर जोरि सब सुधि प्राप्त पद्यो।

तेहि राम गीतावलि नाम बरुको यह दृष्य गीतावलि रचि चरुयो ॥

रूप के इस चरित-गान में सगुण भावना का ही समावेश है। बिज्जू के प्रथम छंदी स्वरूप रूप में तुलसी की अपूर्व निष्ठा और भक्तिभावना विद्यमान है।

२ गीतावली

'गीतावली' रामचरित परक गेय काव्य है। यों सम्पूर्ण राम-कथा ही काव्य में पिरोई हुई है। किन्तु इसमें कथा का वैसा सुन्दर और सुमनित रूप नहीं है जैसा मानस में है। मूलतः उसको गीतारसकता प्रदान करनी थी। इससे कवि-मुलम प्रतिभा और चालुरी होते हुए भी तुलसी काव्य स्वरूप से इसे सुघोषित न कर सके। कथा के ध्वनिविद्युत प्रवाह में राम के सौम्यर्य उनके कारण उत्पन्न कदम-स्पन्द और भक्ति भावना पर ही उनकी दृष्टि विशेष रूप से जमी है। काव्य स्वभाव को कवि ने या तो वर्णन के अत्यन्त समझकर छोड़ ही दिया है अथवा संवेत मर दे दिया है।

गीत काव्यों के केवल मधुर और कदम स्पन्द ही कवि के आकर्षण के विषय रहा करते हैं। यह मनोवैज्ञानिक तथ्य केवल तुलसी के साथ ही सत्य नहीं है। किन्तु प्रमाण के लिए सूरदास का सूरदास अथवा किसी भी युग का कोई भी गीत-काव्य प्रस्तुत किया जा सकता है।

गीतावली तुलसी का स्फुट वेग काव्य है। मानस के समान छंद काव्यों के होठ हुए भी उनके मध्य में कवि की एक सूत्रता और समर्पिता नहीं है। इसीसे इसका सबसे बड़ा (बाल) काण्ड १८ पर का है तो छोटा (किष्किण) काण्ड केवल २ पर का है। आस्तिक कवि की रचना होते हुए भी काव्य के प्रारम्भ में किसी भी प्रकार की गन्तना नहीं है। उपर्युक्त के अतिरिक्त चरितों का पूर्ण विकसित न होना बटनाओं का असम्बद्ध और विरुद्ध होना धारि ऐसे प्रमाण हैं जो गीतावली को स्फुट ही सिद्ध करते हैं।

उपर्युक्त तथ्यों के होते हुए भी इस काव्य में तुलसी ने अपने काव्य काव्यों की अपेक्षा कुछ गौणिकताएँ समाविष्ट की हैं। विषय-परिचय के साथ ही उनको बालने और समझने में सुविधा होगी। इससे प्रथम काण्ड की सामग्री से अलग-अलग परिचित हो लेना ही उचित होगा।

बासकाण्ड

परम्परागत प्रथम काव्यों की रूढ़ियों तथा राम-जन्म से पूर्व शीर्ष भूमिका का मानस के समान इसमें प्रयोग नहीं है। किन्तु

भानु सुदिन तुम बरी सुहाई।

राम-जीत-गुन-बाम राम तुल-अवत प्रकट भए दाई।

ये काव्य का प्रारम्भ है। इस काण्ड में राम का काल चरित विरचामित्र का प्रागमन महत्सोदाह, विरचामित्र के साथ राम-अवत का बनरपुर प्रागमन पुष्प-

बाटिका में सीता राम रङ्ग मूमि म राम-सहमन विवाह की तैयारी विवाहोपरास्य
 सभी का प्रयोध्या प्रागमन प्रादि के बर्षन प्रस्तुत हैं। यों मानस की तुमना में कठि
 पय घटनाएँ परिव्यक्त हैं किन्तु परधुराम-सहमन-सम्बाह का परिव्याग प्राक्षय में
 बाल होता है। मानस की उक्त कौतूहलपूर्वक घटना कौतस्मा को केवल इन दो
 पंक्तियों में समाहित है—

तुमह-रोय-मूरति मृगुपति अति मूरति-निकर-बयकारी।
 क्यों सौंप्यो तारंग हारि हिय करी है बहुत मनुहारी ॥

—(बालकाण्ड—१०६४)

इस काण्ड में राम तथा उनके अनुजों का बाल अति-बर्षन तुमसी के अग्य
 काव्यों से सबसे अधिक बलिष्ठ है। अति-बर्षन अमिनमात्मक न होकर केवल बर्ष
 आत्मक हैं। राम के सौन्दर्य का बार-बार बयन है। सीता ही बर्षन जनकपुर म पधारने
 के अनन्तर विवाह-काल तक प्रस्तुत किया गया है।
 विद्वानिज के राम-सहमन माँगने पर रामा वपराव की बसा घोर उनके
 बसे जाने पर कौतस्मा का विरह परक वासन्म दृष्ट्य है।

राधा बभारय

रहे ठवि से मृपति मुनि मुनिबर के बयन।
 कहि न सकन कछु राम प्रेम-बल पुलक गात भरे नीर नयन ॥

—(बालकाण्ड—११)

कौतस्मा

मेरे बालक करते भी मग निबहहिये ?
 मूक वियास लीत सम सजुवन क्यों कौतिकहि कहहिये ?

—(बालकाण्ड—१६)

× × ×
 अवि मृप-सीत ठगोरी सी डारी।
 तुलमूर सविष निपुन मेवनि अकरेव न लमुनि सुपारी ॥
 तिरित-मुपन-मुहुमार कुँबर डोड मूर तरौप मुरारी।
 पठए बिनहि सहाय पपारोहि केलि-बाल-पनुपारी ॥

—(परी—१००)

सोमों ही स्थन बड़े ही सजोव हैं।

प्रयोध्याकाण्ड

इस काण्ड में राम के सग्याभियक की तैयारी बन के लिए विदाई, राम बन

के मार्ग में चित्रकूट-वर्जन कौशल्या की बिरह-बैरना बधरण का वैह-रथाय भरत का प्रयोध्या-ग्रामगत भग्न का चित्रकूट-प्रस्थान राम भरत-मिताय राम विभुरा प्रयोध्या धादि के वर्जन कवि द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं।

एक तो यह है कि मानस में इस काण्ड की प्रकृष्ट कथा यहाँ विविध हो उठी है। महाकाव्य के अनुकूल कथा गढ़ने में तुलसी ने बटना और भाव-वैचित्र्य की जितनी व्यवस्था बहाँ की है वही यहाँ नहीं है। गीतावली के इस काण्ड के प्रारम्भिक पद में राम के राज्याभिवेक की चर्चा सर है। द्वितीय पद में वह वन के लिए बिदा हो रहे हैं।

राज्याभिवेक की टीदारियों के मध्य में मधरा की कुमत्रणा कोप भवन में कीकेयी से राजा बधरण की भेंट परस्पर का वार्तालाप धादि सभी कुछ बर्णित न होकर कवि ने उसका संवेत सर कर दिया है—

सुगत नगर आनंद बधावन कीकेयी बिलखानी ।

तुलसीदास वैवमायावस कठिन कठिलता ठानी ।

—(प्रयोध्याकाण्ड—१)

राम की बिदा-बैसा पर राजा बधरण परिचय पुरखत तथा पशु-पक्षियों के हृदय विदारक वृत्त का यहाँ वर्णन नहीं है। कौशल्या का मातृ-हृदय प्रसन्न वारस्य से उछल उठा है। बधरण को केवल इतना ही कहने का प्रयत्न मिल सका है—

भोको बिबुदहन बिकोकन बीबी ।

राम लपन मेरी यहूँ सँड बलि जाड क्यूँ भोहि भिलि नीके ॥

—(वही—१२)

सुगत के राम को भेजकर लौट जाने पर उनका मानस पुन उद्वेगित होकर (पद ११ १७ २० १९) प्रवस्य कुछ कह सका है और वही उनके बीचन की समाप्ति हो उठी है। राम के सम्मुख में कौशल्या की बिरह-बैरना प्रत्यक्ष पर पहुँच रही है (पद—२१ २२ २३ २४ २५, २६ २७ २८ २९, ३०)।

इस काण्ड में राम-सीता-सदमन के वन-यम पर होने की स्थिति में धामीण स्त्रियाँ ने उनको देखकर जो उद्बुद्ध भाव-वारा व्यक्त की है तथा प्रयोध्या लौटने पर भरत ने जिस 'नामप भगति' का परिचय दिया है वह सब इस काण्ड को सन्तुलित रख सका है। यों चित्रकूट में मानस के समाप्त भरत मिताय भी है किन्तु वह वैसा सज्जन नहीं है। आचार्य सुक्त के अनुसार मानस के इस काण्ड में बिलगी विविध परिस्थितियों का संघटन है, वह सब यहाँ नहीं है।

अरभ्यकाण्ड

राम का वन-बिहार, मारीच-वच सीता-हरण बटानु-वच राम की वियोग व्यथा बटानु से भेंट, शषरी से भेंट धादि बटनाओं का इस काण्ड में वर्णन है।

अपन्त-नेत्र मंजु अनुसूया का सीता को उपनेत्र विराम-बन्ध सुत्रीवण घोर भगवत्य से मिसन सदमय राम संबाह भर्म-तत्त्व-निकरान करबूपय का समर घोर गहार, सीता का धमि में निबाग रावण-भारीष-संबाह धारि मानस के स्थन इममें नहीं है।

सीता-हूरन में रावण का केवल संकेत-मात्र है। रावण व लिए 'काहू' शब्द का प्रयोग कर दिया गया है—

बंधु बिलोकि कहुत तुलसी प्रभु, भाई भली न कीन्ही।

मेरे जान जानकी काहू लस छल करि हरि लीन्ही ॥ —(धयोध्याकाण्ड ६)

इस काण्ड की अटायु भेंट में राम की कल्या घोर गहरी भेंट में उनकी भक्त बल्यसत्रा के मामिक चित्रण है—

राघो मोच योह करि लीन्हीं।

मयल-तरोत्र समह-सलिल सुबि मनहु धरष बस लीन्ही ॥

सुनहु लवन ! क्षमनिहि मिसे बन मे पितु मरन न जाय्पी।

सहि न लखी सी कटिन बिबस्ता बड़ो पनु घाकुहि माय्पी ॥

—(वही ११)

मरिठ भावना का शबरी का निम्न चित्र देखिए—

प्राणिय पाहुने ऐहू राम-सपन मेरे घात्रु।

जानन जन त्रिपटी मुहु चित राम गरोह निबात्र ॥ —(वही १३)

किष्किन्धाकाण्ड

गीतावली का यह सबसे छोटा काण्ड है जिसमें बचन दो पर है। इममें अरु-म मूक पर्वत पर राम और 'सीता की खोज का धारिष' धारि का वर्णन है। किसी प्रभुम घटना का उल्लेख नहीं है। मानस की इस काण्ड की राम सुधीष भेंट धामि बंध सुषोष का राजश्रिमरु राम का बर्ण घोर नरय बर्णन राम का सुषोष पर रोय सीता योत्र में बानरमेता का प्रस्थान घोर आमरस्त का हनुमान को समुद्र लांपने घोर योत्रा खोज व लिए उत्सवित करना धारि अटनाघा का पून समाव है।

सुन्दरकाण्ड

मानस के समान इस काण्ड में हनुमान का समुद्र भ्रमण सुरगा घोर हनुमान लकिनी-बध संका में प्रवेश विभीषण से मिसन रावण-नीता-बानरलाप संका-दहन धारि व वर्णन नहीं है।

इममें हनुमान के धयोकवन में बहूबने से कथा का सूत्रपाठ है। इमक प्रति रिक्त हनुमान घोर रावण की भेंट सीता मे हनुमान की विचारई, हनुमान का राम के समीप पहुचना बानरसत्ता की संकावात्रा रावण की मंत्रणा विभीषण-सरनागति जाननी-बिबटा संबाह धारि स्थन समाविष्ट है।

इस काण्ड की कथा बड़ी ही सुबलित है किन्तु फिर भी रावण-सीता-वार्ता-भाष तथा कथा-वर्णन जैसी घटनाएँ कूट ही नहीं हैं। इनका गोस्वामी तुलसीदास ने केवल संक्षिप्त मात्र कर दिया है।

अज्ञानि कतु बानी बुद्धिस की कोष-विषय बड़ोइ ।

सबुधि तम मबो ईस-भामनु कलसभय बिषय बड़ोइ ॥ —(पद १)

× × ×

ये सुनी बात असेली के कहो निसिबर नीच ।

बयो न मारै बाल बेठो कास-डाढ़नि बीच ॥ —(पद १)

इसी प्रकार हनुमान का सीता से विवाह मानने पर लंकाबहन का परिचय होता है—

लंक-राहु पर भानि मानियो सोचु राम सेवक को कहियो ।

तुलसी प्रभु गुजस पाइहै, मिटि बँहै सबको सोचु-बख बहियो ॥

—(पद १४)

इस काण्ड में सीता-मुद्रिका और सीता-हनुमान के वार्ताभाष राम से सीता की बिरह-रथा का हनुमान का उल्लेख सीता-त्रिजटा-संवार आदि बड़े ही करण और मर्म-स्पर्शी हैं। विभीषण-शरणावलि वर्णन में प्रसिद्ध भावना का सजीव प्रस्तुतन है।

यों हनुमान बड़े वीर वीर के किन्तु सीता और मुद्रिका की स्थिति से उनका हृदय भी विलप उठा—

गुजन समीर को और करीन वीर बड़ोइ ।

बेकि यति सिय मुद्रिका को बाल बयो दियो रोइ ॥ —(पद ५)

सीता की बिरह-रथा के सम्बन्धमें हनुमान के निम्न शब्द ही सबल प्रमाण हैं—

मातु ! कछे को कहति अति बचन दीन ?

ठकौ तुही जानति प्रबकी हीं ही कहत

सबके मिय को जानत प्रभु प्रबोच । —(पद ८)

सीता की राम-वर्णन की प्रशंसाया बड़ी मार्मिक है—

कबहुँ कवि ! रावण प्रार्थहिने ?

मेरे भयन बकोर प्रीति बस राका सति मुक बिहरावहिने ॥—(पद १)

रावण से अपमानित होने पर विभीषण ने राम की शरण में जाने से पूर्व अपनी माता और भाई कुबेर से अनुमति ली है। वस्तुतः माता से अनुमति लेना काव्य का विशेष स्वभाव है—

जाय माय पाय परि कथा सो गुनाई है ।

समाधान करति विभीषण को बार बार

'कहा भयो तात । तात मारे बड़ो भाई है ।

इहाँ ते बिबद्ध भये राम की शरण बए,

मलो लेक लीक राखे निपट निकाई है। —(पद २६)

मकाकाण्ड

पटनाघो के संघटन में यह काण्ड बड़ा नहीं है। समुद्र में पुल बाँधना, रामेश्वर की स्थापना सेना सहित राम का सँका प्रवेश धारि का प्रभाव है। कुमकर्म धीर मेघनाद के मुठों का भी वर्णन नहीं है। यहाँ तक राम रावण के युद्ध को भी कवि उपेक्षित कर गया है।

इस काण्ड में रावण को मन्थोदरी प्रबोध भगवत् का हृत-कर्म सङ्गम-मूर्छा विजयी राम धयोप्या में प्रतीक्षा धयोप्या में धामन्द राम राग्याभिरुक्त धारि क वर्णन है।

इन पटनाघो में लक्ष्मण-मूर्छा धीर धयोप्या में प्रतीक्षा क स्वप्न बड़े ही कल्पन हैं। प्रथम में राम का बिलाप धीर द्वितीय में कौगत्या का पुन बिरह सम्बन्धी धामन्द निवेदन का प्रबन्ध मिल गया है।

सङ्गम संजीवनी को लाकर (पद १३) उठते हैं धीर उठते पाये के पद में ही विजयी राम का कवि विजय कर उठता है।

राजत राम काम-सत-गुन्दर।

रिदु रज बीति धनुज संघ सोधित करत धाप बिसिय बनकह कर ॥

कौगत्या का मान्द्व इस काण्ड में भी राम के लिए उन्मत्त हो उठा है—

बंठि सपुन मनाबति धस्ता।

कब ऐहँ मेरे बाल कस्तल बर बहुहु काग। फुरि बाठा ॥—(पद १६)

×

×

×

धेमकरी ! बलि बोसि सवानी।

कस्तल धम सिय राम-नयन कब ऐहँ। धब ! प्रथम रजधानो ॥

—(पद २०)

उत्तरकाण्ड

मानस के उत्तरकाण्ड के समान ज्ञान भक्ति-धर्म धारि का तात्त्विक विवेचन यहाँ नहीं है। तत्सम्बन्धी विवरण में हाकर राम-स्वरूप की माधुरी द्विशोभा बगन धारि की प्रमुगता मिल गई है। सीताबली का यह काण्ड मन्मूय गुलमी काव्य में विनिष्पत्ता रहता है।

इस काण्ड में राम राग्य रामरूप बगन रामहिरोना धयोप्या की स्थापना धीमनामिना कस्तल-बिहार धयोप्या का धामन्द राम राग्य गीता-बनबाम मन्मूय धर्म धीर रामधरि का उल्लस है।

तुलसी के मर्बादा पुत्रोत्तम राम इस काण्ड में हिंडोसा भूलते और फाग डेलते हैं। धयोप्या की गरिया भी अपन राबा के द्वारा बसलोत्सव मनाए जाने पर धबीर भोलकर कृदुमो मे भरती हैं और अतु के अनुधार यामिया देती है।

भोना-बेनु-मबर-मुनि सति किर-संघर्ष ।

निब नुन बरम हृदय प्रति मानहि मन तजि पर्य ॥

कंकम सुरस अकीरति सरहि अतुर बर नारि ।

रितु तुनाप सुठि सोभित है ह बिबिब बिबि नारि ॥ —(गीत २१)

राम की माधुर्य परक वृत्तियों को देखकर धारधर्व-सा लगता है और इसे कृष्ण चरित का प्रभाव कहा जाता है किन्तु कव्या की माधुर्योपासना के समानांतर राम की माधुर्योपासना भी प्रबाहित थी। तुलसी उसी से प्रभावित हुए हैं। एत स म्बन्धी बिबेचन अगले धम्म्याय के लिए सुरक्षित है।

गीतावली में धारि से धरत ठक मधुर और करम स्वर्तो का ही समावेश है। प्मस्वरूप तुलसी की सीसी बडी ही कोमल और मधुर हो गई है। जनकी भक्ति भावना का टरन यहाँ भी नहीं टूट सका है। श्री कृष्ण गीतावली के संगत गीता वली के पदों के अन्त में अधिकांशतः राम के प्रति आस्थापूर्ण भावनाओं का सम्यक मिलेगा। राम-सम्बन्धी तुलसी की भावभारा इस काव्य में भी धमूण्य है।

बिजयपत्रिका

भक्ति-असूत बिजय के प्रतिपादन में बिजयपत्रिका तुलसी के ही काव्यों में नहीं किन्तु हिन्दी के श्रेय साहित्य में भी अद्वितीय है। उनके सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य 'मानस' में जीवन की बिबिब परिस्थितियों के बिबर्धन और बिस्लेषण राम के विराट स्वरूप के उन्लेख बर्नाभम की समन्वयवाहिता धारि के साथ नवि-हृदय की भक्ति भावना भी पप-पप पर बिद्यमान है किन्तु राम-रुबा के प्रवाह में वह डूबती-उठराती सी मसीत होती है। सच तो यह है कि भक्ति भावना की ऐसी एकबपता एकमूढता और छारतम्य हिन्दी काव्य में अत्यन्त कही है ही नहीं इसी से 'बिजयपत्रिका हिन्दी का बीरव और धमिमान है।

बिजयपत्रिका के मुक्क काव्य होने से कुछ बिचारक इसे स्पूट पदों का संपह मात्र मानते हैं। काव्य में पदों के मध्य में यत्र-तत्र असम्बद्धता के कारण इस प्रकार का बिचार स्वाभाविक-सा है किन्तु अकत कवि के उद्देश्य के अनुकूल पदों में समाहित भावनाओं की ध्वनि पर मनन करने से यह धारणा निर्मूल है। पर-रचना भले ही स्पूट रही हो क्योंकि तुलसी एक विरक्त सन्त के इससे उगका यह काव्य भी पद्यों के समान एक ही स्वत और एक ही समय पर नहीं लिखा गया किन्तु इस उध्य के साथ यह सत्य है कि धपनी अनुमूत पूर्व-निर्बात बपरेका में सग्होंने धपने समी पदा को पिरो दिया है। इसी से वह अस्पूट काव्य है।

तुलसीदास ने भक्त सुलभ संकाश सिष्टता और मर्यादा व दाय्य अपनी विषय की पत्रिका राजा राम के दरबार में पहुँचाई है। उनका विश्वास देखिए—

बहु मत मुनि बहु पंथ पुराननि बहूँ-तहाँ मारो सो ।
गुरु कह्यो राम भजन श्रीको मोहि लपत राज डगरो सो ॥
तुलसी बिनु परतीति प्रीति फिरि-किरि पबि मर मरो सो ।
राम नाम-बोहित भव-सागर बह्ये तरन तरो सो ।

—(विनयपत्रिका १७३)

मोक्ष मंगल मूल धति भक्तकूल निज निरन्तोसु ।
राम नाम प्रभाव सनि तुलसिहुँ परम परिशोसु ॥

—(विनयपत्रिका १५६)

राम ! नाम को प्रताप जानियत नीके धाय
मोक्षो धति बुरी बिधि निरमई ।
औंधिबे लायक करतब कोडि कोडि कहु
रींधिबे लायक तुलसी को मिलबई ॥

—(विनयपत्रिका २५२)

मूलतः तुलसी के इस विरहाम और धास्वा के कारण ही उनका सभी पर राम को और ही उन्मुक्त है। तुलसी गणेश मूय सिद्ध जानकी हनुमान धयबा धम्म किसी की स्तुति क्यों न कर रहे हों सभी से अपने हृदय के पापों का निवेदन कर अपनी बात श्रीराम के चरणों तक पहुँचा देने के लिए उनकी प्रतिप्रति करत हैं—

मागत तुलसिदास कर बोरे । बसहि रामसिय मानस मोरे ।

—(गणेश स्तुति बही—१)

बेद पुरान प्रगट बात जाग । तुलसी राम भयति धर भाई

—(मूय स्तुति बही—१)

बेहु काम-रिपु राम चरन रनि तुलसी बहूँ कपातिमान

—(सिद्ध स्तुति बही—३)

तेरे स्वामी राम से, स्वामिनो तिया है। तहूँ तुलसी के कौन को काध्ये लक्षिया है ॥

—(हनुमान स्तुति बही—३३)

बहूँक भव भवतर पाइ ।

भैरिणी लयि छाड्यो काहु करन कया बलाइ ॥

जानकी जगजनि जलकी किय बचन सह्याइ ।

तर तुलसिदास भव तब न-प-गुन-गन माइ ॥

—(नाना स्तुति बही—८१)

उपरोक्त के प्रतिरक्षण उद्योग देवी मङ्गा मङ्गा नामी विष्णु तदमण भारत धनुष्य धारि लमी की प्रतिष्ठा धनुष्य स्तुति-मान निर है किन्तु सभी से

कसिकास से जल्पन घपने संताप और घपने उडार की बात राम तक पहुँचा देने के लिए धनुमय-बिनय की है।

रामा राम से सीधी बात कहने की प्रयत्ना इन सभी से बिनय कर देना तुलसी ने इसलिए उचित समझा कि यह सब राम के स्वभाव गुण और वीर भादि को मली प्रकार समझते हैं।

राम राबरी तुनाइ गुन भील महिमा प्रभाइ
 बायो हर हनुमान लज्जल मरत ।
 जिन्हके हिये-सुधव राम-श्रम-भुरतब ॥
 लसत सरस गुल कूनत करत ।

—(वही—२५१)

बिनयपत्रिका का यह स्तुति-सङ्घ प्रथम ७ पदों में समाप्त हुआ है अन्तर्गत बिनय-सङ्घ प्रारम्भ होता है जो काव्य के अन्त तक प्रबहुमान है। बिनय-सङ्घ में तुलसी ने अपने आराध्य राम को आसन्नत मानकर बिनय की विभिन्न परिस्थितियों में संबोधित कहा है।

राम तो बड़ो है कौन कौन भीतो छोरो
 राम तो खरो है कौन कौन जोतो खोरो ।

काव्य में बादि से अन्त तक तुलसी की यही दृष्टि रही है। उन्होंने भी भर कर राम के ऐश्वर्य और बह्युक्त का मान किया है और उन्हीं के मध्य में अपनी मधुता और करनी की कबला की है। इस प्रकार तुलसी की राम भक्ति स्वस-स्वत पर सम्बोधित होती बली है।

कह्यो न परत बिनु कहे न रह्यो परत
 बड़ो सुख कहत बड़े लो बसि बीनता ।
 प्रभु को बड़ाई बड़ी पावनी छोटाई छोरी
 प्रभु की पुनीतता आपनी पाप-बीनता ॥
 इहू और समुधि सङ्गुधि सङ्गुत मन
 समुख होत सुनि स्वामी लमोधीनता ।
 नाच-गुनगाय पाव हाच जोरि माच नाये
 नीचरु निषाये प्रीत-रीति की प्रबीनता ॥

—(वही—२६२)

इस लक्ष्य को तुलसी ने सर्वत्र दृष्टि में रखा है। इसी के आधार पर वह राम के समक्ष सत्याग्रह करने को कटिबद्ध हो उठे—

पन करि हौं हठि बाबु ते रामहार पर्यो हौं ।

'दू पैरो' यह बिन कहे जँझीं जनम भरि, प्रभु की लीकरि निबरयो हौं ॥

—(वही—२६७)

इस सत्याग्रह की स्मिति में तुमसीदास अपनी बात कहना से रकते नहीं हैं।

वैसो हों तसो राम रावरो जन जनि परिहरिए।

कपासिण्डु, कोसमबनी ! सरनायक-पासक डरनि आपनी डरिए ॥

—(बही—२७१)

तुम जनि मन पैलो करो लोबन जनि फरो।

पुनहु राम ! बिनु रावरो सोरुहु परलोकहु कोउ न कहूँ हितु मेरो ॥

—(बही—२७)

कहा न कियो कहाँ न पयो सोस काहि न नायो ?

राम रावरे बिन भये जन जनमि-जनमि जय बुझ दसहु बिसि पायो ॥

—(बही—२७६)

संसार के मायिक-सम्बन्धों को छोड़कर राम के बहूपन की अनुभूति कर और लौकिक कष्टों से दाबित होकर तुमसी ने अपनी यह विनयपत्रिका लिख ली है और यह राम से उस पत्र डालने की प्रार्थना करते हैं—

‘विनयपत्रिका’ होन की बापु ? प्राप हो बाबा।

हिय हेरि तुमसी सिखी सो सुभाय सही करि बहुरि पृष्टिय पाँचो ॥

—(बही—२७७)

तुमसी को परिपद विधान का पूरा ध्यान है। अपने हृदय की सच्ची बातों की ‘सही’ तो वह राम से चाहते हैं और उस सही समर्थन की साक्षी के लिए पंचो की राय लेने के लिए भी कहते हैं। राम से यह निबन्धन कर वह पुनः पापकों को अपने अनुकूल ही रहने की प्रार्थना करते हैं। जो प्रारम्भ में वह सभी से प्रार्थना कर ही चुके थे किन्तु अबसर पर वे कहीं तुमसी को विस्मृत न कर जाएँ इससे उन्हें जगदी अनुनय विनय कर देने की फिर आवश्यकता प्रतीत हुई।

पवन सुबन ! रिपु-दहन । भरतलास ! लजन ! होम की।

निज निज अबसर सुधि किए, बसि जाईं हास प्राप्त पुजि है सास लोग की।

राज-द्वार भसी सब कहूँ साधु-समीचीन की।

सुकल-सुजल साहिब-कपा स्वारथ-परमारथ गति मए गति बिहोम की ॥

समय सँभारि सुधारिबो तुमसी मलीन की।

प्रीति रीति समुझाइबी मतपाल नवाकुहि परमिति बरापीन की ॥

—(बही—१७८)

राजा राम का दिव्य दरबार मया हुआ था। सभी पार्षद उनकी सेवा में प्रवृत्त थे। इन्तुमान और भरत की गति पैगार सबमय न यह कहने हुए तुमसी की विनयपत्रिका राम के समक्ष प्रस्तुत कर ली—

‘कनिकाण्ठ नाप ! नाम सों परनीति प्रीति एक बिकर की निबही है गमा पार्षद गधे हुए न हो सबमग की बाणी में बाणी विमाकर कहूँ उठे—’ही ही यह

बात सत्य है हम लोग भी उसी रीति जानते हैं। राम ने मुस्कराकर कहा—'सत्य है भुक्ति में ही सही है। जबस्य ही जगज्जननी सीता ने भी उमड़े कहा होमा तुमसी उमड़े भी हो राम से कहने की प्रार्थना कर चुके थे। सभी व अनुकूल होने पर तुमसी की विनयपत्रिका पर राम की सही हो गई। 'विनयपत्रिका' की 'सही' तुमसी के आत्मसमर्पण पर राम की स्वीकृति है।

तुमसी ने राम से अनन्य निष्ठ होकर सभी कुछ कहा है। इससे भक्ति भावना का कोई भी अङ्ग छूट नहीं सका है। आत्म निवृत्त के मध्य में ब्रह्म जीव प्रकृति और माया के सम्बन्ध में भी उम्होंने यथासाध्य कहा है। स्वभावतः जीव और प्रकृति ब्रह्म से सम्बन्ध होते हुए भी माया द्वारा प्रताड़ित और बाधित है। इस असम्बन्धता के उन्मूलन के लिए विशिष्टाईती सिद्धान्तों के धारण पर भक्ति आत्मानन्दक है। भक्ति में भक्त का आत्मसमर्पण कर देना ही उसकी निष्कृति का दिशाग्राहक है। इस प्रकार विशिष्टाईती सिद्धान्तों के समर्पण के मध्य में विनयपत्रिका में प्रपत्ति का उत्कृष्ट स्वरूप विद्यमान है।

तुलसी-पद-साहित्य के भाव और रस

१ श्री कृष्णगीतावली

राम के समान कृष्ण द्वारा भी साक रंजन और साक बस्याण हुआ है। हमी से तुलसी ने उनको भी अपनी धास्या और भक्ति का नैबघ बताया है। जिससे उनके प्रकटारी रूप का सम्यक प्रस्तुत इस काव्य में हुआ है। रामानन्द की शिष्य-परम्परा और राम के एकमात्र धाराध्य होठ हुए उनके प्रति एसी भावना वस्तुतः उनके प्रकट स्वरूप की उदारता और व्यापक सहृदयता ही सिद्ध करता है।

श्री कृष्णगीतावली उनकी स्फुट रचना है। फिर भी राम के समान कृष्ण चरित्र के बचन लाकार्वा हा। वह जन जीवन के समय प्रस्तुत करना चाहते थे हमी से उनकी कृष्ण उनके जीवन की प्रमुख घटनाओं पर टिका है। जिनमें कृष्ण के बाल जीवन और बिरह तथा प्रेमरगीत की परिस्थितियाँ ही प्रमुख हैं।

कृष्ण का बाल-जीवन—इस काव्य के प्रारम्भ में तुलसी ने कृष्णावतार की कोई भूमिका प्रस्तुत नहीं की है। जैसी मूर ने 'मूरसायर' में या स्वयं उन्होंने राम के सम्बन्ध में 'मानस' में की है। फलतः कृष्ण-जन्म की कठिनाइयों और बमुदेव-देवकी की विस्तारों के लिए हममें कोई प्रबन्ध ही नहीं है। इसी से जब से कृष्ण बोलने और तुलसी जन्म हैं तभी से कवि ने उन्हें अपने काव्य का धामम्बन बना लिया है।

मगोश उगह गार में लिए हुए धानन्द विमोर है। उनके इस धामम्बास्यास का देलकर कृष्ण उसमें पूछ ही बैठे—'तू इतनी धानन्दित क्यों है? मुझे समझा लो दे। वह उन जैसे पुत्र को प्राप्त कर दिव्यान्ध की अनुभूति करती हुई इतार्थ थी। उसने कृष्ण को उत्तर दिया—'बहु नीम रसन मीन जानी कोर नार्द। इस प्रबन्ध पर तुलसी को भी कृष्ण के भगवान् रूप को व्यक्त करने का प्रबन्ध मिल गया है और वह यह उठे हैं—

तुलसी प्रभु प्रम बिबल मनुज रूप धारी ।

बासकेलि लीला रस ब्रज जन हितकारी ॥

—(श्री कृष्णगीतावली—१)

यहाँ से तुलसी ने बालकृष्ण की सीमाओं के बचन को व्यक्त किया है। कृष्ण बचने फिलने लगे हैं। मगान की ही हुई रागे वह बिलक-बिलक कर लाते हैं और उन दुमरे बचनों का शिवा-रिपारर बिज्ञान है। वस्तुतः एक सजीव चित्र है—

‘छोटी मोटी मोसो रोसी बिकनी कुपटि कैं तु
 बें री मया । ‘से बन्हुया । सो बज ? ‘यकहि तात ।’
 ‘सिमरिये हौं हौं कहौं बलदाऊ को न देहौं ।
 ‘सो बयो ? महु तेरो बहा’ कहि इत उत जात ॥

इस पद्य में वास्तव्य का उद्दीपन रूप में कृष्ण की वास-सुखमय आनुराग और आनुराग व्यक्तता से प्रस्तुति हुई है । ऐसे काव्य चित्र इस काव्य में नहीं है । इसके लिए काव्य के स्पष्ट भाव के साथ स्वयं तुलसी की प्रकृति भी उत्तरवासी है ।

इस स्थान पर इस कव्य का व्यक्त करना अनुचित न होना कि इस प्रकार का प्रथिमयारमक प्रथम राम के वास-जीवन में तुलसी नहीं भी समाविष्ट नहीं कर सकें हैं । ‘रामचरितमानस’ दशितावली और नीतावली में वास-वर्णन आए प्रथम है । किन्तु मूर के कृष्ण के वास-वर्णन के समान उनमें समीपता नहीं है । तुलसी के वे समग्र स्थान प्रथिमयारमक के स्थान पर वर्णनात्मक ही है ।

गोपी-उपासम्भ

श्री कृष्णनीतावली के तृतीय पद्य से गोपी-उपासम्भ प्रारम्भ है । कृष्ण अपने समकक्षक गोप-स्वामी के साथ गोपियों के घर जाकर ब्रह्म-बही-मन्त्रण करते हैं और बसते हैं । गोपियाँ पीड़ित और शक्तिहीन हैं, फलतः उक्त प्रसंग का सूत्रपात हो उठा है ।

गोपियों के इन उपासम्भों के मध्य में कृष्ण के जीवन का प्रारम्भिक भाग ही नीता है । कृष्ण के अनुपम सौन्दर्य पर वे रोम गई हैं फलस्वरूप उनके दर्शन के लिए वे बार-बार यज्ञोदा के यहाँ आ पहुँचती हैं । वस्तुतः कृष्ण के जीवन का यह प्रसंग मृगार का ‘उपासम्भ पद्य’ का है । इनमें कृष्ण प्रनाम्न गोपियाँ प्रायः तथा उपासम्भ की परिस्थितियाँ उद्दीपन हैं ।

गोपियों के उपासम्भ और उनके उत्तर-प्रत्युत्तर में कृष्ण और बसोबा की जो उक्तियाँ हैं बड़ी ही प्रासादिक स्वाभाविक और मनोरम हैं । गोपी के उपासम्भ का एक चित्र देखिए—

तोहि स्वाम की सपय बसोबा ! भाइ बैकु गृह भरे ।
 बैसी हाल करी यहि बोटा छोटे निपट अपनेरे ॥
 गोरस हानि छहौं न कहौं बसु यहि ब्रजवास बसेरे ।
 बिल प्रति भाजन जोन भेताई ? पर निबि काहु केरे ॥

×

×

×

बैठो सनुबि साधु बयो चाहत मानु बबल तन हेरे ।
 तुलसीदास प्रभु कहौं ते बातें न कहि भजे सकरे ॥

कृष्ण ने सब सुनकर अपनी प्रत्युत्पत्ति से गोपी को वह उत्तर दिया कि

उसे यशोदा का समर्पन मिस गया और गोपी भियिया कर रह गई ।

इन्हू के लिए बेसिबो घाईयो तऊ न उबरम पाबहि ।

भाजन कोरि कोरि कर गोरस बैन उखुनो पाबहि ॥

कबहुँक बाग रोबाह पाणि महि मिस करि उठि उठि पाबहि ।

करहि घापु, सिर धरहि धानके बजन बिरधि हरारहि ॥

मेरी टेब घृभि हसभर सो संतत संब जलाबहि ।

बे अग्याउ करहि काहू को ते सिमु मोहि म भाबदि ॥

कृष्ण ने सारा दोष गोपी का मिट्ट किया । साथ ही अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए उन्होंने बसुराम की सबल मारी डी नहीं दी किन्तु अपनी बात-नीति भी स्पष्ट कर दी । फिर गोपी का कौन बिरहाम करे ? यशोदा ने कृष्ण की बातें सुनकर उनका समर्पन किया—मेरा कन्हैया तो कभी दूमरे क बन जाठा ही नहीं । बसुराम के साथ ही भाँगन में खेतता रहता है । मरे यहाँ क्या ब्रूष-वही-सबलन की कमी है जो तेरा यहाँ लाने जावेगा ।

गोपी मग्नित होकर रह गई । सब होती हुई भी मूढ़ सिद्ध हुई । उसके परामर्श के लक्ष्यो में भी कृष्ण की रूप माधुरी की छलकन मरी है—

अब सब लौकी काहू तिहारी ।

जो हम तबे पाइ वी मज्हन बहू धाए ब गारो ॥

कोडि जतन करि सपब कहूँ हम मानै कौन हुनारो ।

तुमहि बिलोकि धान की ऐसी बयो कहिहुँ बर गारो ॥

कृष्ण को भी अपनी सीमा में कम धामन्द नहीं पाठा था । इसी से वह अपना बात-मुनम क्रम न छोड़कर—न छोड़ सक । गोपी उपासम्म बैन किन भावमकी । कृष्ण ने देखा कि यह भली पीछे पड़ी है । इन बार गोपी का तो डोट बताई ही है किन्तु यशोदा को निघाई को भी उठोन धरिषी बृष्टि से नहीं वेगा । पूरा पीत ही बृष्टम् है—

अबहि उरहुनो रं गई बहुरी किरि साई ।

तुनु ! तेरी सी करौ याकी टेब लरन को

लकुच बनि सी लाई ॥

या बज में सरिका पने हौं ही अग्याई ।

मंह साएँ मूर्डहि चड़ी धंगहुँ अहिरिनि तू धूपो करि पाई ॥

तुनि तुन को धति चातुरो अमुमति अनुबवाई ।

तुमतीबाम ग्वालनि ठमो धायो न बतक

कए काहू टगोरी लाई ॥

गोपिनी पुन पुन उपासम्म के लिए धानी है । एक घोर तो अपने परल को सबन करन के लिए यह कहती है—कृष्ण ! मोय तयो तरु तुम पर बिरहाम करा

हैं जब तक हम तुम्हारे पुत्र दियाए हुए हैं किन्तु सब तो यह है कि वे कृष्ण के समस्त स्वयं धपना हृदय हारे बैठी हैं। इसी से उपासम्म क मध्य में भी नहीं उबनी धँसुमी बिबाहक डाँटी है और कभी मेव के संभत से मना करती हैं। हृष्ण ने उनके इन वातुय को बेसकर सभी क समस्त उसे स्पष्ट कर दिया—

परजति कहा तरजितिशु तरजति
बरजत संग नन के कोए ।

उपर यघोवा से कहा—मैया यह स्वयं मुझसे धगड़ा करती हैं और धपना बिबाह प्रस्तुत करने धाने धा पहुँचती हैं। तू तो सीपी है जो इस मुँह लगाए है। यह बड़ी म्मडावू है किसी को यह तिनती बोझे ही है।

यह तो मोहि बिबाह कोहि बिबि
बलटि बिबाहन धाइ प्रयाऊ ।

धाहि कहा मैया मुँह लाबति
पनति कि ए संपरि धमराऊ ॥

यघोवा ने मोपियो और कृष्ण के मध्य के मधुर उत्तर प्रत्युत्तर सभी सुने। वह उनके धलौकिक धानत्य की धनुनूति से स्वयं धिहर जटी फिर वह उनके मध्य में कोई ध्यनधान प्रस्तुत करती तो कैसे करती? धनत वह माठा भी की इधसे उधने एक मनाईतानिक पुक्ति निकामी और उसका प्रभाव तत्काल दृष्टिगोचर भी हुआ।

धरे काल इन 'तरिकाई' को तू छोड़ भी दे। कस तेरे ध्याह धाने धाने। जब वे धोर ठेरी धुमहित सुनेमी कि तू धोरी करवा है तो वे हँसे। धा ठेरे उबटन लगाई तू नहा न। धा ठेरी धोटी मुँह दूँ तक तू मला लगने धनेना धोर ठेरी बड़ाई होगी। माठा का कहुना प्रभाव कर पया। बुझा बन धाने पर भी जब उधे कोई धेधने न धाया तो माठा से पूँछ बैठे—मैया वे धाए नहीं। धे कन धाने।

'कन कन होमा। 'जब तू सी जावेमा। बाठ कुस कृष्ण को भी बँधी। तत्काल ही धोने का उपक्रम भी कर लिया। धनतर बोड़ी देर बाध ही धोकर उठ बैठे धोर कहा—'मैया धन ठो सवेरा हो बमा। सा मेरी धँसुमियाँ है दे। बिबाह की बाठ का कृष्ण पर प्रभाव बेसकर यघोवा धोर त्बालिन हँध ही उस समय कृष्ण तजित होकर यघोवा के बधस्वम से धिपट पए।

मनोईतानिक धर्य के धाक धमिनेय तत्त्व के मिधित होने के कारण पीठ बड़ा ही मधुर है।

धँको देरे ललन ! ललित तरिकाई ।

धैरे गुत ! धेधुधार कालि तेरे

बई ध्याह की बात बलाई ॥

उरिहँ साधु लधुर धोरो सुनि

होतिहै नइ तुलहिवा सहई ।
 उकरी ग्हाहु पुहो कुरिया बलि
 बेलि मनो बर करिहि बड़ाई ॥
 मानु कहुी करि कहत बोलि है
 मइ बड़ि बार पालि ती न धाई ।
 अब तोइबो तात यो 'हूँ' कहि
 नयन मीचि रहे पीडि कम्हाई ॥
 उठि कहुी मोर मनो भँवलो है
 मुदिन महुरि ललि प्रातुरताई ॥
 बिहँती खालि जानि तुलसी प्रज
 सकबि लप जलनी उर पाई ॥

गोपी-उपासक के पदों के क्रम में ही 'उत्कलम-बन्धन' 'इन्दकोप-मोक्षार्जन' 'गोबार्जन' 'मुरसी-माधुरी' और 'रूप माधुरी' के पद भी बलिष्ठ हैं। इनमें 'उत्कलम-बन्धन' विषय गोपी-उपासक का ही एक घस कहा जा सकता है। 'गोबार्जन धारण' और 'गोबार्जन' में कल्प के जीवन का सामाजिक भाव तथा 'मुरसी माधुरी' और 'रूप माधुरी' में कल्प के ऐकान्तिक प्रेम-माधुरी का स्वल्प विद्यमान है।

सम्पूर्ण सम्मेलन शृंगार में तुलसीदास कृष्ण की चिरनगिनी राधा की पूज उपेसा कर गए हैं। स्वभावतः यह विचारणीय है कि ऐसा क्यों? कृष्ण-नाम्य में राधा के सम्बन्ध से पुष्टि सम्प्रदाय में माधुर्य के प्रतिपादन में बड़ा सहयोग मिला है। राधा कृष्ण का धार्मिक परिचय समझ गाइतर होता गया है और मूर में तो राधा के सम्बन्ध में यहाँ तक कहा है।

राधा माधव भेट गई ।

राधा माधव माधव राधा शीत भुग यति ह्यं कू गई ॥

माधव राधा के रँग रंजि राधा माधव रँग रई ।

माधव रामाप्रति निरन्तर रतना करि सो कहि न गई ॥

बिहँसि कहुी हन तुम नहि अंतर, यह कहिहं जन जन पठई ।

तरवात प्रभु राधा माधव अत्र-बिहुर निज नई नई ॥

—पं ८२१० (समा-नन्दरथ)

पुष्टि सम्प्रदाय में राधा को धामन्द की प्रादि यक्ति कहा गया है। इनमें उनके स्वस्व को यदि घट्टछाप एवं प्रम्य कृष्ण अन्त बधियां न प्रसुगता ही शू.ता धारण ही क्या है। नम काव्य में तुलसी का राधा को सम्बन्ध न करना बस्तुतः यह स्पष्ट प्रमाण है कि वह मूर या प्रम्य किसी कवि से प्रभावित न थे। कृष्ण के चरित्र में भी उनका स्वस्वन्द स्पष्टिगत ही उपर्यक्त हुआ है प्रम्यवा राधा के चरित्र का पूट जाना कठिन ही नहीं समझा होता। उपर्यक्त के सम्बन्ध में यह शर्क भी प्रम्युत

किन्ना या लफटा है कि तुमसी की यह स्मृत रचना रही है इसके राधा का समावेश न हो सका हो। यह तर्क धर्मदाम्न रूप से बड़ा मजबूत है क्योंकि कृष्ण-काम्य की प्रमुख यन्त्रागो को तुमसी ने सांकेतिक रूप से स्पष्ट किया है। जब गोपी या गोपियों का सम्मिलन है तब राधा का व्यक्तिगत रूप से कृत जाना चाहिए? यह तथ्य स्पष्ट करता है कि तुमसी ने ब्रह्मभावात्कार द्वारा स्वीकृत कृष्ण-विरत की मांग्यता नहीं की है। वस्तुतः कृष्ण के सम्बन्ध में वह भ्राम्यता की उन परम्पराओं से प्रभावित न जिनमें राधा को कृष्ण का सामीप्य प्राप्त नहीं हो सका है।

इसी सम्भोग सूत्रार में जहाँ कृष्ण और गोपियों धर्मिक रूप से एक दूसरे की हा रही थी वहाँ कृष्ण अपनी प्रतीकिक सीमाओं से सबके मननाश्रित्य और धारण के विषय में। जहाँ का समाज कृष्ण के विषय में धारण है वह जैसे देवता की उपासना करने में भी धर्मिक अनुभव कर रहा था ऐसे ही भी धारण के लिए कृष्ण के विषय की बढना भी प्रस्तुत हो गई।

गोपी-विरह

जो तुमसीदास ने कृष्ण विषयक विरह को सुरदास या हरिदोष के समान लोक-ध्यायी विषय नहीं किया है। भाव भूमि को वह आन-बुझकर अधिक विस्तार नहीं दे सके हैं। इसी से गोपी विरह में वैविध्य समाहित नहीं हो सका है।

गोपी-विरह का कवि ने उद्भवतापूर्वक विषय किया है। इसी के मध्य में उद्भव के कृष्ण के सम्बन्धवाहक होकर जाने में उनको अपने अन्तर्गत की कहने को भी बर्कियाँ मिली हैं। उनके कहने में उनके प्रेम और स्नेह की ही धर्मिकता हुई है। कृष्ण उद्भव और लोको के लिए नहीं हुईं उनकी उक्तिओं बड़ी ही मधुर और मर्म स्पर्शी बन पड़ी है। मूर को गोपियों के समान कृष्णगीतावली की गोपियों भी अनुभव जग्य प्रेमीयारों को ध्येय करने में सफल है। गुरुदास की गोपियों के समान उद्भव की एक-एक बात का देने का चतुर्थ उनमें नहीं है। वे उद्भव के सिद्धान्त को भी मानने को प्रस्तुत हैं यदि प्रिय कृष्ण से उनका पुनः सम्मिलन हो जाने। इसी से तुमसी की गोपियों का विरह भी मानव भूमि पर तरलता से प्रतिष्ठित किन्ना या सचता है।

कृष्ण की रूप-माधुरी अपूर्व और प्रतीकिक है इसी से विरोधाभासा में भी उद्भव धारण गोपियों से छोड़ते नहीं बनता। उनकी उक्तिओं में जो उद्भवों अपनी विषयता व्यक्त करने के लिए परस्पर गोपियों में करी हैं, इसका पूर्ण प्रस्तुतन है—

नव प्रियत कुतर्क कोटि करि कुबल भरोसे नारि ।

तुमसी जग भूजा न भूविगत कान्ह कबर धनुहारि ॥—(क०बी०—२७)

× × ×

सावित्र्य रूढ़ि मयतिन आयें सैं

न टरति मोहम मूरति ।

नीस मलिन स्याम घीभा धगमित काम

शबन हृदय बहि पूरति ॥

पमिन सारवा धेप नहीं कहि

सरुम धंय धंय पूरति ।

मुलसीवास बड़े भाग मन

लामेहु तें सब सुख पूरति ॥ —(कृष्णगीतावली—२३)

ऐसे सुन्दर रूप जो काम जीवन से ही उनके ध्यानमें धीर विनोद क बिर-साहकर रहे हों अपने बियोग से गोपियो को दुःखाम में क्यों न डुबा बैठे ? इस बाग्ण बिच्छ में उनकी बिच्छोकिठपां पूर्ण अनुभूत हैं उनमें अहारमक भावनामा का समावेश नहीं है ।

रूप क उदासीन भाव क लिए तो उनके मन में व्यथा है ही किन्तु नेत्रा धीर मन ने भी उनके साथ बिस्वासपात किया है यह स्मरण कर बह मर्माहित हो उठी है—

बिछुरत धी बजराम घाम

इन लपलप की परतीति गई ।

पड़ि न सवे हरि संप सहज तबि

हूँ न गपु सखि स्याम गई ॥

पब काहै सोबत मोबत जस

समय गए बिज सुख गई ।

मुससिवास जड़ भए धारहि तें

बब पसकनि हठि बगा गई ॥

—(बही—२४)

मनोबैधानिक मर्य पर आधारित मन के नियम नहीं गई उचित भी उनकी बिग्ह-बेचना धीर बिबगता को स्पष्ट करती है । मन की यह स्थिति है कि अपनी पमिगिष की पूर्ति क लिए बह धीर के सम्पूर्ण धर्मों को अपने अनुभूत बना लेता है किन्तु इतनाही होने के कारण धीर की पूर्ण उपेक्षा कर बह जहाँ जाना चाहता है स्वयं जमा जाता है । मन क इस बाहुल्य का उत्सव बनि ने बड़ी बिदग्धता से किया है—

नहि कपु बोप स्याम को माई ।

जो हुप म पायों सजनी सुन

तो तो सब मन को बनुराई ॥

निज हिन सादि तबहि ए बँबक

सब धंगनि बति प्रीनि बनुराई ।

लियो जो सब सुप हरि धंय-संग को

बहं बहि बिबि तह मोइ बनाई ॥

घर मेंरनाल पवन सुनि मनुबन

तनुहि तजत नहि बार लगाई ।

रबिर रूप-जल महें तो छँ

निजि न फिरन की बात बसाई ।

एहि सरोर बसि सजि बा सठ कहें

कहि न जाई जो निजि फिरि पाई ।

तबपि कछु उपकार न कीन्हो

निज मिलायो तहि मोहि निलाई ॥ —(दृष्टवतीठावसी—२१)

सम्भोज शृंगार के उद्दीपन तबब चन्द्र द्वारा विरहविकल्प की अनुभूति भी गोपियों द्वारा की गई है। इस स्थिति में मूम उन्हें चाह से अधिक प्रिय और बच्य हर है—

सति ते सीतल मोकी जाले माई री । तरनि ।

पाके जएँ बरति धम धेंग बच

बाके जएँ निजति रबनि अनित बरनि ॥

चन्द्रमा से मूर्ध के अधिक सुखद मग्ने का कारण केवल माधव विभोग पर ही सम्भव है—

सब विपरीत जए माधव बिनु

हित जो करत अनहित की करनि ।

तुमसीदास स्वामसुन्दर विरह की

बुतह बसा तो जो ये परति नहीं बरनि ॥

इसी विरह-बधा के मध्य में तुमसीदास ने भ्रमरगीत की भी योजना की है। कृष्ण-काम्य का यह अंध ज्ञान की तुलना में भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिये प्राया मिल है। तुमसी की गोपियाँ भी मूर की गोपियों के समान भौमी-भाभी हैं। अपना ठक वह उख पर सावती नहीं किन्तु अपने प्रेम के उल्लेख से ही वह उन्हें निकतर कर देने में समर्थ हुई है। वह उख में स्पष्ट बहती है—

जेहि उर बसत स्वामसुन्दर धन तेहि निरुन कस प्राबे ।

तुमसिदास तो बजन बहाबो जाहि बुररो भाब ॥

गोपियों के हृदय में उख की बाभी के प्रति सम्मान है। इसी से वे उन्हें सभी कुछ वह बामने के लिये अभिप्रति करती हैं। जब में चहकर जहूनि प्यारे की नीजार् देकी नहीं है, इसा से अज्ञान बने वह सभी कुछ नहे जाठे हैं। इससे बोप सतवा न होकर अपना ही है क्योंकि प्यारे के छात्र प्राण मए नहीं इससे जहे सभी कुछ सहन करना होगा—

मभुकर । कहुत कहन जो वारी ।

बलि नाहिन अपराध राबरो प्रकृति साब अनि मारी ॥

नहि मुम ब्रज बलि नंदलाल को बालबिभोर निहारी ॥
 नाहिन रास रसिक रस चारयो ताते डेम ली डारो ॥
 तुलसी जो न गए ब्रौतम संग प्राण त्यागि तनु ग्यारी ॥
 तो सुनिबो देखिबो बहुत प्रब कहा करम सो चारो ॥

—(कृष्णपीठावली—३४)

इतना ही नहीं गोपियाँ ये भी कहती हैं कि यदि कृष्ण के बिछड़ म प्रातुर
 और प्राहुम हम गोपियों का प्राप अपने ज्ञान के साम्य समझते हैं तो परमार्थ की
 चर्चा करते क्षमिम । प्रियतम क स्या की बायी मुने में उन्हें विरोध ही क्या हो
 सकता है ? वस्तुतः उनके प्राचरण में विनम्रता की पराकाष्ठा है ।

ऊचो नू कह्यो तिहारोइ कीबो ।

भोके जिय को जानि धनमपी समुझि तिलावन कीबो ॥

स्याम बियोगी ब्रज के सोपनि ओय जोय जो जानी ।

तो सेकोच परिहरि पासायी बरजाएहि बखाना ॥— (वही—३२)

उद्वेग जैसे बीडिक मानी धपनी मुनिरिचठ विचार धारा के अनुसार धपनी
 बात कहते ही रहे होंगे और गोपियाँ भी बिना ननु मच के मुनठ ही रही होंगी । इसी
 से पुन विनम्र हा गोपियाँ कह उनीं—

मुम कहि रहे हमहु पबि हारी

सोचन हठी तमत हुठ नारी ।

तुलसिदास सोइ बचन करहु कथ

कारेठ स्याम इहाँ फिर जाहीं ॥

कृष्ण के सहचर्य के लिए उनका मन में उद्वेग और व्यथता घरी हुई है ।
 जिससे उनका धन्य किसी बात प्रमना स्वरूप से समझोता हो हा नहीं पाठा । उद्वेग
 भी निरास हो रहे । उनका ज्ञान क्षमिम न हो सका । वह जिय सज ब्रज और पर्व के
 नाथ ब्रज में पचारे ध उमसे धनिक निरासा और सज्जा के साथ सीठ गए । मच तो
 यह है कि प्रम-लक्ष गोपियों की धमनियों में इस प्रकार प्रविष्ट या कि उनम उनका
 परित्याग हो ही नहीं सकता था । इस प्रकार प्रम के चारण ही गोपियों ने उद्वेग में
 धपनी चर्चाया के मध्य में कृष्ण और कृष्ण के लिय भी बहुत कुछ कहा है । कृष्ण के
 प्रति बहो मानी की उक्ति देगिए—

ब्रज को बिछड़ प्रब संग महुर को

बुबदि बरत न भेदु सज्जाम ।

लभुझि ता प्रीति को रोनि ह्याम की

सोई बाधरि जो बरेली उर धाने ।

इसी प्रकार कृष्ण को भी उन्होंने अपने व्यंग्य का मध्य बताया है—

रातो लवि कूबरी सीठ पर में बाते बहुबीही ।

रघाम तो गाहक पाई सयानी । खोलि दिखाई हूँ गोहीं ॥

नायर मन सोभा सागर कहि बग कुचती हूँसि मोहीं ।

मियो बप ई ग्याल पाँठरो मनो ठग्यो ठग्यो मोहीं ॥

कहत को तो पोपियाँ कहसाठी है किन्तु प्रकृतः अपनी निबसता से परास्त हो एहने के कारण कृष्ण की बप माधुरी की अपनी साकसा पर पटाक्षेप नहीं कर पाती । इसी निबसता के मध्य में एक गोपी का निम्न सुम्पन है । क्यों न कण्ठ और कुम्भा को मनाकर ब्रज में ले आया जाय । यशोदा और मन्ध को सुख होना और छात्र में बसने जैसे बिल अपने को भी बर्षान हो जायेंगे । मने ही कुम्भा बासी और प्रसुम्बर रही हो किन्तु कण्ठ की हो जाने के कारण तो सम्मान की अधिकारिणी है ही ।

सब मिलि साहस करिय सयानी ।

ब्रज आनिपहि भवाइ पस्य बरि काहू कुचरी रानी ॥

बसै तुदास नवसत होहि सब फिरि चोक्ल रजवानी ।

महरि महर जीबहि सब जीबन कुलहि भोर मन जानी ।

तबि अनिमान अनक अपनो हित कीजिय मुनिबर जानी ॥

बैबिबो बरस हूसरेहुँ सोबेहुँ बड़ो नाम सपु हानी ।

पाबक परत निविदि लाकरी होति प्रसत बप जानी ॥

तुमसी तो तिहु भुवन पापबी गन्धी सुवन सन मानी ।

—(कृष्णगीतावली—४५)

इस पंक्तिमें में भारतीय नारी की सज्जब भावना छिपिहित है ।

कृष्णगीतावली की सपु सीमाओं के कारण तुमसी अपने प्रमरपीत में सूर दास के समान वैविध्य प्रकस नहीं प्रस्तुत कर सके किन्तु काव्य के लक्ष्य की पूर्ति में यह पूर्ण सफल हुए हैं यह सर्वनाम्न है । प्रेम-परक-भक्ति ज्ञान से उच्चतर है, यह कव्य-काव्य की भावना उन्होंने भी सिद्ध कर देने की पूर्ण चेष्टा की है ।

तुमसी की आस्था और भक्ति

तुमसी की कृष्णगीतावली में उनकी आस्था और भक्ति स्वल्प विद्यमान है । ये उनके व्यक्तित्व में इस प्रकार बूले-मिले हैं कि उनके बिना उनकी जानी प्रस्तुति ही नहीं हो पाती । इसी से उनकी रचनाओं में उनका कोई न कोई बप प्रवरम समाहित मिलेगा ।

तुमसी के इस काव्य में जी स्वत-स्वत पर कव्य क भगवत बप पर प्रकाश पड़ा है ।

तुमसी प्रभु प्रम विवत ननुन रूपवारी ।

आसनेनि सीमा रज बज बज विववारी ॥ —(कृष्णगीतावली—४५)

इहू ही के माए ठे बधाए बज नित गए
 नावत बाहुत सब सब सुख बियो है ।
 मंदलाल बाम बस संत सुर सरबल
 गाइ तो घमिय रस तुलसिहूँ बियो है ॥ —(वही—१९)

× × ×
 तुलसी बालकलि सुख निरकत
 बरयत धुमन सहित सुसैमा । —(वही—१६)

× × ×
 मन्वतमदन मुकको सुन्दरता
 कहिन सकत भूति सैब जमाबर ।
 तुलसिबाम भेलोभय बिमोहन
 ५५ कपट नर विधिब मूल हर ॥ —(वही—२१)

उपर्यन्त के प्रतिरिक्त घम स्वत भी उद्भूत बिये आ सवठे हैं जिनमें तुलसी की धार्मिक भाव-भारा अनुष्णित हो उठी है । इस काव्य के अन्त के बा पदों में जिनमे डापबी की लज्जा-रक्षण-बीजा का याम किया गया है कवि को यह भावना अमूर्त हो उठी है । कल्प के इस तरघम से डापबी मनाप हो उठी है और उठी के तात्पर्य में यह कह उठे है—

सुप सुप सब साक केतव क
 लवन कलेस, कुताम लतागी ।
 तुलसी को न होइ सुनि कीरनि
 कल्प कपालु भवति पम राको ॥ —(वही—६१)

यह अक्षरक मरप है कि इस काव्य में 'मानस भी विमलपरिका के समान भक्ति-सत्त्वों के विकल्प के स्वत नहीं है । किन्तु यह कहना कि तुलसी ने भक्ति भावना धीर प्रसन्न का परिस्थान कर कल्प-वरित का गान किया है या राम के प्रतिरिक्त घम म उनही घास्वा ही नहीं थी—यह एक तथ्य की तो उपेक्षा है ही साथ म एक महापवि की सद्भावना के प्रति भी सम्पाद है । इस काव्य का देगकर तुलसी के जीवन के सम्बन्धन उम पहला पर, जिसम उनके अकुरीष पर हृष्य की राम-रूप पारन करने का बाध्य होना पड़ा महना विश्वास नहीं होता । सब ता यह है कि मूर धीर तुलसी संकीर्ण दृष्टिकोण केकर नहीं जग्मे म इसी से मूर के राम-वरित धीर तुलसी ने कल्प-वरित सिद्धकर अपनी उदात्त भावनाघा का प्रस्तुत किया है । व हमारी संस्कति के प्रतिनिधि म इसी से उनकी बापियो गताविष्यों के उपरान्त घम भी हम जीवन के निर्माण धीर निष्कति के लिए मूक सन्देश देती है । इन स्वरूप उनमे हम कठार्थ धीर घावस्त है ।

यह मरप है कि कल्प जीवन की ध्याक भावनाएँ कल्पनीतावनी में महा

कवि द्वारा ग्रहण नहीं की जा सकीं किन्तु उसके सधु रूप में 'मानस' और 'बिनय पत्रिका' के महाकवि का हृदय आवन्त और संप्राप्त है इसे सम्बोधित नहीं किया जा सकता।

३ गीताबली

पिछले अध्याय में हम देख चुके हैं कि गीताबली में समस्त राम-चरित ही एक प्रकार से गीतों में समाहित है। यदि से अन्त तक राम-कथा इसमें उपलब्ध है किन्तु इस सम्बन्ध में 'मानस' जैसा अध्याय है वही 'गीताबली' नहीं। इसमें उसकी प्रमुख बटनाएँ भी उल्लेखित हो उठी हैं। इसका एकमात्र कारण इसका गेम काव्य होता है अर्थ नहीं। इसी से कल्याण और मञ्जु बटनाओं का कवि द्वारा इसमें समन्वित किया गया है, अप्रिय और कटु बटनाएँ छोड़ ही दी गई हैं। मानस महाकाव्य है इससे सभी प्रकार की बटनाओं और एक ही-प्रस्तावना का उसमें स्वागत हो सकता था परन्तु गीताबली जैसा गेम काव्य उन सबको पचा नहीं सकता था इसी से वे उन यहाँ परिलक्ष्य हैं।

राम-कथा विषयक परिवर्तन और परिवर्तन होने पर भी इसका बालकाण्ड राम के बाल-जीवन और उत्तरकाण्ड उनके माधुर्यपूर्व स्वप्नों से युक्त होने के कारण शेष राम-काव्यों में वह अपना वैशिष्ट्य रखती है। इसी से 'मानस' और 'कविता बली' के समस्त भी गीताबली की अपनी प्रतिष्ठित धारणा है।

राम का बाल चरित—राम के बाल चरित वर्णन में गीताबली तुलसी के शेष काव्यों में सर्वोपरि है। यह स्वतः प्रसंग 'रामचरित मानस' और 'कविताबली' में भी उपलब्ध है किन्तु उनमें वे बड़े सीमित हैं। यहाँ तुलसी का महाकवि उनके बाल-जय पर मुख्य रूप से मयीदा के साथ अपनी भावनाओं का निरव्यक्त बला पचा है जिससे उनके बाल-जीवन की विस्तृत और विविध भौतिकी स्वमेव प्रतिष्ठित हो उठी है।

गीताबली के बालकाण्ड के प्रथम छियासी छंदों में राम और उनके अनुजों के शिशु और बाल-जीवनों की विविध भौतिकी है। यों तो राम के साथ उनके अनुजों के वर्णन साथ-साथ प्रवहमान है किन्तु कवि की दृष्टि राम पर ही अधिक टिकी है जो काव्य के आलम्बन होने के माते पूर्ण न्यायोचित है।

इस प्रसंग में बच्चाई, नामकरण, दुलार तथा वात्सल्य परक किन्तु ही विषय कवि द्वारा सहृदयता के साथ चित्रित किए गए हैं। किन्तु राम बिलु के भवठार है दुष्ट-निकम्ब है, रामदुलार है—इन विचारों से प्रभावित होकर तुलसी ने उनके महामहिम व्यक्तित्व की एक सुनिश्चित बपरेखा स्वीकृत कर भी और अल्प पुरुष में वह उनका चित्रण करते बने गए हैं। इससे वे चित्रण बम्भीर हो गए हैं। राम और उनके अनुजों ने अपने 'शिशु' और 'बाल' भवस्थाधो में 'मैं' को लेकर क्या कमी कुछ

कहा ही न होया ? अपन परिवार म घोर बाहर क्या के करी लठे न हाग धीन मान मनीबन का कपक न चला होगा ? यह सत्य है कि वह नारायण से किन्तु वह गर कप में धबठरित हुए थ। इससे उन्होंने ऐस सब धारणय किए ही होये किन्तु दुसरी के उनको कहीं भी बोलन का धबकाप नहीं दिया है। इसम अधिमध्यम स्तरों का इन बिचरों में पूरा धभाव है और मूर के बाल-बचनों के समान इन बचनों म मनी बला नहीं आ सकी है।

गीतावली म 'मानव क समान राम-जग की न तो लखी भूमिका ही है और न प्रकृत काव्यों की दीर्घ परम्परामो का ही उल्लेख है। यह सब उसके स्तुति और मय काव्य होने के कारण सम्भव भी नहीं था। कवितावली म भी उपयुक्त बिचरों का धभाव है। इससे दोनों काव्या में राम के जग और विष्णु इन से ही रामकथा को धपसर किया गया है।

धानु सुबिन सुम धरी नुहाई।

कप-धील-गुन बाम राम नुप-भुवन प्रगट भए धाई ॥

धति पुनोठ मधु मास लपन-पद-बार-जोग लजवाई।

हृदयकां चर प्रचर भूमिसुर-ससरह पसक जलाई ॥

बरपाई विबुध निरर कुतुमावलि लप कुंभनी बजाई।

कीसस्याहि नातु मन हरपित यह मुक बरनि न जाई ॥

—(गीतावली बातकाण्ड—१)

कवितावली के प्रथम सर्वाया में श्री राम का विष्णु-रूप ही विहित है—

धबधेत के द्वारे सकारे धई सुत मोद के भूपति ल निवर्त।

धबनोकि हों तोब विमोचन को टपि-ती रही जेन ठये धिकते ॥

दुमली मन-ब्रजन रंजित-धजन केन मुकंजन-जातक ते।

लजनी सति में लपनोत उरी बबनोत सरोरह ते बिचसे।

—(बाणकाण्ड—१)

राम जग पर राज-परिवार तथा धयोप्या के नर-नारियों के धामान-ममा रोह माहर-मान मुरों मुनिया धीर माता का उत्तमान राजा बहारप की दान दक्षिणा पुत्र-जग के संस्कार धीर धादि क बचन कवि से प्रस्तुत किये हैं। उनके कामकरण संस्कार के धबन पर भी नगर की धिद्वितीय सात्र-मग्ना धीर धामो-दुग मनी के उनमें प्राय सेने के बिचरण विहित किये गए हैं।

बाण-धरित के मधुर धीर धाधुक बचन बस्तुन 'कुमार क धमधंत जगज्ज है। इसम राम का बाण जीवन दो भागों में दृष्ट्य है। प्रथम म बर पारिधारिक बातावरण म पम्पकित है और द्वितीय म राम अपने धनुष धीर मगधों तटिन पारि धारिक मीमा का सपिकर धपाध्या में बिचरध धीर विविध बीड़ाएँ करने है। उनके निगु जीवन के दग जननी धीर जनक के धाम्य में ही ध्यतीत हाने है। उन मयम

उनके मातृसौं से प्रापरा विषयक विविध प्रकार की भावनाएँ और नामनाएँ प्रस्फुटित होती हैं। तिस्रु के उदास और राग हो पटने पर माता का व्यथ और चिन्तित हो उठना स्वाभाविक है।

पुत्रग सैज सोमित कीसिस्वा रश्चिर राम तिस्रु गोद लिये ।
बार बार विमुचरन बिलोकति लोचन चाद बकौर किये ॥
कबहुँ वोड़ि पदपान करावति कबहुँ रातति साइ हिये ।
बालनेलि पावति हलरावति पुलकति प्रेम पिपुस विसे ॥

पुत्र के सामीप्य से मातृ हृदय क वास्तव्य का उमङ्ग पड़ना जीवन का चिर सत्य है। फिर वीरस्या वह माता थी जिसने अपनी बुद्धावस्था में राम जैसे पुत्र को जो शकुर का सर्वस्व और देवताओं का धाराध्य का प्राप्त किया था। कुछ समय पूर्व पुत्र-प्रमाण में जो चिर बुद्धी की प्राप्ति बही छपूटी होकर अपने सीमान्त का अनुभव करती हुई चिर सुधी है। मात्र राम तथा अन्य पुत्रों को लेकर उसके मातृसौ से विविध प्रकार की गुमाकीयाएँ प्रसूत हो रही हैं।

हूँ ही मात कबहि बड़े बलि भैया ।
राम लयन भावते भरत-रिपुचरन चाद चारयो भैया ॥
बास विभूषन बसन मनोहर धंगनि विरखि बने हौं ।
लोगा निरखि निष्ठावरि करि उर लाइ चारणे जे हौं ॥
धगन भगन धंगना बलिहो मिति तुमकु तुमकु कब भैया ।
कतबल बचन तोतरे मंडूल कहि 'मां मोहि बुलैही ॥

—(गीतावली [बालकाण्ड—८])

वस्तुतः इस सुख-समुह में कौटुम्ब्य के निमग्न रहने पर भी वह प्रसूत ही है। सुमित्रा भी इसी प्रकार की भावनाएँ व्यक्त कर रही हैं—

बयनि कब बसिहो चारो भैया ?
प्रेम पुलकि उर लाइ सुवन सब कहत सुमित्रा भैया ॥
सुम्बर तनु तिस्रु बसन विभूषन लबकित निरखि निरकिया ।
बलि तुन प्राण निष्ठावरि करि करि लैहू मातु वलैया ॥
दिलकनि नरनि, चलनि बितबनि भजि निसनि मनोहर लैया ।
यनि बंभनि प्रतिबिद भजक छवि छलकिहू नरि धंगनया ॥

—(वही—९)

वास्तव्य से परस्तचित राज-परिवार का एक चित्र और देखिए। इसमें दशरथ भी सम्मिलित है—

राम तिस्रु गोद गृहामोर भरे दशरथ
कीसलानु ललकि लयनलाल लय है ।
भरत सुमित्रा लये ककयो सत्रुसनन

तम प्रम पुलक मयन मन भये ह ।

परिवार के इस आनन्द और उल्लास के मध्य म राम को बृष्टि लय आने से, चिन्ता और सोच के क्षण भी घटित होने हैं । माता ने देव पितर और ग्रहों की पूजा की और मृत का तुमादान मा किया किन्तु सब निष्फल हुआ ।

राज्य धरसे ह भोर के पय पियन न नीके ।

रहत न बैठ टाड़ पालन भ्गवाबतहू रोबत राम मेरो तो लोच सबहीरे ।

प्राप्त म कृतमुरु क तुमिह मन्त्र क प्रयोग स परिवार का मच्छट ही नहीं टमा राम जिसकने सय और सभी भाई मुझ की नीद सो गए । पुत्रा के हिन और पहित की धनुभूति स सभी रागियाँ चिन्तित भोग उरमुक हैं । बीयस्या को जब नगर में एक स्वातिपी के घाने का पुन सबाद सिमा बहु अपन पुत्रा के माधी ओवन की गति बिधि जानने के लिए धातुर ह्ये उठी । तुमगी क इस गीत म पारिवारिक जीवन का चित्र धरा उतरा है जिसमें मातृ-हृत्प की विमर्शता उरमुकता कीतूहल आनन्द घाधि सभी कृष्ण हैं ।

अबब धात्रु घाममो एकु घायो ।

करतल निरधि बहुत सब पुनगत बहुतम्ह परिधी पायो ॥

बड़ो बड़ो प्रमानिक बाह्यन संकर नाम मुहायो ।

सैय सिसुमिय्य सुगत कोतक्या भोवर भवन बुतायो ॥

पय पकारि, पुत्रि विबो पालन घसन बसन पहिरायो ।

मेके चरन चाक चाट्यो सुत माच हाप दिवायो ॥

नदसित बाल बिलोकि बिप्रतन पुसक नयन बस टायो ।

भैल घोड कमल कर निरघत उर प्रमोद न घमयो ॥

अनम प्रसंग बड़ो कोसिक मिति सोय रघवबर गायो ।

राम भरत रिपुबधन सजन को जय तय सुजम सनायो ॥

तुलसीदास रतिबास रहसबस भयो लबको मन पायो ।

सतनायो महिदेव प्रसीसन रामेड सखत निपायो ॥—(बागवाण—१०)

इन प्रसंगों के माच ही कृष्ण मून न पीठ भी धाए हैं । कवन एक पयन ही बिनिय जो रूपक प्रपात कीयस्या की भावुक भावनाया का व्यवन करता है—

बोधिदे लासन बातने ही भ्गवायो ।

कर पद मून बल कमल ससन सति सोबन भँवर भुनयो ॥

बास बिनीव मोद-अंजुनमनि किलवाज गानि जमायो ।

तेह धनुराम ताग गुहिकरहे पति मूदनपनि बुनयो ॥

तुलसी प्रतिन रुनी मानिनि उर तो पहिराह बुनयो ।

चाव चरित रघुवर तेरे तेहि मिलि माइ चरन बिनु लायो ॥

—(बागवाण—१८)

इस विविध आनन्द प्रभाव और भावनाओं के मध्य में सभी राजपुत्र बड़े होने लगे हैं। अब वे धुटना के बस होइये भी मान हैं। उनकी यह अवस्था भी परिष्कृत और पुरजत के लिए सुख है—

प्रांगत विरत धुटकवनि जाए ।

मील अलख तनु स्याम राम सिधु अलनि निरखि मुख निकट बुझाए ॥

×

×

×

अंग अंग पर मार निकर मिलि छबितमूह भं जे अनु जाए ।

तुलसीदास रघुनाथ रूप गुम ती कहीं जो बिधि होंहि बनाए ॥

— (बालकाण्ड—२६)

राम के इस सभी चरित्रों में उनका वास्तविक जीवन की स्वीकृति उपलब्ध है।

कहीं-कहीं उनके गद्य-छन्द के अलंकार वर्णन भी प्रस्तुत हुए हैं। जिनमें चपलों और छत्रेसाधो का इतना प्राधिकार है कि मूल चित्र से दृष्टि का हट जाना स्वाभाविक है। रघुवर वास-छवि का एक अलंकार स्वयं दृष्टव्य है—

रघुवर वास छवि कहीं चरनि ।

सकल लल की सीव कोटि-मनोज-सोभाहरनि ।

बली मानहु चरन-कमलनि अद्वयता छवि तरनि ।

बहिर मूपुर किङ्किनी मन हरति दनकुज करनि ॥

संजु मेचक भुङ्गल तनु अतहरति भूषण भरनि ।

अनु तुमप सिपार सिलु लख कर्यो है अद्वयत करनि ॥

मुञ्जनि मुञ्ज सरोज मयनि बदन बिभु अरयो सरनि ।

रहे कुहरनि सलिल लभ उपना अपर कुरि अरनि ॥

ललत कर प्रसिद्धि मनि-अमिण अटकवनि चरनि ।

अनु अलख लंपुट तुलसी भरि भरि चरति अर चरनि ॥

पुण्यकल अनुभवति सुतहि बिलोकि अररव चरनि ।

बसत तुलसी हृदय प्रभु किलकनि ललित अरररनि ॥

— (बालकाण्ड—१७)

कवि को 'राम की वास-छवि' को 'सकल लल की सीव और 'कोटि मनोज सोभा हरनि' कथन मात्र से ही संतोष नहीं हुआ। उस छवि को बस बेग के लिए कवि ने एक-एक शब्द के लिए कहीं उपमा कहीं अलंकार और कहीं यथाक्रम का आश्रय लिया है। ऐसे स्वभाव पर राम के 'सीव से अमिभूत होकर कवि अपनी अनुभूति का नाम कर उठा है।

राम धुटकों के बस से अब वीरों भी चलने लगे हैं। इस अवस्था में वह अपने अनुभवों और अलंकारों सहित भूमते हैं और नीड़ा भी करते हैं। राम के इस भूमने

किरने म भी कवि ने स्वत-स्वत पर उनके मङ्गुर स्वरूप धीर साज-सज्जा का बचन किया है। इस वचनका का मह एक मङ्गुर विष है—

छोटिऐ धनुहिवां पनहिवां पवनि छोटि
छोटिऐ कसौटी कटि छोटिऐ तरकसी।
ससत भंपूनी धीनी दामिनी को धनि धीनी
सावर बहन सिर पगिया करकसी।
बय धनुहरत बिभूपन बिबिन धम
ओहे जिय धावति समेह की सरक सी।
मूरति की सुरति कही न परै गुलसी व
बाज सोई जाके उर कससे करक सी ॥

—(बालकाण्ड ४४)

राम के चलने-फिरने धीर नेलने बूझन म समय हो जाने पर बीमान लेन की व्यवस्था भी कवि द्वारा प्रस्तुत की गई है। राम क जोरन क साज इन बिदेसी बीड़ा का सम्बन्ध करना बस्तुतः काम-बोप है किन्तु पर म राम की सहृदयता स्नेह बन्धुत्व मानना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

राम-सपन एक ओर मरत रिपुदहन साज एक ओर बय।
सरजूतीर तम सुखर मूमि बल ननि ननि गोइवां बटि लये ॥
कङ्कु-कैलि-मुसल ह्य बड़ि बड़ि मरकति कति ठोकि ठोकि बय।
कर-कमलनि बिबिन बीगाने जेतन लये तम रिभये ॥

—(बालकाण्ड ४५)

इसके प्रतिरिक्त निम्न पर भी बुष्ट्य है—

बलि खेत मुखेलनिहारै।
उतरि उतरि बुबुकारि सुरंगनि सावर जाइ बीहारे।

बंभु-सदा-सेबक सराहि तनमानि सनह लैवारे।

—(बालकाण्ड ४६)

राम बड़े धीर मर्यादा प्रेमी हैं। इन्से बन्धुओं क प्रतिरिक्त सजाओं धीर सबकों का वह मस्नेह सम्मान करते हैं। इनसे उनक स्वभाव धीर धारण की पामीयता धीर व्यापकता स्पष्ट हाजि है। यह मर्यादा-धम उनमें सर्व बधुल्य रहा है धीर अपने धारम में उम्हाने दूनरा को भी इन धीर धनिप्रति किया है।

यहाँ धाकर राम की बाल-सीमार्ग बिधाम म उटती हैं। धभी तट बाल्यत्व के स्नेह-भरक बाणावरण में यह परिपुष्ट धीर पस्तबिन हुए हैं किन्तु जीवन में उम्हें लोह-बन्ध्याम धीर साज-रसाय जैन महतम बाय भी करने प तिमरु मिए उनको तीव सीमार्ग प्रकृत है। उनको बिचार का बिषय बनाने स पूव उनका गुप्तगी-काव्य में बया स्वाव है यह निरूपण करना भी उचित है।

मानस के प्रथमंत प्रभुछ बास चरित की बेलिए—

बास चरित हरि बहुत बिनि कोइहा । प्रति दानेंद बासम्ह कहैं बीम्हा ॥

× × ×

कोसल्या अब बोलन आई । हनुकि हनुकि प्रभु चलहि पराई ॥

निगम नति तिव शत न पावा । ताइ परइ जननी हठि जावा ॥

पुतर पूरि अरे तनु प्राये । भूनि बिहेस गोद बैठाये ॥

भोजन करत अपन बित इत उत प्रवसर वाइ ।

भाबि बलै किलकत मुल दनि प्रोवन लपटाइ ॥

× × ×

बंभु सखा संग लेहि घलाई । बन भुगवा निछ खेलहि आई ॥

पावन भुग मारहि बिय जानी । दिन प्रति नृपहि बैखाबहि घानी ॥

× × ×

अहि बिनि सुखी होहि पुरलोपा । करहि कृपानिबि तोइ संजोपा ॥

बैद पुरान मुनहि मन साई । धापु कहहि अनुजगह समझाई ॥

प्रातकाल उठि के रघुनाथा । मसु पिता गुब नथाहि माथा ॥

धामतु नाँव करहि पुरकाजा । बैचि चरित हरवइ मन राजा ॥

मानस के इस बाल-चरित के मध्य में बुढ़ा कर्म प्रीर यज्ञोपवीत के संस्कार मा कवि द्वारा सम्पन्न कराए गए हैं । इसी के प्रथमंत राम ने अपने अखण्ड ब्रह्म का चरित भी कौसल्या को दिखाया है जिसके फलस्वरूप उसकी यह कहना पड़ा—

बार बार कौसल्या, विनय करइ कर जोरि ।

अब जानि कबहुँ व्यापइ प्रभु मोहि जाया तोरि ।

मानस के समान कवितावली के एतसम्बन्धी स्वतन्त्र भी दृष्टव्य है—

कबहुँ सति माँगत धारि करे कबहुँ प्रतिभिन्व निहारि करे ।

कबहुँ करतल बजाइ के नाचत मस्तु तबै मन भोज नरे ।

कबहुँ रितिसाइ कहै हठि क पुनि सित छोई खेहि लायि धरे ।

प्रवपेस के बालक धारि सदा तुलसी-मन-मन्दिर में बिहर ॥

× × ×

परबबनि भंजु बनो पनहीं धनुही तर पंजब-यानि लिए ।

तारिना संव खेलत डोलत हें तरजूतर चौहर हाट हिए ॥

× × ×

तरजू बर तोरहि तोर फिरै रबबीर तला अक बीर सबै ।

धनुही कर तीर, निर्येय कसे बरि पीत दुकूल बबोल पबै ॥

'रामचरित मानस प्रीर कवितावली' के बाल-बचन भी कवितावली के समान वर्णनात्मक हैं धमिलयात्मक नहीं । श्री कृष्णगीतावली में धमिलेय तत्त्व प्रथम हैं

किन्तु उसकी वर्धनारमक प्रकृति के कारण वे व्यापक नहीं हो सके हैं। उसकी यह विषमता वही स्पष्ट परिणामित होती है। उपर्युक्त काव्यों के बाल-वर्धनों को जब हम तुलनारमक रूप में विचार करते हैं तब पीताम्बनी निम्न दो तर्कों में विगिष्ट सिद्ध होती है—

(१) दोष तीनों काव्यों से गीतावली में राम के बाल-वर्धित अधिक विस्तृत धीर बहुगम्यक है।

(२) राम के बाल-गौरव के जितने सजीव धीर मनोरम चित्रण हममें है उतने दोष काव्यों में नहीं।

राम धीर कृष्ण के भयवान् रूप के लिए तुलसी की आस्तिक भावना स्पष्ट स्वप्न पर अभिषम्भत है। मर्यादा मणि के कारण उनमें वही भी अभिनेय तत्त्व प्रतिष्ठित नहीं हो सचा है। कृष्ण के सम्बन्ध में तो यह मर्यादा टूटी भी है किन्तु राम के ब्रह्मत्व से वह इतने अभिभूत है कि बिभन्न बने हुए अपने प्राराम्य का वर्धन करत बने जाते हैं। उन्हें इतना पाहून नहीं कि उनके धार्मिक धर्मका धर्मोचित प्राग्रह का संवाचामक कथन ही कर देते। मूरदान कृष्ण के बाल-वर्धित वर्धन में इस धीर वही अधिक सचेष्ट है—

सैषा कर्वाहि बड़ीकी जोसी।

किन्ती बार मोहि बुझ विमत नई यह धरमहूँ है सोनी ॥

× × ×

सैषा मोहि बाऊ बहुत लिखायो।

सोनों कहत सोस को सोनो तोहि बसुनति कब जायो ॥

× × ×

सैषा म नहि मानन जायो।

एवास परै से सका सब मिलि मेरं बुल लखायो ॥

बेकि तुही सोके पर भाजन अँके धरि लखायो।

तुही निरनि लागे कर अपन से कस करि बायो ॥

नल हवि पोधि कहत नंदनन्दन होना कीटि कुरायो।

धारि लीटि मुतवाइ असोडा धरि मुत को अँठ लगायो ॥

इस प्रकार के सजीव स्वप्न तुलसी के विषी राम-नाम्य में की है। इस सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि राम के एक ब्रह्मवर्ती मन्नाट के राजकुमार होने धीर तुलसी की वास्तव भावना के कारण वह ईशे चित्र प्राकृत करने में अक्षम्य ही रहे। वे तत्त्व प्रवरण तुलसी के पदा का मन्वर्धन करत हैं किन्तु धर्मोचित प्रकृतियाँ वह चाहे राम हों चाहे कृष्ण हों चाहे पान का कोई नामक हो सभी में सामान्य रूप से विद्यमान मिलेंगी। फिर उन सामान्य प्रकृतियों का उत्पन्न न करना तुलसी नाम्य का एक धर्मक है उसे स्वीकार करना ही बड़ेया।

मूर के बाल-वर्धन म निम्न बिधाय तत्व उपलब्ध होते हैं—(१) कृष्ण की बालोचित बेपमूपा और साज-सज्जा (२) उनकी बालोचित बीड़ाएँ (३) उनकी बालोचित प्रकृतियों का उल्लेख (४) यद्योदा के जननी हृदय की मञ्जुर माननाएँ। उपर्युक्त तत्वों को लेकर जब हम गीताबली म समाहित राम के बाल-वर्धन पर बृष्टि डालते हैं तो कबल राम की बालोचित साज-सज्जा ही पर्याप्त बिस्तार से उपलब्ध है। उनकी बालोचित जाड़ाएँ और नौचम्पा न मानु हृदय को माननाएँ उद्यमें हैं किन्तु अधिक नहीं। सब उदा—बालोचित प्रकृतियों के उल्लेख का सब कास बहु बस्तुत पीताबली में ही ही नहीं। इन्हीं सब बिधेयताओं से सम्बद्ध मूर का कृष्ण-वास-वर्धन तुलसी के राम-वास-वर्धन से कहीं अधिक सजीव मञ्जुर और स्वाभाविक है। इस सम्बन्ध में मूर की प्रतिभा अपने विषय पर लुब्ध रमी है। यह कबला कि पुष्टि सम्प्रदाय म प्रतिपादित माधुय के लिए ही उनकी बृष्टि कृष्ण के बाल और बुबा जीवन पर सुस्विर हो जा टिकी है। मूर की प्रतिभा और मस्ती के साज धम्याय है। उनके समकालीन और अनन्तर भी तो अष्टछाप तथा धर्म कवियों के समस्त कृष्ण के जीवन के बड़ी धन में किन्तु क्या उन सभी का नाम्य मूर-काण्ड के समस्त प्रतियोगिता में लड़ा हो सकता है। यह बस्तुत मूर के कवि-हृदय की ही उपलब्धता है। इससे इस सम्बन्ध में यदि तुलसी पीछे नी पड़ गए हों तो कोई धारण्य नहीं। तुलसी का धपना खेद या धपने सिद्धास्त में धपनी सीमाएँ और धपनी ही प्रकृतियों की इससे धपने धाराधन के सकित जीवन और धौर्ध्व्य की ध्यजना में लिए बहु राम का मर्यादित बाल-वर्धन ही राम-काण्डों म प्रस्तुत कर सके। फिर भी उपर्युक्त बिधेयित तत्वों के धाधार पर यह कहा जा सकता है कि उनकी गीताबली का बाल-वर्धन धर्म्य नाम्यों में समाहित बाल-वर्धनों से अष्ट और अधिक सज्ज है। इस सम्बन्ध में सङ्घर्षों के दो धधिमत नहीं हो सकते।

उत्तरकाण्ड

गीताबली के उत्तरकाण्ड में 'मानस' के इस काण्ड क समान धम्नीरता और कबा की परिचयिती नहीं है। मानस में बड़ी तुलसी ने कबा की समाप्ति के लिए धयोध्या में राम का स्मरण भरत का बिदह राम-धयोध्याधमन राम का माताधो और भरत से मिलाप धानरों और निपाय की बिबाई पुत्रोत्पत्ति और धयोध्या का वर्धन राम राज्य धारि कबा के बाटों और राम-रूप के स्पष्टीकरण क लिए नेहों और धिब हाय राम-स्तुति राम-कबा से पार्वती का सन्तोष बरुड का मोह तथा काग मुमुग्ध का धमिपण्ट जीवन धारि दर्शन और धाधार की परिचयिती के लिए सन्तों और धरन्तों के लक्षण बरुड के सात प्रश्न और काममुमुग्ध द्वारा उनके उत्तर, स्वल-स्वल पर ज्ञान और भक्ति के तत्वों क बिबरन धारि प्रस्तुत किए गए हैं— बड़ी गीताबली में राम-राज्य राम-रूप हिडोला धयोध्या की रमणीयता (धर्पा वर्धन,

दीपमामिका बसन्त-बिहार) प्रयोष्या का प्रातम्य सीता-व्रजबाध लक्ष्मण-व्रज रामचरित का उत्सेह आदि मिलते हैं। दोनों काव्यों के एक ही काण्ड में चरित वर्धन आदि के सम्बन्ध में विपमताएँ वस्तुतः आश्चर्य में डाल देती हैं।

तुलसी के किमी राम काव्य में हिडोसा बर्षा-वर्षन दीपमामिका बसन्त बिहार आदि के सरस और मधुर वर्धन नहीं हैं। इस सम्बन्ध में पीठाबसी धड़ती और प्रकेशी हैं। उसके येम काव्य होने के कारण मधुर स्वसो की योजना इसमें उपमन्व है, जो उचित है किन्तु राम-चरित के येम में न जाने बामी परिस्थितियों का समावेश प्रकृष्टा देने वाला है। इनको देखकर इस काण्ड पर कुप्प-काव्य का प्रभाव प्रतीत होने लगता है वस्तुतः यह उसका प्रभाव है नहीं। उत्तरकाण्ड की काव्य सामग्री देख भने पर इस तथ्य पर विचार करना उचित होगा।

राम प्रकटाटी ने। उनके व्यक्तित्व में द्युचित-धीम-सीर्ध्व तीनों तत्वों का सम्मक समावेश है। उन्होंने यदि अपनी द्युचित से राधासो के प्रत्याचारा का उन्मूलन कर रावण जैसे महाबली राक्षस को मारा वा तो अपने धीम से प्रयोष्या के गर मारियों धनुजों रीछ, बाभर तथा सरनामठ किमीयन आदि को धारवस्त किया वा धीर सीर्ध्व का प्रमर प्रभाव सीठा वन-पथ पर प्राचीन बधुओं सुर्वनया तथा प्रयोष्या के गर-मारियों पर छोड़ा वा। इन तीनों में 'धीर्ध्व' ऐसा तत्व है जो माधुर्य का पोषण करता है। इसी से इसका द्युचित-धीम-सीर्ध्व में विषय रूप से उपमन्व है। जिस प्रकार तुलसी ने पीठाबसी क बासकाण्ड में राम क बाम-रूप की मूरि मूरि कर प्रकटा की है और समवामुसक बर्षकारों द्वारा उनके धर्मों धीर परयगो वा जी मर प्रकटा की है और समवामुसक बर्षकारों द्वारा उनके धर्मों धीर परयगो वा जी मर कर उत्सेह किया है उसी प्रकार उनकी वही प्रकृति उत्तरकाण्ड में राजा राम के रूप वर्धन में रही है। एक से एक सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये गये हैं। राम स्नानोपरास्त बर्षन में रही है। एक स्त्री अपनी सहेली से उसका रूप-कथन करती है—

बिचरित तिरकहु-बदक बुद्धित विच सुमन बूध
मनिबुत सिमु-कनि-धनीक सति समीप धाई ।
बनु समीत है प्रकीर रात जय द्धिर मोर,

कुंडल-दधि निरसि खोर लडुचत धाधिकार्य ॥
ललित भद्रुटि तिलक भात बिबक-प्रपर द्विज रत्ताल
हात बाधतर कपोल नातिका मुहाई ।

मधुकर रूप पदज विच मुक 'बिलीकि नीरज पर
सरत मधुव द्युचित मागो बोध वियो जाई ॥
गुग्धर पटपीत बितर भाजत वनमाल जसि

तुलसिवा प्रमुन रचित विविध विचि बनाई ।
तब तबाल द्युचित बल विविध कीर वाति द्धिर
हेमजाल धतर बरि ताने न उड़ाई ॥

सक्ति ! रघुनाथ रूप निहास ।
 सरस बिन्दु रवि सुवन मनसिज मान भंजनि हास ॥
 स्याम तुमस सरीर जन-जन-काम-भुष निहास ।
 चावचंदन मनहु मरकत लिखर ललत निहास ।
 रविरे उर ज्यहीत रावत पदिक पद्ममनि-हास ।
 मनहु सुरमनु नखतगन बिच तिमिर भंजनि हास ॥
 बिमल पीत दुकल शामिल-भुनि-विनिवनिहास ।
 बदन सुवमा लख सोनित मदन-मोह निहास ॥
 सकल भोग धनुष नहि कोर सुकवि बर निहास ।
 बस तुलसी निरखतहि लख लहत निरखनि हास ॥

× × ×

देखो रघुपति-कवि अनुमित प्रति ।
 अनु तिमोक लयमा सकेलि बिचि राखो बचिर दंभ दंभनि प्रति ॥
 पद्मराज रवि महु परलल सुख भोक्तु-भुक्ति-कमल यहि नूरति ।
 रही धानि बहु बिचि मबतनि की अनु धनुषाव मरी बंभरगति ॥

× × ×

बरनत रूप पार नहि पावत निबम-सोय-सुक-संकर भारति ।
 तुलसिदास केहि बिचि बखानि कहे यह मन बचन धमोवर मूरनि ॥

सौन्दर्य-चित्रण के धर्म्य बीसियों बिच भी प्रस्तुत किये जा सकते हैं किन्तु सभी में समरसता है। एक पर ये बिच दंगों का चित्रण किया जा चुका है। दूसरे पर मैं कुछ धर्म्य उपमाएं लेकर बीसा ही बिचरण प्रस्तुत किया गया है। इन सभी में उत्पन्ना धनकूल की सुन्दर छटा प्रस्तुति हो उठी है। इन सभी स्थला पर राजा राम नायक है और स्त्रियाँ तथा बर्षक-भूष धामय हैं। उनका बिषय सौन्दर्य उन्हें शृंगार के संयोग पद्य के लिए उद्दीप्त करता है।

राजा राम के मुसासन में धर्मोप्या की शाब-सम्बा धीर बैजब बीसे ही धनर भोक से होइ करत ये। फिर बर्षा की सरस जलु मे हरीतिमा के शाब ससकी धोभा को त्रिभुषित कर दिया वा। ऐसे सजीने धनसर पर सामूहिक धानन्य धीर मनोरंजन क उपभोग के लिए भारतीय बाठावरम में हिबोसा मारी-बीजन का धमिस साजन है। यों धर्मोप्या के प्रत्येक परिवार म हिबोसा है किन्तु कवि ने धम-हिबोसा का भी वर्णन किया है। इसका रोमन धीर धर्मकार भी धर्मिणी है। बहुत समझ है कि धम-सीठा भी इस हिबोसा पर भूमते हों किन्तु इस स्थल पर धर्मोप्या की मारिजों के भूमने का ही वृष्य बर्णित है।

सो सभी देखि लहाबनी मबतत संवारि संवारि ।

धुन रूप मोहन सीबि सररि बनी म्बरनि आरि ॥

दुमसी-पत्र-साहित्य क भाव और रस

हिंडोब-साज बिलोकि सब अंचल पसार पनारि ।
लापी असीतन राम सोठहि मुज समाज बिहारि ॥

मूलहि भुलाबहि सोतरिहू गार्ब सुहो गौडमलार ।
मंजोर-नुपूर-बलम-पनि अनु काम-करतल-तार ॥

अति सुबत अमकन मुपनि बिकरे बिकर बिललित हार ।
तम तड़ित उडुगन अरुन बिपु अनु करत अ्योम बिहार ॥

राम-हिंडोसा क समान पारमार्थिक हिंडोसो पर भी इसी प्रकार क मात-मया रोह होते है । अरु की दीपमासिका क अन्तर्गत 'बसन्त-बिहार' की योजना राम राज्य में बर्णित है । बसन्तागमन पर अयोध्या क प्राकृतिक सौन्दर्य और नर-नारियों को बसन्त ऋतु क लिए सम्मन्त्र देकर राम ने उन्हें आदेश द दिया—

असतु मुबित नारि-नर बिहूसि कहेउ रघुबीर ।
अमर नारि-नर हरवित सब जले अलन छापु ॥

अब राजा राम का आदेश है फिर मकोब क्यों ? राम की इस कृपा और सहृदयता के कारण कवि ने राम रूप के गान की फिर व्यवस्था की है । यह उम स्वच्छन्द बातावरण म अत्यन्त प्रबल है किन्तु तुलसी का कवित्व अपनी प्रकृति से विरक्त है । अग-बीड़ा में अयोध्या की नर-नारियों सम्मिलित होकर आनन्दित और प्रसन्न

असत काम् अरुअपति अनुज सका सब संग ।
अरुपि सुमन सुर निरखहि सोभा अमित अर्णय ॥
नारियाँ तो उस बातावरण में इतनी स्वच्छन्द है कि अगु के अनुकूल पालियाँ भी रहे रही हैं—

रिपु सुभाज सुठि लोभत देहि बिबिध बिधि नारि ।
अग बीड़ा की समाप्ति यही नहीं हुई है । इस परिस्थिति विषय में उम मया राह को सम्पन्न करन म राम और मीठा की भी रत्नस्पर्शी म उतार दिया है । एक पद्य म है राम उमक अनुज और सगा और दूनर पद्य म है सता तथा अग्य सुबतियाँ । अना सदमबस एक दूसर को अकान में व्यस्त है । त्रियाँ जिस पुरय को पकड़ पाती है उमक अजन समाठी है तथा उमस कपुमा मनाकर और नाच मचाकर प्रायता करने पर ही उम छोड़ती है । पुरय-बागं म स बहुत म बिदूषक का रबाप बनाए हुए गर्ब पर जो हुए कूट-अचम बात है । उम सज्जा और अचोब रू ही नहीं पए है । सोना पद्य एक-दुमरे क मिन गानियो का प्रयोग कर रू है । रामअर यह सब देय मुनकर भादयो अहित हूमा है—

समत अरुन राजाधिराज । देसत नम कोनुक सुर समाज ॥
सोह सता अनुज रपुनाय ताप । सोसिधु अचोर विषकारिहाप ॥

बाबहि मरंय डठ ताल बनु । धिरकै सुपण्य भरे मलय रेनु ॥
 उत कुचति-रूप जानकी संय । पहिरे पट-भूषन सरत रंय ॥
 मिए छरी बत सोबै बिभाम । बाँधरि मूमक कहै सरत राय ॥
 नूपर-किकिनी बुनि धति सोहाइ । ललना-यन जब जेहि वरई माइ ॥
 लोचन रंजहि क्युभा मनाइ । छाड़हि नभाइ हा हा कराइ ॥
 बड़े सरनि बिरूपक स्वामि छात्रि । कर कछि निपट वइ साज भाजि ॥
 नर-नारि परस्पर पारि देत । मुनि राम हँसत साइन लमेत ॥

बसन्त-बिहार के धानन्द को सभी स्वच्छन्दतापूर्वक विमोले करते हुए मना रहे हैं इसमें नन्मीरता और मर्यादा के तत्त्व रह ही नहीं गए हैं । अब तो यह है कि जब राजा राम उनके साथ हैं फिर संयोग और लज्जा का भाव उन्हें क्यों बाधित करे ?

उत्तरकाण्ड के सीमर्य के अधिपतों और धानन्द-समारोहों में राम धानन्दन है धानन्दन बनि द्वारा सीता-बनवास के कारण बृहत् भी प्रस्तुत किये गए हैं जिनमें सीता धामन्दन हैं । जब राम उपर्युक्त धानन्द-बिलासों के मध्य में सम्मिश्रित होकर राम राम्य का धारण प्रस्तुत कर रहे थे उसी समय राजक के बचनों से भोक-मत्त उन्होंने सीता के बिरह बेला और उनके परिवार्य में ही राज-वर्म-पालन का अधिचर्य समझा । मूलतः अपनी शेष धाम्य के साथ उन्हें पिता की धाम्य का भी उपभोग करना था । इससे उस प्रवस्था में सीता का सहवास अनुचित था । फलस्वरूप उनका बनवास का ही विधान प्रस्तुत हो गया ।

अपन अधज के संकेत पर लक्ष्मण सीता को लेकर बास्मीकि मुनि के धामन में प्रवश्य पहुँचे किन्तु प्रस्तुत वर्म-सबट उन्हें म्याकुल और म्नाति उन्हें बन्ध कर रही थी । सीता-त्याग का राम का धारण उचित था धनका अनुचित यह वस्तुतः लक्ष्मण की विचार-सीमा के बाहर था किन्तु सर्वत्र बास्मीकि की को भी यह सब धन्य न मना । उन्हें यह सब देख और समझकर महान् खेद हुआ किन्तु इसे 'विधि की क्षमता' समझकर वह धान्त हो गये वस्तुतः विवसता थी ।

‘धम लक्ष्मण धाम परिमिति भई कछुक मलानि ।

मुनि बास्मीकि की नन्मीर मुद्रा और बेचर लक्ष्मण की धनुसाहट को देखकर सीता को धपना कर्तव्य-निर्धारण करने में विलम्ब नहीं लगा । वह समझ गई कि विमति उनके मुख और बिसास से स्वर्ण कर रही है, फलस्वरूप प्रस्तुत परिस्थिति से समझौटा करने के लिये उन्हें बाध्य होगा पड़ा और विवसता में उन्होंने लक्ष्मण से

१ सहस्र द्वारस पञ्चसत म कछुक है धन धान ॥

भोग्य पुनि पितु-धाम्यको साज किय बनी बनाइ ।

परिहेर बिनु जानकी नहि और धनक उपाइ ॥

कहा—

तो लौ बलि धापु ही कोबो बिनय समुधि सुधारि ।
 लौलौ हीं तिलि लेउ बन रिदि रीनि बसि बिन धारि ॥
 मरणा पुरपोलम की पत्नी होकर भी वह मर्यादा का संरक्षण चाहती थी ।
 मने ही पति धीर देवर के साथ उल्लामे बतबास किया हो किन्तु बयोभूष अयियो
 धीर उपस्थितों के साथ रहन का अनुभव तो उनका साथ न था । इमने प्राजाकारी
 सदमन से उनका बैसा कथन उचित ही था किन्तु सदमन उस प्रसङ्ग परिस्थिति में
 नहीं टहूर सबत प धीर न वह टहुरे ही । बाम्भीकि की उपस्थिति से प्रारम्भ होन
 हुए भी उनका मानस स्वतः कम्बन कर रहा था—

अबु प्रयसर ऐसेहु बी न बने प्राण बजाइ ।
 इस कठिन परीक्षण में प्राण ही खल जाय तो क्या ही प्रकटा होता एक धीर
 प्रजा का धन्य स्तह धीर पुमरी धीर प्रयस ना धारेस । इम किधरतम्भविभूष की
 स्थिति मे सब तो यह है सदमन का सबल ध्यकितल ही यह सब मेन मे गया । वह
 इसे पिता बचरय स 'पुरय बचन' कहने के पाप का दण्ड मानन हैं ।
 प्रम निधि पितु को नहै में परव बचन प्रधाइ ।
 पाप तैहि परिताप तुलसी उचित सहे सिराइ ॥
 परिस्थिति से परास्त सदमन ने सीता के चरण छुग धीर खन दिए । कहने
 के लिए यों बहुत था किन्तु वह अपने किस मुग से कहते ।

हेतु हीं तिय हरन को तब प्रबहु भयो सहाय ।
 होत हठि मोहि बाहिनी बिन बैब बाकन बाय ॥
 तज्यो त संपाम कहि सयि सोय जसो जटाय ।
 ताहि हीं बहूबाइ कानन बस्या प्रबप सुभाय ॥

बन में बिना मानन के जीवन रहा दकिन समने पर हनुमान द्वारा जीवित
 कर दिया गया—इस सबन मेरे धीर को कवन इमलिए प्रभुत्प रया तिमये सीता
 बतबाम को बारक कम सपनर कर में घुट-घुटकर मानसिक कमेरी भहन कर गइ ।
 सदमन की धारिक ल्यानि प्रमन्वित रूप से इम स्वयं पर बड़ी ही मामिक है—

अनत बिन बन अरस बिन एन बध्यो कठिन बुधाय ।
 हुनहु सोनति सहन को हनुमान प्रयायो जाय ॥

अस कारण दुप के अन्तर रामचरित सम्बन्धी सब-बुध जग की एक घटना
 का बिन न उल्लेख किया है । सीता न प्रयाग्या के राज-मुल स बचित हाकर भी
 रामन को सुरेणता ही रहा ।
 सब-बुध जग का घटना यद्यपि राम-कथा का इति पर स प्रती है किन्तु
 राम बाम्भीकि धीर सीता बाना के मानन में उदमन प्रबल्य प्रस्तुत कर दिया । मुनि

पर सीता का दायित्व तो वा ही किन्तु पुत्रों के जन्म में जीतराम मुनि को गृहस्थ बना दिया। उन्होंने उनकी छठी और बारहवें दिन की रीति की नामकरण और प्रक्रमारोहण क समयोद्घोष की व्यवस्थाएँ की। इन सभी उत्सवों को उन्होंने समाज छोड़ बोझकर किया और तपस्वियों की बन के बस्त्र पहनाकर सन्तुष्ट किया।

तपोवन के इस आनन्द और सुख के मध्य में भी सीता का हृदय बुलित और व्यथित था। लव-कुश के बारसस्य का दायित्व सत प्रतिपत्त उस पर था। उसने उसकी उपेक्षा नहीं कर दी। मातृ-हृदय रदकर वह बैसा कर भी बैठ सकती थी किन्तु राम के विद्योम बनित प्रभावों को उसने रह रह कर सोचा था। एक जीतराम मुनि गृहस्थ की व्यवस्था और साज-सम्बा करे और गृहस्थ जीतरागी हो जाय। इस दैवी विद्या ने सीता को धाम्नि से नहीं बैठने दिया। राम रामा उसके लिए नहीं तो पुत्रों के लिये तो होते। क्या राम को पुत्रों के जन्म का समाचार न मिला होगा? उत रात बैसाद् अनुष्म आधम में था नए थ।

तेहि निता लई सञ्जुवन रहे विविधस पाइ ।

माँसि मुनि सा बिहर मबने भोर सो बुझ पाइ ॥

सब था यह है कि मुनि के आधम में धाकर सीता पूर्ण बग-बासिनी ही रही। यों उनका समय लव-कुश के बाल-बिनोर देखते कट जाता था किन्तु उनका चित्त-जपी चित्तैरा प्रेम कपी बोबास पर नित्य ही प्रिय के चरित्रों को प्रकृत करता रहता था।

निरखि बास-बिनोर तुलसी भात बातर बीति ।

पिय बरित सिय चिन चित्तैरो निबलत नित हित जीति ॥

प्रियतम के बिरह से यदि वह इस प्रकार दुःखी थी तो पुत्रों के सुख से वह सुखी भी थी। सीता का मानस वस्तुतः दोनों ही भावों का स्पर्श करता था।

दुखी सिय पिय-बिरह तुलसी सुखी सुत तुल पाइ ।

धाँच बय उज्जनात लीचत ललित क्यौं लकुबाइ ॥

अपर्युक्त परिस्थितियों में तुलसी ने सीता के मानस की स्थिति का यथासंभव विवरण प्रस्तुत कर दिया है। यदि वह प्रियतम-बिरह से बग्न हो रूप के समान उज्जनाता था तो पुत्र-मुख उस बिरहमिनी को बैस ही ध्यात कर देता था जैसे बल उज्जनाते हुए बूब को। वस्तुतः इस मायना में उनका बनबासी जीवन का इतिहास धरा है। संका के बिरहो जीवन का भोग कर वह मयोष्मा में राम के सामीप्य हाथ पोड़ा ही हँस-खेस पाई थी कि बैस पुत्र विपरीत हो उठा और शेष जीवन का विद्योम लेकर वह बासमीकि-आधम में था पहुँची। निबलति ने उनकी सुख-धाम्नि छीन ली। वह मानवी थी। उलत राम-बिरह से यदि उनका हृदय ललत करता था तो पुत्रों के कारण सुख-सागर को लहराता देखकर वह चिहुर भी उठती थी। सीता के इस स्वरूप में भारतीय नारी का सामान्य रूप धिया हुआ है। यद्योपरा की ऐसी ही

स्त्रिनि में वैदिसीधरम गुण ने श्री मागी-जीवन क मत्स्य का प्रस्तुत किया है—

प्रबन्धा लोचन हाव तुम्हारी पही बहानी ।

घोषण में है द्रुम और घाँसों में बानी ॥

वस्तुतः मीना इय वारम परिस्थिति में ममी प्रकार विवग थी । मीतावनी के उत्तरकाण्ड की उपयुक्त विवचिन नामश्री म हिडोला बमल पण्य घारि क चित्रण घावचय में जान देने है । मच लो यह है कि तुममी क रोप राम-नाम्या में हमकी वही प्रतिष्ठा ही नहीं है । हमने इनक चित्रण देवकर स्वाभावत यह विचार हो उठता है कि यह द्रुम-नाम्य का प्रभाव है । इन बातें तुममी की मीतावनी पर बिडानों ने मूर-काव्य की घमिप्ररणा का घाघार माना है किन्तु हम निर्भय क देने म यह राम की माधुसोपासना को विस्मृत ही करत रहे हैं । हमी से हम प्रकार की विवेचनार्थों में एक पक्षीय तत्त्व लो मिस जात है किन्तु तुमसी क व्यक्तिगत और उनकी विचार बार्थों के साथ सम्भाव भी हुआ है वह उन्हात नहीं मीचा है ।

उपर्यक्त तथ्य हमणिघ और घस्वण गहा है कि तुममी पुरपोलय राम क मर्याशुर्भ घार्थ करिष के ही भवत रहे हैं । हमने राम के करिष की रतिष्ठता राम भक्ति का घय न मामी जाकर द्रुम के माधुस का प्रभाव मान भी गई और तुममी का यह विधिण पस घम्भकार म ही रला मया । इसके साथ साथ ता यह भी है कि राम भक्ति की मपुर उपामना गुह्य छन के कारण एतत् तथ्य न ममात्र के सामने घा मक और न बिज्ञता को हमने तुममी के साथ तद्विषयक मर्याय श्रीविन्द्य पून कहा जा सवया ।

ऐतिहासिक तथ्य ता यह है कि द्रुम भक्ति में मपुर उपामना के साथ राम भक्ति में उक्त प्रकार की उपामना और विचारणा तुममी से अठावियों पूर्व प्रमुपता पा चुकी थी । अन्त उपकी घबिच्छेष्ट मयनि में घमिप्ररिण होकर राम क रतिक रवकण का चित्रण उहूनि घपनी मीतावनी में किया । यह माना जा सवता है कि द्रुम के रतिक जीवन का चित्रण उनके ममस घा । हममें उसके घमुवरण की घत्रि रवि उपक मामस में भी आय उठी हो और चीन-सीनी में बीसा चित्रण करने का उहूनि निरवय किग हा । यह मूर या घम्य किमी द्रुम मरुत-रवि का प्रभाव नहीं है वह घय साथ है ।

द्रुम भक्ति के मयान रामभक्ति पर भी मावजन का प्रभाव पड़ा है । हमी के घाघार पर राम क मर्याशुर्भ करिष में श्री रविहना का मरिषेण हो उठा है । उनमें बनकर हमी के लक्षणेन न 'घिबमहिना' 'मोमय-जहिना' एव 'श्री हनुमत्सहिना' की रचनाएँ हुई । मिनय रामभक्ति में रतिक बरन्तर की मयवेन और बन मिला ।

मिबमहिना में भक्ति को जान पर घाघारिण मियु किया है और पून भक्ति के मित माधुस साथ की घाघम्यवता बर्षिन है । राम एक मान पुरत है और घय नमी जीव रबी है । हमी से वह ममी म एक साथ रमन करत है । मयमान राम और

सीता दोनों रस के एक मूर्तिमान विग्रह है—सीता के लिए ही एक रस से बो दृष्ट है। राम शब्द ही रस राजस्य का बोधक है। शृंगार रस का पर्यवसान भीराम में ही है। मोमरा संहिता में चन्द्रकला सीता की प्रमुख अन्तरंग सती बजित है। उन्हें रास-रस की आशयों कहा गया है। इसमें भागवत के रास पंचाभ्यासों के समान महारास का विवरण है। श्री हनुमत्संहिता में 'प्रेमामृत महोरस्य' का वर्णन है। इसमें राम का सीता और सखियों के साथ घरजु लट पर जाना करब में माष्ठीक रस का पान घनतर के 'माधवी कुब' 'हरिकन्दन बन' और 'घणोक बन' में पचारेते हैं। भयवान् राम हास्य सास्य और कटाक्ष से सीता को प्रसन्न करते हुए सती को प्रसन्न करते हैं। घनतर के सब एक कुब मण्डप में पहुँचते हैं वहाँ कमसबल की भाँति बेदी पर राम और सीता बैठते हैं। सखियाँ विविध वाद्य यंत्रों को बजाती हैं। इस रास में सीता ने अपने शरीर से १०८ सखियों की उत्पत्ति की और उनके साथ राम भी उठने ही रूप धारण कर लेते हैं।^१

उपर्युक्त के प्रतिरिक्त बास्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में अयोधेय बन में राम-सीता का बिहार 'सख्योपाख्यात' में राम-सीता के बन-बिहार बन-बिहार के मधुर वर्णन है। उषी में होमिका में राम-सीता का प्रलय-बिहार और घनतर सीता की 'मान सीता' है। घनतर रामायण के विलासकाण्ड में राम-सीता की जल भीड़ा एवं बन बिहार तथा 'महारायण' में राम की रास भीड़ाओं का बड़ा ही मधुर वर्णन है।^२

राम भक्ति-बारा की शृंगारी आशा पर श्री हनुमत्संहिता और बृहद्कीसल काण्ड का विशेष प्रभाव है।^३ इसकी सत् की आठवीं शताब्दी से ही राम-सीता के पूर्वाश्रय का चित्रण हो उठा है और उषी की परम्परा में महाराज चरित ज्ञानकी हरण प्रसन्नराज्य तथा हनुमत्काण्ड में राम-सीता के माधुर्य भाव और विलास का शौगोपाङ्ग वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

उपर्युक्त आशय पर विवेचन से यह स्पष्ट है कि उत्तरकाण्ड की विभिन्न प्रतीत होने वाली रस सामग्री पर मूर भी अन्य कृष्ण गण्य कवि का प्रभाव नहीं है किन्तु राम-भक्ति की माधुर्योपासना का ही प्रभाव है जो ब्रह्मिक रूप से शक्ति संहिताओं और संस्कृत ग्रन्थों में विकसित हो रही थी। तुलसी अपने माधुर्य-शोषण के लिए उनसे अभिप्रेरित प्रभाव हुए हैं किन्तु उन्होंने अपनी भाव-बारा का रस

१ श्री भुवनेश्वर मिश्र—रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना पृष्ठ १०७ से १११

२ वही पृष्ठ ११३-११४

३ वही पृष्ठ ११४

४ श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना—

पृष्ठ १११ (बिहार राज्यभाषा परिषद् पटना)

भरत युक्त लुकी बोढे घाँघि बुझाय्य में डूब गए । इन सब में नीलम्या का हृदय जिस मातृ भावना से रोया है वह तुलसी-दास्य में अद्वितीय है । राम के विधोय में सीता-स्वयन भी कदम धीर मामिक है । कहने का आशय यही है कि इस विवेच्य प्रसंग में राम को लेकर प्रम-वग पर आत्म्य धीर विपार की घटझाएँ घाँघ प्रतिभाय पटिय हुई हैं, जो कास्य की येव सीली के कारण धीर भी मधुर धीर कदम हो गई हैं ।

राम के बड़े तथा शरीर क पुष्ट हो जाने पर उनका पारिवारिक जीवन से बाहर जाना आवश्यक ही नहीं अभिचार्य था । उस स्थिति में ही समार में मूल धाँघि की व्यवस्था अमुरो का सहार और कर्तव्य तथा मर्यादा की स्थापना सम्भावित थी । फलतः उनको लेने के लिए विद्वामिष अयोध्या में पचारे धीर राजा के समझ जब उन्होंने राम को ले जाने का प्रस्ताव रखा तब—

एवो ठगि से नृपति मुनि मुनिवर के बचन ।

कहि न सकत कहु, राम-प्रेम बल बुनक पात भरे नीर नयन ॥

किन्तु बीबी विधायन ही ऐसा था उन्हें राम-सदमग को लेना ही पडा । आशय में पहुँचने पर विद्वामिष ने अपनी तपस्या पुन प्रारम्भ की । राम-सदमग की तत्परता से ताड़का बज हुआ तथा अग्य व्यवधान दूर हुए, फलस्वरूप महर्षि की साधना सफल हुई । यथासमय उन्होंने उनको अनुविद्या का विधेय ज्ञान दिया । वे वहाँ रहते हुए आश्रम-जीवन से परिचित और अनुविद्या में प्रशिक्षित हुए ।

इस स्थिति में ही महर्षि को सीता-स्वयनर का सुसचार मिला । जब राम सदमग क आश्रम बहु जनकपुरी जा रहे थे तब मार्ग में उनकी चरच रज से अहस्या की मुक्ति हुई जिससे राम का भगवान् रूप प्रमाणित हुआ । जनकपुरी में पहुँचने पर राम-सदमग सहित पचारे हुए विद्वामिष का सभी प्रकार स्वागत हुआ और प्रनस्तर वहाँ के नर-नारियों को राम-सक्ति सीस सीढर्य को लेने का अवसर मिला । उनके अप्रतिम सीढर्य से नगर के नर-नारी ही कबल मुक्त नहीं हैं किन्तु जनक जैसे विवेह राजपि भी परास्त हो उठे हैं ।

जनक बिलोकि बार-बार रघुवर को ।

मुनिवर शीघ्र नाव ध्यायु प्रसीत पाय ।

एई वाते कहत पवन किमो चर को ॥

नीद न परति राति प्रम-वग एक भाँघि

सोचत संकोचत बिरंदि-हुरि-हुर को ।

तुम्हरे मुगम सब देख ! देखिये को घब

बल हंस किए जोगवत जुन पर को ॥

जनक जो का प्रग धीर शिवनी का कठोर अनुप नर-नारियों को राम-सदमग की किधोर अवस्था के कारण निराम अवश्य किए थे किन्तु राम के प्रति वे पूर्व ११ वरत थे । इनका सीढर्य लोगों का भीति तथा आत्म्य में निमज्न किए था ।

तुमसी-बद-साहित्य क भाव और रस

विवाह यौग्य में एक स्त्री ठाण राम का स्वल्प-कथन देखिए—
 ननु मुमुक्षि चित्त लाइ चितो री ।
 रामकृष्ण मूरति रविबे की रवि मुबिरचि भ्रम कियो है कितो री ।

नत्र सिद्ध मुग्धरता प्रबलोकत बह्यो न परत मुक्त होत कितो री ।
 तबिर एव-मुखा भरिब कहैं नयन-नमन कस-कसत रितो री ।
 मेरे जान इहैं जोसिबे कारण बसुर जनक छ्यो छट इतो री ॥
 तुलसी प्रभु भक्तिहैं संभु वनु मूरिभाय सिय-मातु विलो री ॥

राम क सौम्यवं से न इतनी अभिभूत है कि न मिरन्तर उसको देखनी ही
 रहना चाहती हैं और परस्पर यह विचार करती हैं कि न कौई राजा को समझ
 दे कि वह प्रय को छोड़कर सीता का राम क साथ परिणममूत्र में बाँध दें ।
 प्रम-विबस माँगत महैल लो देवत ही रहिए नित ए री ।
 क ए सदा बसतु इगह नयनगिह क ए नयन जाहु नित ए री ।
 कोउ समझाइ कहैं किन नृपहि बड़े भाग्यार इत ए री ।
 कृतित-बडोर कहाँ संकर वनु मुहुमूरति कितोर किए ए री ॥

× × ×
 तुमसी नृपहि ऐसी कहि न बुझाव कोउ
 पन छो कंबर बोक प्रम की तुला भी ताक ॥

इस चित्र का दूसरा पक्ष पुष्प-वाटिका में राम-सीता क सम्मिलन में पूर्ण
 होना है जहाँ एक दूसरे को देखकर वे परस्पर घ्राह्य हूँ हा उठे हैं । उपभूक्त सभी
 स्वर्णों में राम अपने रूप और गुण क कारण प्राप्तम्बत हैं व्यक्ति भेद क कारण जनक
 की में वारम्बत नर-नारिया में प्राप्त और सीता में शृंगार रस का उत्रक है ।
 राम-सीता क विवाह काल का वर्णन तुमसी के बड़ी ही भावुकता क साथ
 प्रस्तुत किया है—

बुलह राम सोय बुलही री ।
 पन-बासिन बर बरन हरन-जन मुग्धरता बल-सिस निबड़ी री ।
 व्याह-विभूषन-बसन बिभूषिन तसि प्रबली ललि छगि ली एही री ।
 जीवन जनम साहु लोचन कल इतनोइ लह्यो धात्रु सही री ।
 सुलमा मुरमि तियार छोर बुहि मयन प्रनियमय कियो है एही री ॥
 मपि जागन सिय-राम सेवारे, तबल मुबन छकि मनहु परो री ॥
 तुलसीबस जोरो कैरन गुण लोका धनुल न जाति कही री ।
 कप राति बिरची बिरचि मनो लिसा लबनि रति-नाम सही री ॥
 इन पर में बुलह राम' और 'बुलही सीता' के सौम्यवं की परगवाण है ।
 ज्यों के न कभी लेगा मोदय देगा वा छोड़ न के कभी रंग मङ्गेगी । 'जीवन जनक
 ह मोचन पद है इननोइ सही धात्रु नही री' । तुमसी के अपनी भावना की

सार्पकटा के लिए उपमा साङ्गहपक उत्प्रेसा घासि की सजीव योजना प्रस्तुत कर दी है। उतका यही सौंदर्य जब वे बनवास के लिए जाते हुए बन-पथ पर होते हैं घामीय बपुषो की प्रयत्ना का पात्र बनता है। वे उनके मनोहर रूप पर मुग्ध हैं। तुलसी ने यह स्वप्न भी घालकारक शैली से प्रस्तुत किया है—

मनोहरता के मानो ऐन ।

स्यामल गोर बिसोर पबिक बोज सुमुरित निरखि भरि मन ॥

बोच बन् बिपुबहनि बिरामति बहूँ बोज है न ।

मानहु रति-बहुनाथ सहित मुनिबेध बनाए है मन ॥

किन्हीं तिगार सुपमा सुप्रेम मिलि जैसे बस बित बित संन ।

प्रबभूत भयी किन्हीं पठई है बिधि मग-मोगरु सुत ईन ॥

इस गीत में उत्प्रेसा और सन्देश की प्रबभूत छटा कवि द्वारा प्रस्तुत की गई है। इसी प्रकार अन्य गीता में भी समतानुलक धलकारों के प्रथम से उनके धर्मों और बलुषों को चित्रित किया गया है। वे बधुएँ मन-मुग्ध सी बलती हुई उनके सौंदर्य सुभा को 'नेत्र कपी बानो' से पाल करती हैं।

तुलसी स्वामी स्वामिनि ओहे मोही हूँ भामिनी

सोमा सभा पिए करि छीकिया होनी ।

कवि द्वारा बड़ा ही कोमल रूपक प्रस्तुत किया गया है। इतना ही नहीं बल्कि पद्य पर उनके रूप की सभेप्रियता भी प्रकट होती है। वे अहाँ भी गए नर-नारी उन्हीं के होकर रह गए—

ओहि ओहि मग विष-राम-अपन पए,

तहूँ तहूँ नर-नारि बिनु घर छरिगे ।

निरखि निकारै-अधिकारै बिचकित भए ।

बब विष लग हर-सोना सुषा अरिये ।

ओमे बिन बए बिनु निऊन निराए बिन

लुकत-मुझेत सुष-साजि फूसि करिगे ।

मुनिहु मनोरथ को प्रथम प्रसभ्य लाभ

सुपम सो राम सजु लोगनि को करिगे ॥

वस्तुतः अपनी लोक-संघर्षी और लोक रंजनी कृष्टि से उन्होंने मग-बन को मुग्ध कर लिया। उनके जीवन का यही महत्तम स्वरूप था जिसके कारण उन्होंने बनवास का जीवन सहर्य स्वीकृत किया था। नर-नारिकों धर्म भी उनकी स्मृति और किष्ठा में निमग्न है और एक नारी की वो यह बया है कि वह अपने को ही निस्त्वय किए दे रही है—

सखि ! जब तैं सीता समेत देखे बोज भाई ।

तबते परै न कल कछु न सोहाई ॥

मत्र त्रिज मोह-मोह निरसि निरार्ई ।
 तन-मधि गई मन घमन न जाई ॥
 हेमि हसमी हिय लिय हे चारई ।
 पावन प्रम बिबस भई हो पराई ।

बन-यत्र पर अमन हुए बिजकूट म पहुँचने पर रामचन्द्र वहाँ कुछ काल के लिए रुक गए, इससे वहाँ का मौर्य आध्यात्मिक धर्मबुद्धि को प्राप्त हुआ । राजपरिवार के ये बनवासी धर्मो मर्बाँन पगिन्धिया म धर्म्यम्य होन का प्रयोग करने लग । उपर उनक संसर्ग से वहाँ की सत्ताएँ बूझ पधु-समी नदी घोर भयन घवन त्रिगुणित उत्साह से प्रवर्धित हा उ । मुनि घोर तपस्वियों का भी उनक कारण स्वच्छन्द जीवन की तबीन अनुमति हुई । बिजकूट म राम-मधमक-मीना की एक भाँवी बेगिए—

सोन लाल लपन सलोने राम सोनी तिय
 चाइ बिजकूट बँठ सुनइ तर है ।
 गोरे-साबरे सरीर पीत नील नीरज से
 प्रम रूप मयमा के मनतिज तार है ॥
 सोन मल-तिय निरुपम निरुपम जोग
 बड़ उर-कँवर बिसाल भुजवर ह ।
 लाल सोने सोबन बटनि क मुकुट सोने ।
 सोन बहननि बोले कोटि सुपावर ह ॥
 सोने सोन धनुष बिसिय कर कपसनि
 सोन मुनिवर करि सोन सरपर है ।
 प्रिया प्रिय बंधु को दिनावत बिठप बलि
 मंजु कंज तिलाजस दल फूस परे है ॥

उनक दिव्य मोहर्ष के विवरण प्रस्तुति करने में बस्तुतः अनुप्रास की छाना प्रयोग हुआ उठी है । गतिन शब्दों का आनन्द मन को मुग्ध करने में पूर्ण समर्थ है ।

राम घोर उनक धनुषों का राजा गनियों परिजन पुरजन धारि के एक दीप माध क उरगम्य पाया था । मभी ही उनके कारण आनन्दिन घोर मुयी प किन्तु उनका मुग घोर आनन्द स्वामी रूप में न रह सका । उनक बड़ होते ही बिस्वा मित्र की दृष्टि उन पर कन्दित हो उठी । राजा की धर्मध्या की किन्तु उन्हें राम घोर नरमण देन ही पड़े । सहयोग में यह मत्र है कि बिस्वामित्र की माधना मध्य हुई घोर सोकोरवार भी हुआ किन्तु धर्मोप्या की प्रजा घोर राज नमात्र के लिए उनका बियोग भी प्रस्तुत हो गया । उनक बिषाग अनिष्ट दुःख के घणु जब राम घोर उनक धनुष बिबातिन हाकर जनगपुर में लौटे थे क प्रथम कुछ शर्णों के लिए पोंछ मटे थे किन्तु उनका मुगोपयोग सिनने दिन रह सका । ईश्वरी का स्वाध उनकी प्रतिस्पर्धा में था बना, अनन्तर उनका दीर्घ प्रवास हुआ घोर के रोने बसपने ही रह

छात्रकथा के लिए अपना छात्ररूपक उत्प्रेषा प्रादि की छात्रीय भावना प्रस्तुत कर
 ती है। उनका यही सीद्दय जब ब बनवास के लिए जात हुए बन-वप पर होते हैं
 धामीय बधुयो की प्रपसा का पाव बनता है। वे उनमे मनोहर रूप पर मुख हैं।
 तुलसी ने यह स्वत भी धामका एक छौली में प्रस्तुत किया है—

मनोहरता के नामो ऐन ।

स्यामस गौर कितोर पयिक बोज सुमुलिन निरखि भरि मन ॥

बोध बधु विपुबबनि बिराजति कहूँ कोठ ही न ।

मानहु रति-बहुनाथ सहित मुनिबेय वनाए ही मैन ॥

द्विषी सिंगार सुपना सुपेय निलि जसै उग बित-बित सेन ।

धरपुत श्रुषी किबो पठई है बिधि मग-मोमगु सुध ईन ॥

इस गीत में उत्प्रेषा और सन्बद्ध की प्रस्तुत छटा कवि द्वारा प्रस्तुत की गई
 है। इसी प्रकार अन्य यीतों में भी समतामूलक धनकारो के प्रथम से उनके प्रयो
 और प्रनुयो को चिचित किया गया है। वे बधुयें मंत्र मुख ही रखती हुई उनके सीरय
 सुभा को नेत्र बपी बाना' ध पाम करती हैं।

तुलसी स्वामी स्वामिनि जेहे मोहरी है नामिनी

साधा सधा विए करि खोजिया होनी ।

कवि द्वारा बडा ही कोमल रूपक प्रस्तुत किया गया है। इतना ही नहीं बन
 पथ पर उनके रूप की सर्बप्रियता भी प्रकट होती है। वे वहाँ भी गए पर-नारी उन्ही
 के होकर रह गए—

बेहि बेहि मग सिध-राम-जपन गए,

तहें तहें पर-नारि बिनु सर करिग ।

निरलि निकरई-अधिकरई विपकित भए ।

बच बिब मन पर-सोभा मुखा भरियो ।

ओते बिनु बए बिन निचन निराए बिन

तदुत-सुखेत सुख-सासि कसि करियो ।

मुनिहु मनोरथ को धरम धरम्य लाभ

सुगम तो राम लए सोपनि को करिने ॥

बस्तुन धपनी लोच-सप्रही और मोद-रंजनी दृष्टि में उन्होमे धम-धप को
 मुख कर लिया। उनके जीवन का यही महत्तम स्वल्प या बिसरक कारण उन्होमे
 बनवास का जीवन सहर्ष स्वीकृत किया था। पर-नारियाँ धम भी उनकी स्मृति और
 चिन्ता में निमग्न हैं और एक नारी की तो यह रसा है कि वह धपने को ही बिसृष्ट
 किए दे रही है—

बलि ! जब तँ सीता लमेत देखे होउ भाई ।

पकत परै न कल कल न बोवाई ॥

मत्र विष नाव-भौक निरकि तिहाई ।
 मन्-सुधि गई मन घनन न जाई ॥
 हेमि-हृदयी हिय निर हं चारई ।
 पाएउ उम विषम गई ही पराई ॥

बन-पय पर बन्धन विचरण में दर्शन पर रामचन्द्र वहाँ कुछ काम के लिए बस गए, इसमें वहाँ का सर्वत्र ध्यान-तन दर्शनबुद्धि को प्राप्त हुआ । रामपरिवार के प बनवाना अपनी मर्दान दर्शनबुद्धि में प्रत्यक्ष हान का प्रयास करने लगे । उमर उनके संभव से वहाँ की बन्धने बस पानु-आ गयी और मरने त्रिगुणित उत्साह से प्रदर्शित हो र । मुनि और मन्त्रियों का भी उनके कारण स्वच्छन्द जीवन की मर्दान अनुभूति हुई । विचरण में शान-वचन-मीमा की एक मीमा देखिए—

लाल लाल लयन, ललोन राम लोभी लिय
 चार विरहूड बंड मुग्ध तर है ।
 मारे-मारे मरीच पीन नीन नीरज से
 प्रेम कर मुहमा के मननिज लार है ॥
 लोन लल विष निररम निररम जोप
 बड़ उर-बंदर, विनाय मुग्धर ह ।
 लाल लाल लालन जनि के मुग्ध लोने ।
 लाल बदलनि जीन कोटि लुबाहर है ॥
 लाल लाल लाल विविध कर कमलनि
 लाल मुनिहर करि लोन मरपर है ।
 लिया लिय बंधु को हिलावत विरय बलि
 बंधु बंधु विनायत बल कुल बड़े है ॥

उनके विषय मीमा के विवरण प्रस्तुति करने में बस्तुतः अनुयाय की छात्र प्रयास हो उठी है । मन्त्रि वरुणों का मानिस्य मन को मुग्ध करने में पून समय है ।

राम और उनके अनुओं का रामा रामिया परिवार बुरावत सादि न एक दीर्घ माय के उरगल पाया था । मर्दान हो उनके कारण धानमिय और मुर्खी के विन्नु उनका मुग्ध और धानम्य स्पायी रूप म न रह गया । उनके बड़े होन ही विचरण-विष की दृष्टि उन पर बन्धित हो उठी । रामा की धनिष्ठा की विन्नु उन्हें लाल और मन्मथ केन ही पड़े । मन्मथ के यह मन्त्र है कि विरवामिय की मावना मन्त्र हुई और मावावधान भी हुआ । विन्नु धमाध्या की प्रजा और राम मन्मथ के विन्नु उनका विवाह भी प्रस्तुत हो गया । उनके विधोम अनित कुल के धनु उर राम की उनके धनुज विवाहित हावत अनकपूर के मीटे से से धनस्य कुछ लनों के विन्नु लोके मन्त्र है । विन्नु उनका मुग्धोपेध विनन दिन रह गया । मन्मथी का मन्त्र उर प्रविशनी में सा रण घनलन उनका दीप प्रवाह हुआ और के गले बन्धन है म

गए ।

बसरप भाय के बिन्होने रामपरक बासस्थ के लिए अपनी प्राणाहुति ही है
ही । इस क्षेत्र में वह प्रकृते ही है । हमारे उस कोटि तक नहीं पहुँच सके यह सच है
किन्तु उस बुधटना न उन्हे बँन से नहीं बँटने दिया यह भी सच है । बीतावली उन
सभी का उगमन बासावरण समाहित किए हैं ।

राम के विश्वामित्र के साथ जाते ही कौसल्या का मातृ-हृदय सिसक उठा —
मेरे बालक कैसे भी मय निवर्हहिसे ?

भूख पिपास भोग भ्रम सकुचनि ज्यो कौसिकहि कहहिसे ?

को मोर उबटि धरुहहं काहि कलैः बेहै ?

को भूयन पहिराइ निघावरि करि लोचन-सुख लहै ?

भ्रम निमेषनि ज्यो बोपबं नित पितु-परिजन-महतारी ।

ते पठए ज्येि साथ निसावर मारन भवत रजवारी ॥

राम-नरमण के बालरूप होने के कारण भूख प्यास पीठ घौर भ्रम से बाधित
होने के मिय कौसल्या का संघर्षित होना स्वाभाविक है । राम और उनके अनुज राज
पुत्र होने के साथ बूढ़ माता-पिता के पुत्र भी थे । इस परिजन-पूरजन की उनके प्रति
ममता होनी ही चाहिये । फिर कौसल्या का मातृ-हृदय द्वारा उसका प्राकृत-म्याकुल
होना स्वाभाविक है । राम-नरमण को विश्वामित्र के साथ भेजने में वह केवल राजा
को ही बापी नहीं ठहराती किन्तु तुम-गुण सच्चिद आदि सभी का दोष सिद्ध
करती है—

ज्येि नृप-सीस डपीरी लो डारो ।

कुलगुर लखि निपुन नेबनि धररेव न समुकि नुपारी ॥

तिरिस-सुमन-नुजुभार कंवर डोड सुर सरोव नुरारी ।

पठए बिनिहि सहाय पपारेहि केसि-बाम-ननुपारी ॥

राम के बियोग की अनुमति से कौसल्या के हृदय ने सबैव रवत किया है ।
उनके बलबास के निर्भय पर उसका मातृ-हृदय नहीं मारा है । यद्यपि वह रघुकुम की
मर्बादा समझती थी और यह भी जानती थी कि राजा बसरप और राणी कौसली से
उनको दयोध्या-त्याग का प्रारोह मिल चुका है किन्तु फिर भी वह कह ही उठी—

नुरहु राम मेरे प्राण विपारे ।

बारो सरयबचन ज्युति-सम्मत जाते हो बिधुरत करन तिहारे ।

बिनु ब्रवास लव बाचन को बल प्रभु पायो सो तो नाहि संभारे ।

हरि लखि बरमसील ज्यो बाहुत नुबति नारिबस तरबस हारे ॥

×

×

×

बदपि नाथ तात ! मायाबस नुबनिबान भुत नुम्हहि बितारे ।

तदपि हमहि त्वापहु बनि रनुचति बीनबनु दपामु मेरे डारे ॥

यद्यपि इन पवित्रियों में वास्तव्य समाहित है किन्तु बात ही बिचूरत चरण तिहारें' चादि सङ्गी में जगती की मर्यादा पर धापात पड़ता है। इस सम्बन्ध में इतना कहना ही पर्याप्त है कि राम धरतारी के धीरे किन्तु के रूप में उनकी कोख से जन्मे थे। यह उनके स्वल्प को समझती थी। इन्हीं से तुलसी-काव्य में ऐसे स्वस व्यक्त है। उपर्युक्त वारहस्य मानना की श्रुतता में ही वीरगाथा को निम्न पवित्रियों की रची जा सकती है—

रहि कलिये सुन्दर रघुनायक ।

ओ सुत तात-बचन-पालन रत कननिज तात । मानिक साधक ॥

× × ×

राम ! ही कौन बतल पर रहिहो ?

बार-बार भरि अंक गोद लै ललन कौन लो कहिहो ॥

कौशल्या का मातृत्व उपर्युक्त के समान समय-समय पर प्रस्तुतित हुआ है। राम को लेकर उसकी बाबी की भाविका बस्तुतः सेप तुलसी-काव्य की अपेक्षा सीता बनी में सबसे अधिक मुखर है।

राजा और रानी से राम के तब बमनास का धारण हो जाने पर सीता और लक्ष्मण उनके साथ ही जाने में अपने कर्तव्य का निर्धारण करते हैं। यह स्वस मानस में पीठाबसी को धारता बिस्मार से चिन्तित हुआ है किन्तु उनके बन-पत्र पर प्रयास करने के दृष्टियों को तुलसीदास के जिस भावुक धीरे तत्रोक्त-धामी में चिन्तित किया है वह धम्मन दुर्गम है।

राम-सीता-लक्ष्मण बन के मातृ से अल जा रहे हैं। धम्मन् न हान के कारण सीता का बच जाना स्वाभाविक है। राम को भी उनकी परिस्थिति धरगत है। बस्तुतः दोनों पद्यों की सङ्घटनता मर्मस्पर्शी है—

बहो लो बिपिन हे ओ कतिन हूरि ।

अहाँ पवन किबो अंबर कोसलपति अम्भति तिय बिय पतिहि बिमूरि ॥

प्राणनाथ परदेस पमारैहि अके लुघ लकल तज लुन हूरि ।

करो बहारि, बिनबिय बिधपतर, भारी हो अरन-तरोरह-बूरि ॥

सुमतिदास प्रभु विधाबचन मुनि नीरज लयन नीर धाए पूरि ।

कानन बहाँ अर्बहि लनु सुन्दरि रघुपति किरि बिनए हित भूरि ॥

बन पत्र पर अविभान्न रूप से जगन वर बचान की धनुमुक्ति ने सीता का राम के भी मत जाने की प्रतीति दी है। अतः राम की सेवा करना उनका कर्तव्य था। या ही वपन धरती पान के उन्मुखन के लिए सीता में व बचन मर्ता बने हैं। उन स्थिति में सीता के अरि का पनन हा पाडा। राम को सीता की कर्तव्य-निष्ठा और सहानुभूति का पूर्ण ज्ञान था। इन्हींसे 'धरी सुन्दरि ! धरौ बन बहाँ ? बहने के मातृ वह व्यथा में निमग्न हो गए हैं। यदि यह बहकर राय बिधाव से तैत ता यह बिनप

नुमिरत बाल बिनोद राम के सुंदर मुनि मन हारी ।
 श्रोत हृदय प्रति मूस समुक्ति पर-पंकज प्रनिर-बिहारी ॥
 को अब प्रात करैय प्रीणत बठि बलैयो माई ।
 स्वाम-सामरस-नन लखत बल बाहि सेउ जर साई ॥
 बीबो ली बिपति सहो भित्तिबासर मरौ तो मन पङ्कतायो ।
 बलत बिपिन भरि नयन राम को बदन न देखत पायो ॥

राम-सीता-सङ्गम की अनुपस्थिति पर भी स्मृति-बध के संशय कौशल्या के समक्ष प्रस्तुत रहते हैं। वह भ्रान्ति में पड़ी हुई यह नहीं सोच पाती है कि राम का वन-मग्न सत्य है अथवा अशरय है। उसका प्रेम बड़ा मनोबर्जितक है—

कुछ न रहै रघुपतिहि बिलोच्छत, तनु न रहै बिनु देख ।
 करत न प्राण पवान समहु सखि । अर्थात् परी यह सिद्धे ॥

विशेष में इस प्रकार प्राकृतिक बुझाव हुए भी वह उनके प्राणमन की प्राणा और संयोग के कुछ की अनुमति से सिद्ध उठती है।

बनत सुता कब सासु कहै मोहि रामलवन कहै यैया ।
 बाहु जोरि कब प्रनिर बलहिने स्वाम-वीर होउ भैया ॥

बिचकूट में राम भरत मिताप की महत्त्वपूर्ण बटना का बीसा संस्लेस 'राम चरित मानस' में है बीसा पीठाबली में नहीं है। मानव जीवन की परिस्थितियों के विविध रूप बीसे मानस में उपसङ्ग है बीसे यहाँ नहीं है। गीत-काव्य होने के कारण यद्यपि बीसा यहाँ सम्मन भी नहीं था किन्तु छिर भी राम भरत मिताप की बटना की मूल भावना यहाँ पूर्ण रूप से अलुप्त है। राम के प्राचरण में यदि दुइटा और स्नेह है तो भरत में बीनता बिनभता अति विरवास ग्लानि व्यस्य सभी कुछ है। राम भरत की भावनाओं का इस प्रकार समाधान करते हैं—

काहे को मानत हानि हिये ही ?
 प्रीति-भोति-मुन-सीस-परम कहै तुन प्रबलब विप ही ॥
 तात ! बलत जानिबे न ए बिम करि प्रमान पितु बानी ॥
 ऐहो बनि परहु बीरक जर कठिन कासबति बानी ।
 तुलतिबात अनुबहि प्रबोधि प्रमु चरन पीठ निज शरहैं ।
 बनहु सबनि के प्रात-माहुद भरत सीस धरि लौहैं ॥

बिचकूट की उर्युक्त बटना क अनन्तर भरत के साथ राम को सीतास जाने की दुइ भावना मानस में उहेजे हुए जो नए, वे के बिरसपिनी गिरासा को ही अपने साथ में ला सके। मर्यादा पुरपातम मर्यादा-प्राप्तन की सीमा से टस से मस न हुए, बिसस अयाध्या का दुर्भाग्य सीमाय में परिबित न हो सका। कौशल्या सस हयनीक स्थिति में कौशली द्वारा माँचे हुए बरवाना की प्रतिक्रियाओं पर विचार करती है। राम-सीता सङ्गम की वनवात हुआ भिद्यतम को स्वर्न मित्रा भरत को बिरहाग्नि में

बसना पड़ा पुरजनों की धमधमारा कभी रकटी नहीं—मसा इन सबके पीछे कैंकेयी का बागुय कहीं परितसित होता है। वह कैंकेयी के मास अपने मातृ-हृदय पर भी बिचार करती है और उद्विग्न तथा निम्न होकर पछ जाती है—

हाथ नीचबो हाथ रह्यो।
सगी न संग बिगड़टहि तें ह्यौ कहा जात बह्यो।।

पति सुरपुर सिय-राम-नराम बन मुनिवत भरत गह्यो।
हौ रहि पर मसान-यावक क्यों मरिबोड मृतक बह्यो।।

मेरोह हिय कठोर करिबे कई बिभू कहु कुसित लह्यो।
गुलामी बन पशुबाइ किरि सुत क्यों कप परत कह्यो।।

राम जननी होकर भी इन प्रकार जीवन धारण करने में नीचस्या की धारण मसानि की पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। वह अपने मुख पर 'राम' चमकाने में भी संकोच करती है। कौशल्या का यह चित्र मनोवैज्ञानिक तथ्य पर चित्रित है—

राम-नयन सिय को सुख मोकर्य भयो लज्जी सपनो सो।।
जिनके बिरह-बिषाह बंदायन जग मुय जल बुझारी।

मोहि कहा लज्जी समझावति हौ तिगहरी गहतारी।।
भरत-वता सुनि सुमिरि भूक-मति बैलि बल परबासी।

ललसी 'राम' कति हौ सकुचति ह्यै ही जग उपहारी।।
राम के विषय में केवल उनका परिवार, परिवर्तन पुरजन ही नहीं धरन है

निसु सग-मुय भी दुगी है। मुक-गारिका की परिस्थिति यदि कल्प है तो राम के मोहें भी अपने स्वामी के स्मरण में निवस हो रहे हैं—

धाली ! हौ इहहि बुझावौ कते ?
कैत हिये जरि जरि पति को हित माह्येव सुत बंते।।

बार बार ह्हिनात हेरि जत जो बोन कोउ डारे।
धंग लमाइ लिए डारे तें कवनामर सुत प्यारे।।

लोकन सजल तदा सोबत से जाल-यात बिनराए।
बितवत बौकि नाम सुनि सोबत राम-नुरति जर प्राए।।

सुलसी प्रभु के बिरह-बधिक हठि राजहंत से जोरे।
दैतेहु बुलित बैलि हौ सोबति राम-नयन के घोरे।।

समी के प्रयास और अनुरोध करने पर भी राम सयोप्या नहीं लौट सक है। उनको संबोध होने के नाते राम द्वारा समझा दिया गया है सपका के परिस्थिति विषय की गहनता को हृदयमय कर वाला होकर रह गये है। 'राम सगन क घोरे' अपनी सरोपता क कारण मानव के समान समझ बैठे रग मरने हैं किंतु अपने स्वामी के गाड़-बुमार के प्रभाव से के मूग रहे हैं अपना भोजन त्याग कर के मरैव सजल नेव

खड़े हैं उनकी स्मृति से वे सबैव शोकाकुल हैं—इनकी इन परिस्थितियों के प्राचार पर कौरव्या का 'ए बार बाबि बिलोकि प्रापने बहुरो बनहि सिपाखी' कथन बड़ा ही मनोवैज्ञानिक है—

राधो ! एक बार छिरि प्राबो ।

ए बार बाबि बिलोकि प्रापन बहुरो बनहि सिपाखी ।

अपम प्याह पोखि कर बंकरन बार बार चुबुकारे ।

बसों बीबहि मेरे राम लाडिके से अथ निपट बितारै ॥

भरत सोबनो सार करत हूँ अति प्रिय जाति तिहारै ।

तदपि दिनहि दिन होत भाँबरे मनहु कनक हिय मारै ॥

तुनहु पयिक को राम मिलहि बन कहियो मनु सँबसो ।

तुलसी मोहि और सबहिन ते इन्ह को बड़ो धरेसो ॥

उपर्युक्त के अन्तर्गत कौरव्या की बिरह-वैदना संकाकाष्ट में पुनः मुखर ही उठी है। अर्थों के समान वह भी राम प्रतीक्षा में निमग्न है। उसका 'सनुन मनाना' और 'बेमकरी से राम धागमन का अनुमान करना' प्रादि से उसके मातृ हृदय की करुण-भावना ही व्यक्त होती है—

धरती ! अथ राम-नयन किन्तु छूँ है ।

बिबकूट लग्यो तबसे न लड़ी लुपि बधू तसेत कुसल तुत छूँ है ॥

×

×

×

बिहूँहि बिलोकि लोचिहूँ लाल डुम अग-नून-अनि लोचन अल धरेहूँ ।

तुलसिदास तिहूँ की जननी हूँ, मो-सी निठुर बित घौरो कहुँ छूँ है ॥

जननी होकर भी जो जीवन के इतने दारुण प्राधात सहन करती अने पौर जीवन अस्तुभ्य रहे अथस्य उसे माता कहमाने का अधिकार नहीं इस भावना के कारण ही वह राम-बिभोव में अपने मातृत्व को निरन्तर चुनौती देती अनी है। फिर भी तथ्य तो यह है कि वह जीवित रही है। अन्ततः उसके अनुकूल ही वह प्राचरण कर रही है—

बड़ी लपुन नमस्वति मता ।

अब ऐहूँ मेरे बाल कुसल घट, कहहुँ आग करि बाता ॥

नूत-बात की बोनी रह्यो सोने खोज मझूँहो ।

अब सिय सहित बिलोकि नयन करि राम-नयन उर लहो ॥

×

×

×

छेमकरी । बलि खोलि सबानी ।

कुसल छेम सिय राम-नयन अब ऐहूँ अथ अथय रजधानी ॥

ससि-मुखि कूङ्कन-बरनि तुलोजनि धीचनि लीचनि बैर बखानी ।

बैरि । बपा करि देखि बरत अल औरि पानि बिनबहि सब रानी ।

इस प्रकार काम धीर लेमकरी की प्रतीक्षा करने में अपने बिरह निमग्ना जीवन का संग मानकर कीर्त्याया काम ग्य माता के स्तर पर उठर आई हैं। वस्तुतः कीर्त्याया के राम-विषयक बिरह में उसका कहीं भी राजमाता का स्वरूप व्यक्त नहीं होता है। यही कारण है कि उसका चरित्र सर्व सुलभ और स्वामाधिक है।

पीठावली के भरथ्यकाण्ड धीर सुखरकाण्ड वस्तुतः काव्य माधुरी के दृष्टि से बड़े ही उत्कृष्ट हैं। उनकी घटमाओं के बचन में भी तुलसी की भावुकता का पूर्णयोग रहा है। मारीच बध के उपरान्त राम धीर लक्ष्मण जब अपनी कुटी की घोर प्रयाण करते हैं उन्हें प्रकृति यही ही भूमिम धीर उदासीन प्रतीत होती है। वहाँ ने पशु-पक्षी न कमरब करते हैं धीर न बूटा फल दे रहे हैं धीर न सीता ही दुष्टिगोचर हो रही हैं। इससे राम को यह सब अच्छे मञ्जब प्रतीत नहीं होते—

धीरे तो सब समाज कुशल न देखौं प्राज
गृह्वर क्षिप कई कौरामघात ।

पंचवटी से समीप जाकर धीर उसे अपनी कुटी रामक कर उनका हृदय धर्य घम की भावना से भर गया। सीता को न देख कर उनका मानस उनके बिरह की अनुभूति से रग्न कर उठा—

प्राथम निरलि भले इस न छेले न पूजे,
प्रति-पक्ष-भुग पालो कबहुं न हे ।
मनि न मुनिबभूटी उजरी परनकुटी
पंचवटी पहिचानि ठाईई रहे ॥
उठी न सलित लिए प्रेम प्रभुवित हि
प्रिया न बुलकि प्रिय बचन कहे ।
पल्लव-नाल न हेरी भानबालम न टेरी
बिरह बिचलि लति लबन गहे ॥
देखे रघुपति-पति बिबुब बिबल प्रति
तुलसी गहन बिनु बहन रहे ।
अनुज बिपो बरोतो तो सी है तोबु बरो तो
सिय-लगावार प्रभु जोली न लहे ॥

गीता के बिरह के कारण प्रभु राम के बचनों को सुनकर देवताओं की भी तिका हुई। उनसे सीता की सुधि प्राप्त कर उन्हें चेतना की अनुभूति हुई। इसी समय राजन द्वारा माहृत जटापु से उनकी भेंट हुई। अपनी उस स्थिति को देखकर राम की सहृदयता और सहानुभूति का बेम प्रवाहित हो उठा। महाकवि तुलसी ने यह । इन बड़ी भावुकता से चित्रित किया है—

राखी गोष लौद करि सोगहो ।

नयन मरोम सनेह-ललित लुधि मनहु धरपजल शीगहो ॥

सुनहु लयन ! जयपतिहि मिलै बन में पितु मरन न जान्यो ।
 सहि न स्वयो सो कठिन बिघाता बड़ो पसु धानुहि माग्यो ॥
 बहु बिधि राम कह्यौ तन राजनु परम पीर नहि डोस्यो ।
 रोकि प्रेम भ्रमसोकि बदन बिनु बचन मनोहर बोस्यो ॥
 तुलसी प्रनु भूठ जीवन लागि समय न बौबो लह्यौ ।
 जाको नाम मरन मुनि बुरलन तुमहि कहां पुनि वंछ्यौ ॥

राम ने उनसे आवन रकने के लिए बहुत कुछ कहा। यद् भी कहा कि वह जो चाहे माँग से किन्तु जटायु ने अपने जीवन की निष्कृति के लिए राम भगवान् के समस्त ही अपनी ऐहिक लीला समाप्त करना भयंकर समझा। जटायु दशरथ के मित्र होने के नाते स्वर्न में पहुँचकर सीता-हरम का वृत्त उनसे प्रबल कहने इससे उन्हें दुःख होया। इसमें राम अपने पितृव्य जटायु को उनके प्रयास-बैला से पूर्व सकोच क साव्य अपना निम्न संदेश कपन करते हैं—

मेरो सुनियो तात लंबितो ।
 सीय-हरन जानि कह्यहु पिता सों छूँ है धमिक धरितो ।
 राबरे पुम्य प्रताप-प्रमल मई धनप दिननि विपु रहि हूँ ।
 कुम समेत सुर समा बसानन समाचार सब कहि हूँ ॥

राम के इस संश्लेष में असन्विकल्प रूप से उनकी दूरदर्शिता और विश्वास व्यक्त हित है। दशरथ जैसे पिता जो उनके वियोग में रोते कसपते गए हैं धम्य बह्यौ स्वर्न में पीड़ित हों, वह उन्हें पशुच नही था। यहाँ पितृ भावना का उत्कृष्ट स्वरूप उनकी बाणी से प्रस्तुतित हो उठा है।

सचरी की शक्ति भावना का धर्म काव्यों के समान उद्यमें भी उल्लेख है। धनन्तर मुन्दरकाण्ड में सीता-शोक म प्रवृत्त हनुमान द्वारा प्रसक्त बन में जाकर सीता के समक्ष राम-मुद्रिका बालने पर सीता और मुद्रिका में त्रिध संवाद की व्यवस्था तुलसीदास ने की है वह बड़ी ही मञ्जु और करण है—

बोनि बनि मूवरी ! लानुब कुसल कोतनपानु ।
 धमिय-बचन सुनाइ मेरहि बिरतु-ज्वाला-बालु ॥
 बहुत हित अपमान में क्रियो होत हिय सोइ लानु ।
 रोप धमि सुनि करत बबहु ललित लक्ष्मिन लानु ॥
 परसपर पति बेबरहि का होनि बरबा बालु ।
 बैबि ! कहु बेहि हेत बोले विपुल बातर भागु ॥
 सीताबिनि समरथ लुसाहिब बीनबन्धु बवालु ।
 दास तुलसी प्रभुहि कहु न कह्यौ मेरो हालु ॥

सीता राम-सम्बन्ध की कुशलता जानने के लिए धातुर है। हित की कहने पर भी त्रिध सम्बन्ध का उन्नत द्वारा अपमान हुआ क्या वह कभी उनका स्मरण करती

है ? दोनों भाइयों में किन विषय को लेकर बर्बाद बसती है ? इस प्रकार के प्रश्न उनकी मनाशया को व्यक्त करने में पूर्ण समर्थ है। मृदिका द्वारा भी सीता की जिज्ञा साधो का उत्तर दिया गया है जिसमें उनके सम्बन्ध में राम द्वारा की जाने वाली सम्पूर्ण व्यवस्थाओं का उन्हें पता चल जाता है। सीता धीर मृदिका का यह वृत्त विनिमय बढ़ा ही करण है। हनुमान जैसे धीर-धीर भी उनको सुनकर अपनी धम-धारा में राक रुक—

सुवन समीर को धीर धीर धीर बढ़ोह ।

देखि गति तिय-मृदिका की बात गयो दिखे रोह ।

हनुमान ने वृत्त में उतरकर सीता को प्रणाम कर अपनी परिचय दिया। उनमें बस का साहस धीर राम-रत्न के लिए निष्ठा थी। इसी में वह निम्न बचन कह सक—

निकरि घरि रघुबीर-बल सजाउ जो हठि प्राज ।

उरी प्रायसु भग ते छक विपरिहू सुरकाज ॥

उनकी बाणी में धीर रत्न का वृत्त समावेश है। इस स्थान पर सीता ने हनुमान को रामदूत समझकर अपने जीवन की बुढ़ा धीर अपराधी पर विह्वल दृष्टि वाली है—

तात ! तोहू सा बहुत होति द्विप यत्तानि ।

जनको प्रथम पन समुन्धि अस्त तनु

लधि नह गति नह गति बसति ॥

पियको बचन परिहृयो जियक भरोये

कय बली बन बढ़ो साम जानि ॥

पीतम-बिरह ती सनेह सारवसु सुत ।

धीर को बुद्धि को तरिस न हानि ॥

धारज-सुवन के तो दया हुवनट पर

बोहि लोच मोत सब बिधि नसति ॥

प्रापनी मलाई बसो दियो नाप नह ही वा

मेरे हो बिन सब विपरी बानि ॥

बन्धुन सीता का प्रथम वा कि वह पति के बिना जीवन में राग मगयी। धारज उनके विमुक्त होकर भी वह मग्राण है। राम ने जनबान के लिए प्रस्थान करने में पूर्ण उन्हें आशीर्वाद में रहने के लिए जननाया का किन्तु प्रथम प्रथम पूर्ण करने को भावना में उन्होंने उनका धीर उपदेश का उन्मत्तन दिया। बन्धुन पति-विपरीत नारी जीवन के लिए उनका सबस्य सुटन के समान है। सीता धारज को उत्तम परिस्वयति में भी जीवन देगकर यह समझता है कि उनके द्वारा मर्मा विनाम ही हुआ है। फिर भी राम के भयवान् रूप पर उन्हें विश्वास हुआ है कि उनके द्वारा

उनकी निष्कृति होमी धीर प्रवस्य होमी—

कबहुँ कपि ! रावण प्रवाहिये ?

मेरे नयन अन्दर प्रीतिवस राकसनि मुझ विहरावहिये ॥

ममप मरान मोर बसक हूँ सोचन बहु प्रकार प्रावहिये ।

धंय मग धवि भिग्न भिग्न सुख निरखि निरखि तहुँ तहुँ प्रावहिये ।

बिरह-प्रतिनि जरि रही सता क्यों कपावृष्टि-बन पशुहावहिये ।

निज बियोग-बुझ जानि क्यानिधि मयूर बचन कहि समुधावहिये ॥

वस्तुतः सीता की यह स्थिति बड़ी कष्टमय है । उनको विप्रलम्ब सीप पर जप

स्थित हो उठा है । हनुमान को प्राप्त कर वह प्राक्वस्त हो उठी थी किन्तु सीता शोभ के उपरान्त उनका जाला प्रावश्यक था । जाने के लिए उनके प्रस्तुत होने पर सीता के सीप का बाँध टूट पड़ा—धरीर सिधिल हो उठा धीर नेत्रों में धनु क्षमधला भाए । यों कहने को बहुत या किन्तु राम के चित्त की स्थिति को छोड़कर वह बुझ के बूट पीकर रह गई । हनुमान वीसा धीर भी उच्च स्थिति को देखकर विमबिला कर रह गया—

कपि के बसत तिय को मनु गहू जरि प्राधो ।

पुलक सिधिल मबो सरोर नीर नयनन्हू छाये ॥

कहुन बहो बँदिस नहि कहुँ पिय के बिय की जानि हृदय-बुझू बुधरप्या ।

देखि बसा ध्याकुल हरीस पीवम को पबिक क्यों धरनि तरनि तामो ॥

हनुमान ने सीता के समीप पहुँचकर सीता की बियोग-स्थिति का यथातथ्य

बिचन उनको सुनाया—

तुम्हरे बिरहू नई गति बीन ।

बित ई तुमहु राम कबलानिधि । जानी कबु ने लकी कहि हूँ न ॥

सोचन-नीर कपिन के बन क्यों रहत निरंतर सोचनन कोन ।

'हूँ' पुनि कयी लाज-पिबरी महुँ राखि हिये बड़े बधिक हठि बीन ।

जेहि बाबिका बघति तहुँ कय-नृप तजि तबि नजे पुरातन मोन ।

स्वात-समीर मँड भइ मोरेहु तेहि कय पग न बरयो तिहुँ मोन ॥

तुलसिदास प्रभु । इसा सीप की मुझ करि कहत होत प्रति मीन ।

बीर बरस बुरि कीरै बुध ही तुम प्रारत-प्रारति-बीन ॥

पद में उद्धारमक भावनाओं का सहयोग लिया गया है जो सीता के बिरहा चिन्म का प्रोत्साहन करती हैं । प्रतिशयोक्ति के कारण पद में मने ही स्वाभाविकता विरोधित हो उठी हो किन्तु पद का तृतीय धीर अतुर्ब पंक्तिमें में मरी हुई स्वाभाविकता ने हनुमान के सम्बन्ध धीर सीता की बियोग-स्थिति को प्रवस्य गरिमा प्रदान कर दी है । 'सोचन-नीर कपिन के बन क्यों रहत निरंतर सोचनन-कीन' में 'उद्धारम' धीर 'हूँ' अति-बनी लाज-पिबरी महुँ राखि हिये बड़े बधिक हठि बीन'

म रूपक की छटा सजीव हो उठी है।

मुन्दरकाण्ड म विभीषण धरणापति का विवरण भी गोस्वामी गुप्तमीवाच द्वारा बड़ी सहृदयता और भावुकता से चित्रित किया गया है। रावण से धर्ममात्रित होकर विभीषण भीतावनी से सीता राम की धरम म नहीं पड़ना है। वह मुमक पर्वत पर धरम धरम कुबेर के धर्ममत और गिब जी क इज्जित और धारणीर्षि से धर्मप्ररित होकर राम की धरम म गया है। गुप्तमी क धरम रामचरित काव्यों की धरणा मह स्वस्य मह विषय है।

सीतावनी का मकाकाण्ड रामचरित मानम की धरणा बही मूयम है। इसमें राम रावण के युड का संकेत मान ही है। लडमय क धर्मित मनने से उमक मूर्छित हो जाने पर राम का मोक धराध रूप न प्रस्तुटि हो उठा है। बस्तुत महमय का धर्मिताव ही ऐसा निस्तुह और निष्कपट रहा है कि वह भाई क धारण के लिए बही मी रखा जा सकना है। उहोंने धरम धरम की सेवा म कुछ उठा मही रखा। धाम इह धरम कर्तव्य की धारणता के लिए धरने प्राणो को भी होमने के लिए प्रस्तुत गए हैं। बस्तुत मह तव्य राम जैसे मर्षाया पुरपोलय को भी विचलित करने में र्वं है—

येरो तव पुरुधारव बाको ।

विपति बँडावन बंधु-बाहू बिनु करों धरोतो काको ॥

मुनु मुघोब ! ताकेहू मोपर करुयो बहन बिधाता ।

ऐते समय लमर-तंकट हों तउधो लजन-तो धाता ॥

गिरि कानन बँहूँ साधामुग ही बुनि धनुज लँघाती ।

रुँहूँ कहा बिभीषण की गति रही सोब मरि धातो ॥

गुप्तमी मुनि प्रभु-बचन मानु-कपि लकल विकस हिय हारे ।

धामर्षत हनर्मत कोति तव धीतर जानि प्रकारे ॥

गम्युध पर में 'कण्य रग' धनधना रहा है। महमय क बिधोग के कारण

'मोक' स्थायीभाव को विभीषण की धरणापति परिदिकट की विवराता उद्दीपन प्रदान करती है।

राम के गाई समय म यदि विगी ने उनको धाधय दिया तो उसका धय हनुमान को है। जाम्बवान की धर्मिरेरणा ने उनका प्रमुत्त बीररत जापूत हा उठा है—

को ही धय धनुनामन पाको ।
तो बगडमहि निबोरि बँल-बधो ध नि मुघा तिर नाको ॥
के पाताम इतो इरामावलि धमन-बँड महि लाको ।
धेरि भुवन करि मानु बाहिरो मुरहूँ रगुँ ही ताको ॥

बिषय-वर बरबत धानी करि तो प्रम धनुष बहाको ।
बटकी मोब मोब मुबक-उजो मबहि को पापु बहाको ॥

तुम्हरेहि कवा प्रताप तिहारेहि मेक बिलंब न जावौ ।

बोनी सोइ धाम्यसु तुससी प्रभु बेहि तुम्हरे मन जावौ ॥

बीररस का स्वाधीमान उत्साह सम्पूर्ण पर मे समाहित है। हनुमान प्राप्तमान विभाव म है।

अन्तर संकाकाष्ठ मे रामचरित का परम्परागत स्वरूप ही विद्यमान मिलेवा। ही राम के प्रयोध्या प्रागमन की प्रतीका मे कीशस्या की उत्सुकता और आश्रुता प्रवचन उत्सेहमीय है। वस्तुतः उनकी बामी मस्तुत्व और वात्सल्य से आन्वित हो उठ है जो बड़ा ही मार्मिक है।

३ विनयपत्रिका

तुलसीदास का आरत चरित—तुलसीदास का लौकिक जीवन बिलगा साधारण वा उसके विपरीत उनके जीवन का उच्च्य राम भक्ति और उनकी श्रीसामो का गान उलगा ही प्रसाधारण और महान वा जिसकी पूर्ति के लिए उन्होंने विविध काम्य रचकर अपने कवि-कर्म को सार्थक किया। इस महतुष्टय के समस्त छेप सभी नवम्प और हेय वा इससे उनके जीवन-सम्बन्धी वृत्त भी उसमें प्रतिष्ठित न हो सके। यन्त्र-संकेतिक रूप मे जो प्रस्तुति भी हैं वह वस्तुतः कहने की भावना से व्यक्त न होकर आराध्य के प्रति पूज्य वृष्टि लिखा और विनय के प्रसय में सचटित हो उठे हैं उन्ही को तुलसी के जीवन का अन्त-साध्य कह सकते हैं। इस रूप में विनयपत्रिका मे भी कवि के सम्बन्ध मे कुछ स्वतः उपलब्ध है किन्तु पर यहाँ विचार करना पूर्ण समीचीन है।

बेगीमानवदास और रघुबरदास ने तुलसीदास को सरसुपारी द्विदेवी बाह्यन माना है, उनके पिता का नाम आम्पाराम और माता का नाम हुलसी वा।^१ विनय पत्रिका मे माता-पिता के नाम का प्रवचन संकेत नहीं है किन्तु 'सुकुस' मे अन्म लेने का उन्हीन प्रवचन उल्लेख किया है—

बियो सुकुस जलम सरिर सुम्बर हेतु जो फल बारि को ।

जो पाइ पच्छित परमपद पावत पुरारि-मुरारि को ।

—(विनयपत्रिका—१३३)

उपर्युक्त पंक्तियों में बाह्यन वध मे उनके अन्म लेने का प्रत्यक्ष प्रमाण समाहित है। यह वंश ही ऐसा है जिसमें धर्म धर्म काम और मोक्ष चार फलों का विद्येय ध्याय रखा गया है और सिद्ध तथा कुम्भ के परम पर को प्राप्त किया जाता रहा है। कवितावली में भी उन्हीने 'जायो कुस मगन' कहा है। जिससे उपर्युक्त उच्च प्रमाणित

१ श्री श्यामसुन्दरदास—गोस्वामी तुलसीदास पृष्ठ २८

हो जाता है ।

राम नाम के प्रभाव और भक्ति के कारण दृष्टि-विनाश के मध्य में तमसी में जननी जनक द्वारा स्थापित और ब्रह्मा द्वारा विचित्र बनाने की बात भी धर्म सम्बन्ध में बहू बानी है । बिबिध ईश बुबिपाका के मध्य में उन्हींने जावन के राज्य सार्थी की काट दासा है । घाय राम के कारण मने ही बहु जीवन म परवस्त हो उऽ हा किन्तु बिगन जावन की कमक ता उनक मानस में प्रस्तुत भी ही मी मे उम तथ्य का उन्हांन एक बिदवान के साथ प्रस्तुत किया है—

जननी-जनक तज्यो जनमि करम बिन बिबिधू मृग्यो घबहरे ।
 मोहें तो बोज-बोज बहल रामहि बो, सी प्रसंग देहि करे ।
 फिरयो ललान बिन नाम उबर सगि बुझउ बुझिन मोहि हेरे ।
 नाप प्रसाद सहत रसास पल प्रब ही बबुर बहेरे ।
 सापन साब लोक-बरलोकहि मुनि मुनि जनन घनेरे ।
 तुलसी के घबलन्य नाम को एक पाँठि बह करे ॥

—(बिनयपत्रिका २२७)

माता-पिता द्वारा स्थापित जाने और वास्तव जीवन की कल्प स्थितियों का विवरण कविताधर्मी^१ में २ विचित्र किया गया है । यह तथ्य बेबीमाघदान के 'मूल बानाई-चरित' में भी समझिन है ।

सैय सम्बन्धी प्रचारदा के सम्बन्ध में बिनयपत्रिका में तुलसी का बार-बार बहल का घबकान भिना है । बस्तुत यह तथ्य ही ऐसा का जिनके बाल पर बहु घपने राम को घमिघरित करने में प्रवृत्त हैं । बिनयपत्रिका के एकाय स्पस और देविया—

हार हार दीनता बही काहि रर परि पाहू ।
 हू बयानु बुनी बस दिसा बुझ-बोव-बलन-झूक विघो न संजापन काहू ॥
 तनु-जामो बुटिल कोर ज्यों तज्यो मान-पिनाहू ।
 काहे को रोव बोव काहि धी परे ही प्रभाव मोनों सकुचत छुड तब छाहू ॥
 —(वही १७२)

१. मातु-पिता सब साथ तज्यो बिबिधू न निरती कष्ट मान भनवाई ।
 नीच निरावर भाजन बाहर बकर हूचन तापि ननवाई ॥

× × ×
 बारें के समान बिदवान हार-हार दीन
 जानन ही काहि फन कारि हा बतक की ॥

× × ×
 जानि के मुजानि के मुजानि के बेगानि बम
 राप तब सबक बिबिध बाल दुनी मो ॥ —(कविताधर्मी)

स्वारस्य के साजिम्ह तज्यो तिजारा को सो बोटक चीन्हा पलटि न हेरो ।

—(मिनमपनिना १७२)

कहा न कियो कहीं न गयो सीस काहि न तायो ?

राम राबरे बिन भये जनमि जनमि जग दुख बसहु बिसि पायो ॥

घास बिबस खास हास हूँ नीच प्रभुनि जनायो ।

हा हा करि दीनता कही डार-डार बार बार परी न क्षर, मुहु बायो ॥

—(बही—२७६)

यद्यपि ये सब भावनाएँ राम की भक्ति की धोर ही उत्पन्न हैं तथापि प्रसंगत यह अपने जीवन की धोर भी दृष्टिपाठ करत वसे हैं इसीसे उसके कुछ महत्वपूर्ण स्थल प्रकाश में आ गए हैं ।

राम का मुसाम होने के कारण लोगों ने तुमसीबास का 'रामबोसा' नाम रख दिया है । लोग उन्हें नीच कहते हैं किन्तु उन्हें इसमें जरा भी सज्जा और सकोच का अनुभव नहीं होता है । वह अपने रामपरक बह्दानन्द में निमग्न रहते हैं और सच्चे मनोराम्य की अनुभूति करते हैं । वैजीमामवशास के 'मूल पोसाई'परिच के अनुसार उनका एक नाम 'रामबोसा' भी था । इसी तत्त्व की सफल प्रतिबिम्बित इस स्थल पर हो उठी है—

राम को मुलाम नाम रामबोसा राख्यो राम

काम परै नाम ह हों कबहुँ नहत हूँ ।

रोटी-नूदा नीके राख घाम ह की बेद भाई

नतो हूँहै तेरो ताते घामेव नहत हूँ ।

नोय कहूँ पोच सो न सोच न संकोच मेरे

ब्याह न बरेछा जाति-पाति न कहत हूँ ॥

तुमसी प्रकाश-काश राम ही के रीम-बीम,

प्रीति की प्रतीति जन मुचित रहत हूँ ॥

—(बही—७६)

उपर्युक्त भावना धोर मक्त-जीवन के सच्चे मनोराम्य की यह प्रतिबिम्बित ही कवितावली में भी हुई है ।^१

तुमसी ने भक्ति के बसीभूत हो सर्वत्र राम-रूपा की भावना की है । गुडा

१ भूत कही प्रबभूत कही रजपूत कही बुमहा कही कोई ।

काहू की बेटी सों बिटा न ब्याहव काहू की जाति बिचारि न सोऊ ॥

तुमसी सरनाम मुलाम है राम को जाके सबे सो कही कछु कोऊ ।

मानि कै लैवो महीठ को लोइवो लैके को एक न रीके का सोऊ ॥

—(कवितावली)

ब्रह्मा के कारण उनकी इस सम्बन्ध की चिन्ता त्रिगुणित ही उठी है। विनयपत्रिका की निम्न पंक्ति इसी तथ्य का सफल प्रस्तुतन करती है—

तुलसिदास भवनाइये कीजै न हीन अब जीवन-प्रवधि ध्यान नरे।

—(विनयपत्रिका २७१)

विनयपत्रिका में उपयुक्त कतिपय स्थलों से तुलसी क जीवन पर मलिकञ्चित प्रकाश पड़ जाता है समय जीवन पर नहीं। वस्तुतः विनयपत्रिका में क्या अन्य काव्यों में भी उन्होंने अपनी जीवन-गाथा को प्रस्तुत करने का कभी उद्देश्य नहीं बनाया यह बनाया होता तो काव्य ग्यायत भटक उठता किन्तु तुलसी-जीवन की रूप-रेखा तो स्पष्ट ही जाती। सच तो यह है कि तुलसी एक संकीर्ण हृदय लेकर नहीं जन्मे थे। इसी से वह अपने जीवन की कोई बात धर्मिकारपूबक कहने प्रतीत नहीं होते। उनकी यह भावना विनयपत्रिका में भी मार्मिक है। इसी से माता-पिता क त्याग राम ब्रह्मा काव्य-जीवन का नाम हैम बुल धादि उनके जीवन की कृत् परिस्थितियाँ ही प्रकाश में ला सका है मनुष्य क प्रकाश में धामे का न प्रवचन ही वा और न धोचित्य ही।

तुलसी की भक्ति

तुलसी के राम मठार में बड़-बेठन के एकमात्र स्वामी और पोरक हैं। इसीसे निव्य धरुण रगे हुए वह उनके प्रति पग-पग पर अपनी भक्ति भावना का निवेदन चढ़ा लके है जिसके सम्मक प्रमाण में उनके सभी काव्यों में उपलब्ध है किन्तु उसका जैसा सटीक और व्यापक रूप विनयपत्रिका में प्रस्तुतित है वैसा अन्यत्र काव्यों में नहीं।

नारद भक्ति-मूक में मुक्तमहार्म्य रूप पूजा स्मरण बास्य सक्र काल बात्मस्य धामनिबदन तन्मयता परमविरह धारि म्याह रामानुजी भक्तियों का उत्तरेण है। इन सभी में हृदय के प्रति अनन्य भाव रगा जा सजता है किन्तु इसकी परिपति जिस सरलता और निष्कपता से शास्त्रभक्ति में हो सजती है वैसी धर्मों में नहीं। भक्त भगवान रूप अपने धाराम्य से अपने जीवन संगार, पाप पुष्य सत्कर्म दुष्कर्म धारि सभी के सम्बन्ध में कहने का मुग अनुभव करता है और उनकी कृपा तथा सहानुभूति का प्राप्त करने की सजत अभिसाया रखता है। जब ता यह है कि इन भक्ति में मन क पाप मिटने-मिटाने की बट्टिनाई नहीं होनी और शास्य सरलता से पूर्ण हो जाता है। इस निमित्तय क कारण ही रामानुजाचार्य ने अपने विनिष्ठाईन में इन भक्ति का प्रतिपादन किया था जिसके परम्परान रूप से प्राप्त कर तुलसी ने अपने भक्त-जीवन को मार्मिक किया।

‘यो भागव’ जैसे महाकाव्य में तैदास्तिक रूप से भक्ति का प्रतिपादन है और रस-रस पर बौध्वा भरत निपात्र हनुमान रावरी धारि क जीवन में भी

उसकी परिभति हुई है किन्तु रामचरित की कथा के जीवन में डूबती-उठती प्रतीत होती है। इसके विपरीत बिनयपत्रिका में प्रथम पद से लेकर अन्तिम पद तक उसका प्रबिम्बित छोट घाण्णित है और नियम का मध्यम से भक्ति की जितनी भी स्थितियाँ और कृतियाँ हो सकती हैं भक्त कवि तुमसी ने उन सभी को इसमें समेटने की पूर्ण चेष्टा की है।

तुमसी के राम प्रीति होने के कारण व्यापक और पूर्य है। उनकी इन विधि-विद्याओं के कारण ही उन्होंने उनका मकत होता स्वीकार किया है और चाहते हैं कि वह उनकी गंगा भी अपने भक्तों के मध्य में कर लें—

सकल बिस्व-बहित सकल-सुर सेवित
धामम-निगम कहे राबरेई तुम राम ।
इह जागि तुमसी तिहारो जन भयो
ग्यारो कै यमिबो जहाँ गने नरीब गुलाम ॥

—(बिनयपत्रिका ७७)

धाराप्य की वह प्रतिष्ठा हो बिनयपत्रिका के प्रत्येक पद में पिरोई हुई मिलती है। इस भावना के बस पर वह अज्ञानित प्रेम ही उनके श्री चरणों में प्रपित कर ही सके हैं किन्तु उनके प्राप्तम्बन स्वल्प उनके महत्त्व और अपने ईश्वर की प्रकट करण का प्रवकाश भी उन्हें मिल गया है। फलतः इन दोनों स्वल्पों के विविध धनु मार्गों को ही हम बिनयपत्रिका में पद-पद पर देखते हैं। तुमसी को अपने धाराप्य में विश्वास और निष्ठा है—

राम लो बड़ो हू कौन मोलौ कौन छोडो ।
राम छो करौ हू कौन मोलौ कौन छोडो ॥

—(बिनयपत्रिका ७२)

× × ×
‘तू क्यालू कौन ही तू जागि हौ जिहारी ।
ही प्रसिद्ध पालकी । तू पाप-पूज हारी ।
नाथ तू अनाथ बने, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान भारत नहि, भारतिहर तोसो ॥
बहुत तू हौ नाथ तू है ठाकुर ही खेरो ।
तस्त-नात मुद-तखा तू सब बिधि हितु मैरो ॥
तोहि मोहि नाते अनेक मानिय जो नाथ ।
जौं ज्यो तुमसो क्यालू अरन सरन पाव ॥

—(बिनयपत्रिका ७६)

तुमसी का मकर-हृदय इन स्वल्प पर अपने धाराप्य के श्री चरण पकड़कर एक विश्वास के साथ बैठ गया है। लौकिक विचारों और पापपूर्ण बातावरण में पद-पद

र उमके मास के साथ घाल मिचीनी बेसी छसना मे उम्हे कही का न रखा अपने ही कहे जाने बासों मे बिदबासघात क्रिया देवी शक्तियाँ भी उमके कस्याम के लिए घटसर न हुई—इस प्रकार की अतुरिक निराशाओं में तुमसी जीवन-निर्माण की अपनी बाजी हार गये । एन निराशय और निस्सम्बल परिस्थितियों में ही उम्हे अपनी प्रात्मा के अन्तराल म घासा की ज्योति मिसी अपनी बिबघाता की पुहाई दी साथ ही प्रभु और अपने मध्य क बिबिध गाते बनाकर 'अरन-अरन' के लिए घट्ट प्रार्थना कर धारमसमर्पण कर दिया ।

मक्ति के क्षेत्र मे अपने धाराध्व के समस्त आत्मसमर्पण कही बात होती है । सब ठी यह है कि धारम निष्कृति क लिये इससे भय घन्म सापने ही नहीं है । अर्ह कार और भाविक स्वकप स्वयमेव तिरोहित हा जाने हैं । धर्मबा भक्त नभबा मक्ति अप योय तीर्थ धारि बिठन हो बाह्य साधन प्रयीहन कर असे मन का द्वैत नहीं मिठता है । इस प्रकार जीवात्मा और परमात्मा दोना क मध्य में ऐसी चौड़ी खाई बनी चूठी है जिसका पाठ सकना भक्त क लिए असंभव है ।

तुमसी ने अपने राम के समस्त आत्मसमर्पण कर एक निष्प्र प्रह्व कर ली । अमल बहु सदैव के लिये धास्वस्त हो गये । उनका राम साधारण नहीं असाधारण है—

'जानकी जीवन अण-जीवन अगत हित

अनदीत रघुनाथ राजीवसोचन राम ।

सरह-बिधु-अवन मुच लीन भीतवन

सहज सुन्दर तनु सोभा अर्पणित काम ॥

—(विनयपत्रिका ७७)

×

×

×

सनि लोता-पति-लोल स्वभाउ ।

मोह न मन तन पुलक नयन अल लो नरसहर लाउ ॥

लितुपन लें वितु मातु बंध मुह लैबक सखिब ललाउ ।

कहत राम बिधु-अवन रिलोहें लचनहुँ सरपो न काउ ॥

—(विनयपत्रिका १००)

×

×

×

सोक-वेद हूँ बिजित बात मु'न-नामुनि,

मोह-भीहित बिजल मनि पिति न सहति ।

छोटे बड़े लोह-सरे छोटक डूबरे

राम ! रावर निबाहे सबही की निबहति ॥

सतरंज की लो रात्र काठ की लई ललात्र

महारात्र बासो रची प्रथम न हनि ।

मुनभी प्रभु के हाथ हारिबो-जीनिबो नाप,

बहु बेग बहु मुक तारवा कहति ॥

—(विनयपत्रिका २४१)

राम के ऐसे ही बसाधारण और महत्तम स्वरूप को तुलसी ने अपनी भक्ति का आसम्भन माना है। वह सविधवीर्य और सीम्बर्य से युक्त है। ये तत्व प्राथमिक रूप में विद्यमान होने के कारण वह भौतिक और विषय है। उनके ऐसे अप्रतिम होने के कारण ही उनकी महत्ताओं का गान करने में तुलसी ने यौवन और आभय स्वरूप अपने प्रभावों पापों भौतिक विचारों आदि का उल्लेख कर मुक्त और सत्त्वोप की अनुमति की है।

प्रभु के महत्त्व के समस्त तुलसी अपने जीवन की ओर देखते हैं। उन्हें अपने वैभ्य प्रभाव और महत्त्व आदि की विज्ञाने का साहस होता है। प्रभु के सविध वीर्य और सीम्बर्य की आभा में उन्हें अपने पाप महापाप और अपना जीवन महापापी अनुभव होता है। प्रभु के इस महत्त्व के प्रकाश में उन्हें परचात्ताप की प्रवृत्ति मिलती है। और वह एक-एक कर अपने पाप की गठरी खोलने लगते हैं—

‘जानत हूँ निज पाप जलधि जिय जल सीकर सम सुगत लये ।

रज सम पर-अवपुन सुमेव करि मुन गिरिसम रजते निरसे ॥

परबुन सुगत बाहु पर हूपन सुगत हरख बहुतेरो ।

आप पाप को जपर बसावत सहि न सकत पर खेरो ॥

—(विनयपत्रिका १४३)

त्रिगुणात्मक विश्व में इस प्रकार के विकार अर्थों में भी होता स्वभाविक है। सम्भव है प्रभु उन्हें साधारण समझकर उनकी उपेक्षा कर दें। फलतः वह प्रभु को ‘पतित पावन’ समझकर अपने महापापों के स्वरूप को ध्वस्त कर चले हैं—

(१) मायब जू जो सम मन्व न कोऊ ।

बछपि नीन-यत्तय हीन मति मोहि महि पूरै कोऊ ॥

×

×

×

मेरे अर्थ सारब अनेक जब गनत बार महि पाव ।

—(विनयपत्रिका १२)

(२) मायब जो समान जब माहीं ।

सब बिधि हीन मलीन हीन अति नीन विषय कोउ माहीं ॥

—(विनयपत्रिका ११४)

×

×

×

(३) जगज पयो बरिहि बरबीति ।

परमारय पावे न परयो नस अनुदिन अयिक अनीति

—(विनयपत्रिका २१४)

(४) ऐसैहि अनम तमूह तिराने ।

प्राप्तनाब रघुनाथ से प्रभु तजि सेवत करन बिराने ॥

—(विनयपत्रिका २१५)

(५) मोहि महु मन बहुत बिमोयो ।

बाके लिये सुनहु कवनामय मै जग बनमि-अनमि दुग रोयो ॥

—(बही—२४२)

इस प्रकार के अन्य स्वर्णों को भी तुमसी के जीवन के साथ मंगीत बिछाकर यदि हम बिचार करें तो बस्तुतः उनका साथ अग्न्याय और प्रबिचार होगा । उनका भक्त हृदय सभी कुछ ब्रह्मने क लिये प्राणुर है । जो सर्वव्यापक है क्या वह अन्तस्त्व की ज्ञान न लेगा । इसी से संसार या जीवन क जो भी पाप रूप में है उनका उन्मेष में भी तुमसी को सुख की अनुभूति होगी है । तुमसी की इस कृति से प्रायश्चित्त तो हो ही रहा है । किन्तु वह अपने कर्म की उम सीमा पर पहुँचना चाहते हैं जहाँ वह अपने प्रभु से बह बहने का माहम कर सकें—

तुमल्लिखत प्रभु । क्या बरहु अब मैं निज बौध बसु नहि मोयो ।

तुमसी की इस कृत्त ब्रह्मा म तो प्रभु हृदा प्राप्त कर लेना बठिन म होगा । बिरबन्त होने हुए भी उनका मन व्यथ हो उठता है । फिर प्रभु को उनका प्रभुर और महुर का स्मरण दिसात है—

म हरि पतित पावन तुमे ।

म पतित तुम पतित बावन बौध जानक बने ॥ —(बही—१६०)

इस भावना के साथ ही 'माहित कष्ट धौगुल तुम्हारा धरनाब जोर मैं माना बहते हुए तुमसी माहितिक हो उठे है—

तो लो प्रभु को व बहूँ बौध होतो ।

ती सहि बिपट निराबर निसिबिन रडि लडि ऐलो घटि को तो ।

—(बही—१९१)

जो व बूलरो बौध होइ ।

तो ही बारहि बार प्रभु बत दुख सुनाबो रोइ ॥

× × ×

आपसे कहु लो विव मोहि को । घतिहि घिनत ।

बाल तुमसी घीरे बिपि बयो करन परिहरि जात ॥

—(विनयपत्रिका २१७)

बहे बिनु रह्यो न बरत, बहे राम । रम न रह्य,

तुमसे जनाहिक को घोट जन छोटे-करो ।

काल की करन की बुलातति सह्य ।

× × ×

मेरी लौ बोरी है सुबरनी बिगरिणी बलि
राम ! राबरी छौ रही राबरी बहुत ॥

—(बिजयपत्रिका २२६)

तुलसी की यह स्पष्ट भाविता प्रभु के प्रति उनकी प्रणयता का कारण है। प्रभु के सामीप्य के बल पर उन्होंने अपने बहने के अधिकार का उपयोग किया है। एसी भावनाएँ यदि तुलसी के प्रहकार और भृष्टता के अवस्थित मास भी बायें तो यह भी उनके हृदय के साथ सम्भाव्य होगा। पापों और विकारों के कारण सम्भव है उनके प्रभु उनसे बचना करने सके हों। इससे 'भापसे सीपिये' किठनी मीठी बूटकी है। तुलसी प्रपना सुबार और कम्पाय अपने माध्यम से न बाहकर प्रभु के माध्यम से चाहते हैं। प्रपना को सुरक्षित रखने के लिए है।

इस मन्दि भावना के बल पर तुलसी बीबन की उच्च निष्काम स्थिति पर पहुँच जाते हैं, जहाँ लौकिक्ता का पूर्ण ह्रास हो जाता है—

इहै परम कम परम बड़ाई।
नख तिख बबिरे बिहुमाख अखि निरखहि नयन प्रबाई।

×	×	×
जहाँ न लगति स्वति कसु रिधि तिधि बिपुल बड़ाई।	×	×
हेतु रहित समुराम राम-बर बड़े धनुविन प्रधिबाई ॥	×	×
पा जय में बहूँ लयि या तनु की प्रीति प्रतोति सपाई।	×	×
ते सब तुलसिदास बबु ही लौ होहि तिमित इक ठाई ॥	×	×

—(बिजयपत्रिका १ १)

तुलसी अपने राम से प्रेममयि उदबुद्धि बन-सम्पत्ति अदि सिद्धि और बड़ाई प्रदान करने की विनय नहीं करते उनकी उनसे इतनी ही प्रार्थना है कि उनके चरम क्रमों में उनका प्रनय और निष्काम प्रेम बढ़ता रहे। इसके प्रतिरिक्त साक्षातिक प्रेम विरवाच और सम्बन्ध को भी वह केवल राम में ही केन्द्रित देखना चाहते हैं। बस्तुतः ऐसी निष्ठा और मनोकामना ही मन्त्र-बीजत का सर्वस्व है।

'बिजयपत्रिका' में समाहित तुलसी की विनय-भावना क्रमिक रूप से राम चरणों की ओर उन्मुक्त हुई है। अपनी प्रनय निष्ठा और विरवाच रहे हुए राम के समक उन्हीने अपनी बीजतता मानमर्पता समदर्शना विचारना प्रतीना प्रारवाचन मनोरोग्य धारि विनय की सारों मुनिकार्य प्रस्तुत की है, जिनमें उनके प्रति उनकी यज्ञा पूर्वकप से प्रसिद्धि है। मन्दि का यही रूप होता है जो तुलसी के द्वारा बिजयपत्रिका में प्रस्तुतित हो उठा है।

राम-तत्व

गोस्वामी तुमसीशाम रामानन्द की शिष्य-परम्परा के कवि ने उभरत बिगिष्ठा जीतीबर्तन की प्राण-प्रतिष्ठा ही उनके काव्यों में हुई है। प्रसंगत ब्रह्म-तन्त्र ध्वज धीरे तत्व के तत्व उनका काव्यों में भये ही उपमत्त है। किन्तु उनकी परिष्कृति उक्त दृष्टि में ही हुई है। परमस्वरूप उमी का पापण धीरे परम्परा उनका समग्र साहित्य में समाहित है।

बिनयपरिकर तुमसी का बिनय काव्य है जिसमें उक्त परम्परा की भक्ति भावना जो दास्यभावित पर आधारित है साक्षात् हो उठी है। इसका फलस्वरूप ही राम के प्रति उनकी अनन्य निष्ठा धीरे पूर्य भावनाओं का प्रस्तुतन भी हुआ है। बिनय के अतिरिक्त श्रीव माया धारिक परम्परा में भी उनकी भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं। किन्तु उद्देश्ये ब्रह्म (राम) धीरे का ही धर्म प्रतिपादित किया है। राम की यह सर्वोपरिता बिगिष्ठा तत्व का स्वरूप तत्व है। इस नाम उनको राम के प्रति अपनी अनन्यता धीरे दास्य भावना स्वयं में मुखिया हुई धीरे इस धर्म में ही ब्रह्म अपनी सचुता का सम्पूर्ण बिबरण प्रस्तुत कर सके हैं।

उपर्युक्त भावनाओं का बिनयपरिकर में बड़ी तक पापण है। उनके लिए उनका बिबरण में प्रवेश करना आवश्यक है। उसके फलस्वरूप उनके दास्य भावना पर भी प्रकाश पड़ सकता है।

ब्रह्म

बिगिष्ठा तत्व के निष्ठाओं के अनुसार बिनय में बिनू (श्रीव भजन धार्या धारिक) धरिन् (ब्रह्म प्रकृति माया धारिक) धीरे ब्रह्म (ईश्वर परमात्मा परब्रह्म परमेश्वर भगवान् श्रीराम धारिक) तीन बिधायक तत्व हैं। बिनू धीरे धरिन् ध्याप्य धीरे ब्रह्म ध्यापक है। ध्याप्य पक्षध ध्यापक में समिबिष्ट रहता है। धरिन् बिनू धीरे धरिन् दोनों की ही ब्रह्म में स्थिति है। धरिने धरिन्धर्य के कारण वे रामा तत्त्व बिधायक हैं। धीरे धरिने धरिने स्वयं के कारण ब्रह्म बिधायक है। इन बिधायकों धीरे धरिने हीन के धरिने तत्व के कारण ही इन परम्परा का बिगिष्ठा तत्व नाम पड़ा।

ब्रह्म जगत् का धर्मिय निमित्तोपादान कारण है। इसीलिए वह धरिने की जगत् रूप में प्रकट कर बिबिध प्रकार की सीमाएँ किया करता है। धरिनेधरिने की इस भावना की बिनयपरिकर में पूर्य प्रतिष्ठा है। तुमसी बिनयपरिकर—५२ पं में ब्रह्म के ब्रह्मधरिने के प्रति धरिने धरिने निष्ठा धीरे राम में भगवान् स्वरूप की भावना अभिव्यक्त करण है—

कीर्तनापीठ जगदीश्वर जगदीश्वरिण धरिनेधरिने धरिने धरिने धरिने ।

नायक तत्व धरिने धरिने धरिने धरिने धरिने धरिने धरिने धरिने धरिने ।

—(बिनयपरिकर ५२)

राम के माहात्म्य और ब्रह्मत्व का पूर्ण स्वयं बिनयपत्रिका की प्रारम्भिक स्तुतियों में विद्यमान है जिनमें गणरा मूर्धं शिब बेनी मंगा यमुना काशी हनुमान सबमम भरत राज्ञुन सीता प्राधि की स्तुतियों में बहु राम भक्ति और कृष्ण की बनग्य कामना करते हैं। उन सभी में राम की सर्वोपरिता स्वयंमिष्ट है। उसके इस ब्रह्मत्व से तुलसी स्वयं प्रभावित हैं इसी से उनके समर्थ और सर्वज्ञ रूप से अपने लिए कृपा की कामना करते हैं—

बेष । पुसरौ कौन बोन को दयालु ।
 सोल-निजान मुमान-तिरोमान तरनायत त्रिय प्रमत्त-यालु ।
 को समरथ सरवग्य मकल प्रभु शिब-सनेह-मानस मरालु ।
 को साहिब किय मोठ प्रीतिबल जग निसिखर कवि भील भालु ॥
 नाथ हाथ माया-प्रपञ्च सब बीब-बोप-जुन-करम-कालु ।
 तुलसिदास भयो वोच राबणो नकु निरलि कीजिए निहलु ॥

—(बिनयपत्रिका १५४)

ब्रह्म संघी और कवि तथा माया उसके घंटा है इस तथ्य का प्रतिपादन ही 'नाथ हाथ माया-प्रपञ्च सब बीब-बोप-जुन-करम-कालु' से होता है। 'माया' और 'बीब' का यों अपना अस्तित्व भी है किन्तु ब्रह्म के समक्ष वे धंठु हैं और पूर्णत्व से उसी क धापीन हैं। इसमें घंटीत का माथ तो है किन्तु धापार्य संकर के समान यह 'जान' तत्व के प्राभित नहीं है इसमें कर्म और भक्ति के लिए पूर्ण प्रवनाश है। यह भावना ही निम्न पंक्तियों में तुलसीदास द्वारा प्रस्तुत की गई है—

सिद्ध साधक ताप्य ज्ञाप्य जाबक कथ मंत्र ज्ञापक ज्ञाप्य सुद्धि-सुद्ध
 परम कारन कर्मनाम जलवाहननु सपुन निर्पुन सकल दुख्य दुप्या ॥

—(वही—५१)

ब्रह्म के उपर्युक्त सुषो के कारण ही माया और बीबातमा उषी क धापय है। माया के प्राबस्य के कारण बीबातमा को अज्ञानात्मकार घेर सेता है और मोह की फाँस को उसके घनतल में पड़ जाती है उसे ससार में अत्यधिक मटवन्ती है। घन में हरि और मुक् की करणा से ही उसकी निष्कृति होती है—

मापव । मोह-काँस क्यों दूई ।
 बाहिर कोटि उपाय करिय धाम्यतर घनिक न घूर्ई ।
 तुलसिदास हरि-गुद-कटना बिनु विमल बिबेक न होई ।
 बिनु बिबेक संतार-घोर निबि पार न पारै कोई ॥

—(वही—११२)

मोह-जुलमा से बीब को मुक्त करने का श्रेय यदि किसी को है तो ब्रह्म को ही है—

नव प्रकार में कठिन भुलुल हरि बुद्ध बिचार त्रिय मोई ।

बुद्धिमान प्रभु मोह-नृ बला बुद्धिहि तुम्हारे छोरे ।

—(विमलपत्रिका ११४)

जीव को बचन में झलते के सम्बन्ध में माया के विविध प्रकार के विषय विमलपत्रिका में तुमसी द्वारा प्रस्तुत किए गए हैं किन्तु उपर्युक्त के समान जीव-निष्कृति के साधन भी कवि द्वारा बयित किए गए हैं । इन सबके मूल में हरि-रूपा ही प्रमुख है—

रूपा होरि बनसी यह अर्जुन परम प्रेम-बहु-वारो ।

०हि बिधि बयि हरहु मेरो दुख कोतुक राम तिहारो ॥

ह अति बिदित उपाय सचम सुर केहि-केहि शीत निहोरे ।

बुद्धिमान यहि जीव मोह रज बहि बाप्यो सोइ छोरे ॥

—(विमलपत्रिका १२)

उपर्युक्त से यह स्पष्ट है कि जीव को 'मोह रज' में बाँधने का समय जिसको है उसी को समय उसके मुक्त करने का भी है । इस प्रकार ब्रह्म की मत्ता स्वयं सिद्ध है ।

ब्रह्म की सृष्टि के सम्बन्ध में सम्प्रदायों के मध्य में विचाराम्भार है । अद्वैतवादी संकराचार्य के अनुयायी उसे समस्त ईश्वर के अष्टाद्वैतवादी उसे समस्त तथा द्वैताद्वैतवादी श्री निम्बार्काचार्य के अनुयायी उसे सत्वात्म्य होने मानते हैं । यह तीनों सिद्धान्त ब्रह्म का ज्ञान कर्म और योग के हैं तुमसी साम्प्रदायिक सिद्धान्तों और विचारों को भ्रममान मानकर धार्मिक तत्त्व को जानने और पहचानने के लिए कवच ब्रह्म की एक मात्र धारण में जाना ही पर्याप्त समझते हैं—

केवल कहिन जाइ का कहिय ।

केवल तब रचना विविध अति समुझि मतहि मन रहिये ॥

सुख मोति बर बिच रंग नहि तनु किनु लिका बितेरे ।

योग मिष्टे न भरे मोति दुख पाइय इहि तनु हेरे ।

रबिहर नीर बसे अति बाहन नवर रूप तेहि माहीं ।

बहनहीन तो प्रम बराबर बान करन जे जाहीं ।

कोइ बहु सत्य भूठ बहु कोइ जगल प्रबल कोइ माने ।

बुद्धिमान परिहरे तीनि भ्रम तो धारण पहिचाने ॥

—(बहो—१११)

इस प्रकार तुमसी मतमताम्बरों से भी बड़ी भाये जाना चाहते हैं परी उनका प्यार्थी भाव भी पिछड़ गया है । एक तो यह है कि मनुष्य के लिए ब्रह्म की ज्ञान ही पर्याप्त है उसी की मही पर पूरा धर्मियरपा है ।

जीव ईश्वर-संग होने के कारण धार्मिकी केवल निजत और सुख की राशि

होता है किन्तु माया के पापीम हो जाने पर बड़ी 'कीर' और 'मरकट' के समान बन्धन में पड़ जाता है। इस प्रकार भेतन (जीव) और बड़ (माया) में गौठ पड़ जाती है। यद्यपि वह गौठ असत्य है किन्तु उसका लुप्त सकना कठिन है। माया के बन्धन से ही जीव संसारी बन गया। न उसका गौठ छूट पाती है और न वह मुक्त हो पाता है। इस गौठ के लुप्तने और माया के बन्धन से मुक्त होने का यदि कोई साधन है तो भगवान् की अनन्य निष्ठा और भक्ति। जीव माया के बसीमूठ होकर विविध प्रकार से बाधित और पीड़ित रहता है बड़ा जब चाहता है तब माया तिरों हित हो जाती है। उस समय जीव अपनी स्वामाधिक स्थिति पर पहुँच जाता है धनन्तर उसे मुक्ति का पथ सुस्पष्ट हो जाता है।

कवि की ये बिसिध्नाईनी परिस्थितियाँ ही बिनयपत्रिका की पृष्ठ-भूमि में स्थित हैं। तुलसी ने माया के कारण जीव की परबसता सासारिकता और अमन्तर इन बन्धना से मुक्त होने के लिए बड़ा की कृपा-कामना की अभिष्यक्तियाँ पद-पद पर प्रस्तुत की हैं—

नाचत ही निसि बिसस परयो ।

तब ही ते न मयो हरि चिर जब ते जिब नाम बरयो ॥

बहु बासता बिबिध कबुधि भूयल लोकादि भरयो ।

बर अब अचर गवन जल बस में औन न स्वाम करयो ॥

अहि गुनते बस होहु रीति करि सो मोहि तब बिसरयो ।

तुमसिबात निज भवन द्वार प्रभु बीज रहत परयो ॥

—(बिनयपत्रिका ११)

जीव की वस्तु-स्थिति का स्वामाधिक बर्धन इन पंक्तिवा में है। जीव की संज्ञा प्राप्त करने के उपरान्त उसने आवाचन के चक्र में पड़कर विविध प्रकार के स्वाम किये हैं। धात्र वह सतौपुत्री भावनाओं से पूर्ण स्थित है एमी स्थिति में वह भगवान् के द्वार पर किसी प्रकार पड़ा रहना चाहता है। ऊपर की भावना निम्न

१ ईश्वर संस जीव अविनाशी । भेतन भमस सहज सुख राखी ॥

सो मायाबस भयत गोसाईं । बंध्यो कौर मरकट की लाइ ॥

बड़ भेतनहि शक्ति परिगई । अदपि मूया छूटति कठिनाई ॥

तब ते जीव मयत ससारी । छूट न यदि न होइ मुक्तारी ॥

म्यान पंथ कृपाल के बारा । परत खबस होइ महि बारा ॥

जा निबिन्द पंथ भिबंहई । सो कैवस्य परम पर लहई ॥

अति दुर्लभ कैवस्य परम पद । तंत पुरान निमय ध्यान पद ॥

राम मजत सोइ मुहुति गोसाईं । अनहच्छित्त धात्र बरिगई ॥

—(मानस—उत्तरकाण्ड)

पक्षियों म भी पिराई हुई है—

जिब जखेँ हरिते बिसयागयो । तब त बेहू यह निब बाम्यो ।

भावावस स्वरूप बिलरायो । लहि भ्रमते दारुण दुख पायो ॥

—(बिनयपत्रिका १३६)

जीब की स्थिति बहुत घोर माया दाना क घापीन है । बहुत म विपुल हाकर यह घावागमन के घापीन हो जाता है और मौखिक भावपन उम कौगाकर विविध प्रकार उ मचान है । यह बरतन घबिद्या क स्वरूप म माया ही है जिसघ जाब घालन नहीं हो पाता है—

पशु लो पशुपाल इत बंधित छोरत रहत ।

—(वही—१३)

पराधीन बेच बीन ही स्वाधीन एताई ।

बोलनिहारे लो कर बलि बिनय कि भाई ॥

अपु देखि माहि कैलिय जन मानिय लोबो ।

बड़ी घोट राम नाम की अहि लई लो बोजो ॥

—(वही—१४१)

प्रत्येक स्थिति म जीब की निवृत्ति बहुत क ही घापीन है अग्यथा उमका भ्रम घबिद्यापिक बरता जाता है घोर बहु मायागिबता म निमग्न हला जाता है । उन परिस्थितिया स मुक्त हान कर घदि काँ माघन है ता मगबान की भक्ति धीर मन्ना की संवति हा है—

तुलसीदास सब सिधि प्रपंच जय अरवि भूठ मुनि गाव ।

रघुपति-अपति संन-समति बिन की भव भाव मत्ताव ॥

—(वही—१४१)

यह बिचिप्याईनी भाषना है । भक्ति क मोधन के ही भटका हुआ जीब माया म मुक्त हाकर बहुत क नाम घईत हो जाता है इसम बहुत क निर अमन भाव धीर निप्या मनी कृप है ।

माया

माया बहुत क घापीन बहु तत्त्व है जे जाब का निरन्तर भ्रमित बिल रहता है । उमका उन्मुनन मनी गन्त है जब बहुत का जीब पर हुपा हाती है उम समय उमका बिरेक जाणूत हा जाता है और घबिद्या का नाम हा जाता है । तुलसी के मायागिरि घबिबन धीर माया-माह स पीड़ित तथा बाधिन हाकर हा बिनय का पबिबा धीरम क बरता म घरित बी है अरवि उह बिदयाम है कि राम-नृपा म

ही जीव माया व बनेप से उन्मुक्त हो सकता है—

तुलसी ने बिनयपत्रिका में माया के प्रभाव को स्वल्प-स्वल्प पर वर्णित कर राम के घमस कस्याण-कामना के लिए भवकास प्राप्त कर लिया है। कहीं-कहीं जीव को समझाने के लिए वह उसके भ्रम घोर कटो का भी वर्णन करते हैं किन्तु उनके साथ वह राम-निष्ठा के महत्प्रभाव का उल्लेख करना कहीं भी नहीं भूलता है—

जागु बागु, जीव ब्रह्म ! जाई जय-वामिनी ।

बेह-मेह-नह जाति जैसे घन-वामिनी ॥

सोबत सपनहुँ सही तंतुति-सम्ताप रे ।

ब्रह्मपुं पुंग-वारि जायो जेबरी को ताप रे ॥

कहुँ बेह-बुध तु तो बुद्धि मनमाहि रे ।

बोप-बुध सपने के जागे ही री जाहि रे ॥

जीव का मूय-तुल्या में डूबना और 'रस्वी के सप द्वारा उठा जाना'—ये दोनों अमूल्य माया के ही लक्षण हैं इनसे मुक्ति केवल जीव के व्याकरण पर ही सम्भावित है।

माया व प्रभाव से शरीर के अग-अत्यन्त सभी मलीन हो जाते हैं—पर-स्त्रियों के देखन से मेघ बिपयो व भोग से मन मुल रूप स्व-स्वरूप के त्याग से जीव पर निद्रा से कान दुर्गों के बोप-अवन से बचन मलीन ही गए हैं और राम-वरणों को भुस जाने से मल पीछे लगा किरछा है यह सब माया का प्रभाव है और ज्ञान-अज्ञान-तर जीव के पीछे लगा हुआ है—उसके छूटने का यदि कोई धनुष साधन है तो वह है राम-वरण के प्रति अनुराग लपी जल ।

मोहबन्धित मन लाग बिबिध बिधि कोद्विगु जतन न जाई ।

जानम जनम प्रप्याप्त-निरत बित धबिक धबिक लपटाई ॥

× × ×

तुलसीदास बत-दान ग्याण-तप बुद्धि हेतु धृति पाबै ।

रामवरण अनुराग-नोर बिन मन धति नात न पाबै ॥

—(बिनयपत्रिका ८२)

उपमूक्त परिस्थितियों के कारण इन्द्रियों ने जीव को जैसा मरकाया है वह मरका है इससे मन को कहीं भी विभाव नहीं मिलता है।^१ माया के प्रभाव से मन ऐसा मूर्ख हो गया है कि वह राम मक्ति-मुरतरिता व स्वान पर घोस-कण की भाषा करता है और भ्रूणज जलता हुआ धसड़ा हुआ रहन करता है।^२

माया के प्रभाव से बेब अनुक भुनि नाग धारि सभी प्रताड़ित है इससे

१ बिनयपत्रिका पद ८८

२ बिनयपत्रिका पद ९०

तुमसी उनका धायम की कामना न करके ब्रह्म स्वरूप राम के धायम की ही धर्मि माया करते हैं—

देव इमुत्र मुनि ताम ममुज सब माया-बिबत बिचारे ।

तितक हाव दास तुमसी प्रभु कहु प्रपत्नी हारे ॥

—(विनयपत्रिका १०१)

देव इमुत्र आदि की घलमता और घलकृतता का कारण ही तुमसी का मातृत्व म राम का प्रति प्रगाढ़ बड़ा और निष्ठा पर कर चुकी है। फलतः प्रपत्नी भक्ति भावना की धारणा वह उन चरमो म धारवस्त होकर बढ़ाते चले हैं। उह विद्वान्त है कि राम-रूपा से जीव प्रपत्न स्व-स्वरूप को प्राप्त कर मुक्त की घलय निधि का भोग कर सकया। बिधिप्टाईती म माया ब्रह्म के बीसे ही प्रचीन है वंस जीव गायक कः इससे मामा के उम्सल क लिए ब्रह्म को प्रसन्न करना जीव का परम कर्तव्य हो जाता है। इसी से वह राम भक्ति की घोर उम्सुत है घोर माया क प्रभावों के कपत के साथ राम-रूपा की महता को नही भूस है। इस तम्य के कारण ही उनका भक्त-हृदय बड़ा सबल हो गया है।

भक्ति

संसार के मायिक बन्धनों से मुक्त होने और ईश्वरीय गामीत्य क लिए यदि बिद्वान्त म कोई सरल साधन है तो भक्ति है। यद्यपि ज्ञान से भी कबल्य पर सुलभ होणा है किन्तु उमम पनन का अधिक धरकान है। उगकी धये.३ भक्ति अधिक सरल और सुपाहा है। भक्ति म भक्त 'कबल्य पर कामना नही करता किन्तु वह बसात् उमके समीप घाता है। इससे अतिरिक्त उसका बिबेक सर्वेभ प्राप्त रहता है। मोह लोभ और अविद्या आदि उमे जीवन की विभी स्थिति में बाधित नही कर पाती है।' भक्ति की इस महता को तुमसी का भादुक हृदय नली प्रकार ममभा

१ ग्यान पर वृपात की घारा। परत लगेम हाइ नहि घारा ॥

ओ निविन्न पर निरहई। सा कबल्य परम पर रहई ॥

राम भक्त गोइ भुहुति नोगाई। धनइच्छित धानइ बरिघाई ॥

✓

✓

राम भगति बिजामनि मुम्पर। बमइ मरु जा उर धरर ॥

परम प्रकाम रूप दिन रागा। नहि नरु अहित दिमा पून बातो ॥

माइ-नरिड निरर नहि घावा। गोभ बाउ मदि ताहि बुभावा ॥

राम भगन मनि उर बग जाके। दुग लपनम न मयनहुं ताके ॥

धारे पन प्रभु धग विस्वामा। राम ते अधिन राम कर दामा ॥

—(रामचरितमानव—उत्तरकाण्ड)

या इन्हीं से विनमपत्रिका में राम की कृपा के लिए वह विविध प्रकार से अनुमत्त विनय करता है। इसकी महत्ता समझकर तुलसी राम-नाम के घटितिकन धर्म्य प्रवृत्त होना नहीं चाहते। निम्न पंक्तियों में तुलसी के मकल-हृदय का सच्चा मनोराम्य है—

घबलौ नलानी घब न ललहौ ।

राम कृपा भव-निसा तिरासो जाय किरि न डरैहौ ॥

पापउ नाम बार बितामनि उर कर त न ललहौ ।

स्याम रूप सुबि बबिर कसौटी बित कचनहि कसैहौ ॥

परबस जानि हँस्यो इन इन्धिन निज बस हूँ न हँसहौ ।

मन मधुकर पनक तुलसी रघुपति-पर-कमल बसहौ ॥

—(विनमपत्रिका १ ३)

इस घन-यथा के फलस्वरूप ही वह राम-कृपा के घटितिकन धर्म कानो से बुरी बात सुनना जिज्ञा से दूरगी बर्ण करता तथा से धर्म्य को देखना और दूसरे के समस्त धर्म मस्तक को झुकाना नहीं चाहते हैं—

जानकी-जीवन को बलि जहौ ।

बित कहै राम सीय-पर परिहरि घब न कहूँ बलि जहौ ॥

धबननि धोर कया नहि सुनिहौ रसना धोर न गेहौ ।

रोकिहौ मयन बिलोकत धोरहि सीस ईस ही भेहौ ॥

भातो-नेह नाच सों करि तब भातो-नह बहैहौ ।

—(वही—१ ४)

तुलसी राम के चरणा में अविचल अनुराम के घटितिक 'सुगति' 'सुमति' सपति 'अडि' 'सिडि' बढाई धारि जिन्ही को कामना नहीं करते और सांसारिक प्रमों को देखत राम में ही देखित कर देना चाहत है—

जहौ न सुगति सुमति सपति कछ रिधि सिधि बिपुम बढाई ।

हेतु रहित धमुराय राम-पर बई धमुरिन धधिकाई ॥

या जम ने जहूँ लगि पा तनु की मीति प्रतीत लयाई ।

ते सब तुलसीदास प्रभु ही सो होहि तिमिदृ इक ठाई ॥

—(वही—१ १)

राम भक्ति नाहु-सपति के ही धामिद है। जब राम भक्त पर वृत्त हो जात है तब धानु-नीच 'न गगने मयनी है सुग-नु ल समान प्रतीत होन लगने है प -

इ। साँ म न जाहू पाई ॥

राम म बहूया ॥

—उत्तरकाण्ड)

रघुपति भवति सततम लुलकारि । लो भवताप लोकाभय हारी ।

बिभ सतसंय भवति न हारि । ते लव मिष हव बव सोई ॥

उपर्युक्त कवित्व स्वभावों की भावना से यह स्पष्ट है कि तुमसी का मानन भक्ति क गौरव को मयी प्रकार समझ चुका था । यद्यपि भक्ति क लिए किसी नर्वाचा की आवश्यकता नहीं है किन्तु तुमसी की बिनकविका से भावना को पूरा मर्यादा प्रसिद्धि है । अपने मंदन धारण से वह राम की भक्ति क मयीप पदुबना चाहत है इसी से भक्ति क से उनकी भक्ति पाठ हा उठी है धीर धर्म से राम क द्वारा बिनकविका के 'सही' हान पर उनकी भक्ति की माय्यता निम्न से गई है ।

तुमसीदास बिचिष्टाईनी मन्मथम क धर्मयत मन्मथ न किन्तु उनका धर्म कही भी लार्किक नहीं है । वह रामनिष्ठ की धर्मता महाकवि धीर महाकवि का अपेक्षा मस्त धर्मिक है । इसी से राम्यामनि की भक्ति से उनकी भावना निम्न है ।

राम-लक्ष्म—रम-निष्पत्ति का मूलाधार धामम्बन क प्रति हमारी स्थायी भावना है । उसके प्रति बिच हृदय से प्रेम हाम लारु लारु उत्साह भय पूषा बिस्मय धीर निरंतर धारि संकुचित होने है वह धार्य कहलाता है । स्थायीभाव का उहीपन कर्म बानि बिभावा को उहीपन कहा जाता है । उहीपन का प्रकार के हान है—
(१) धामम्बनमल धीर (२) बाह्य । धामम्बन का मकर धार्य की जो चट्टाई, बाको धारि प्रस्तुति होनी है उह धनुभाव कहत है । ये धनुभाव धामिक धीर धारि होते है । संभारी या व्यभिचारी भाव रम-वर्गिपाठ से सहायक होत है । ये धरिध धीर बिनल होते रहत है । स्थायीभावा क धार्य पर धार्य हमार बाम्य से शृंगार हास्य कर्म रीर, मन्मथ कीमल धनुमुन धीर धाम्य की भाव्यता है । रम की कोटि से धार्यकल बाग्य धीर भक्ति इन से रमा का धीर गजता की जाती है । ये भक्ति से धार्य के प्रति रति हान क कारण वह शृंगार धीर धाम्य से लमा जायी है किन्तु कामान्तर से शृंगार का भाव धाम्य रति से गिया जात लगा । इससे उनकी धर्म्य व्यवस्था ही गमीचीन वैचरि है ।

राम कृष्ण या किसी धार्य के प्रति पांच प्रकार का रति (भक्ति) जाती है—(१) धामिक (२) प्रीति (३) प्रेम (४) धनुक्या (५) बाम्य धारि । इही का समय धाम्य धार्य गम्य धाम्य धीर माधुर्य भाव (शृंगार) क धर्मयत रमा का धरता है ।

भक्तिरमाधुर्य क उभयत बिधान की धर्मता 'नारद भक्ति-गुण' से भक्ति रति की धीर भी बिधर धार्यता है । उमसे रम रति क स्पष्ट बिनेर किए गए है—

(१) धनुक्याहास्यरति (२) धामिक (३) धनुक्या (४) धरता

सक्ति (२) बाह्यासक्ति (३) सख्यासक्ति (७) कात्यासक्ति (८) वात्सल्यासक्ति (९) धारमनिवेदनमासक्ति (१) तन्मयतासक्ति और (११) परम विद्यासक्ति ।

अन्युक्त घासक्तियों पर यदि गम्भीरता से विचार किया जाए तो तुलसीदास तमय (धम) हास्य सख्य कान्त और वात्सल्य ही प्रमुख सिद्ध होती हैं। ये सब पूजा स्मरण धारमनिवेदन तन्मयता और परम विरह धारि के घासक्तियाँ हैं जो प्रत्येक मदन में अपने धाराध्य के लिए होती ही हैं ।

तुलसी-गीति-काव्य में रस निरूपण के लिए प्रविष्ट होना से पूरा इस तन्मय से प्रबल हो जाता चाहिए कि तुलसी और मूर महाकवि की प्रयोज्य मन्त्र पढ़ते हैं । यह तत्त्व उनमें बड़ा सबल है । प्रत्येक काव्य में यह तत्त्व प्रमुख रूप में प्रतिपादित किया गया है । यदि मूर की मन्त्र का अमरवीर्य में उत्कर्ष है तो तुलसी की विनयपत्रिका में तुलसी की मन्त्र का उत्कर्ष । दोनों अपने-अपने क्षेत्र में ऐसे निरमल हुए हैं कि धार के निवेदन में यह कहा जा चुका है कि विनयपत्रिका में ही मन्त्र-तत्त्व नहीं है किन्तु भी इच्छाशीलावली और गीतावली में भी यह पूनरुप से विद्यमान है ।

शृङ्गार रस—तुलसी ने अपने गीति-काव्यों में इच्छा और राम को नायक बना है। दोनों चरित-नायक विष्णु के प्रकटार हैं । तुलसी मर्यादावादी कवि हैं । इससे भी उनके प्रति उनकी पूज्य मानना रही है । इसके प्रतिरिक्त यह भी तन्मय है कि मन्त्र काव्य तक हिन्दी-काव्य में धारार्थ नरत की प्रतिपादित रस-व्यक्ति का प्रयोग हुआ है जिससे शृङ्गार प्रसवत में हो सका जैसा मन्मथ और विश्वनाथ की पदति के अनुगमन में गीतिकाल के कविता की रचनाओं में हुआ । इससे इच्छा और राम के सम्बन्ध में तुलसी का शृङ्गार विश्वनाथ की धीमा तक नहीं पहुँचा है ।

शृङ्गार के समोय और विनय को पक्ष है । प्रथम नायक की उपस्थिति और साक्षात्कार में और द्वितीय उसके प्रवास-नामन पर अनुपस्थिति में प्रतिष्ठित होता है । इच्छा के जीवन की एक स्थिति (१२ वर्ष) तक पूर्ण समोय है जिसमें इच्छा गोक्षुस में खूब राधा और गोपिया के माधुर्य के निषय रह है । दोनों पक्षों में एक दूसरे को अपनी प्रम-माधुरी से बनाने का प्रयत्न किया है । अन्तर इच्छा के मधुरा और फिर वही से द्वारिका बस जान पर गोपिया के पक्ष में सोनहा धामा विनय या उपस्थित हुआ है । राम के जीवन में शृङ्गार को दोनों पक्षों की ऐसी सम-बद्धता नहीं है । राम के बाल-जीवन की सहायियों का जो अपने स्वभाव प्रम से उनकी रिश्तायी यदि तुलसी ने व्यवस्था की होती तब सम्भव था कि विनय पक्ष में उनकी विरह-विषय बाकी प्रस्तुति होती किन्तु मर्यादा-विनय में यह ऐसा नहीं कर सका । इससे राम चरित है म सदान-विनय के यत्र-तत्र स्थल ही उपलब्ध हूत । इससे राम समोय

भी इच्छाशीलावली—इच्छा जब विष्णु में तभी अपने धार्मिक स्वभाव के

कारण धाकपथ क विषय य किन्तु जब माता की माद छोड़कर वह अघर-उपर घमन किरने सये तब तो गिर्य ही गोपियाँ उनक सम्बन्ध क उपासम्भ गान मयी । इन उपा सम्भों क उत्तर म कृष्ण की बचन विवग्यता क माघ गाविसा का उनक प्रति प्रेम भी धनिवृद्धि पर है—

मो कर्हें धूठहुँ बोल लगाबहि ।
 मैया इन्हहि बानि पर घर की । नाता उरगुति बनावहि ॥
 इन्ह के लिये बलिबो छोड़यो । तऊ न उपरम पाबहि ॥
 भाजन खोरि खोरिकर गोरस । देन उरहसो पाबहि ॥
 कबहुक बास रोबाइ पानि दाहि मिस करि उठि उठि पाबति ।
 करहि मायु सिर परहि धानके बचन बिराबि हराबहि ॥

× × ×

भबहु उरहसो बं गई बहुरी फिरि पाई ।
 मुनु मैया ! तेरी सौं करई, पाकी टेक सरम की ।
 सनुच बोल लो जाई ॥

×

जो लौं हौं काम्ह रही गुन गोए,
 तोलौ तुमहि पस्यत सोय सब ।
 मुमुकि समीत सौं सु सो रोए
 मरजति कहा तरजिनहि तरजति ।
 बरजत सैम सैम के कोए
 तुससो मुदित मयु मुत लवि ।
 बिबकी है खासि मन मन मोए ॥

इन सब परिस्मित्रिया में गोपियों के आशर्षल किन्तु कृष्ण य । कृष्ण स्वभावत रूपमी य किन्तु सब लोग उन्ही का नहीं था । गाविसा का अघर मनमाहन कृष्ण के समस्त परास्त का इसी से वे घर पर बंती नहीं रह सकती थीं । पतल क आहर उपासम्भ भी देती है और अपने मना क सबेस म उनक बिगड कुप म बहन क विग मना भी करती है । प्रेम से परास्त क विरत थी । इनक अन्ध आसम्भन और गाविसा आसय है । उठि स्थायीभाव क कारण अन्धिम गीत में गाविसा का पत्रना ठजकी प्रभुमी मे खोजना और सेवा के मकत म मना करना कादिय प्रनुमाष है और उनका पकिन होता सबाधेभाव है । गूरनागर क गमान यो कृष्णदीनारपी म उठि की बिबिध परिस्मित्रिया का प्रम्पुन्न मरी हा तथा है । फिर भी गाविसा क उपासम्भ उन्नात अन्ध ममुना तट पर बगा-बादन धारि मे गोपियों के रति के संशेष पन का स्पष्टीकरण हो जाता है ।

विद्योग

कृष्ण के मजुरा पस ज्ञान पर गोप गोविमा धारि सभी के लिए विद्योग की स्थिति बटित हो गई थी। वह ब्रह्म के रहे जीवन में उन्मास और धनुराग का पक्ष उनके बिना बिगड़ बिदग्ध हो वह इतन करती धपन जीवन को कोसती है। सरसता के बिनाप के कारण जीवन में नीरसता का साभ्राग्य उपस्थिति हो गया था—

ब्रह्म है ब्रह्म तजि पर करहाई ।

तब ते बिगड़ रवि उबिन एकरम तजि ! बिहुरत नय पाई ॥

घटत न सज चलन नाहिन रम रह्यो उर मन पर छाई ।

इन्द्रिय रूप रासि सोबहि सुठि गुपि सब की बिसराई ॥

नयो लोक नय कोक कोकनद भ्रम भ्रमरनि मुसदाई ।

चित्त बहोर मन मोर कुमह मुद गरल बिकल प्रबिकई ॥

तनु तक्राय बल बारि सुखन सागयो परि कुलपता काई ।

ज्ञान मीन दिन बीन बूबरे बसा बुसह पक्ष धाई ॥

तुलसीदास मनोरथ मन मृग मरत बहूँ तहूँ पाई ।

राम त्याग सावन भादों बिनु जिय को धरनि न काई ॥

तुलसीदास ने बिगड़ का रूप रासि के मूम के साथ साथ रूपक प्रस्तुत कर गोविदा की दुःख बसा का बगन प्रस्तुत किया है। बिगड़ लपी प्रबन्ध मूर्ध स्मिर होकर हृदय लपी धाकाप पर छा रहा है। धोक लपी बकबा मम लपी कम्म तथा भ्रम लपी भ्रमर धारि प्रबिक मुली है और चित्त लपी बकार मन लपी मयूर और मोह लपी कुमुद प्रायन्त ध्याकुम है। पगीर लपी सरोवर का बल लपी बस सुखन सगा है। उस पर कुलपता लपी काई पड़ गई प्राण लपी मल्लिका पुर्वम हो गई। मन के मनारम लपी हिरण्य मी ताप से मर रहूँ है। इस दयनीय स्थिति में वे बसुराम और धनरथाम लपी धारण भाद्रपद की वामना करता है क्योंकि उनके बिना हृदय की जलन पालत न हापी।

सम्पूर्ण पद्य में विद्योग की स्थितियाँ दृश्य हैं। बसुराम और हृदय धासम्बल है और गोविदा प्रायथ। इन्द्रिया का सबकी मुक्ति भुलाकर उनका स्मरण न करना पाक भय और भ्रम की धमिबुद्धि हाता चित्त मन और मोद का ब्याकुल होना धरीर के बल का सुधना प्राण का दुःख हाता मनोरथो का तड़पना धारि धनुभाष हैं। इस प्रकार विद्योग भूवार सभी प्रकार पृष्ठ है।

धपना इस बिगड़-बया में उन्मास नना और मन के लिए भी मयूर उक्तिवाँ बहूँ है वा मानिह है—

बिहुरत थी बज्ररजि धामु इन नयनन की परतीति गई ।

उड़ि न सबे हरि लग सहभ तजि हँ न गए तजि स्वाभ मई ॥

×

×

×

तहि कछु बोय स्वाम को माई

को बुझ में पार्यो सखरी सख ।

सो तो सबै मन की चतुराई

निज हित लागि तबहि ए बंधन ।

सब अगति बलि प्रीति बड़ाई

घब बहलास घबल सुनि भयघन

तनुहि तजत तहि बार लबाई ।

दियाप के श्रुवार के अन्तगत ही सुवगीराम ने भी अमरगीत की याचना की है । उद्यम के द्वारा ज्ञानयोग के ही मन्त्रा रहने के उपरान्त भी सुवगीरामजी ने अमरगीत प्रारम्भ हुए है । उद्यम के ज्ञानपरक मन्त्र के लिए गावियां बुग इमानिय नहीं मान रही हैं कि यदि उनका हृण्य के माध उनक मयोग नाम के मान्य विमान केने होठ ता उन्हें बोध बना ठीक भी था । उद्यम जया गाविया के नीजाम्य का क्या जान इसमें बहु को कहत है वह मन तथा जो उचित है—

मधुकर ! कहहु कहन जो पारी ।

बलि नाहित अपरराध राकरो सकुचि माध बलि पारी ॥

तहि सुम बज बलि संभ्राम को बाल बिनोद निहारो ।

नाहिन रास रतिक रस बाहरो तात डल सो डारो ॥

सुनतो जो न एए प्रीतम लन प्राप्त ह्यगि तनु प्यारी ।

सो सनिबो देखिबो घलत घब बहा करम सो बारी ॥

योगिनी अपने उत्तर-प्रश्नपर म हृण्य का भी नहीं लाहरी है । उनका व्यक्तो जियां बड़ी सामिक है । एक स्वयं का कथन दविया—

भलो कही घामो हुमहु बहिवान

हरि निर्मल निर्मेष निरपन ।

निवट निहुर निज बाज सवान ॥

बज को बिहट, अर संय महर को

दुखरिहि बरत न महु लमान ॥

सकुचि तो प्राति को रीति स्वाम को

सोई बाबरि जो परेयो उर धान ॥

बहु निमुच निर्मेष निर्मेष स्वार्थी गभी है । एक चार गो ब्रह्मवागियों का बिष्ट घोर यगोश के आत्मस्थ की उपरान्त घोर दुगरी घोर बुद्धि का कथ्य करने की पटना । उनक प्रेम का यही स्वयं प्रमाण है । एक उचित म दियाप की मधुर व्यंजना ही है । मगुल भक्तभाव के कारणन हृण्य है प्रीत गावियां प्राप्य है । स्वयं-स्वयं पर बिष्ट-दशा म बिष्ट हा जान में यनि किमी ने माधय दिया है ता ने प्राप्यों ने ही । दुगय मय-मय उनक मध्यम म मगुल व्यंजना प्रकृति की है—

पावक बिरहु समोर स्वास

तनु तुल मिले तुम बारनिहारे ।

तिहृदि निहरि अपने हित कारण

रासत नयन निपुन रखबारे ॥

संयोग और बियोग दोनों प्रवसरो के स्वसों पर दृष्टिपात करने से हम उनमें पबिच्छेद टारठम्प पाठे हैं । संयोग में जितने हास, परिहास बिगोद आनन्द आदि की धनुमुक्तियों से गोपियाँ प्रसन्न और आह्लाहित हैं । बियोग में दुःख, रजन स्मृति आदि उनको उठना ही मर्माहत किए हैं । यह प्रवसम सत्य है कि इन दोनों प्रवसरो पर जो भाव-बारा सूर भी प्रस्फुटित हुई है उस उष्ण कोटि में तो तुलसी की भाव बारा नहीं घापी है किन्तु परिस्थितियों के दिग्घटन कराने से वह पूर्ण सफल हुए है यह सत्य है ।

गीतावली

सयोग (शृंगार)—शक्ति-सीम-सीम्यं से मुक्त राम अपनी नीलाएँ कपटे हुए बहो भी पहुँचे हैं नर-नारी और पशु-पक्षी सभी ही उनके दिव्य सीम्यं पर मुग्ध हुए हैं । बामकाण्ड में सीता-स्वयंवर और विवाह के प्रवसरो पर सीता के अतिरिक्त जनकपुर की नारियाँ अयोध्याकाण्ड में उनके वन-पत्र में होने पर प्रामीष बचुरेँ, उत्तर काण्ड में राम के नख सिद्ध के सीम्यं पर अयोध्या के नर-नारी तथा अरव्यकाण्ड में राम के पञ्चवटी ने प्राबास पर पशुपक्षी सभी ही उनको देखकर मुग्ध और आनन्दित हैं ।

माधुर्य भाव के प्राबास होने पर भी गीतावली के इन उपयुक्त स्वसों का शृंगार मर्मादापरक ही रहा है । श्री हृदय के सीम्यं पर मत्वाली होकर गोपियाँ जिस प्रकार लोक-जीवन संकोच और पारिवारिक मर्यादा को तिलाञ्जलि देकर अपना प्राचरण प्रदर्शित करती हैं वैसे प्राचरण राम के उपयुक्त स्वसों की नारियाँ नहीं करती हैं । राम स्वयं मर्यादा पुरपोत्तम है उन्हीं प्रकार ये नारियाँ भी मर्यादा में निमग्न हैं । फलस्वरूप तुलसी का उपयुक्त स्वसों का शृंगार भी शिष्ट और बरिष्ट है—

बुझि पारवती बसै जाम्य पौऽपरिके ।

सजस सुलोचन सिञ्चित तनु पुलकित ॥

पारै न बचन बन रह्यो प्रेम भरिक ।

प्रंतरजासिनि भवमासिनि स्वासिनि लोँ ह्यो ॥

कटी बाहोँ बाठ, अंत तो ह्यो लरिके ।

मूरति कपाल मंजु मान दे बोलत भई ॥

पूजो मन कामना भजतो बह बरिके ।

राम काम तब पाई बलि ज्योँ बीरो बनाइ ॥

मान-कोवि तोवि-योवि केति-दूति करिके ।

रहीमी कहीमी तक लीचो कही प्रवा तिम ॥
 गहे बाँव इ उगाय माप हाव करिके ।
 मुबित प्रसीध तुनि सीम नाइ पुनि पुनि ॥
 बिदा भई देबो ली जगनि उर उरिच ।
 हरयो सहेमी भयो भरबलो गाबतो वीन
 गबतो भवन तुमसीत-हियो हरिचै ।

उपर्युक्त पद में सीता की अपनी मन मावनी इच्छा के कह सकने के पूर्व ही राम को बर-रूप में प्राप्त करने की धुमावीप पौरी प्रदान कर देती है इसमें वह उनका दोनों बरबो को ग्रहण कर लेती है । इससे स्पष्ट है कि वह राम के सौन्दर्य पर ही प्रेम कृष्णी थी । सीता के समान राम भी उनके अधिकतम सौन्दर्य पर मुग्ध थे यह 'गवनी भवन तुमसीत हियो हरिचै' से स्पष्ट है । सम्पूर्ण पद में स्वामीमान 'रति' का प्रभाव विद्यमान है । राम और सीता एक दूसरे के लिए सामन्त और घामम दोनों हैं ।

राम के सौन्दर्य की सुश्रुता का बिलन ही पद सीतावनी में विद्यमान है ।
 बामपुरी की एक सती का कथन देना—

नेनु तुमुछ बित साइ बितो रो

राजकुँवर-मूरति रचिबे की बचि सुबिदकि कम कियो है कितो रो ।
 मस तिल सुन्दरता बबलोफत कयो न परत लव होत जितो रो
 साँवर जप-सुबा भरिबे कहुँ मयन कमल कल-कलत रितो रो ।
 मेरे जान इहे मोतिब कारण बनुर अलक हयो ठाट इतो रो
 तुलसी प्रभु भविह संजु पनु मूरिमास तिल मानु-विनो रो ॥
 उपर्युक्त में राम सामन्त है । निम्न पद में राम और सीता दोनों घामन्त

हैं और रतिवो घामम हैं—

इसहु राम सीप तुलही रो

पन बानिनि बर बरन हरन मम सुन्दरता मल तिल निबही, रो ।
 कोपन जलम-साहु-सोबन-कल है इतनोइ लहो घात्रु लहो रो
 म्यद बिभूयन-बलन बिभूयत सति बबलो सति कवि हा १ही रो ।
 सुतामा सुरभि निवार-दोर दुहि मयन अमियबप कियो है ब, रो
 मनि घामम तिल राम संभारे, सबल भुवन लखि मरहु मरे रो ।
 तुलसीदास कोरी बेगत तुल सोना प्रतन न भाति कही रो ॥
 कच रामि बिरबो बिरबि मनो तिला सबनि रति-बाम लहो रो ॥

राम सीता के सौन्दर्य की धनुभूति में साहित्यिक अनुभाव विद्यमान है ।

राम-सीता-मन्मथ के बन-मनन पर घामोय बपुरा उन्हें देवकर उनकी रूप
 बामपुरी पर गुण है—

मनोहरता के मानो ऐन ।

स्वामन गोर किसोर पबिक बोड सुमुखि निरखि परि नन ॥

बीच बधु बिबुबबनि बिराजति उपमा कहूँ कोऊ है न ।

मानहु रति-अनुनाथ सहित मुनि-वैप बनाए है मैन ॥

किन्हीं तिंगार-मुखना-सुप्रम मिलि बसे जग-बिधित वित मंग ।

अधुनत बधी किन्हीं पढई है बिधि मग मोनहि कूल बैन ॥

मुनि मुखि तरन तनहु सुहावन पाम बबुनहु के बैन ।

तुमसी प्रभु तब तर बिसेबे किए प्रेम कनोड़े कन ॥

तुमसी ने अपने पाराध्य के प्रभुत्व को प्रतिम पंक्ति में दर्शाया है वह बल्लभ अपने भक्ति भावना के कारण विरक्त हो उठे है किन्तु मूल में प्रामीण बबुन ही उन पर मोहित है जिसके प्रभाव से एक उत्प्रेता और सखेह भवकारो के आश्रय से उनके रूप का ध्यान करने में वे प्रवृत्त हैं ।

उत्तरकाण्ड में भी संयोग शृंगार के इसी प्रकार के अपूर्व स्वप्न है जिनमें राम के व्यक्तित्व का हीरोयन चरित्र और सीता के युगो से पुनत विशेष मनमोहक हो उठा है—

घाञ्चु रञ्जुबीर-बिधि बाल तहि बधु कही ।

सुप्रम तिहातातासीन सौतापन भुवन धमिराम बहु काम सोमा सही ।

×

×

×

हेमो राखब-बदन बिराजत बाक ।

जान न बरनि बिलोकत ही मुख, मुख किन्हीं लखि बर नारि छियाक ॥

इस सब पदों में राम के नर-धर-सौंदर्य का सम्पक उल्लेख हो उठा है ।

उपर्युक्त स्थलों में हमने देखा है कि राम का रूप या उनके साथ बदमन और सीता का लावण्य मानव जाति को ही मुग्ध करने वाला रहा है किन्तु राम बरबर के स्वामी लोक-रक्षक और सोक रजक हैं । उनके प्रति पशु-पक्षियों में भी 'रति' भाव रहा है । राम के मन-मन में मोर कोकिल बबोर तथा पशु-पक्षी भी उन पर मोहित हैं । उपर्युक्त के समान इस पद में भी राम ही धातमन और पशु-पक्षी आश्रय हैं । पक्षियों का उनके सौंदर्य को देखकर बोल उठना ही अनुमान है—

इहो राम-पबिक लावत मुखित मोर ।

मानत मनहु ततड़ित ललिन घन बनु नुरबनु परबनि बबोर ॥

कैर्य कमाप बर बरहि बिराजत, लावत कन कोकिल किनोर ।

कहै कहै प्रभु बिचरत तहै तहै मुख दण्डकवन कौमुक न बोर ॥

उपर्युक्त सभी स्थलों में राम के वर्धन-मान से ही संयोग शृंगार की व्यवस्था है । धातमन और आश्रय दोनों के संयोग के अनन्तर यदि उहीयन विभाव से 'रति' उदीप्त हुई होती तो व्यभिचारी भाव भी उत्पन्न और विरोधित होते । राम और

सीता के जीवन में ही ऐसे घबराहट न ये जो बहि-वर्ती का माधुर्य भाव धमिक गहरा हो जाता फिर धर्म स्वर्गों पर बैसे होने की बैसे प्राप्ति की जा सकती है ? इस स्थिति के मूल में दुमसी की मर्मादा की भावना ही काम कर रही है ।

बिभेय विभोग शृंगार का पुष्ट स्वरूप सुन्दरकाण्ड में सीता के चरित्र में विद्यमान है । रावण के द्वारा हर साए जाने पर जब झोका-बन में बह रही जाती है तब राम के विभोग में बह झोका-कृत है । राम के लक्ष्य पर हनुमान ने सीता के समीप पहुँचने पर बह प्रास्वस्त घबराहट हो उठती है किन्तु उनके विभोग क दुःख का बीज भी दूट उठता है—

ताठ तोह्रें सो कहत होति हिय गलानि ।

मन को प्रथम पनु नमुनि प्रथम तनु, लपि नइ गति नइ मति मलानि ॥

पिय को बचन परिहरुपे जिय के भरोसे सय बली बन बड़ो साभ जानि ।

बीतम-बिरह तो सनह सरबस सुत भीतर को बुकिषी सरित न हानि ॥

घारब लुबन के तो दया बुबनहु पर मोहि सोच मोते सब बिधि नतानि ।

घाबनी भलाई भलो कियो नाथ सबही को मेरे ही दिन सब बिसरि जानि ॥

इस पद में सीता की 'रति' प्राक्खन राम के प्रति है । 'मन को प्रथम पनु (पति के बिना जीवित न रहूँगी) धीर राम के बचनों का उन्मथन उदीपन बिभाव है । अपने प्राक्खन धीर लबीन परिस्थितियों में भी उनका जीवन धम्य है । इसे शोषण रतका विभोग अभिवृद्धि पर है । उनका बिरह रतित क ट कब बिनपट हामा इनकी कबल जिज्ञासा बह हनुमान के समक्ष प्रस्तुत करती हुई अपने मानन क रतन का उन्मथ करती है—

कहु कवि ! कब रघुनाथ कपा करि हरिहं निज विभोग-संभव दुख ।

×

×

×

बिरह-घनत स्वासा-समीर निज तनु जरिबे कहें रही न कमू तक ।

कति बल जल बरवत होउ सोचन दिन घत रैन रहन एकहि तक ॥

मुबुद्धि ज्ञान धममन्त्रि मुनहु सुत ! रासति प्राव बिचारि बहन मत ।

छगुन कच सीता बिलाल-सुख लुनिरति करति छुति घतरगत ॥

सुभुं हनुमंत ! घनत-बन्धु कटना रबभाव सीतम कोमल प्रति ।

मुलतीबाल बहि प्रात जानि जिय बच दुख लहो प्रगट कहि न सकन ॥

सीता के विभोग में मर्मादा धीर भारतीय नारी की संकोच भावना विद्यमान है । अपने लक्ष्य दुःखों को जो उन्होंने सहे है बहि बह बहे तो राम को ध्या होनी नानुन इस धर्म से अपने बिरह रतित दुःखों का उन्मथ बह दिग मे गई है ।

कहें कवि ! राघव घाबहिये ?

मेरे मदन बचोर प्रीतिकल राकातल मुख बिनराबहिय ।

इस पद्यों में बिलती बन्धु ध्या समाहित है । मर्मादा पुरपोलन की पत्नी शोषण

निघावर की बनिनी वनी अपन दुर्भाग्य की सोचकर उनका मर्माहत रहना स्वाभाविक है। अपनी उम्र स्थिति में हनुमान के चमने पर राम को सन्देश बहने की इच्छा हुई किन्तु प्रियतम के मानस स्वभाव को जानकर मूक होकर रह गई—

दवि के चमत्त सिय की मनु गहबरि घामो ।

बुझक तिपिस मबो सरीर, नीर नपनन्हि घामो ॥

कहूँ बहोती सोवत नहि कह्यो विम के जिम की भाति हृदय हुसह बुझरायो ।

देवि बसा ध्याहुन हरीक प्रीवम के पबिक बरों बरति तरति दाबो ॥

हनुमान अब राम के समीप पहुँचे उन्होंने सीता की घोष की चर्चा के साथ उनसे बिच्छु निम्नता स्थिति का भी कवच विवरण प्रस्तुत कर दिया—

रघुहुन तिलक ! बिबोम तिहारे ।

मै देखी कब जानकी मनहु बिच्छु-मूरति मन मारे ॥

×

×

×

अतिहि अचिक बरसन की धारति ।

राम-बियोग मघोक-बिखर ठर धीय निमेव कजप सन दारति ॥

इस परिस्थितियों के साथ उन्होंने सीता की उस दशा का भी वर्णन किया है। जिसमें उनके नेत्र बिच के समान थे हाव-पीर नई हुए थे जाम पड़ते थे तथा कान मड़े हुए थे जिससे पुकारने पर भी नहीं सुन पाती थी। वह जिज्ञा से राम का नाम रटती रहती है हाव अचिक देर तक मस्तक पर ही रखा रहता है तथा नेत्र सर्वदा अपने चरणों की ओर ही देखते रहते हैं। सीता का इससे भी अधिक करण बिच हनुमान ने प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है—

मुम्हरे बिच्छु नई बति जौन ।

बित ई मुनहु राम कबनाबिबि । बानों कसु वै सखी कहि हौं न ॥

लोचन-नीर कपिक के धर कबों रहत निरंतर लोचनन कोन ।

'हा' बुनि घनी लाज-पजारी पैहु राखि हिसे बड़े अचिक हठि मीन ॥

×

×

×

तुलतिबात वसु बसा लीव की मुक करि कहत होति अति धीन ।

बीसं बरन हूरि कियै कुक ही तुम्ह भारत घ रति-बीन ॥

सीता की वह बिच्छु-स्थिति बढ़ी ही मर्माहित धीर घिष्ट है। नेत्र-घातुओं से आन्नाबिन रहने का धीर बिच्छु-आत्मा जिये दण्ड किए दे रही हो वह 'हा' की ध्वनि भी प्रस्तुतित न कर सके। बन्तुत उनकी कियती करण स्थिति रही होगी।

सीता की इन दशायों की सुनकर राम भी कम मर्माहत नहीं हुए। घरीर प्रण से पुनक्ति होकर घिबिस हो गया तैबों में धयू, सलझला घाय, बाहू कि सीता की कृपल वृद्ध लें किन्तु बानी ही न पूर सखी बिबसठा बी। फलतः सेना को उभाकर चमने के लिए लक्ष्मण धीर सुवीच को संकेत कर दिया।

सीता के मर्यादित चरित्र का ऐसा अनुपम चित्र हिन्दी-नाट्य में कहीं उपलब्ध नहीं है। उनका स्वरूप आचरण और भावना में भारतीय सभ्यता का प्रादुर्भाव विद्यमान है। मुर की राधा प्रारम्भ में कृष्ण के साथ ब्रिजकी अपस घोर प्रणयन हैं उतनी ही मन्मीर वह कृष्ण के बिरह में हो उठी है। निस्सन्देह उनके इस स्वरूप में भी भारतीय नारी का प्रादुर्भाव समाहित है किन्तु उनकी मन्मीरता की परिधि कृष्ण का स्वमनो से बिबाह कर लेता घोर उनका द्वारिकाधीश हो जाता इन तथ्या पर भी प्राचारित हो सकती है। मन्मीरता यह है कि राधा का सम्पूर्ण चित्र सीता की मर्यादित भावनाओं के समक्ष स्थिर नहीं रह सकता। ब्रज मय क्षेत्र में घट्टीय है।

अप्य स्वमो पर भी बिबाध शृंगार कवि द्वारा मार्मिक भावनाओं के साथ चित्रित किया गया है। प्राचीन कबुएँ जिन्होंने राम-सीता-सदमय के सीदय का देखा था उनके सीत्ने का ध्यान करनी है—

पुनि न किये बौड घोर बडाऊ ।

स्यामल-गौर सहज संहर सति ! बारक बहुरि बिभोकिये काऊ ।

× × ×

बहुत दिन बीते मुमि कछु न लही

गए जो पबिऊ घोरे-साबरे सतोने ।

सति ! संन मरति सुहुमारि रही ॥

उनके अप्रतिम मीम्व्य को स्मरण करके एक बभू घातुस है। उमे अम्य कृप पाण्ड्य ही नहीं सभता—

सति ! जबते सीता सनेत देल बौड मरि ।

तबने परं न जन कछु न लोहाई ॥

मय सिल भोक भोके निरसि निहाई ।

तन सुधि कई मन् घनत न बाई ॥

सीता के वियोग की अनुमृति से राध भी घातुस हुए है। इसका मध्यम चित्र द्विद्विपावाण्ड में विद्यमान है। जब मुर्षिक ने सीता के बदन घोर घामुपय उनसे ममता प्रस्तुत किए थे तो राध का घाटीर पुनर्बिग हो उठा उनका मन्मीर में जन मन् घाया। सीता के नील-स्नेह घोर गुणों को बहने में मन्मीर है किन्तु हृदय उनका स्मरण से मन्मीर उठा है। राध को मर्यादा यहाँ भी घण प्रतिमय रूप से विद्यमान है—

मूचन बदन बिलोकत तिय के ।

मन् बिबल मन् कम्प पुलक तन् भोरज मयन भोर मरे पिय के ॥

कहुचन कहन मुबिदि घर उबयत लोल-जबहे-जगुन-मन तिय के ।

हवानि बला सति लयन लला बनि विघत ह कबि मरि मरि मरि ॥

उपयुक्त रचना पर दृष्टिगत करन में यह पूर्ण स्पष्ट है कि शृंगार के दमन पधों में मर्यादा घोर स्वभाव समान भाव में उन्निवृत्त रहे है। मन्मीरता के मन्मीर

काव्य में मर्यादा का ऐसा स्वरूप तुमसीदास के काव्यों में ही उपलब्ध है फिर भी यह सन्तोष है कि उनके बिना पूर्ण सुस्पष्ट और भावसंपूर्ण हैं।

हास्य—विह्वलाकारबाभेपथेष्टारे कुहकादमवेत—हास्य रस का प्रादुर्भाव विह्वल भाकार बागी रूप तथा थोड़ा धारि पर निर्भर है। इसका स्वाधीभाव हास होता है। हास्य के स्मित हसित विहसित प्रहसित अपहसित और प्रतिहसित आठ भेद माने जाते हैं।

तुमसी के तीनों वीरि-काव्यों में हास का प्रायः प्रभाव है। बीठाबली में दो स्थल हैं जो हास्य रस की अनुभूति देते हैं। दोनों में राम के व्यक्तित्व के माहात्म्य को लेकर हास्य की व्यञ्जना की गई है। राम के चरण-कमलों की रज से धापित ग्रहिष्ठा ने सिला से नारी रूप प्राप्त कर लिया है। इसी तथ्य पर 'हास' स्वाधीभाव की स्थापना है। राम की चरण-रज के प्रभाव से एक मुनि-पत्नी का कथन है—

पारत पद-संकाज शक्ति-रचनी।

भई है प्रकृत धरि विष्य देहु बरि मानो विमुचन-धकि-धवनी ॥

वेकि बड़ो भाव्यरज पुलकि तनु कहुति मुक्ति मुनि भवनी।

बा बलिहूँ रघुनाथ पयादेहि सिला न रहिहि प्रवनी ॥

इसमें अग्रिम पंक्ति में 'हास' है वहाँ मुनि-पत्नी का यह भाव है कि यदि राम पैरज बसते हैं तो सम्पूर्ण सिसार् 'नारी' का रूप धारण कर लेंगी। इसी स्वतः का 'कविताबली' का हास्य और भी अधिक स्पष्ट है।

राम के इसी प्रभाव को लेकर विरवाभिष की ने राजा जनक से परिहास किया है—

सिलाधोर जगत ग्रहस्या भई विष्य देहु

पुन वेले पारत के पंकावह नामके।

राम के प्रभाव पुर बीतम अतम जए,

राबरेहु ततानख पुत जए माय के ॥

—(बीठाबली बालकाण्ड १७)

ग्रहस्या के रमणी-जीवन से गौतम सपत्नीक हुए और पुरोहित शतानन्द अपनी माता के पुत्र हुए। दोनों स्वतः ही स्पष्ट हैं। अग्रिम स्वतः में 'असम' शब्द प्रामाण्य है इससे कुछ अपरता प्रकट है। दोनों स्वतः में सम्य समाज का हास्य है। प्रथम को स्मित और द्वितीय को हसित हास्य के अन्तर्गत रचना उचित होगा।

कवच—इष्ट के नाथ और धनिष्ठ की प्राप्ति से करण रस की उत्पत्ति होती है। इसका स्वाधीभाव शोक है और विनष्ट व्यक्ति धाम्प्यन विमान में होता है। बाहुकम उद्दीपन प्रारम्भ की निम्ना रोदन विवर्णता निरवास धारि अनुभाव तथा निर्वेद माह अपस्मार, व्याधि ग्लानि स्मृति विषाद अज्ञता अज्ञान धारि व्यभिचारी होने हैं।

गीताबसी क प्रयोप्याबाण्ड म बगार्य क निपन तथा लबाबाण्ड म मरम
 क मूछिन होने पर राम का बिलाप है। इन सभी स्थाना पर पात्र स्वामीभा
 विषयमा है।

मोरो बिबुबरन बिलोइन बीज ।
 राम सपन मेरी यह भट बलि जाड बर्षी मोहि बिलि सोज ॥
 सुनि पितु-बचन करन यहें रघुपति भूप छक भरि ली हे ।
 प्रबहुं धरनि बिदग-दरार मिय मो प्रबपर मुधि कोम्ह ॥
 पुनि तिर नाइ मबन कियो प्रब मूरछिन भय न जाण्यो ।
 करम बोर नुप-बबिज भारि मानो राम बनन स भाग्यो ॥

यदि राजा का निबत न हुआ होता तो य वंशिनयो बिदगपन बाणमय्य क
 प्रसर्पत ही प्रतिच्छित हुई होती क्याकि उक्त राम राम की उपमधि का भाषा
 रहती। राम-बिषय म उनकी मृत्यु निश्चिन्त है। इस कारण राम की विवाह-बन्ता क
 पाठ के धारम को बह सहन न कर सके धोर मछिन हो गए। राम राजा क ममय्य
 को जानते थे छतत धर्मिम प्रणाम कर बह सपन बर्ष-वय पर प्रकृत हा गए।

मुमत्त क सीट घाने पर बह उनम राम की कुमार भी न जान कर सके।
 बिधाता ने संकोचबल उन्हें मुक ही रखा तिम मुय मे बन का धारण किया उगी मे
 कुसल पूछता पितु-वध में धार्याचार धीर बिम्बता ही निड करता। परन
 हा रघुपति कहि परधी धरनि अनु जल ते भीर बिलागयो।

गार बिहसन राजा का परचातार यति ममात्त महा हो जाठा है। उन्हें
 बिदवाम है कि निपनारगाल भी, उमका मामनिब बयन बिलक न होया। इती कारण
 बह मुमत्त को मृत्यु कर प्रसूत पिमा हेने के लिए मबन करने है—

मुपहु न तिरैयो मेरो मानमिह पछिनाड ।
 मारिबस न बिचारि बीग्री काज सोचन राड ॥

मुनि मुमत्त । नि घानि मुग्गर मुबन लहिन शिमाड ।
 बास गुलतो मतब मोरो मरम प्रमिय पिवाड ॥

लबाबाण्ड म मघनाद की लबिन क प्रनाय मे मरमत्त का मूछिन दगन
 मर्यादा पुरपीतम करने र्थ्य को न रोह सक। लामर-गा भारि तिमन धानु नारता
 स प्राकचित हो परिवार का पत्नी का तथा राजर का मृग दान हा धोर धात्र राम
 को उय मंचड मे छोड़कर जा घरनी पहिच मोता ममात्त कर रटा हा लालनीय है
 ही। राम मोर क धारैग को न रोह गर उन्को अधपण प्रबालि हा उट—

राम-मपन उर माय सए ह ।
 धरे मोर राजीब मबन गब धन परिगाप लण ह ॥

बहुत समोर बिलोदि बपु लन बचन प्राति मुपण ह ।
 सबक नता धरनि भावक-मन काहन छब धपण ह ॥

लक्ष्मण की मूर्छा में उगक निधन को देखकर राम ने अपनी परिस्थिति का अनुमान लगा लिया था। उनके समक्ष कोई ऐसा न था जिस पर वह आश्वस्त और विश्वस्त होते। इसी से लक्ष्मण के लिए उनकी निम्न विचार-बाधाएँ प्रस्तुत हो उठी हैं—

मो पती म कष्ट हूँ भाई ।

घोर निबाहि भसी बिधि भायप बन्धो लपन सो भाई ॥

पूर पितु मातु, सकस सुख बरिहरि बहि बन बिपति बँटाई ।

ता संव हौँ सुरलोक लोक तजि सबयो म प्राण पठाई ॥

×

×

×

मेरो सब पुत्रपारण बाको ।

बिपति बँटायन बन्धु-बाहु बिनु करी भरोसो काको ॥

मुनु, मुप्रीष ! साबँहु मो पर करयो बदन बिधाता ।

ऐसे समय समर-संकट हौँ तज्यो लगन सो भ्रता ॥

इन सभी स्थलों पर 'छोक' का स्वामीभाव विद्यमान है। लक्ष्मण आशम्भन और राम आशय है। लक्ष्मण की भायप-अवधि और विधाता का प्रतिकूल होना उद्दीपन विभाव है। नेत्रों में प्रभु भर घाना अनुभाव है।

घोर

गीतावली—घोर चार प्रकार के होते हैं—बानवीर, बर्मवीर, दयावीर, मुड़वीर आदि ।

उपर्युक्त सभी प्रकार के बीरो में मुड़वीर के स्वल्प का स्पष्ट प्रस्तुत नहीं हो सका है। गीतावली में राम रावण का मुड़ ही नहीं हुआ है। इससे राम के मुड़वीर का संकेत भर है—'रिपु रत नीति अनुज संग सीमित' इत्यादि। बटामु को रावण से प्रथम मुड़ करना पड़ा है। जब वह सीता को हरण कर लिए था रहा है—

किरत न बाराहि बार प्रचारयो ।

अपरि बाच बंधुम हय हति रब पंड-जंड करि डारयो ॥

बिरब बिकल नियो दी। मोहि-हि सिम घन घायनि प्रकृतानयो ।

तब घसि काहि बाटि पर पाँबर से प्रजु-न या भराभ्यो ।

इसमें स्वामीभाव 'उत्साह' है और बटामु आशम्भन है। रत के अर्थ तबों (उद्दीपन विभाव अनुभाव और व्यभिचारी विभाव) का अभाव है। अनुभाषा के रावण के साथ संकट में तथा लक्ष्मण की मूर्छा में समीक्षणी बूटी करने के लिए प्रस्थान करने के लिए कहने पर स्वामीभाव उत्साह का अर्पण प्रस्तुत है।

दया बीर दान बीर और बर्मवीर के रूप राम की भीलाघों में समाहित है।

राक्षसों की प्रथमता व कारण पीड़ित समाज और पतिव्रत व्रत का प्रमुखान का ज पर मया देना उनके जीवन का मध्य का । यह अक्षिप्त रीति और मीरदय से पुत्र प्रेम पत्र पर निरन्तर धाकड़ रह । अहिंसा के उद्योग राक्षसों से भट तथा मुदीव गीर विभीषण का मकर मुक्त और अन्तर्गत की भावना द्वारा गति करन के राश में यह दया है ता विभीषण का मकर का राज्य प्रदान करने में उनकी अग्रिम गत बौरता भी थी ।

३। कल्पवृक्षावली—इन्द्र व वाप वरुण पर कृष्ण न अन्तर्गतिका की रक्षा के लिए मीरवर्धन-मारण किया था । उनके इस कृत्य की वृष्टभूमि में स्थायीभाव उत्पन्न होचमान है । अपने वाकुल में रहने तक उग्रहोत व्रत की रक्षा के लिए वा भी कृत्य किए, उन सभी में उनका वर्मवीर और दमावीर का रूप दिया हुआ है—

अत्र पर धन धर्म करि घाए
अनि अथमान बिचारि घापनो कोवि सुख पठाए ।
हमकति कुलहु हमहुँ दिति बानिनि भवो लम गगत मीधोर ।
गरजन धोर बरिधर धावन प्ररित प्रकल समीर ॥
सुनि हेतित उटयो मंड को माहूक तियो कर कुपर उठाइ ।
मुलसिदास मघबा अवनो सो करि गयो मर गबाइ ॥

कृष्ण के इस स्वरूप में उत्पन्न का स्थायीभाव विद्यमान है । उमी के अनुसार यह उत्पन्न संकट को विमोच करने में मर्मर्ष हा मर व ।

रोड रस—इस रस का स्थायीभाव वाप है और वापम्वन वाकु विपद्या का वृष्ट अक्षिप्त रहा करता है । उसका लिए अथराव ही उग्रोपन विभाव में होते हैं, वापन के लेशों का सास-सास होता होंठ फड़कना अनुभाव अथय माहू मर उठता धारि अग्निवाली भाव होने हैं । मीठावली में निम्न रूपनो पर रोड रस विद्यमान है—

ऐने त क्यों कटु बचन बह्यो रो ?

'राम जाहु जानन बडोर तेरो कस थी हृदय रह्यो रो ॥

इसी प्रकार अंगर में भी राक्षस का अथराव बह है—

कुनु जल ! म तोहि बहुत बधायो ।

एनो मान सट ! भयो मोहकन जाननहु पाहत विप लायो ॥

इन मर्मों स्वभा पर रोड रस की विपत्ति हुई है ।

वापम्वन रस—इस रस का स्थायीभाव अथय मन्तु वापम्वन पुत्र उग्रोपन विभाव पुत्र का अष्टाएँ अनुभाव अग्निगत अग राने देवता वापम्वन वाता अग्निवाली अग्निवृत्त की वातावा रूप मर वापि हाव है ।

धी कृष्णवृक्षावली व प्रारम्भिक १७ माता और वातावली में वापवाड के प्रथम १९ मीठा में वापम्वन रस वापम्वन है । धी कृष्ण वातावली व वापम्वन

के पदों के मध्य में कृष्ण और गोपियों की परस्पर नोक सेंक चलती रही है। केवल प्रथम और तृतीय दो पद ऐसे हैं जो गोपियों के उपासम्भ से मुक्त रह सके हैं। शेष में उनके उपासम्भों के साथ यशोदा का वात्सल्य पूर्ण रूप से प्रस्तुतित होता रहा है। इन सभी पदों में कृष्ण आत्मन्त रहे हैं।

ज उछंय योबिर मुख बार बार निरखी ।

पुलकित तनु धानबधान झन छन मन हरवै ॥

सुन्दर मख मोहि देखौठ इच्छा प्रति मोरे ।

मम समान पुग्ग पुंष बासक नहि तोरे ॥

दूसरे पद में रोटी को लेकर कृष्ण और यशोदा का बातलाप प्रस्तुत किया गया है जो पूर्ण अभिनयात्मक है—

छोटी मोटी मीसी रोटी बिकभी खुपरि क तु ।

बे रो मैया । 'जे कम्हीया' सो कब ? 'धबहि तात ।'

'तिगारिय होही' जेहो बलबान को न ईहो ।'

"सो क्यों ? 'मटू तैरो क्हा" कहि इत उत जात ॥

गोपियों के उपासम्भों की स्थिति में यशोदा का हृदय सर्वत्र कृष्ण के प्रति ममत्वपूर्ण रहा है। गोपियों से वह स्पष्ट कहती है—

कबहुँ न जात बरबे बामहि ।

कसत ही देखी निज बापन सब तहित बलरामहि ॥

गोपियों के उपासम्भ प्रमत्त करने पर भी जब कम नहीं हुए यशोदा ने एक मनोवैज्ञानिक मुक्ति सोच निकाली। उन्हें विवाह का प्रलोभन दे दिया कुछ प्रभाव तो पड़ा किन्तु वह यशोदा और गोपियों के परिहास के भी शायन बन गए—

छाड़ी मरे लसन ! ललित लरिकाई ।

ऐहें तुत । बेकुशर कालि तरे,

बई ब्याह की बात बसाई ।

डरिह तानु समुर जोती तुनि

होसिहै नई कुलहिन सहाई ॥

बुझीती घबस्या में कृष्ण जैसे पुत्र को प्राप्त कर यशोदा का मानस वात्सल्य से छत्रकटा ही रहा है। जो गोपियों के उपासम्भ पर उनका उल्लसत बन्धन भी हुआ यशोदा ने उन्हें बहिष्कृत भी किया किन्तु क्या उन परिस्थितियों में उनका हृदय कृष्ण के निज प्रकृत्यामा न होया जबस ही उन्हें क्लेश की अनुभूति हुई हीपी किन्तु वह बीधा करने के लिए बिभध थी। वहाँ उनकी कठोरता में भी वात्सल्य की कोमलता छिपी है।

गीताबली में अपने भ्रम्य नायकों की ध्येसा तुलसी ने राम के बाल-जीवन के विवध को प्रमुखता दी है। दूर द्वारा विभिन्न अभिनयात्मक कृष्ण का बाल-चरित

धीर उममे समाहित बात्मस्य भाव प्रकृत्य ही प्रचार धीर प्रमार पा सुरा ह्या
 किन्तु तुलसी उममे प्रभावित नहीं हुए है। इसके कारण है—राम का मयाग पुण्या
 लम का स्वरूप धीर तुलसी की वास्य नभिन प्रादि किन्तु उन वर्णशास्त्रक सम्भीरता
 में भी राम तथा अग्य भाइयों के प्रति बात्मस्य का पूर्ण प्रस्फुरण हुआ है।

बौद्धि लालन पासन ही भुलाबी।

कर पर मूक अपर कमल लसत सादि लोचन नंबर भुमाबी ॥

बाल बिगोह मोह मञ्जुसमनि हिलकमि लामि सुमाबी।

तइ धनुराग लय मुहिबे कहे मनि मृगमयनि सुमाबी ॥

तुलसी भनित भली नामिनि उर सो बहिराइ कुलाबी।

बाक चरित रघुबर तरे ठहि मिलि गाइ करन बिनु लाबी।

स्वायीभाव पुन-त्रम है राम बालम्बन है। उनक कर पर मूक धीर बग
 का मौख्य उद्दीपन विभाव है धीर सेय मन्मूय पर धनुमाबा का प्रस्फुरण करता है।

सोइये लाल साहिमे रघुराई।

मगत मोह लिये मोर मुमिबा बार-बार बलि बाई ॥

× × ×

सलन सोन लेइया बलि भया।

सुन सोइय तीर बरिया भाई घार चरित लाग्यो भया ॥

इन पदों की भाव-धारा में स्पष्ट है कि बागों भाई नील माताया की समान
 प्रिय धीर मईने से। इसमें सभी का माताया में बात्मस्य प्राण बनन रहना स्वाना
 विक बा। सभी पुरों का धीपन में सेसने लेककर माताया प्रगण हो उन्नी बी।

छेगन मंगन छेगना लसन बाक चारयो भाई।

साजन भरत सात सवन राम सोने सोन

सरिका ललि मुदिन मातु समबाई ॥

इस प्रकार गीतावली के इन पदों में बात्मस्य रस का पूरा परिचय हो
 गया है।

भक्ति रस—तुलसी भक्त प्रथम है। उनक स्वरिचरक के धन्य तप्य पा सुरा भक्ति
 के समन्तर ही प्रतिष्ठा प्राप्त कर छेगये। रत्नावली का प्रस्ताव में उगान राम में
 भयना सम्बाप नरं-प्रथम जोड़ा है धनन्तर विचारी या मय्याया का ज्ञान मय्य जो
 परिचामिन हा उगा है। इस उम्य के आधार पर ही 'मियारादम' मय जग जाना बर
 दयने लये से धीर उनही जगना राम के मनु स्वरूप का माक-जीवन में व्यापन लेन
 कर आनन्द की अनुभूति कर उगी थी। यह उम्य का प्रमाण धन्य बाय्या के धनि
 रिकत उनके गीति-बाय्या में भी उगलन है।

हृदय के चरित में तुलसी ने मापुर्से भक्ति धीर राम के चरित में मापुर्से
 परक वास्य भक्ति पा पापय रिदा है किन्तु राजा कदवारा के धनि उनका पून

बड़ा निष्ठा और पूज्य भावना रही है।

तुमसी के दोनों प्रारम्भों ने गारायन होकर भी नर के रूप में मधुरा और अयोध्या में जन्म लिया था। वे दोनों भोक-रंजन और मान-रक्षण के लिए विविध प्रकार की वारिधियाँ लौभाएँ कर रहे हैं। इस लक्ष्य को उम्हाने कही भी विस्मृत नहीं कर दिया है। फलतः उनके चरित-भाग में उम्हाने सदैव अपनी भक्ति-परम पूज्य भावना उनको धरिपत की है। श्री कृष्णपीठावली और गीतावली के पदों के अन्त में प्रायः अपनी इस भक्त-धीमी का बहू निर्वाह करते चले हैं। विलम्बप्रतिका में तो इस भावना का झोप उसके प्रत्येक पद में प्रवाहित हो उठा है जो अपनी मधुर सरसता और विनीत भावना से सभी को धार्कपित कर लेता है। जब उनके अविद-रत्न का उनका काव्यो में विचार कर लेना उचित है।

श्री कृष्णपीठावली—इस काव्य में अथ-तन तो भक्त कवि की आस्था विषय मान है ही किन्तु अन्तिम दो पदों में कृष्ण के भक्त-भयाना रक्षक का मान भी तुमसी द्वारा पुष्ट किया गया है जिससे समाहित प्ररणा से कृष्ण के धार्किक रूप की ओर धार्कपित होना स्वाभाविक है।

श्रीपदी लौचली है कि नलै ही बहू गुण में हायी हुई हो किन्तु शूरवीर पौषों पठियो और भोष्पपितामहू होनाचार्य भादि के समय बहू सुरक्षित ही रखेनी। उसका यह विश्वास और धासा तिराधा में परिणत हो गई जब दुःसासन ने उसको मज्ज करने के लिए कोज के साथ अपने दोनों हाथों से उसकी छाड़ी पकड़ ली उस समय अक्षरम परग गोभोक-बिहारी ने उसकी रक्षा की—

अपननि को अपनी बिलाति बल

सकल धास बिस्वास बिलारो।

हाथ उठाइ अनापनाव सो

वाहि पाहि प्रभु ! वाहि पुकारो।

तुमसी परकि प्रतीति प्रीति गति

धारतपास कपानु मुरारो।

बलन वेप राखी बिसेवि लखि

बिचरावनि मुरति नर नारी॥

अपमान के इस प्रकार के लोक-रक्षक रूप से ही अक्षर धारवस्त और बिचरवस्त होता है। जन-मान इन मोलाधों में अपने संकटों और प्रापतियों के समाधानों की अनुमति कर आस्थाहीन हो जाता है। इही से श्री कृष्णपीठावली के अन्तिम पद में तुमसी भी कृष्ण से अकिठ-वम पर चलने का आदीव चाहते हैं।

जग जग जग ताके केसव के

समन कहेत दुसाज मुसाधी।

तुमसी को न होइ मुन कीरति

कल्प कपाल भवति पञ्च राजो ॥

इन दो तथा अन्य पदों में भी कल्प के प्रति रामानुजी भक्ति का प्रस्फुटन किया गया है।

पीतामली—रामानुजी भक्ति का स्वरूप पीतामली में भी पुरुषरूप से विद्यमान है। यों स्वप्न-स्वप्न पर राम के दक्षिण-शीत-सौन्दर्य का स्वरूप मात्र मात्र को प्रभावित किए हैं किन्तु जटापु स भेंट सबरी से भट तथा बिभीषण सरथागति प्रादि स्वप्नों पर भक्ति का स्वरूप प्रतिपादित होता है। ये सभी अपनी भक्ति भावना के कारण मक्तों के प्रतीक हैं।

राजन के द्वारा सत-विलास किए हुए पक्षिराज जटापु जब मरणाघ्न म उन्हें सीता की सुधि राम को न दे सकने के कारण अतीव धातुमया थी किन्तु सीतात्म्य से उसी समय राम भा पट्टेके उन्होंने जटापु को मोद में मकर उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। राम ने उनके शरीर रत्नने के लिए कहा किन्तु उन्होंने भक्ति भावना से भरकर इस प्रकार कहा—

तुलसी प्रभु भूठे जीवन लागि समय न बोलो सैहो ।

बाको नाम मरत मुनि बुरसभ तुमहि क्यो बुनि सैहो ॥

सबरी के जीवन में भी भक्ति रस का समाप्त प्रवाह बहता है। उसकी प्रतीक्षा पातिभ्य और बाबी में राम के लिए अनन्य निष्ठा विद्यमान है। राम भी माव न भूके हैं। फलतः वह उसकी पातिभ्य का मुप उपमण्य करने पट्टेच ही जाते हैं। राम के भावमन से पूर्व की उसकी भाव-दिव्यि बड़ी मार्मिक है—

प्राणनाथ पाहुने सैहें राम-लपन मेरे धाम् ।

आनत आन-बिष की म्हु बित राम मरोब निबाज् ॥

म्हु बित मरोब निबाज् धाम् बिराजिहें म्हु पाइके ।

बह्याबि संकर-धीरि बूजित पूजिहो प्रब जाइके ॥

लहि माव ह्यो रपुनाथ-बागो पतित पावन पाइके ।

बुठ धोर साहु पाइ तुलसी तोतरेहु पुन पाइके ॥

भक्ति-रस में निम्न मन्त्र का अतिरिक्त अन्य भक्ति इस प्रकार की भाव धारा व्यक्त करने में सार्थकता ही क्या समभेगा? वह अथवा भाव-परसों के लिए एकमात्र धारात्म्य का ही धारण मकर बैठ जाता है। धारात्म्य के प्रति उसकी सम्मयना एक-निष्ठा और प्रेम-तत्त्व उस-मुग्ध रगत है। वह मन्त्रे मनोरोग्य म विचरण कर उठता है। बिभीषण भी जीवन की कठिन परिस्थितियों में राम-दरशन में पट्टेचा है तथा उस सम्मक धारावाहन और संरक्षण मिला। इसी से राम-महात्म्य में वह था उगा है—

साहित्य भक्ति बोध विधो ।

धो रपुधोर समाप्त धाम् को पुरन कपा हियो ॥

विनयपत्रिका—तुलसी के वाक्यों में भक्ति रस का समा उपर्य विनयपत्रिका

म हुआ है वैया ग्रन्थ किसी काव्य में नहीं। इस सम्बन्ध में वह हिन्दी के शेष साहित्य में भी प्रथम धेनी प्राप्त करती है। राम के प्रति अत्यन्त धनुराग और उनकी कृपा कौशा की कामना या पापना आदि स अन्त तक पदों में विशेष हुई मिलेयी। तुलसी ने अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए प्रारम्भिक ७० पदों में देवी दक्षताओं तीर्थ-स्नानों पवित्र मन्त्रियों (गंगा और यमुना) राम के पापों को क्षुद्रमात्रक आदि की स्तुतियों और वन्दनाएँ की हैं। अन्तर्गत अन्तिम पद तक उन्होंने अपनी विनय भावना राम के चरणों तक पहुँचाने की चेष्टा की है।

संसार के काम क्रोध मय भोग तथा विविध प्रकार के मौखिक विकार, जो जीव-मात्र को पतित और अस्मित कर देते हैं ऐसे सब-राग हैं जिन पर विषम प्राप्त कर लेना बड़ा कठिन है। प्राणी धर्म कर्म तथा भय भोकाचार करता है किन्तु उनमें आत्मानन्द के प्रभाव के कारण उसका कुछ हित नहीं हो पाता। इस कारण जीवम-पर्यन्त वह नटकटा है और प्राने निष्कृति के पक्ष पर नहीं गग पाता है।

बिष सब त हूरिने बिसपायो। तब ते वैह घेह निब जायो ॥

मायाबस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते बाचन बुझ पायो ॥

जीवम के इस कटु शरय को समझकर ही तुलसीदास ने राम के प्रति अत्यन्त धनुराग की धोर संकेत किया है—

संजम अप तप लेम धरम बत बहु भेयन समुदाई।

तुलसिदास भव-रोग राम पर प्रेम-हीन महि जाई ॥

भव-रोग के विनाश के उपचार स्वरूप ही 'राम-पद-प्रम' विनयपत्रिका की मन्त्र का स्थायीभाव है जो काव्य के अन्तिम पद तक प्रकाशित रहा है।

बिहूँहि राम कह्यो 'सत्य है मुनि सं हूँ लही है।

मुनि माव नावत बनी तुलसी अनाम की परी रघुनाथ हाव लही है।

तुलसी यही तो चाहते थे। यहीं पर धाकर उनकी विनय भावना विधाम में उठी है। तुलसी ने सविठ-बीम-वीर्य से युक्त राम का प्रपना आराध्य माना है। जिनकी सीसार्थ संसार के कस्मान के लिए ही हुई है तथा जिन्होंने नर-रूप में प्रकटार लेकर लोक धर्म लोक रक्षण लोक रक्षण का महत्तम धारण मानवमात्र के समस्त प्रस्तुत किया—

सीस-सीस-मान-गुन-महिर सुखर परम उदारहि।

रजन सत अधिल अप-वंचन संजन बिदय विकारहि ॥

ऐसे विविध राम और उनके दया दाक्षिण्य ही इस काव्य के आसम्बन्ध हैं। तुलसी ने अपने आराध्य के महत्त्व और शौर्य-परिभा को विविध प्रकार से कहने की चेष्टा की है। राम-गुण भाव के साथ ही यह प्रपन सधुर्य और पतित माव का निरन्तर उल्लेख करत गए हैं। इस प्रकार अन्त भगवान की भावना का सापेक्ष स्वरूप समूर्ण हो उठ्य है जिसमें नरिण के सम्पूर्ण भाव स्वभावतः समुन्मिष्ट हो उठे हैं।

राम तो बड़ो है कीन कीन मोमो छोटी ।

राम तो लरो है कीन कीन मोमो लोने ॥

× × ×

कह्यो न परत बिनु बहे न रह्यो परत

बड़ो मुस कहत बटे तो बलि होगता ।

प्रभु की बड़ाई बड़ी आपनी छोड़ाई छोटी

प्रभु की पनीतता आपनी बाब-पनीतता ॥

राम के समय प्रस्तुत किये हुए इन धार्य निबन्धना धीर सम्बोधना व मान्दिय के सभी संभारीभाव स्वच्छ ही प्रतिष्ठित हो उठे हैं ।

सकुञ्चल ही धनि राम कपान्दिय ! श्यों कनि बिजय सुमाचो ।

सकल परम बिपरीत करन कहि नीति नाक मन भाचो ॥

इस पद में बीड़ा (सज्जा) धीर निम्न पर म प्पानि संभारीभाव है—

ऐसी मुकता या मन की ।

परिहरि राम भगति-सुर हरिता पात करत सोत बन की ॥

विबिध स्तुतियों में तुमसा ने आपनी रति धीर भक्ति को अभ्यन्त रखन की प्रथमा प्राप्त की है । सम्पूर्ण देव राम-नमा क पारंद तीर्थ-स्थापन आदि राम पर-श्रेय को उदीप्त करन के कारण उदीपन बिभाव क अभ्यन्त समाहित होम । भक्ति भावना में निमग्न होने की स्थिति म रोमाञ्च (हृय धीर धय) प्रथमाव की अनुभूति होती है ।

तुमसी ने आपन धाराध्य के स्वरूप को मोरु बीजन में प्पान्त देया है । बीज मोरयोपी धारदसों म मुकन हुाने के कारण उनकी सीमाघा न उठह मुण्य बन विद्या है । इसमें बह उनमें धारवस्त है ।

इस प्रकार राम का स्वरूप धीर व्यक्तिगत स्वयं ही रंजन वा सापन बन गया है । इसी एवमात्र भावना क कारण बह राम के चरणों म वैचय धाता अनुराग पाहन है धम्य किमी प्रकार वा स्वाय मर्ती—

बहो न सुपनि सुमनि संवनि कपु रिपि-सिधि, बिपुल बड़ाई ।

हेतु रहित धनुराय राम पर बड़ु धनुदिन धमिकाई ॥

उपसृत भावना म भक्ति वा उतम धारन मरा हुया है त्रिमरी तुमसी धनितारा कर आपने को हुतायं करमा पाहन है ।

बिभयपनिवा में त्रिम-नारों की धनुर निधि मरी हूर् है । मकल उतम धवन धारपी की प्राप्ति कर धनीतिक ब्रह्मात्मर की धान्नी बन गवता है । बह रजन भक्ति वा धारम है धीर तुमसी उतम कारण मकन व धान्ता हो उठे है ।

इन गीतियों के अन्तर्गत विविध रागों का स्वरूप निरूपित किया गया है, जो कर्नाटिकी पद्धति में आज भी पूर्ण रूप से मान्य हैं। यह सत्य है कि हिन्दुस्तानी पद्धति में रागों की गीतियों के ये नाम सही हैं किन्तु उनका स्वरूप वहाँ भी पूर्ण रूप से मान्य है। वहाँ की 'सुझागीति' को हिन्दुस्तानी पद्धति में मृदंग 'मिन्नागीति' को 'बमार' 'धौड़ी गीति' को 'दुमरी' 'बैमरागीति' को 'टप्पा' और 'साधारणी गीति' को 'रबात' कह सकते हैं। उपर्युक्त के प्रतिरिक्त एक पद्धति के राग द्वितीय पद्धति में विद्यमान हैं—उदाहरणस्वरूप—कर्नाटिकी 'मायामालवगौड़' को हिन्दुस्तानी में 'भैरव' 'हुनुमत्तोड़ी' को 'भैरवी' 'बक्रवाह' को 'मानस भैरव' 'गट भैरवी' को 'सिन्धु भैरवी' 'हरहरप्रिया' को 'काशी' 'हरिकम्बोजी' को 'जमाब' 'सङ्करामरम' को 'बिलावत' 'धुमपत्तुबरातो' को 'टोड़ी' 'गमनप्रिया' को 'मारवा' 'मेवकस्यानी' को 'कस्यान' कह सकते हैं। दोनों पद्धतियों के उपर्युक्त राग स्वर और गान-काल की एक ही व्यवस्था रखते हैं। इस प्रकार यह साम्य दोनों पद्धतियों के एक ही होने का संकेत है।

उपर्युक्त के प्रतिरिक्त राग के अंतर्गत यह ग्यास प्रादि लक्षण सर्व अक्षरकार प्रादि सिद्धांत तथा गेयता के लिए स्थायी अन्तरा संचारी और प्रायोग प्रादि आर विभ्राम भी दोनों पद्धतियों में मान्य हैं। कर्नाटिकी पद्धति में रागों के विषय में 'जनक और जन्म' परिपाटी के समान हिन्दुस्तानी पद्धति में 'राग रागिनी-युग्म' की परम्परा है। उनके अन्तर्गत ही अजातीय राग-रागिणियों के विवेचन और गेयताओं की प्रतिष्ठा होती है। वहाँ प्रथम श्रेणी के राग-संख्या में ७२ हैं जिन्हें 'मेवकरी' कहते हैं। उत्तरी हिन्दुस्तानी संगीत में जम्हू मेस (पाट) कहते हैं, जो तस्मा में बर है। इस प्रकार दोनों पद्धतियों में अधिकारिक साम्य है।

उपर्युक्त साम्यों के रहने पर भी संगीत के विपुल तरंगों को कर्नाटिकी पद्धति के अनुसार हिन्दुस्तानी पद्धति सुरक्षित न रह सकी। बलिक के हिन्दू-राजाओं ने प्रथम में भारतीय संगीत अपने मूलपद स्वरूप को बचाए रह सका जबकि उत्तरी भारत में मुसलमानों के अभिप्राय से उसका बच सकना कठिन हो गया। अन्तः रागों में मिश्रण और उनके स्वराङ्कन (Notation) में भी परिवर्तन और परिवर्तन समाविष्ट हुए। इन नवोन्मेषों से हिन्दुस्तानी संगीत की पद्धति बलिषी पद्धति से विपन्न और विभक्त हो गई, जो स्वाभाविक था।

जो तुलसीदास की सांस्कृतिक भाषी आज सम्पूर्ण देश में प्रतिष्ठित और प्राज्ञ है फिर भी उनके व्यक्तित्व और कृतित्व का प्रसार उत्तरी भारत में ही हुआ है उनके भाष्यों का मूल-भोज और विविध भाष्य-टीकियाँ उत्तरी भारत से ही सम्बन्धित हैं। इससे उनकी गीति-शैली का हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति से संबंध हीना स्वाभाविक है। अन्तः इस पद्धति की गीति-शैलियों का विवेचन आवश्यक है अन्तः उनमें उनकी गीति-शैली का निर्णय करने में सुविधा हो सकेगी।

हिन्दुस्थानी संगीत की गीति-शक्तियाँ

उत्तरी भारत के संगीत में द्रुपद, जमार, क्याल, ठुमरी, टप्पा, तराना, बादरा, बज्रम, भजन, कीर्तन, युगलबन्ध, पाठ या झुका, मरयम, मादरा, तिरबट, चतुरंग, राममासा या रामसागर, स्वराध, गीत, रीत, बहरी, रमिया, माइ, जतगा, छाजनवीर या रमेश्वर, गीत आदि किन्हीं ही गीत-शक्तियाँ प्रयुक्त होती रही हैं। यहाँ के मायक और भजन-रवि इन्हीं के माध्यम से सांस्कृतिक और जीवन-निर्माण के समुचित संदेश प्रदान करते रहे हैं। उपर्युक्त में द्रुपद, जमार, क्याल, ठुमरी और टप्पा ही प्रमुख हैं, शेष गीत-शक्तियाँ उन्हीं के अन्तर्गत समाहित हो जाती हैं।

तुमसी की गीति-शैली से परिचित होने के लिए इन विविध शैलियों के स्वरूप और मायकी के विषय-क्षेत्र से अवगत हो जाना आवश्यक है। अन्त उपर्युक्त को लेकर प्रत्येक के विवरण प्रस्तुत करना समीचीन है।

१. द्रुपद या द्रुपद पद—यह देश की प्राचीनतम राग शैली है जो अपने अस्तित्व और स्वरूप में विगुण और स्थिर है। इस शैली के रागा में स्थायी अन्तर संचारी और धावींग चार तुकों प्रयोग में आती रही हैं। अन्तर द्रुपद मशिम होन सके और चार तुकों के स्थान पर उमम 'म्यापी' और 'अन्तरा' बजल वा तुकों ही शेष रहे हैं।

अपद के गाने में यम्भीर, ताली की आवश्यकता है। यह प्रायः चौताम की मम में पाए जाते हैं और इसमें पाड़ा, चौताम, सरमी, बहुर, रत्र, धादि ताला का प्रयोग किया जाता है। इसमें मीड़, यमक, मूठ, धादि इने का ही प्रयोग होता है तान, पस्टा, मुरकी आदि उपयोग में नहीं आते।

द्रुपदों में मायक, मीहार, गोबरहार, अन्तर और बागुर चार बाणियों का प्रयोग करत हैं—प्रथम में बोल अधिक रहते हैं और तान की उपाया होती है, द्वितीय में बोल और तान मम रहते हैं, तृतीय में बोल की अनेक तान अधिक रहती है और चतुर्थ में बोल की अनेक तान के अधिपत्य के साथ मीठ, मूठ और यमक का सम्यक उपयोग होता है।

द्रुपदों में बहनाओं की स्तुतियाँ, शक्ति भावनाएँ, राजाशा की प्रशस्तियाँ तथा लौकिक श्रुमार के वर्णन मय रहत हैं। इस शैली का पुनरुद्धार आधुनिक नरेय मानसिंह के दरबार में मीठम बीजू बाबरा तथा अनेक सहायों द्वारा किया गया था अन्तर स्वामी हरिदास और मियाँ तानमेल की बाणियों और गानकों से उमका पूर्ण उत्थार हुआ।

२. जमार—जमार-शैली अ पद-शैली के अन्तर्गत समाहित है। अन्तस्वरूप इसका मान-निर्माण उन्हीं का समाप्त है। इसमें स्थायी और अन्तरा वा तुके रहता है, बहरी-बहरी चार तुका का प्रयोग भी मिनता है। किन्तु इसमें अ पद की अनेक बान, तान और मम

सम्बाधी बल्पना अधिक रहती है। जमार को संमीम में 'होसी भी कहते हैं। इसमें कृष्ण और गोपियों की नीलाघो का मान उपमन्म होता है।

१ क्यास—इस धीमी के संगीत को जौनपुर के बाबसाह हुयेतछाह धर्या (१५वीं शताब्दी में छायाय दिया फलतः यह सम्म-सगाज में ग्रहण किया जाने लगा। जनन्तर मुहम्मद साह रङ्गीले (१७१६-४८ ई०) के समय में सवारङ्ग और सवारङ्ग दो बन्धुओं के प्रयास से इस धीमी का पूर्ण प्रसार हुआ। वह संगीत में अपनी स्थायी प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल हुई।

ग्रुपब की गायकी में तान गमक धादि के समार के कारण मायक को स्वर-बाधना में पूर्ण सम्मस्त होना पड़ता है। ग्रुपब की तुलना में क्यास सरल होता है, इसमें गमक तान पसटा मीठ सुत धादि की ही व्यवस्था होती है स्वर की नहीं। फलतः यह गीति-धीमी जनता का अधिक बोधगम्य हो जाती है। क्यास-धीमी में बिपम श्रुंगार और प्रेम है। इसमें स्वाधी और अन्तरा दो तुके और एक ठास तिठास और बीमा तिठास धादि धार्यों का उपयोग होता है।

४ तुमरी—यह संगीत की वह यायकी है जिसमें केवल प्रेम-तत्व ही रहता है। इसमें केवल मिथित ध्वनि के राग ही स्वीकृत होते हैं, बिधुद पम्मीर और करन राम नहीं। इसी से इस गीति-धीमी में समार पीनु, कापी धादि रायों की ही स्थान प्राप्त है, दरबारी मस्तार हिण्डोल और टोड़ी मारवा धादि को नहीं। इसमें १६ मा १८ मात्राओं की धार्यों का प्रयोग होता है। फलतः राबरा कहरवा रेकठा पजस धादि धार्यों को न्यून मात्रा की है इसके अन्तर्गत आती हैं।

इस धीमी के रायों के माने में मायक को अपने कण्ठ में सारम्य माधुपं और कोमसता रखनी पड़ती है और राग की ध्वनि को धाकर्पक और रबन-भूष बनाने के लिए गान काम में स्वरो का प्रस्फुटन करना पड़ता है।

५ टप्य — यह सुद कृति की गीति धीमी है। इसमें स्वाधी और अन्तरा केवल दो तुके रहती हैं। कापी मिन्तोटी पीनु बरवा माङ्क पम व भैरवी धादि इसके राग हैं। प्रपर और क्यास के समान इनमें धामाय की धाबधयकटा नहीं होती है किन्तु अटवा गितकड़ी समजमा सास और अघ गुरकिया से ही गायकी पूर्ण कर ली जाती है। इस धीमी के गान को सर्वप्रथम सखनऊ म मिर्जा खोरी ने शारम किया था। जनन्तर जनक बनारस पदुषने पर इसका नहीं भी प्रचार हो गया। इस धीमी के रायों का बिपम सदेव श्रुंगार ही रहता है।

इस धीमी धीमियों से परिचित हो गेने पर अब गो० तुससीदास की धीमी के निरूपण में कोई कठिनाई नहीं है।

गो० तुससीदास की गीति-धीमी

१ सैद्धान्तिक-तत्त्व—गीति-धीमियों के उपर्युक्त विवेचन से यह निश्चित है

कि प्रकृतियों वस्तुओं आदि की भ्रष्टता बन्दना और भक्ति भावना के लिए ध्रुव और प्रसार को दीप्ती ही उपर्युक्त है प्रथम दीप्ती कबल शृंगार और मोर-रंजन के तत्त्व ही प्रस्तुत करती रही है। इस प्रकार इन दीप्तियां न मरसता न हो भद्र हो जाते हैं—प्रथम को प्राथम ब्रह्म के सगुण और निर्मल सगीतता भक्त कवियां न दिया और द्वितीय को प्राथम उन मंजीतरों ने दिया जिनका गायकी राजा और नबाबों के प्राथम में पस्मवित हुई थी। प्रथम का सरलाच ईश्वर के साधक स्वान्त मुग्धाय कर्त ध्रुमरे का परास्त मुक्ताम होता था एक के इकतारा बीणा और परास्त जीवम में ब्रह्म निप्य के कारण ध्वनित के दूसरे के राजाओं और नबाबों की इच्छाओं के ताल-स्वर पर ब्रह्म के एक में ध्यस्तव्यता की मस्ती समाहित हो उठी थी ध्रुमरे में परतत्रता से उत्पन्न कृत्रिमता। इस प्रकार मीठ या विविध आशाओं में प्रकाशित हो रहा था और उनके बसाकार अपनी उपासना और साधना से उनको आशा विष्ट हुए थे।

तुमसीदास राम और कल्याण के प्रथम भक्त एक निष्कलितमार्गी सत्त्व थे। भक्ति भावना और दार्शनिक सिद्धान्तों में मने ही अन्तर हो किन्तु वह भी गोरतनाय और बबीर जैसे धर्मतथाधी निर्गुण तथा मूरदास मन्दास परमानन्ददास आदि पण्डितों के भक्त कवियों जैसे सगुण सत्त्वों की ही कोटे में आते हैं। अपनी अपनी धरा और निष्ठा के अनुसार अपने-अपने आराध्य ब्रह्म कल्याण और राम के प्रति अपनी अनन्यता का प्रतिपादन ही उनकी कवियों का मध्यम था। यह प्रवृत्ति ध्रुव और प्रसार गीति दीप्तियों से ही मन जाती है। इससे यह गिज्ञास्यत कहा जा सकता है कि तुमसी प्रथम सत्त्वों के समान ध्रुव गीति-शास्त्रों के ही आशायी थे। उनका गीता में दना दीप्ती के विद्युत् तत्त्व समाहित है यह सिद्ध है।

भावात्मक-तरब—तुमसी के गीत काव्य की भावधारा के सम्बन्ध में इसी प्रकृत के १ और ६ अध्यायों में परिचयात्मक और द्विवेचनात्मक रूप से विचार किया गया है। वही हम देते चुकें हैं कि उनका हृदय गीति-दीप्ती के काव्यों के माध्यम्य करके संतकन हुआ है। यदि विनयनिकता में आत्माभिप्यजन प्रसुप्त है तो भी इच्छाशीलावली और गीतापत्नी में अटनायों के प्रकृतान के गाय उनका हृदय में बसा के मासिक और भावुक स्थलों का पहिचाना है और नदियरु कोमल विनय प्रस्तुत किए हैं। यह गीति-दीप्ती की ही विद्यता है जिनका उद्देश्य भग्नुर उपयोग किया है। इस स्थान पर धर्मिक न कहकर उनका सम्बन्ध में दर्शित रूप में ही कहा जा रहा है जिससे उनका भावात्मक तरब पर प्रकाश पड़ सके।

तुमसीदास के धी कृष्णगीतावली और 'मानावली' दोनों कृतियों और राम भक्ति परक गीति-काव्य है। बिन्दु के दोना प्रकृतागी चरित्रों के प्रति उनकी पूर्ण निष्ठा है अन्तर्गत तथा स्वयं के साथ वह दिप्ती भी स्वयं पर ध्यान प्रसु के प्रति अपनी आस्था विराम और भक्ति का परिचय करती कर सक है। तुमसी ने यदि राम के प्रति अपनी निष्ठा और आत्ममयप का भाव व्यक्त किया है तो उनका बनी

भाव रूप के समझ भी घटकर रह गई है। उनकी प्रस्था का व्यापक रूप तो विनय पत्रिका के स्तोत्रों में विद्यमान है ही फिर भला समझी शक्ति भावना रूप के प्रति क्यों नुच्छिन्न हो जाती—

१ इन्हू ही के घाय हो बधाए जब भित लए,
नभत बहुत सब सब सुख बियो है।
नभलाल जान बल लल सुख लखल
गाइ सो धमिय रस तुलसिहुँ पियो है ॥ —(इ० पी० १६)

२ जलत जलत बरतपर जहलत
छोतत कहल करत रोग बया।
तुलसी बाल-केलि सुख बिरजत
बरधत सजन सहित सुर सेवा ॥ —(बही—१६)

अपर्युक्त के अतिरिक्त श्री कृष्णपीठावली के अन्तिम दो पदों में भक्त-मर्वादा संरक्षण में पूर्ण समर्पण रूप का स्वभाव ही विहित है। यह उष्य ही पीठावली में भी विद्यमान है—

ओ रघुबीर-बरन-बिचक तिनू की यति ब्रयट बिचारई।

अबिरल भमक भनूप बूढ़ तुलसिदास लख पाई ॥

—(पीठावली बालकाण्ड—१)

उत्तरकाण्ड के अन्तिम पर में भी यही भाव-बारा विद्यमान है। इधर बलिष्ठ के राम का शम्भानिपेक किया है उधर तुलसीदास राजा राम से शक्ति-दान माँगने के निम्ने प्रपन्न हो उठे हैं—

बेह-बुदास बिचारि लमन सुष म्पारास अधिबक कियो।

तुलसिदास जिय जानि सुब्रह्मसर भवति-दान लख जायि तियो ॥

यो राम चरित के अन्तर्गत कथा-संघे में ब्रह्मरथ कीधरमा बिरजामिन जटायु पक्षी विधीपन धारि सभी में राम क प्रति शक्ति निच्छा और शक्त्यता है किन्तु तुलसी के अन्त हृदय के कारण काव्य के सभी ही स्वतन्त्र अन्त-सर्वांगिक हो उठे हैं। इस प्रकार शोक पीठि-काव्यों में शोकों घबरातों की मधुर सीलाएँ ब्रह्म टित हुई है, जिनमें उनके प्रभु-रूप के साथ तुलसी क अन्त-हृदय का सुन्दर समिन्धन हो गया है।

प्रभु श्री सीतामो का धारण उन्हें समाज को धन्यत कराना का इच्छा से सहीमें राम और कृष्ण दोनों के चरित्रों की अधिकाधिक घटनाओं को अपने इन पीठि-काव्यों में समाहित कर लिया है। पीठि के कारण यह लय है कि उन्होंने उनके जीवन की सम्पूर्ण घटनाएँ धन्यत नहीं चुनी है। परस्य और बीरत्व क स्वतों का उन्होंने छोड़ ही दिया है किन्तु फिर भी कथा का अन्त और इति अन्ते धन्यत ही विनया उनकी बहु उपेक्षा की नहीं कर सक है। इस उष्य के कारण शक्ति भाव

के प्रतिरिक्त उनके बाह्यत्व शृंगार आदि की भावनाएँ सम्पन्न रूप में निर्गोई हुई मिलेंगी ।

तुमसी की विनयपत्रिका में राम विषयक उनकी मक्ति भावना उत्पन्न पर पहुँच गई है । आराध्य के प्रति उनकी अत्यन्त भक्ति और आत्म निष्कलन के एक मही सीत-सीतो विना उसमें विद्यमान हैं जिनमें उनके अन्तरगत की आत्मा और विद्वान्त की भावनाएँ भाँवती हुई मिलेंगी । हीनता मानमर्पता भयशान्ता मरुता आत्मानन मनोरोग्य और विचारणा-विनय की सातों भूमिकाएँ उसमें सन्निहित हैं । प्रकृत भक्ति भावना का सुदृढ़ स्वरूप उसमें अभिव्यक्त हुआ है ।

१ विद्वान्त एक राम-नाम को ।

मानत नहि परतोति अन्त ऐनोइ मुमाक मल काम को ॥

पङ्कनी परयो न छठी छ मल रिमु अन्तर-अचलन साम को ।

अत तीरथ तप मुनि सहमत पवि मरु करु तन छाम को ॥

×

×

×

को जाने को कहै अमपुर को सुरपुर पर धाम को ।

तुलसिहि बहुत भयो लागत अय जोवन राम तुलाम को ॥

२ भरोसो जाहि भुसरो सो करो ।

सोको तो राम को नाम अन्तरनद कलि रम्याम करो ॥

करम अरासन ध्यान बेरमत सो सब भाँति करो ।

मोहि तो 'साधन के अर्थहि ज्यों सुभन रंग हरो ॥

प्रीति-असीति जहाँ आधी तहँ ताको काम सगे ।

मेरे तो नाथ-वार होइ आनर ही निमु धरति धरो ॥

तँकरि साखि जो राखि जहाँ कपु तो जरि कोहु मरो ।

अपनो बनो राम नामहि ते तुलसिहि समझि बरयो ।

तुमसी में राम के प्रति तो अत्यन्त और अगाध निष्ठा थी ही किन्तु सीता मरत अरमय अनुभूत अनुमान आदि उनका पारसों को भी उतारने विनय द्वारा करने परा में साथ लिया था । अन्तर सब और म विनय होकर उतारने अती विनय पत्रिका राम को समर्पित कर दी—

विनयपत्रिका शीत की बापु बापु ही बँबो ।

हिमे हैरि तुमको निस्तो तो तुमस्य तहो करि कृति वृत्ति बँबो ।

राम भक्त को भावना की अला अक्षेपना ही कैसे करन ? समरण प्राप्त कर वह उनके अनुभूत हो उठे । उनी समय पारसों में भी उनका 'राम के नाम का परतोति प्रीति के सम्बन्ध में बर्षा कर दी । उनी छ तुमसी की भक्ति भावना की बर्षा मुन कर उतारने भी उनके बदन का अनुभूत विनय और उतारने भक्ति भावना की प्रतीक विनयपत्रिका पर मही कर दी—

बिहूसि राम कह्यो रूप है, सुधि मे हूँ सहो है ।

भक्ति मात्र मात्र बनी तुलसी भगवत की परी रचुनाम हाथ लही है ॥

इस प्रकार अपने आराध्य के प्रति श्रद्धा और भक्ति की उन्हीं से स्वीकृति प्राप्त कर तुलसी 'भक्ति' हो उठे । तुलसी का यही तो उद्देश्य था जिसमें वह पूर्ण रूप से लगे उठे हैं ।

सब तो यह है कि विमल-निवेदन में भक्त की अितनी विनम्रता और हीनता आवश्यक है जितनी ही आराध्य की भुक्तता और प्रभुता थी । इस सम्बन्ध में तुलसी की भावनाएँ उत्कर्ष पर पहुँच रही हैं जिससे हिन्दी-काव्य में अत्यन्त विनयपत्रिका अद्वितीय सिद्ध होती है और साथ ही भक्ति के क्षेत्र में वह ऐसा आदर्श भी प्रस्तुत करती है जो प्रास्तिक के लिए चिरम्बन वरम और ध्यात-कल्याण का चिरवस्तु सामग्री है ।

तुलसी की वर्धनात्मक प्रवृत्ति के कारण उनके गीति-काव्यों की भावनाओं में कहीं-कहीं माधुर्य प्रवाह और शीघ्रता में घमास प्रतीत होता है । विनयपत्रिका के स्तोत्र परक और गीतावली में अरिष-परक सारे-सारे गीतों में अपेक्षित साहित्य उपसम्बन्ध नहीं होता—किन्तु इनके वे पर जो छोटे हैं अधिक उत्कृष्ट हैं और उनकी भावनाएँ अधिक मर्मस्पर्शी हैं । इन गीतों में सूर, मीरा आदि के गीतों के समान ही साहित्य और माधुर्य की अनुभूति होती है । उनके समस्त गीत सूर और मीरा के गीतों के समान मधुर नहीं हैं यह सत्य है । सूर, मीरा आदि कृष्ण भक्ति के माधुर्य पक्ष के ही उपासक रहे हैं इससे उनके गीतों की भावनाएँ माधुर्य तरंग का ही प्रस्तुत करती हैं । मीरा कान्तासक्ति की उपासिका थी और सूर शक्यासक्ति के । मीरा के पदों में कथा-रत्न में होकर प्रेम का स्वसम्बन्ध स्वरूप ही प्रकट हुआ है, जो स्वभावतः पाठक या श्रोता को आकर्षित कर लेते हैं । सूर के पदों में कथा-उत्पत्ति है, किन्तु पुष्टि सम्प्रदाय के प्रतिपादित माधुर्य के प्रवाह के साथ वह स्वतः बहता जाता है । इनके विपरीत तुलसी की उपासना और भक्ति अर्थात्वादी रही है, इससे कवि की दृष्टि अरिष के प्रस्तुत की ओर ही अधिक प्रवृत्त है क्योंकि यही वह आधार है जिसके बस पर उन्होंने अरिष का आदर्श समाज के समस्त रत्न के प्रयत्न किया है । सूर के समान जिनमें माधुर्यता थी किन्तु उसका उन्होंने उपयोग नहीं किया । सब तो यह है कि उपासना के आदर्श के समस्त उच्च उनकी दृष्टि ही नहीं गई । इसी से जो कृष्णगीतावली पट्टणों का मात्र संघर्ष है । गीतावली में कुछ पट्टणों कवि ने छोड़ी हैं किन्तु कथा के सम्मोहन को वह नहीं छोड़ सका है । इसी से शीत काव्यों में वर्धनात्मक पक्षता नहीं-कभी अग्र उठती है ।

भाव—संगीत की शार्ङ्गकता रंजन करने में है । इससे उसकी शैवात्मिक भावनात्मक और भावनात्मक शैली में यदि कितोभी उत्कृष्ट समाधिष्ट हो उठे तो उसका विमोघ परिणाम सामाजिक के समस्त अहित ही । इससे शिवात्म्य के अनुकूल संगीत

इसके अनुक्रम भाव तथा संगीत और भाव के अनुक्रम भाषा का प्रयोग प्रादर्यक ही नहीं अनिश्चय है। काव्य की अन्य सीमियों की प्रवेदा गीत सीमा अधिक बामल और मधुर है परन्तु गीत की भाषा-सीमा बर्जकट शब्दों से विहीन मधुर होनी चाहिए।

तुमसी ने अपने गीत काव्यो में ब्रजभाषा का प्रयोग किया है। यह भाषा अपनी माधुरी के लिए रचात हो चुकी थी और उस समय तक मूर तथा ध्य कृष्ण भक्त कवियों ने पराबसी में उससे प्रयोग का आदर्श भी प्रस्तुत कर दिया था इससे ब्रजभाषा का प्रयोग तुमसीवास को भी समीचीन ही जंचा किन्तु तुमसी और उन लोगों की भाषा विषयक प्रयोग में एक अन्तर रहा जो उनके काव्या में स्पष्ट स्पष्ट देया जा सकता है।

कृष्ण भक्त कवियों ने प्रायः अपने आराध्य की सीमा नृमि ब्रज प्रदेश में एकर मक्ति और कृष्ण की सीमा परक अपनी रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। फलस्वरूप वहाँ के जन-जीवन में प्रयुक्त और व्यावहारिक मधुर पञ्जाबी का ही उनमें उपयोग किया गया है। तुमसी प्रायः काशी प्रयोग्या चित्रकूट प्रादि में रहे हैं इनमें उन लोगों के समान ब्रजभाषा के शब्दों का प्रहल की उन्हें सुविधा नहीं ही रही। बलुन किरी भी भाषा की शक्ति ('Icne) भी वही के सहवास से हो पाती है तुमसी उससे बंचित ही रह गए। इससे उनके समान कवि तुमसी मुमाबनी-मुहाननी भाषा का प्रयोग न कर सके हों तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

तुमसी ने अपनी मक्ति भावना और समन्वयवादी सामाजिक विचार धारा के पोषक के लिए निरन्तर तथा अन्य साहित्य का सम्यक् अध्ययन और मनन किया था। इससे उनकी दृष्टि विचार और भाव सभी ही उच्च स्तर के रहे हैं और इस प्रकृति को प्रशुभ रखने में उनकी मर्यादावादी उपायना न भी उन्हें सहमान लिया है। इन कारणों से उनकी ब्रजभाषा में तत्पन शब्दों का बाहुल्य प्रबिन् हो उठा है जिसको हम भी कृष्णगीताबनी पीताबनी और बिनपरानिका में स्पष्ट रूप से देखते हैं। विनपरानिका के आरम्भिक स्तोत्र गण्ड में भाषा का यह रूप मरमता से देया जा सकता है। वहाँ अनुकरान्त सामाजिक पराबनी का प्रयोग मरुत काव्य के शब्द-विचार का स्मरण दिलाती है। उनमें कियों दुःख अक्षय प्रनात होनी है किन्तु के बीसी हैं नहीं। तुमसी की मक्ति भाव धारा के माप यदि हम अपने अन्तरगत को मिसाएँ जैसे तो बलुन के पत्रिका हम अपनी रग-माधुरी में विवक कर देती और बन्नि प्रतीत न होती। शब्दों के तत्पन शब्दों का प्रयोग सर्वत्र एक समान नहीं है। विनपरानिका गोताबना और कृष्णगीताबनी में केने लिखने की पद है जो अपनी सामाजिक शब्दावली में बनावु मुग्य कर केने है और गूट पीरा धादि का स्मरण दिलाते हैं।

तुमसी की अपनी भावना साहित्यिक और विमुक्तवादी रही है किन्तु सीमा के सम्बन्ध में उनका यह विचार प्रशुभ मला रह गया है। इससे उनका भाषा सीमा

मे उर्बु धरती धारि दग्धों का मिथन हो उठा है ।

श्री कृष्णगीतावली—बैकाम पोम्नास रगा सूरति वायनो परीव निचाव
धारिक सही राजी धारि ।

श्रीतावली—धरती धरनजा बताइ, शीगान निहासु धरकसी जरकसी
धिरताव साहेव असम रण कसम सीपर नच परवा प्रकस हात नोन नैव
धुनिव हुमहु, धरिदो धारि ।

द्वितीयपत्रिका—साध शीन धतामक नायक मुकाम जहाज कभूतव धर
बार, कभारि, धरम सहव बहव मिसकीन साहिब साध निहाम नीके धेर, असन
धारि धेरक धोर उधीता नचार, फहम धारि ।

इन काव्यों में कहीं-कहीं मुहावरों और मौकोक्तियों का भी प्रयोग हुआ है,
जिनसे भाषा-शैली स्वाभाविक प्रतीत होती है ।

सकृप बेचि सी खाई, इनीरी सारि मूँडहि बड़ी धव नाकहि धारि, मूमि पर
बावर शीनो हूँ है कीच कोठिता धोरै होव हरे होगे धिरधनि रण मुनि है री सोई
धोरै बेहि बई है, धूवरो बाधि है धारि ।

सर्वत्र उन्मूर्ति भाषना के अनुकूल परावली का प्रयोग किया है जिससे उनके
काव्यों में सतिष्ठ और बठिष्ठ भाषा-शैली उपलब्ध है । द्वितीयपत्रिका भाषा और काव्य
शैल्य में तथा गीतावली सतिष्ठ और मधुर परावली के कारण उनके साहित्य में
धयना प्रमुख स्थान रखती है ।

धमकार

धमकार काव्य की धीमा बढ़ाने वाला धर्म है ।^१ यों काव्य में शीघ्र-धमि
वृद्धि के लिए उसकी आवश्यकता है किन्तु भाषा और छन्द के समान वह काव्य
का अनिवार्य अङ्ग नहीं है । उसका प्रयोग बस्तुतः कवि के विकल्प पर निर्भर है कि
वह धाधय से धधवा न से । जब उसमें मूँबी जाने वाली धाधनाएँ धधवा बस्तु स्वयं
ही पूर्ण हैं तब उसमें धमकार की धधेखा नहीं होती । इसके विपरीत जब उसमें
किसी प्रकार का धधान होता है तब उसके उत्कर्ष धधवा धमकार के लिए वह
कनका प्रयोग कर उठता है ।

धधे नलाध सुधर बरी धीर धरत वृत्तों से धुधत कविता के लिए धधार्ध
केधबराध धमकार बैसे ही धधधक धधधे है धधे नारी के लिए धधधध^२ किन्तु
यह उन पर संसृष्ट के धधकारवादी धधार्ध धधध धीर धधे के काव्यादर्शों का

१ काव्यशौभाकरान् धमार् धमकार धधधे—धधे—काव्यार्ध

२ धधधि धधधि धुधधध धुधधध धधध धुधध

धुधध धिधु न धिधधध, कविता धधिता धधिता ॥

प्रभाव है। वस्तुतः उन पर रीति पद्धति का प्रभाव पड़ने लगा था जो उनके आचार्य और दरबारी कवि होने के कारण स्वाभाविक भी था। इसी से उनकी यह विचार-वाद्य शोस्वामी तुलसीदास तथा अन्य भक्त कवियों की प्रकृति से ठीक विचरीत है।

भक्त कवियों को केवलदास तथा अन्य रीतिकामीन कविता के समान निम्नीयता-अह्वारण्यता को रिमाना न था। फलतः काव्य में चमत्कार और ब्रह्मशील समाहित करना उनका लिए अनावश्यक था। उनका मानस अपने प्यारे की रूप-माधुरी भक्ति भावना और निष्ठा से घाण्णित्वित था फलतः उसमें सम्बन्धित अपनी भावनाओं को अपनी काव्य भूमि में प्रस्तुतित करना उनका सव्य था। इसके लिए उन्होंने काव्य की स्वाभाविक अभिव्यक्ति का ही आश्रय लिया है। फलतः भावना के प्रवाह में जो अलङ्कार आ गए हैं वे ही उनके काव्य को विभूषित और समृद्ध किए हैं अन्य नहीं। भक्तिरस की उपर्युक्त प्रकृति का तुलसी काव्य में प्रह्वन हुआ है, जिससे उनकी मर्यादा परक और सम्मीर भावनाओं का मध्य में भी स्वाभाविक प्रवृत्त रह सकी है। अलङ्कारों की सापेक्षता के लिए उनके काव्य में अत्रि उपमाओं का प्रह्वन हुआ है वे उनकी अभिव्यक्ति-सत्ता और अनुभूति को व्यक्त करने हैं। उन्होंने अपने सम्पूर्ण काव्यों में उपमा उत्प्रेक्षा रूपक आदि समानामुक्त अलङ्कारों का ही विशेष प्रयोग किया। यत्र-तत्र अन्य अलङ्कार भी समाविष्ट हैं किन्तु उनकी बहुलता नहीं है।

उपर्युक्त इङ्गित अलङ्कारों का बाहुल्य ही विनयप्रतिभा कीतावनी और भी इत्यपीतावनी में उपलब्ध है। वे हमारे विवेच्य काव्य हैं फलतः उनके अलङ्कारों का अभिव्यक्त कर हम तुलसी की मनोभूति से परिचित हो सकते हैं।

श्री कल्पगीतावली—श्री कृष्ण के जीवन की प्रमुख घटनाओं पर आधारित यह एक मोठि-काव्य है। यत्र-तत्र इसमें कुछेक अलङ्कारों का प्रयोग हुआ है—
 शरणासंभार अनुप्रास छेकानुप्रास

बास बोसि इहकि बिराहत चरित सति
 गोपी यत महरि मुदित मुदित यत ।
 मयूर की धनि किकिनि को बलत मुनि
 क्वि क्वि किलकिलकि बाड़े बाड़े प्राण ॥

—(पद २)

उपर्युक्त में 'बास' 'बोसि' 'गोपी' 'यत' 'महरि' 'मुदित' में 'ब' 'य' और 'म' की दो बार प्राकृति है इससे इन पंक्तियों में छेकानुप्रास है। अन्तिम पंक्ति में 'क' 'य' की बार बार प्राकृति हुई है इससे इसमें कृत्यानुप्रास की छान प्रकृष्टित है।
 कृत्यानुप्रास

साति लया सब मुबल मुदामा ।

वेति यो ब्रह्म बोसि बलबाहु ॥

—(वही—१२)

×

×

×

मोपास मोकुम झपलबी प्रिय मोप मोसुन बरनम । —(वही—२१)

× × ×

सत्य सनेह सीस सोमा सुख सब गुन छ यि अवारि ।

कहिमत काहु कूबरी हूँ को सो कुबाति बस नारि ॥ —(वही—२७)

× × ×

ये शब्द लहरी जतुर खेरी प खोजी बाल बसाकी । —(वही—४३)

उपर्युक्त पंक्तिपों में शब्दों के प्रयोग की स्थानाधिक स्रष्टा विद्यमान है ।

उनके प्रयोग से कवि की भाव-धारा में किसी प्रकार का व्यापार नहीं पड़ता है ।

अर्थात्कार उपमा पुराणोपमा

बिलकिल सखा सब मखत मोर ख्यों ।

कूबत कपि कुरंग की मैया ॥ —(वही—१)

× × ×

स्वाम कृपान समान स्यात् जट,
बिहुरत क्षिप्त क्षिप्त होत निगारे । —(वही—३६)

उपमेय सुप्तोपमा

निपडही डीइति निहुर ख्यों लकुट कर से डाक । —(वही—१४)

वाचक सुप्तोपमा

सैत मरि मरि काहु कमल मन । —(वही—१६)

उत्प्रेक्षा वस्तुत्प्रेक्षा

मंजु धंजन सटित जम कन बुबत लोचन बाक ।

स्वाम सारस मग मगहुँ ससि सबत सुधा सिगाक ॥

सुभय परबधि बुंद सुम्बर लखि अयनपो काक ।

मनहुँ मरकत मूडु सिक्कर पर लसत बिसव तुपाक ॥ —(वही—१४)

× × ×

बिषकन कुटिल धलक-धबसी-धबि ।

कहि न बाह तोमा धनुष बर ॥

बाल भुधंयिनि निकर मगहुँ मिलि ।

रही घरि रत जानि सुभाकर ॥ —(वही—२१)

रूपक

कब ते बज लबि गए कन्हूई ।

तब से बिहू रबि उचित दक रत सखि । बिहूक रूप पाई ॥

तत न तेज बलत नाहिन रय रह्यो जर नभ पर छाई ।

गिरय रूप राति सोबहि सुठि लुबि लबकी बितराई ॥

यो लोत मय कोक कोकनद भ्रम भ्रमरनि सुखवाई ।

बिगत बजोर, मन भोर, कुम्ह बुर मकस बिकस अधिकाई ॥
 तनु तड़ाय बल धारि सुजन साप्यो परि कुड़पता काई ।
 प्राण भीम बिन बीम बुकरे बस कुमह धर धाई ॥
 तुमसीबास मनोरथ मन धुय मरत अहाँ तहाँ धाई ।
 राम ह्याम सावन भावो बिनु बिय की बरनि न धाई ॥ — (बही—२६)
 कल्प के बिरह लपी सूर्य का यह सजीब सादृश्यक है ।

सोकोबित

सुनु भवा ! तेरो सो बरो याकी टेब सरन की ।
 लकुच बेचि सी काई ॥ — (बही—८)

× × ×
 स्वासि बचन सुनि कहनि जतोमति
 मतो न मूमि पर बाहर धीबो । — (बही—९)

× × ×
 चुपकि न रहत कहुती बसु बाहृत ।
 छहै कीच कोटिसा घोरे ॥ — (बही—११)

गीतावली

राम की सीताओं पर रचित तुलसीदास का यह एक मधुर गीत-काव्य है ।
 इसमें बटु पटनाओं का परिष्कार धीर मधुर तथा करन बिबरणों का ही घटन है ।
 तुमसीबास की भावुकता धीर सहृदयता का पूष रूप इस काव्य में प्रतिपन्न हो
 उठ है । अलंकारों की स्वाभाविक धीर मधुर योजना इस काव्य में प्रतिष्ठित है ।

शब्दालंकार अनुप्रास, ध्वनानुप्रास

तापस बर बेद रिण सोभा सब मूटि लिए ।
 बिन के धोर बय विगोर सोचन परि जोरु ॥
 — (गीतावली—घ० वा० १६)

धर्यानुप्रास

सवन-नवन सोहिनो सोहावनो नम घय नगर निमान ह ॥
 — (बही—बा० वा० ३)

× × ×
 सोल-मुघा के अणार नुनका के पाणवार,
 बावन न परि पार बरि बरि धाके है ।
 सोचन ललकि सामे बिन धनि धनुराम
 एक रमदब बिन लजन मभा के ह ॥ — (बही—१४)
 निरटे कस्य रतेन-कृतयन वपट कूपय कुबाल ।

पण शरित बोप शाक्य दीप दुरित पुकाल ॥

—(बही—उ० का० १)

परिसकार पूर्णोपमा

तुमसी लेक सनेह को सुमात्र बाउ मानो ।

बसबल को सो पात करै बित्त खरको ॥ —(बालकाण्ड १६)

× × ×

बिरह-मगिनि बरि रही सता क्यों कया दृष्टि-बल पनुहाबहिने ।

—(सुन्दरकाण्ड १)

राजक सुप्तोपमा

बहन इहु प्रभोक्हु लोचन स्वाम पीर सोभा लहन सरीर ।

—(वासकाण्ड १५)

स्यक

पीडिये जालन पाजने ह्यो भुलावो ।

करपद मुख बलकमत लसत ललि लोचन-जवर भुलावो ॥

बाल-बिनोद-भोद-बंजुल-मनि किलकिन-बामि कुलावो ।

तेह अनुराग-ताप गुहिये कह्यो मति-नुपममनि बसावो ॥

तुमसी मणित बनी नामिनि उर सों बहिराह कुलावो ।

बाव खरित रघुबर तेरे तेहि मिलि माइ करन चितु लावो ॥

—(बालकाण्ड १८)

सम्पूर्ण पद में सामक्यक विद्यमान है । इन पंक्तियों में तुमसी के मस्त

बुरद की निष्कामुक कोमल भावनाएँ बड़ी ही मधुर धीर लचील हैं ।

नयन-बकोरनि मुख मयंक-सुवि साबर पान करावोपी ।

—(घण्टिकाण्ड १)

मेरे नयन बकोर प्रीतिवत राकासति मुख बिलराबहिने ।

—(सुन्दरकाण्ड १०)

वत्प्रेक्षा

बालकेनि बातबस भ्रमकि भलमलत

सोभा की बीपटि मावो जप-बीप बियो है ।

—(बालकाण्ड १०)

× × ×

तितु-नुभाव सोहत बज कर बहि बदन निरुद पद पलन लाए ।

ममर्तु सुमय सुग सुर्षप जलज मरि कैत लुधा सति सों सधु बाए ॥

—(बालकाण्ड २३)

रघुबर बाल छवि कहीं बरनि ।
 सकल सुप्त की सीब कोटि मनोज्ञ सोभा हरनि ॥
 बनी मानहु चरन कमलनि प्रदमता तत्रि तरनि ।
 बहिर नूपुर किकती मग हरति बनभुमु करनि ॥
 मञ्जु भेषक मुहुस तनु धनुहरति भुवन भरनि ।
 बनु सुमग तिमार तिसु तर करयो है धरभुत करनि ॥
 भुजनि भुजग सरोज नयननि बरन बिपु जियो सरनि ।
 रहे कुहरनि सलिल मम उपमा अपर दुरि उरनि ॥
 ससत कर प्रतिबिम्ब मनि प्रापन पट्टदबनि करनि ।
 बनु बलज-सपट्ट सुट्टवि भरि भरि भरति उर धरनि ॥
 पुण्यफस धनुजबाति सुतहि बिलोकि बहारय-भरनि ।
 बतति तुमसी-दुखय प्रभु-किमकनि सलिल भरधरनि ॥

—(बालकाण्ड २०)

भगवान् राम के बाल-रूप-शैशव पर तुमसीबाल की प्रस्तुत की हुई वे उपरोधार्य बड़ी ही मनोरम और सजीव हैं। एक-एक श्लोक का सफ्त शिखर है और उसमें प्रसवामाबिकता का कहीं भी शेष मात्र नहीं है।

धयाक्रम

भुजनि भुजग सरोज नयननि बरन बिपु जियो सरनि ।
 रहे कुहरनि सलिल मम उपमा अपर दुरि उरनि ॥

—(बालकाण्ड २७)

सन्नेह

मुनि-मुत किषी भूप-वासक किषी बहू औष जग जाए ।

× × ×

किषी रवि-सुवन मरन ऋणुपति किषी हरि-हर बय बनाए ।

किषी धापने सुदत-भरतक क सुदत राबरेहि बाए ॥

—(बालकाण्ड ११)

किषी निगार-मुत्तमा-मुप्रेम विलि बने जप-बित-बिन लन ।

धनुन त्रयो किषी बटई है बिधि नग-नोगहि सुप्त बन ॥

—(धर्मोपनिषद् २४)

द्विनयप्रिया

भावना में द्विनय और धर्म का जो घट्टनम रहा है वह भाषा है उगता तुमसी

दास के इस काव्य में सफल प्रस्तुतन हुआ है। उनके समान अन्य महत् कवियों ने भी अपने धाराव्य से आत्मनिवेदन किया है। किन्तु तुमसी ने कवय में जो निष्ठा धन्यता और भक्ति है वह उनमें नहीं है। भक्ति की अभिव्यक्ति में यह काव्य तुमसी से हित्य में ही नहीं। किन्तु अक्षिप्त हिन्दी-साहित्य में धीरे पर प्रतिष्ठित है।

धर्मकारों का आभासिक ग्रहण इस काव्य में भी हुआ है। भक्ति भावना के प्रवाह के साथ जो धर्मकार धा गए हैं वे ही पदों में प्रतिष्ठित हैं धर्मों से अपनी भावना को प्रसन्न करने के लिए कवि ने कहीं भी कृत्रिम व्यापार नहीं किया है।

शरवालकार, अनुप्रास छेकानुप्रास

धरो मन हरि जू ! हठ न तजे ।

जिस दिन तब देखें तिल बहु विधि करत तुमज निज ॥ — (पद ८६)

जीव को जीवन प्राप्त को प्यारे ।

सुख को तुम राम सी बिसारो ॥ — (पद १७६)

वृत्तानुप्रास

सूर, सुभान सुपूत सुलक्षण मनियत गुन गङ्गाई ।

जिनु हरिजनन ईशरान क कल तजत नहीं करघाई ॥ — (पद १७२)

× × ×

सील-सिख, सुखर सब नामक, समस्त सरयुन-खानि ही ।

पास्यो है बालत पालहुने प्रभु प्रगत प्रभ पहिचानि ही ॥ — (पद २२३)

यमक

सिख ! सिख ! होइ प्रसन्न कह दया ।

कवनामय उवाच कीरति बलि धाई हरहु निज माया ।

'सिख' 'सिख' दोनों शब्दों का एक ही धर्म रखने से 'पुनरुक्ति प्रकाश' धर्मकार सिद्ध होता है। किन्तु 'सिख' शब्द का धर्म 'कल्याणरूप' भी होता है। फलस्वरूप प्रथम शब्द 'सिख' द्वितीय 'सिख' का निरोपण है। इस प्रकार उनके धर्मों में अन्तर है। इस सिद्धान्त से ही यह 'यमक' धर्मकार है।

पुनरुक्ति प्रकाश

पस पस के उपकार राबरे जानि नृनि नृनि नीके ।

धिष्णो न कुनितहुँ ते कठोर बित कबहुँ सिय-नीके ॥ — (पद १७१)

रसेप

तुमसी बनि ब ध्यो बहै राडि खानि सिहारे ।

यहाँ 'तुमसी' शब्द में रसेप है। इस शब्द से 'तुमसी पोषा' और 'नभि तुमसी दास' शब्दों के धर्मों की अभिव्यक्ति है। इससे 'तुमसी' में 'अरु रसेप' सिद्ध है।

धर्मासकार, उपमा

भी रामचन्द्र कपामु भजु मन हरच भवनय दावर्ष ।

नबकंज-भोजन कंज मल कर कंज पर कंजारण ॥ —(पद ४३)

यहाँ 'भोजन' 'मुल' 'कर' और 'पर' उपमेय तथा प्रत्येक का 'कंज' उपमान है। इससे इन पंक्तियों में उपमा प्रलकार है।

रूपक

बिषय-बारि मन-भोन विप्र नहीं होत कबहुँ पस एक ।

तासै सहो बिपति प्रति हारन बनमत जोनि प्रकक ॥

कषा डोरि बनसि पर चंकुस परम प्रम बहु बायो ।

एहि बिधि बधि हरहु मेरो दुल कीनुक राम तिहारो । —(पद १२)

मुससी का मन रूपी मच्छ बिषय रूपी बारि स किमी दास प्रसंग नहीं होता है। इससे उन्हें शायद दुःख की अनुभूति है। वह राम में रूपारूपी शरीर में प्रभु के चरम के बिल्लू चंकुस रानी बंदी के कटि में प्रम रूपी कोमल चारा लगाकर मन रूपी मच्छ को पकड़ने की प्रार्थना करते हैं। इन पंक्तियों में बहि न मञ्जीव साङ्गतरफ का प्रयोग किया है।

प्रतीप

भोलकंज बारिब तमास भनि इग्ह तनु ते बुनि पाई —(पद ६२)

विभावना

सुग्य भीति पर बिब रंग नहि तनु बिनु सिदा बितेरे । —(पद १११)

व्यतिरेक

सुग्य भीति पर बिब रंग नहि तनु बिनु सिदा बितेरे ॥

धोए मिट इन मरद भीति दुल पाइहि एहि तन हेरे । —(पद १११)

बिना साधन के भी कार्य हो जान के कारण प्रथम पंक्ति में विभावना है। त्रितीय पंक्ति में उस बिब के बेसिष्ट्य का उल्लेख है जो पीछे न मिटता है जिसके मरने का हईक डर है और जब उसको देगा जाना है तो दुःख होता है। इसका विपरीत साधारण बिब धोए ग मिट जाता है उनका मरने का डर नहीं होता और उसे बेचने में सुग्य मिसता है। इस प्रकार उपमेय बिब साधारण बिब की अपेक्षा बिशिष्ट है। इस भावना के कारण द्वितीय पंक्ति में व्यतिरेक प्रसंग है।

उत्प्रेसा

बनु तनदुति बंधक-दुसुम-भास कर बयन नील नूतन तमास । —(पद १४)

उत्प्रेसा

बेसो दुलो बन बग्यो धामु जमाकंत । भासो बेसन सुमति घाई रिनु घसन ॥

बनु तनदुति बंधक-दुसुम-भास । कर बयन नील नूतन तमास ॥

कल बरसि बंध कर बयन भास । सुघन कटि बेहरि पति मरसा ॥

बयन प्रनून बटु बिबिष रंग । नपर बिबिना बसरब बिरुप ॥

विब न गरीर की घोभा का उत्प्रेसा है।

छन्दों के गीति-काव्य में छन्द

विषय प्रवेश

हमारे यहाँ भावनाओं का सर्वत्र से विशेष मूल्य रहा है। इससे साहित्य के अन्तर्गत मासिक भावनाओं का सम्पूर्ण बाह्य गद्य में किया गया हो चाहे पद्य में सभी को काव्य संज्ञा दी जाती रही है। काव्य के सिद्धान्तों की दोनो पक्षों में समान प्रतिष्ठा होने पर भी मात्रा या वर्णसंख्या विराम गति या मय धारि से युक्त होने के कारण पद्य काव्य पद्य काव्य की प्रवेसा अधिक मधुर और प्रिय रहा है तथा उसकी भावनाएँ अधिक धारण्यपूर्ण और सुखादा रही हैं। पद्य का यह विधान ही छन्द का विधान है जो काव्य की ललित धीरमधुर बना देता है। इसी से पद्य काव्य के लिए छन्द आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है।

पद्य-काव्य में राग रागिनियों के कारण कुछ अक्षर्य उनके स्वरूप के अध्ययन के लिए संकीर्ण-तत्त्वों का उपयोग ही उचित समझने हैं। वे कहीं तक ठीक ना है किन्तु पूर्ण रूप से नहीं। ऐसे लोगो ने पद्य काव्य और संगीत के सामान्य तत्त्वों तथा पद्य-काव्य में संगीत और काव्य दोनों के तत्त्वों के समिश्रण के सम्बन्ध में नहीं सोचा है। उन्होंने पद्य में संकीर्ण के मय ताल स्वरों का प्रायोहावरोह ही केवल सोचा है भावनाओं और छन्दों की जो काव्य के अभिन्न रूप है उनकी उनके द्वारा प्रवेसा हो कर दी गई है।¹ सब तो यह है कि काव्य की पद्य-गीतों में समाहित संकीर्ण के तत्त्वों ने अतना साहित्य को धामारी किया है उतना ही साहित्य की भावनाओं से संकीर्ण भी धामारी हो उठा है।

1 Musical time in India more obviously than elsewhere is a development from the prosody and metres of Poetry. The insistent demands of language and idiosyncrasies of highly characteristic verse haunt the music.

—H. A. Papley—The Music of India—Tala or Time Measures

पद्य काव्य में मात्रिक धीर वर्णिक दो प्रकार के छन्द होत हैं । प्रथम प्रकार के छन्द मात्राओं पर धीर द्वितीय प्रकार के वर्णों की गणना पर आधारित रहत हैं । प्रत्येक वर्ण के उच्चारण में त्रित्वा समय लगता है उसे मात्रा कहत हैं धीर मात्रा में के साधारण पर अक्षर या वर्ण ज्ञम्ब धीर मात्रा का प्रकार है । त्रित्वा अक्षरों या वर्णों के उच्चारण में एक मात्रा का समय लगता है व ज्ञम्ब कहतान हैं जैसे म इ उ ङ ङ आदि धीर अब उनका उच्चारण में दूना समय लगता है तो वही वर्ण कहताने हैं जैसे आ ई ऊ वा या आदि । मात्रिक छन्द में इन मात्राओं की वचना ही आवश्यक है इसका विपरीत वर्णिक छन्दों में वर्णिक वर्णों की गणना अनिवार्य है । यह गणना ही वर्णों का समय ज्ञान है धीर मात्रा मध्य तथा छन्द में लघु धीर दीर्घ का इनमें विचार रहता है । इस प्रकार समय लगत लगत लगत लगत लगत लगत धीर समय मात्र वर्णिक वर्ण ज्ञान है ।

पद्य काव्य में प्रयुक्त होने वाले सम्पूर्ण छन्द उपर्युक्त विधान के प्रथम में ही पल्लित होते हैं धीर इन्हीं के स्वरूप में वर्णिक वर्णों की गणना का विधान हुआ अपने इस धीर संस्कृति को इतना ही का है ।

मात्राओं और वर्णों पर ही सम्युक्त धीर इन्हीं के लक्षण मात्रा का अस्मित्व टिका है । बीमा कोटिया के छन्द के अक्षर अक्षर विधान है त्रित्वाकी विस्मय व्याख्या की व यही आवश्यकता है धीर न आवश्यक ही । काव्य के समान सर्वांग भी मात्रा मात्रा से आवश्यक है । संगीत के स्वर अक्षरों के लघु दीर्घ धीर लघु पर आधारित है । यह संगीत की मात्रा-काव्य है अथवा दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि यह समय के मात्र-अक्षर हैं । त्रित्वा संगीत मात्रा में नाम कहत हैं या नाम के अक्षरों की इन्हीं से उत्पत्ति हुई है । नाम के निम्न द्य तरक हैं—

काम अथ त्रिधा मार्गं ज्ञानि कथा अथ मयं यति प्रस्तार धारि ।

भारतीय संगीत में १ व २ तार्यों वर्णिक हैं त्रित्वा नन्दिरेश्वर ने अक्षरिक में १२ तार्यों का उल्लेख किया है । भारतीय संगीत के अन्तर्गत वर्णिकी पद्धति में प्रथमतः मध्यमताम अथवाताम त्रिपुटताम चतुस्ताम एवताम धारि

- १ पद्यं त्रितुणरी तथैव कृतं जातिरिति द्विधा ।
कृतमक्षरमक्षरात् जातिर्मात्रा कृता मयेत् ॥ —(छन्दोमञ्जरी १—४)
- २ अक्षरसंज्ञान्वयैर्मन्दिरेभिरेणात्रि रराटै ।
समस्तं बाह्यमयं व्याप्तं त्रैलोक्यमिदं विन्दुना ॥
- ३ त्रैलोक्यं मुक्तामती परावन्मपती मती ।
व्याख्यायी उच्यते त्रितोतौ भवत्ययं यदस्त्रिधा ॥
—(कृत रत्नाकर—, १—७)
- ४ वे० बामुदेव दासजी—संगीत शास्त्र पृष्ठ २२०

का उपयोग होता है इसके साथ ही हिन्दुस्थानी पद्धति में त्रिताल १५ मात्रा एकतास १२ मात्रा चोताल १२ मात्रा आढ़ा चोताल १४ मात्रा भूपताल १ मात्रा एकतास ७ मात्रा दादरा ६ मात्रा धमार १४ मात्रा कहुरबा ४ मात्रा मूमरा १४ मात्रा बीपचवी १४ मात्रा, पीमा त्रिताल १६ मात्रा फरोदस्त १३ मात्रा मूरफरस्ता १० मात्रा गजस का ठेका १ मात्रा होरी का ठेका १४ मात्रा आदि प्रयुक्त होती हैं।

वेद्य में प्रचलित संघीत का जो कोटियों की घसग-घसग तालों का उन्मूलन किया गया है। इससे यह भ्रम हो सकता है कि कर्नाटकी और हिन्दुस्थानी पद्धति का तालों में मूलतः वैषम्य है। इस प्रकार का भ्रम प्रसन्दिग्ध रूप से निर्मूल है। इन दोनों कोटियों की तालों में पूर्ण साम्य है। इनके मध्य में जो अन्तर है वस्तुतः वह मुस्लिम संस्कृति और संघीत बना का प्रभाव है अथवा मुसलमानों के प्रभाव से पूर्व भारतीय संगीत का सम्पूर्ण विघात एक ही था। इससे उनकी तालों में अन्तर की कल्पना ही नहीं की जा सकती।^१

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर तालों की संघीत में आक्षेपकता समझी जा सकती है। इस प्रकार काम-निर्धारण और काम-मात्रा परक ताल ही संगीत के अर्थ कहे जा सकते हैं या कहे जाते हैं। जिस प्रकार अर्थ काव्य के अन्तर्गत मात्रा धारा की पंक्ति को सुस्पष्ट करते हैं उसी प्रकार संघीत में तालों राग रागिनियों का स्पष्टीकरण करती हैं। इस प्रकार ताल ही संघीत के अर्थ हैं।

उपर्युक्त अर्थ के आधार पर यह सरलता से उन्मूलन किया जा सकता है कि साहित्य के अन्तर्गत राग-रागिनियों की समय से जो मीठ या पद की परम्परा ग्रहीत हुई उसमें तालों का पूर्ण समावेश रहा। उनके रचयिता संगीत से पूर्ण विज्ञ के अर्थवाक के इस प्रकार के प्रयोग काव्य-दीक्ष से करने में समर्थ ही नहीं होत। एक बात यहाँ पर और ध्यान देने की है कि संघीत से विज्ञ इन आधुनिक कवियों ने अपनी भाषणा को पिरोने में राग रागिनी का तो पूर्ण ध्यान रखा है। किन्तु ताल के सम्बन्ध में उनका कहीं भी बुराग्रह नहीं रहा है। उनकी इस उदारतासमता से उनके राम और रागिनियाँ विविध तालों में भी गाई जा सकती हैं।

संगीत की ताल के इस ईद और गार से ही काव्य के अन्तर्गत पदों अथवा पौठों की मिति का निर्माण हुआ है। उनका निर्माण कर्ताओं ने वस्तुतः ब्रह्मे सत्साह के साथ अपने वर्तमान की इति पर मान की खेटा की है, इसमें जिस अर्थवसाय और मनोयोग की आक्षेपकता की उन्होंने उनका उपयोग किया है। इसी से संगीत

१ के सामुदेव धारणी—संघीत-शास्त्र ताल प्रकरण

२. Though the nomenclature varies, as might be expected the theory of tala (as time measure is called) in the north and south is more uniform than that of Vaga
H. A. Papley—The Music of India—Tala or Time measures Page 12.

कसा विषयक पञ्चीकारी स बहु काम्य व सोध म भावनायो क मराज मुकुणित कर सक है। निस्सम्भेह उनका यह कार्य बहुत बडा था। अपभ्रंश नाम से मकर प्रथम तथा इय क्षेत्र में कार्य करत नाम संगीतज्ञ कविधो न साहित्य को सो उठाया ही है किन्तु अपनी मनोरम भावनाओं के प्रयोग क कारण उन्हां संगीत को भी नवीन दिया बी है। सुर सुमसी मीरा तथा प्रथम राम धीर कृष्ण समुदा भक्त तथा गाररा कबीर, नामक पादू प्रादि निर्गुण भक्त कविया न साहित्य धीर समीठ दाता क्षेत्रो क लिए अधिकारपूर्वक काम किया है। इसी से साहित्य क्षेत्र म यदि उनकी मान्यता है तो संगीत में भी उनका स्थान अत्युन्नत है। प्राय भा इनके पत्र वा गीत जम-समाज क कष्टहार हैं धीर मायक तो उनका गायक अपनी गायिकी को कृताप करता ही है।

गा० सुमसीशस ने काम्य क्षेत्र म प्रकीर्त सम्पूर्ण काम्य-वीनियों म अपनी रचनाओं को प्रस्तुत किया है। इन सभी क माध्यम से बहु राम-ध्यान जन-धर्म तक पहुँचान में सफल हुए थे धीर प्राय भी उनका काम्य प्रास्तिक हिन्दू-समाज का प्रति प्रति करता है। पद-वीनी म उन्हां कृष्णगीतावली शीतावली धीर विनयपत्रिका तीन काम्य-ग्रन्थ रहे हैं। इनम प्रयुक्त काम्य सामग्री स विगत अध्याया म परिचित हो लिया गया है इसके इस सम्बन्ध म यहाँ कुछ भी कहना प्रभावजन्य है।

सुमसी ने अपने इन ताका पद-काम्यों की भावनाओं को सुधास्य धीर सुस्पष्ट करने के लिए इन २५ राग रागणियों की प्राण प्रतिष्ठा की है—

प्रासावरी कान्हूरु कदारा गीरी वनाधी नट बिसावम मसार, ललित सोरठ, कल्याण चंचरी जतधी टोड़ो भैरव माठ रामकसी बसन्त बिनाम वारय सुहो दण्डक, बिहाग भैरवी सुहा बिसावम प्रादि।

स्वर प्रधान होत क कारण संगीत क अन्तगत मात्रिक द्दम वा ही मान्यता है। पत्रों में माषाओं के प्रयोग के कारण संगीत की ताग उनम उचित रूप म अनुगुण रंगी है। त्रिक द्दमों म माषाओं की उपादा रहत क कारण संगीत की ताग न अनुपातन म मान क लिए गायक वा कही द्रत प्रपदा कही विनम्यित गति का प्राथम्य लेता पड़ेगा। अन्वधा बहु त्रिक द्दम क माषा ध्याय न कर न मा धीर गात के समकम रहने का प्रयोजन उन रहत करना पड़ेगा।

गा सुमसीशस ने मात्रिक धीर त्रिक दाता प्रकार क द्दम वा अपने पद कवियों का प्राधार बनाया है। बिबचन धीर सप्तारण की मुद्रिया न लिए इस रचना पर मैं एत-रूप राग क अन्तगत प्रयुक्त द्दम पर विचार करेगा।

१ प्रासावरी

कृष्णगीतावली—को पत्र सप्त ३ म ४ म ३० धीर १७ माषाओं की टक देकर ३० माषाओं का वचन की मात्रा २ धीर ६ पत्र म १६ माषाओं का टक देकर २८ माषाओं का मार द्दम धीर ६० तथा ६१ पत्र म २ धीर १६ माषाओं

की टेक लेकर १२ मात्राओं का रूप सर्वेया प्रयुक्त है।

गीतावली—के बालकाण्ड के प्रथम पद में १६ मात्रा की टेक से सार प्रयोध्याकाण्ड के २६वें पद में १६ मात्रा की टेक से २७ मात्रा का 'सरसी' और उत्तरकाण्ड का २०वाँ पद २६ मात्रा का बिष्णु पद है। बालकाण्ड के पद से १२ से १५ तक और संकाकाण्ड के १७ तथा १८ पदों में मिश्रित मात्रा : छन्दों का प्रयोग है। जिनकी मात्राओं में व्यतिरिक्त है।

गीतावली में उपर्युक्त मात्रिक छन्दों के अतिरिक्त प्रयोध्याकाण्ड के ३० ३१ सुन्दरकाण्ड के २३ २४ २५ पदों में भगवद्गी (मनहर) और सुन्दरकाण्ड के २३ तथा २७ पदों में १६+१४=३० वदों की 'अनियमित षण्डक' है।

बिजयप्रक्रिया—के पद ६२ और १८३ में १६ मात्रा की टेक से सार छन्द पद १८६ में १४ मात्रा की टेक से बिष्णु पद और पद १८७ में १७ मात्रा की टेक से २६ मात्रा के मरहटा छन्द का प्रयोग है। पद १८३ और १८४ में 'अनियमित षण्डक' और १८८ में १६ मात्रा की टेक से सरसी छन्द प्रयुक्त है।

२ काण्ड

दृष्टगोतावली—के पद २३ और ३० में रूपसर्वेया तथा पद ३१ में सार छन्द है तीनों पदों में १६ मात्रा की टेक है।

गीतावली—वासकाण्ड के पद २६ ३२ सुन्दरकाण्ड का पद १२ संकाकाण्ड का पद २ ३ ४ १६ उत्तरकाण्ड का पद १७ सभी में रूपसर्वेया छन्द और बालकाण्ड के ३३, ३६, ३ १०६, ११० में 'सार' छन्द है। इन सभी पदों में अग्रिकाण्ड १६ मात्रा की ही टेक है। बालकाण्ड के ११० और संकाकाण्ड के १०४ संकाकाण्ड के पद में १७ मात्रा बालकाण्ड के १०६ वें पद में १६ और संकाकाण्ड पद ३ में १८ मात्रा की टेक है। बालकाण्ड का पद ७५ और १०३ विषम मात्राओं का मिश्रित छन्द है।

बिजयप्रक्रिया—पद २४ २०४ में १६ मात्रा की टेक और पद २०५ और २०६ में वमस १७ और १७ मात्रा की टेक से रूपसर्वेया छन्द का प्रयोग किया गया। पद २०७ मात्रिक मिश्रित छन्द है।

३ मट

दृष्टगोतावली—पद २० में २३ मात्रा की टेक से ४० मात्रा का 'बिजया' छन्द है।

गीतावली—बालकाण्ड के पद ४० ४१ में २४ मात्रा का 'शोभन' पद ४६ में सरसी पद ५० में सार छन्द है इनमें वमस १३, १४ १५ १६ मात्राओं की टेक है। इस राम के अन्तर्गत इसी काण्ड में पद ४२ ५१ ५२ विषम मात्राओं के

मिथित छन्द है।

बिनपत्रिका—पद १२५ १२६ और १६ में भी दोमल छन्द का प्रयोग हुआ है।

४ ससित

दृष्यगीतावली—पद २ में 'अनियमित दृष्टक बिनिक छन्द का प्रयोग है।

गीतावली—बालकाण्ड के पद ३३ और उत्तरकाण्ड के पद ११ में 'एन पना लयी' और पद ४ ४४ में घनासारी (मनहरण) और पद ३४ (बालकाण्ड) में रूपसबैया प्रयुक्त है। उत्तरकाण्ड का पद २ की मात्राया म बड़ा व्यतिथम है।

बिनपत्रिका—पद ७६ और ७७ में क्रमशः घनासारी (मनहरण) और रूपपनासारी बिनिक छन्द है। पद ७५ मिथित मात्राया का छन्द है।

५ विमास

गीतावली—बालकाण्ड के पद ३६ म ३२ मात्रा का रूपसबैया छन्द है। पद संख्या ३८ और ३९ म ४६ मात्रा का चकरी छन्द है। इन सभी पदों में पूर्ण पक्ति की ही टेक है। पद ३७ में मात्राया का बड़ा ही व्यतिथम है।

बिनपत्रिका—पद ७४ में ४४ मात्रा का बिनप छन्द है इसमें पूर्ण पक्ति की ही टेक है।

६ सारंग

गीतावली—बालकाण्ड क पद ४७ में बिलु पद ४८ म १ मात्रा का बीषाया पद ५२ ६५ ६८ में मार और पद ७८ ७९ ८० में तपा प्रयोध्याकाण्ड के पद ४२ और ४६ में रूपसबैया है। इनमें अविवाज में १६ मात्रा की टेक है।

बिनपत्रिका—पद ३ १५३, १५६ १५७ पदों में २६ मात्रा का मरुहा छन्द है। इनमें १५५ पद में १६ मात्रा की टेक है और रोप में १५ मात्रा की।

७ सूहो

गीतावली—बालकाण्ड-पद ५७ ५९ म २६ मात्रा का बिलु पद छन्द है। बालकाण्ड का पद ५८ और धरम्यकाण्ड म पद १७ मिथित मात्राया क छन्द है। उत्तरकाण्ड का पद १९ म दोहा छन्द का प्रयोग हुआ है।

८ सूहो बिसाबल

बिनपत्रिका—पद १३६ में १६ मात्रा की बीगाई और २८ मात्रा की हुरि भीठिका संयुक्त प्रयोग है। पद १३५ में मात्राओं की बड़ी बिपमता है।

९ राग सौरट

दृष्यगीतावली—पद ३३ ३४ और ३५ मर्था म 'मार छन्द है इनमें १८ १६ और १९ मात्राओं की टेक है।

गीतावली—बालकाण्ड क पद ८ ९, ९९—१०२ अथाध्याकाण्ड क पद १ ४ ११—१६, ८२—८७ धरम्यकाण्ड क पद ६—८ ११—१६ मनाकाण्ड क पद

६, ७, १६ में सार छन्द है। इनमें १६ मात्रा की टेकों का ही ध्वनिदास में प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं १७ १८ १९ मात्राओं की टेके भी पाई हैं। अयोध्याकाण्ड के पद १७ १८ सुन्दरकाण्ड के पद ३ ४ ५ और उत्तरकाण्ड के पद १ २४—२६ ३१—३७ में २३ मात्रा का सौमन छन्द प्रयोग में आया है। इनमें २३ मात्रा की पूर्ण पंक्ति की ही टेक है। अरण्यकाण्ड के पद ३ में भरहुटा और उत्तरकाण्ड के पद १० में विष्णु वर छन्द है। इनमें क्रमशः १८ और १६ मात्रा की टेक है।

अयोध्याकाण्ड के पद १२ की मात्राओं में विषमता है।

बिनयपत्रिका—पद १६२—१७२ में 'सार' और १७७ में बीपाई छन्द है।

इनमें सभी में १६ मात्रा की ही टेक है। पद १७६ और १ ८ विषम मात्राओं में विधित छन्द है।

१० राग माक

गीतावली—बामकाण्ड के पद ८६ ९ लकाकाण्ड के पद १ ६ में हरियर (सरसी) छन्द है। लकाकाण्ड की पद ८ सार छन्द है। सुन्दरकाण्ड में पद १६, १४ १५ और २२ सभी में विषम मात्राओं की पंक्तियाँ होने से छन्द का निश्चय कठिन है।

बिनयपत्रिका—पद १५, ३७ मात्रा का सरसी छन्द है इसमें २० मात्रा की टेक है।

११ राग मलार

हृदयगीतावली—पद १८ में १६ मात्रा की टेक है और सरसी छन्द है। पद १२, ३६—४६ सभी में सार छन्द है। इनमें १६ १७ १८ १९, २१ मात्राओं की टेके प्रयुक्त की गई हैं।

१. गीतावली—बामकाण्ड के पद ६२, ६३ ६४ में 'सार' उत्तरकाण्ड के पद १८ में ३० मात्रा का बीबीता छन्द आया है। अयोध्याकाण्ड का पद ५ और अरण्यकाण्ड का पद १ की पंक्तियाँ विषम मात्राओं से परिपूर्ण हैं।

बिनयपत्रिका—पद १६१ में २० मात्रा की टेक है और पद में 'सार' छन्द प्रयुक्त है।

१२ राग भैरवी

बिनयपत्रिका—पद १६८—१७२ में सार छन्द है और इनमें १६६ और २०० संख्या में १८ मात्रा की टेक है और छेप सभी में १६ मात्राओं की टेक है। पद २ ३ में बोहा छन्द का प्रयोग हुआ है।

१३ राग भैरव

गीतावली—अयोध्याकाण्ड के पद २७ २८ में अनियमित षड्भक्त बनिफ छन्द है और उत्तरकाण्ड के १२, १४ १५ पदों में सार छन्द है सभी पूर्ण पंक्ति की टेक है।

बिन्दयपत्रिका—पद २२ ६५ में 'भार छन्द ही पूर्ण मात्रा की टेक है। पं १६—७१ ७३ में प्रतिबन्धित षष्ठक बहिक छन्द है। पं ७२ मी २० वर्ण व बहिक छन्द है।

१४ षष्ठक

बिन्दयपत्रिका—में पद १७ षष्ठक है। इस पद की मात्राया म बड़ा व्यति भव है। यह मंगीत का राग न होकर काव्य का बहिक वृत्त है।

१५ राग वसन्त

गीतावली—घयोप्याकांड व पद ४८ ६६ मुग्गवाड व पं १६ उलगवाड व पद २२ और बिन्दयपत्रिका के पद १३ १४ ३ ६ मभी म बीरार्द्र छन्द का प्रयोग है।

१६ राग रामकली

गीतावली—घयोप्याकांड व पद ८ ८१ में २१ मात्रा का छन्द छन्द पं ५२ में २२ मात्रा की सावनी है। उलगवाड व पद म ३ मात्रा का सावनी है।

बिन्दयपत्रिका—पद ६ ७ म बीरार्द्र पं ६ म १६ मात्रा की टक व माय सार छन्द पद १६ १७ म ४४ मात्रा का बिन्दय छन्द पं ४८ म ४ मात्रा का बिन्दय छन्द पद ४६ ४७ ४८ ५०—६१ १०६ म ३७ मात्रा का करणा छन्द है।

१७ राग विहाग

बिन्दयपत्रिका—पद १ ७-११ में २२ मात्रा का विहाग छन्द है पद १११ में १२४ तक १६ मात्रा की टक व माय 'सार है पद १ ५ म २० मात्रा का स्वस्ती छन्द प्रयुक्त हुआ है पद १२६ में १०८ की बीरार्द्र बिन्दयान्त है। पद १२६—१३४ बिभिन्न मात्राओं के छन्द हैं। पद १२६ से १३४ तक क छन्दो म मात्राया की विषमता के कारण व विभिन्न छन्द हैं।

१८ राग सखरी

गीतावली व घयोप्याकांड में पद ४३ और ४४ म ६४ मात्रा का बिन्दय छन्द प्रयुक्त हुआ है।

१९ राग घनाभी

करणागातावली—पं १६ २७ में 'गर्भी ६ म सार ३१ में क्वमर्षया छन्द है इनम पं २६ म १८ मात्रा की टक है और 'ग्य गर्भी म १६ मात्रा की टक ही प्रयुक्त है। पद २८ और वा बहिकया म मात्राया का विषम मय्या है।

गीतावली—बामरांड-पद १६ में १६ मात्रा का टक के माय 'भार मुग्ग वाड-पद ४५ म 'भरसा और ४६ म बिन्दु पद है इनम जमग १७ १८ मात्रा का टक है मवाकाड व पद २१ म क्वमर्षया है इनम १६ मात्रा की टक है।

बिन्दयपत्रिका—पं ४ में 'क्वमर्षया पद ३ ८३, ८७ ८८ ९० ९१—९६, १०१—१०५ में परिप्लवण १६ या १८ टक टकर सार छन्द का प्रयोग किया

गया है। पर ८३, ८४, ४१ में २३ मात्रा का 'विष्णुपद' छन्द है, जिसमें १४ मात्रा की टेक है। पर १०० म २७ मात्रा का सरसी छन्द है जिसमें १३ मात्रा की टेक है। पर ११ १२ २५—२६, ३८—४ सभी में जो स्तोत्र हैं ३७ मात्रा के करवा छन्द का प्रयोग है।

२० राग विलासत

अथज्योतावली—पर १ में २२ मात्रा की टेक के साथ २२ मात्रा का कुण्डल पर २१ २ म १६ मात्रा की टेक के साथ 'रूपसर्वैया' पर २४ में ३ मात्रा का 'सावनी' छन्द है। पर ३६ ३७ और ३८ की मात्राएँ विषम हैं।

ज्योतावली—वासकांड—पर १ और ७ में 'जीबोला' पर २४ १ में जीपाई वासकांड के पर १०८ अयोध्याकांड के पर ५ ६ १८ सुन्दरकांड के पर ३० और ३१ उत्तरकांड के पर ११ में रूपसर्वैया छन्द वासकांड के पर १७ में सार अयोध्याकांड के पर ६ में ३ मात्रा का छटक। पर ८ में ३ मात्रा की सावनी पर ११ में १८ मात्रा की टेक से ३२ मात्रा का बुभिस पर १३ में १३ मात्रा की टेक से ३१ मात्रा का नीर छन्द पर १६ और १७ म ४६ मात्रा के जखरी छन्द का प्रयोग है। वासकांड का पर ३३ अयोध्याकांड पर ७ १ १२ विषम मात्राया से युक्त है।

विषमपत्रिका—पर १ २ १२६ १२७ और १२८ में जीपाई, पर ३ १३६ १४ में रूपसर्वैया पर २१ १११—१२४ १४३ १४४ १४५ में सार छन्द पर १०७—११० में २२ मात्रा का विषम पर ३२—३५ में २३ मात्रा का हीरक पर ११३, १४ मात्रा का स्वस्वयी छन्द है। पर १३७ १३८ और १४१ में जीबोला पर १४४ में 'सरसी' पर १४७—१४९ में २२ या २३ मात्राओं का 'विषम छन्द' पर १४९ में १, मात्रा का नीर छन्द और १४४ पर में २ मात्रा की टेक के साथ 'सावनी' छन्द का प्रयोग है।

पर १२६—१३४ और १७६—१८२ परों में पठित्यों की मात्राएँ विषम हैं।

२१ राग टोड़ी

ज्योतावली—वासकांड के पर ४६ म जीबोला पर ४६ ६३ और ६८ में सार पर ११ १४ १६, १७ ३६—७४ ८४—८८ १२ १४—१६ में जनासटी (मनहरण) ब्रजिक छन्द और लंकाकांड के पर २३ में सावनी छन्द का प्रयोग हो रहा है।

विषमपत्रिका—पर ७८—८ में २२ मात्राओं का कुण्डल पर ८१ ८२ म 'सार' छन्द का प्रयोग है।

२२ राग जैतन्धी

ज्योतावली—वासकांड पर २ और २८ म 'सरसी' वासकांड पर ४ लंकाकांड के पर २२ म 'सार' सुन्दरकांड के पर ६ म रूपसर्वैया छन्द है। वासकांड के पर ६ सुन्दरकांड के पर १७ ४७ और उत्तरकांड के पर १० में पठित्यों की

मात्राएँ विषम हैं।

बिनवपत्रिका—पद १३ ८३ घोर ८३ म ३० मात्रा की 'भावनी छन्द का प्रयोग है इसमें अमरा १६ १८ १८ मात्राओं की टेक है।

२३ राग केवारा

कल्पागीतावली—पद १४ में १४ मात्रा की टेक के साथ घोर पद १२ घोर १५ में १६ मात्रा की टेक के साथ २४ मात्रा का रूपमाना छन्द है। पद १६ घोर १७ में यनादारी (ममहरण) बगिक छन्द है। पद ७ ८ घोर १३ की पक्षिया की रक्ष्या में व्यतिक्रम है।

गीतावली—बालकाड पद में दाहा घोर हरिगीतिका बाना छन्द प्रयुक्त है। पद १८ १९ ८१ ७३—७६, ८८ ८९ मुम्बरकाड पद १ ४४ लकाकाड म पद ५, १० १२ १३ सभी म सार' छन्द बालकाड पद २ १८ ६७ म रूपमाना बालकाड पद ७० में चौबाना बालकाड पद १०४ १०४ १ ६ विष्किष्पाकाड १ मुम्बरकाड १० ११ १६, २० २१ ४६ लकाकाड पद १३ सभी म रूपसर्वया बालकाड पद १०७ संकाकाड के पद १५ म सावनी मुम्बरकाड के पद २, ६ संका काड के पद १४ उत्तरकाड के पद ९ २३ में घोमन छन्द मुम्बरकाड के पद ३८ ३९ ४१ ४२ सभी में १६ मात्रा का मच्छटा छन्द है। उपर्युक्त मात्रिक छन्दों के प्रतिरिक्त इस राग म बगिक छन्द भी है बालकाड के पद १ ११ अयोध्याकाड के २६ ३२—३४ में यनादारी (ममहरण) बालकाड के पद ८२ में ३२ बर्षों की रूप यनादारी बालकाड पद ८३ अयोध्याकाड ३७ मुम्बरकाड पद ४८ में धनियमित वन्दक है। बालकाड—पद २० २१ अयोध्याकाड—पद १६, २४ २५ ३८ ३९, ४० ६६—७२ अरष्यकाड पद १ मुम्बरकाड ७ ८ १० २०—३७ ४० संका काड पद ११ सभी पदों की पक्षिया की मात्राएँ विषम हैं।

बिनवपत्रिका—पद ४४ में ३७ मात्रा का करणा छन्द है। पद ४१ ४२ ४३ २१२ २१३ में मात्राओं का व्यतिक्रम है।

२४ राग घोरी

कल्पागीतावली—पद ६—१३ १६, २६—२९ म ३२ मात्रा का रूपमवया घोर पद २३ में हरिगीतिका छन्द है।

गीतावली—बालकाड—पद ४६ अयोध्याकाड ६१—६८ ८६ म 'सार' बालकाड पद ४७ में विष्णु पद' अयोध्याकाड पद ३ ३५, ३६ लकाकाड पद २० में 'रूपसर्वया अयोध्याकाड पद ३६, ८३ म गरमी उत्तरकाड पद ११ म 'दाहा' अरष्यकाड पद ६ म ३० बर्षों का धनियमित वन्दक छन्द है। अयोध्याकाड पद २, ४७ ६० अरष्यकाड पद १ में मात्राओं का व्यतिक्रम है।

बिनवपत्रिका—पद ३१ म 'मच्छटा' पद ३६ म चौलाई पद ४३ म तांग' पद १६१ १६२ में 'दाहा' पद १६४ १६५ म 'सार' घोर पद १६६, १६७ में

प्रतिबन्धित दण्डक बर्णिक छन्द है। पर १९० और १९३ की पंक्तियों में व्यतिक्रम है।

२५ राम कल्याण

गीतावली—बामकांड पर २५ उत्तरकांड पर ३ व ७ में ६ मात्रा का चञ्चरी पर ५१ में 'कपसर्वैया' उत्तरकांड पर ३६ में ४० मात्रा का विजया छन्द है। प्रयोध्याकांड-पद १८ और परम्पराकांड के पद ० तथा ४ में पंक्तियों की मात्राओं में व्यतिक्रम है।

चित्रवर्णिका—पर २० २३३ २३४ २३६ में सरसी पर २०६—२११ में विजया' पर २१४ २१५ १६ में 'सोमन पर २१८ में रूपमाता पर २२६ में विष्णुपर पर २१० ३२ २३४—२३८ में 'सार' पर २४—२४१ में कप-सर्वैया छन्द है। उपर्युक्त मानिक छन्दों के धर्तारिकृत पर २४६—२५७ में प्रतिबन्धित दण्डक और पर २४८—२६४ में जलाक्षरी (मनहरण) बर्णिक छन्द भी है। पर २१६ २१७ और २२ में २५ मात्रा का मुस्ताबन्धि और २४ मात्रा के सोमन छन्द के साब-साब प्रयुक्त किया गया है। पर २२२—२२५ २२०—२२६ २३१ एवं २६५—२०६ में पंक्तियों में विषम मात्राओं के कारण छन्द का निरूपण कठिन है।

निरुद्ध—तुमसी ने विभिन्न रागों में जो-जो काव्यमय छन्द प्रयोग किए हैं उनका विवरण उपर्युक्त पंक्तियों में प्रस्तुत किया जा चुका है। इस विवेचन के माध्यम से हम तुमसी के प्रत्येक पर में प्रयोज्य प्रयुक्त छन्द को जान सकते हैं। इस स्थान पर यह कह देना अनुचित न होया कि इन तीनों काव्यों में ऐसे बहुत से पर हैं जिनकी पंक्तियों की मात्राओं में विषमता है और देखते करते पर भी उनके छन्द का निरूपण न हो सका। ऐसे परों में येवता है किन्तु पर की प्रत्येक पंक्ति में जब मात्राओं की विषम संख्या है तब छन्द का निर्णय असम्भव है। काव्य विषयक यह कठिनाई भीत की पैमता में किसी प्रकार का व्यवधान प्रस्तुत नहीं करती। क्योंकि तुमसी के परों का पाठक अपनी द्रुत या विमम्बित गति से मात्राओं की प्रमाणाता की खाई को पाट कर से अज्ञात है और आठ को ठसका अनुमान नही हो पाता।

छन्द विषयक उपर्युक्त विवेचन में हमने यह देखा है कि तुमसीदास ने मानिक और बर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का प्रयोग किया है। मानिक छन्दों में कपसर्वैया रूपमाता हरिपीठिका सरसी विजया कुण्डल नाबनी सार विष्णुपर, श्रीवाला चञ्चरी सोमन भरहटा बोहा विजय शीपार, दुग्धित और, मुस्ताबन्धि करपा औरक चित्रनाल स्वकपी प्रिया घादि और बर्णिक छन्दों में जलाक्षरी प्रतिबन्धित दण्डक रूप जलाक्षरी घादि का प्रयोग हुआ है।

तुलसीदास के पदों में संगीत का शास्त्रीय स्वरूप

विषय प्रवेश

मुसलमानों के घातदूरे के मध्य में जब भारतीय संस्कृति घोर दर्शन के माध्यम से जन जीवन और धर्म के घातदूरों के संरक्षण की समस्या उठी तब मातृक मूल कवियों ने अपने पदा के लिए संगीत की प्रथम शैली को स्वीकार किया। यह शैली परम्परागत थी और बीचकाल से संगीत के विद्युत् तत्वों को अपने में समिष्ट किए थी। उसी को तुलसी ने भी अपने पदों के लिए अपनाया था जिसका सम्यक विवेचन गीति-शैली के अन्तर्गत किया जा चुका है।

इस स्वरूप पर शीघ्र शैली के निरूपित तन्मय का विरलेपन करके यह देखा है कि उसमें शास्त्रीय तत्वों का परिचय नहीं है? शास्त्रीय संज्ञा में राग रागिनियों के लक्षण मान-बान और रस का सर्वत्र ध्यान रखा जाता है। मातृक अपने ध्यान में इन तत्वों का कभी प्रतिबन्ध नहीं करता। फलतः हम भी इन्हीं तत्वों को लेकर तुलसी के पद साहित्य में समीत के शास्त्रीय स्वरूप का निरूपण करेंगे।

उपरोक्त इतिहास विवेचन में प्रविष्ट होने से पूर्व हम तन्मय का उन्मूलक प्रश्न है कि गो० तुलसीदास या अन्य किसी भक्त कवि ने अपने पदों के मातृक का कोई लक्षण या किसी प्रकार का स्वरूप नहीं किया है। फलतः गान-तत्वों को ध्यान में रखकर यह नहीं कहा जा सकता कि अपने पदों में उपरोक्त तत्वों का उन्मूलन नहीं तब उपयोग किया है? इस कठिनाई के कारण आज का कोई भी शास्त्रीय संगीत का गायक या ध्याता-धर विवेक में उभरा जा सके भी रचना चाहे रस सतता है किन्तु उन शास्त्रीय स्वरूप का ध्यान रचना धरत ही अनिवाय होना प्रत्येक पद रचयिता के मातृक प्रयोग हान की पूर्ण सम्भावना है।

प्राचीन रागों के गायन में ध्याता-धर का भी प्रमुख स्थान रहा है। अपनी बाणी

१ महासमग्रताराणा ग्यामाग्यामशोक्तया ।

ध्यातास्य बह्वस्य पादशोडशयोत्तपि ॥

प्रभियविद्यन दुष्ठा न रागानाम उच्यते ॥

ये विभिन्न स्वरों का ध्वनियों को प्रकट करता हुआ नायक बेम राग का स्वरूप प्रकट कर देता है और गीत की धम बैठ लेने पर वह राग-भाग का सूत्रपात करता है। उसको राग-भाग में 'ठास' का ध्यान रखना भी आवश्यक होता है क्योंकि उनके आधार पर ही राग-मति ठीक रखी जा सकती है।

यद्यपि राग के उपयुक्त वर्णों का तुमसी के पर-काव्य में संकेत नहीं है किन्तु उन्होंने उनका ध्यान ध्यात्म रखा होगा ध्यात्मवा धास्त्रीय संगीत का स्वरूप प्रस्तुत करने में उन्हें कठिनाई होती थी और वह धपने उद्भव में सफल नहीं हो पाते।

पर धासोध्य विषय के आधार पर तुमसी के परों में धास्त्रीय संगीत के स्वरूप का ध्यात्मन करना आवश्यक है।

१ राग के सक्षय

गो० तुमसीबास ने धपने ठीनों मीत काव्यों में धासाबरी कान्हूरा देबाए पीरी बनायी नट विभावज ममार सतिठ सोरठ कम्पाज बंधरी वैठभी टोही पैरब माक रामकनी बसठ विभास सारंग सूहो दम्डक विहाग भैरवी, सूहो विभावज धादि रागो का उपयोग किया है। इन सभी रागों में 'दम्डक' संगीत धास्त्र में ध्यस्य नहीं मिसा है। तुमसीबास जी की विनयपत्रिका के पर ३० में 'दम्डक' का उल्लेख है। उसका केवल एक ही पर है। उसको 'राग दम्डक' न मिसा होने के कारण यह स्पष्ट है कि यह कोई राग न होकर काव्य का बर्णिक छन्द है। धेप सभी रागों के लक्षण संगीत धास्त्री के रीति-धर्मों में उपलब्ध हैं। महाकवि तुमसी ने धपने काव्यों के लिए यह लक्षण उन्हीं से लिए और पञ्चोचित रूप से उनको काव्य में प्रयोग कर बर्णिक की रसवती बारा को प्रवाहित किया।

तुमसीबास द्वारा प्रयुक्त उपयुक्त सम्पूर्ण रागों के धास्त्रीय स्वरूपों का विवेकन ध्यात्मक होते हुए भी इत स्वर पर कुछ रागों को ही लेकर महाकवि की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में एक धारणा प्रदान करने का प्रयत्न किया गया है।

१ राग धासाबरी

रायिध्यासाबरीयं नुपुनयनिभित्तीकैवर्धमेव ।
 संभनारोहणे वा कसु गनिरहिता धाबरोहे तु पुर्वा ॥
 बाधी स्वाङ्गेवतोऽर्वा नुतिबभिरतरो मरबबंवाचभीधो ।
 निव्यवतान प्रतारमुपयुयस्यसौवीयते संयवे वा ॥

—(राय कन्नाडुभाङ्कर)

इत राग में बारी—ब सम्बारी—य स्वर—य न, नि कौयस धारोह में बर्णित स्वर—य नि धारोह—धा ए, म प ब धा प्रबरोह—धा निप, य मध, रेवा। बाधि—धीदुध सम्पूर्ण।

२ राग भरव

रागादिभै रवाद्यो मुहुश्चम मपरतावनस्तोऽनिद्वय ।
 वाद्यस्मिन् यैवतो सावृषभ इह तु तंवादिषपेटेभिर्गीत ॥
 धारोहेऽपयंभयं वचिद्वयि भुक्ति प्राहुरेके विद्वत्स्य ।
 प्रातःकालेषु नित्यं जगति कुमतिभि सुस्वर गीयताऽमी ॥

—(राग कल्पद्रु मांकुर)

वादी—ध संवादी—रे, स्वर—रे व कोमल धौर दोष सभी स्वर पुण्ड
 धारोह—सा रे ग म प ध नि सा धररोह—मानिष प म ग रेमा जाति—
 सम्पूर्ण मान-समय—प्रात ।

३ राग भैरव

प्राभात्यस्या रिगमपनय कोमला मोऽनवादी ।
 स संवादी क्वाचिद्वयि यगो वाहि संवादिभौ व ॥
 प्रसर्गोऽो मुद्विरतरा स्वरियो सबगम्या ।
 सम्पूर्णा साजनयति सुर्ष भरवो रागनीयम् ॥

—(राग कल्पद्रु मांकुर)

वादी—म संवादी—स स्वर—म पुण्ड शप सभी स्वर कोमल धारोह—
 सा रेगम पध निमा धररोह—सा नि प प मय रेमा जाति—सम्पूर्ण मान
 समय—प्रात ।

४ राग विसाखल

रापो वैसावनीति प्रपिन इह तवा माग्यतीऽस्वरेषु ।
 पडङ्ग्यासप्रहोऽर्षं प्रवति नुरचिरो यैवतांशो गर्वभी ॥
 कम्पाणां रघातो विसनति नित्यपोषक्या वात्र नित्यं ।
 प्रातर्गोऽो-भिगोतो रमयति हृदयं शुष्कनामैव पुष ॥

—(राग कल्पद्रु मांकुर)

वादी—ध संवादी—म स्वर—मभी पुण्ड धारोह—मा रे य म प ध नि मा
 धररोह—सा नि प प म ग रे म जाति—सम्पूर्ण मान-समय—प्रात ।

राग माह

शङ्करनमुद्बुनो गाधारोऽप्राह्वं वृत् ।
 धारोहे त्वनयो तयो माधारव्यवितोहितः ॥
 अष्टस्वरापानसं वृत्त. पुन स्वरवाजसयन ।
 धारोऽनित्यवावायो नारर्षाऽहितो मुट्ट ॥

—(संगीत पारिभाष ४७४ ४७२)

वादी—ग संवादी—नि स्वर—म कामल तीव्र वदित स्वर—धारोह मे
 रेप धारोह—प नि मा ग मे प नि मा धररोह—नि रे नि व प मे ग रे वा

जाति—श्रीरक्ष सम्पूर्ण गान-समय—दिन का अन्तिम प्रहर ।

उपर्युक्त सप्तमों के आधार पर कृष्णगीतावली गीतावली और विनयवक्रिका के पद जो इन रागों के अन्तर्गत आते हैं सरलता से गाए जा सकते हैं । प्रबन्ध रागों के सम्बन्ध में भी यह उचित बात सिद्ध होता है । इस प्रकार यह सरलता से शोभा-समझ का उदाहरण है कि मो० तुलसीदास ने अपने समय तक प्रचलित रागों के षट्को को ही अपनी पद्यावली के लिए चुना । दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि उनके पद-काव्यों में स्वराङ्गन न होने पर भी संगीत के रीति-अर्थों में प्रतिपादित सप्तमों के आधार पर उनके पद गाए जा सकते हैं और अद्यापि संगीत शारदा गाते हैं । फलतः उनके पदों में दार्शनिक संगीत का स्वल्प समाहित है जो अपने स्वल्प में संगीत को और मान-बारा में काव्य को चिर-सामग्री किए हैं ।

२ राम-नाम-काव्य

रागों के गान-काव्य की पद्धति प्राचीन काल से भारतीय संगीत में स्वीकृत और सर्वमान्य रही है । स्वीकृत विद्वान्त के विरुद्ध आधाररूप से राग की प्राप्ति प्रतिष्ठा नहीं हो सकती । फलतः सामाजिक का अपेक्षित रजत नहीं हो पाता । रागों के समय का निर्धारण बस्तुतः प्रकृति और वातावरण के आधार पर ही निश्चित हुआ है क्योंकि सही के अनुकूल राग के स्वर तथा ध्रुव संग रहते हैं ।^१

गान-काव्य के सम्बन्ध में मैथिल कवि शोचन ने अपनी 'गद्य उदरंघिणी' में निम्न विद्वान्त दिए हैं—

तुम्बुङ्क भाटके

धी पञ्चमी समारम्भ यावत्स्याच्छ्रयणं हृते ।
 नावडतन्त रागास्य वातमुक्तमनीषिणि ॥
 इगोत्तानं तभारम्भ यावद्दामिहोत्तमम् ।
 मया तावद्दुर्लभ्य मालवी सा ममोहरा ॥
 प्रातययस्तु देशासो ललितः पदसजरी ।
 विनासो धरणी शैव कामोदो मण्डक्यपि ॥
 एका कराडी मप्याह्यै तावद्दुर्लभं मालवी ।
 मारुतशैव विधेयम् मय येस्तु सर्वदा ॥
 हिण्डीतयव बसन्तयव वसन्त रक्षितवःशकः ।

१ एवं नामनिर्दिष्टं ज्ञात्वा यायेद्यः स सुखी भवेत् ।

उवाचसा प्रणामेन रागासो हिंसकी भवेत् ॥

मः पुनोति सः शारिणी धानुर्नरपति सर्वदा ॥

गाढी मोडो बराडो अ गज्जरी बेगिरेबब ॥
 पूर्वाहणे ॥ गमेतवां निविद्धमिति तद्विद्व ।
 नैऋतराहुणे वातव्यौ भैरवो सन्निशौ कर्वाचित् ॥^१

उपर्युक्त पंक्तियों में श्री पंचमी से हरिदय की सन्देश प्रापाड दुहन तक का 'बसन्त राम' धनन्तर इन्द्रोरथान एक पर्व में दुर्गमहोरमक तक 'मासयी राग-गान का विधान इमित है । देवास सनिन पटमंजरी बिभास भैरवी कामोद मण्डक प्रादि राम प्राप्त बेसा बराडी मय्याहू बेसा कर्वाट मातब नाट सायं बेसा तथा उप राम सभी समय येय है । हिडोल बसन्त प्रादि राम बसन्त ऋतु मे ही घानग्यनायन है । नाट मोड बराडो गुर्जरी प्रादि रागों का पूर्वाह्न म घोर उमी प्रकार भैरवी तथा सन्निश की कभी भी धपराहू म न गाना चाहिण् । प्राये जनकर सोचन कवि मे भी 'राजाज्ञा से राम-गान में काल बोध नही सगठा है' कहा है ।^२

उपर्युक्त छे प्रागे सोचन कवि मे गान-गान के सम्बन्ध मे बिरोध रामा को लेकर घोर भी कहा है—

ब्राह्ममहत्ते गातव्यो भैरवो राम सत्तम ।
 प्रबन्धोदयबेलायां गया रामदरी पन ॥
 प्रातर्बेसावली नेः पूर्वाहणे सुमनोर्ध्वि अ ।
 पूर्वाहणे याति गायेत टोडीमतिमनोरमा ॥
 संवराडो बराडो अ गया गायकनायकै ।
 बिबा तुनीमप्रहरे गातव्यातावरी जन ॥
 काठी मय्याहू मय्येणु शारंगोर्ध्वि अ घोऽते ।
 धपराहूण नयोगवस्तदुगायन मातबन ॥
 धनराहू जाबसाते अ सायाहू सति यातिबा ।
 सायंजातस्तु कामोद गौरी रागस्य भूतने ॥
 निधामुले तु कस्याम वेदारस्तु महानिधि ।
 तृतीय प्रहरे राजाबडानोर्ध्वि अ घोऽते ॥
 द्वितीयप्रहरे राजी कर्वाट सर्वसम्पन ।
 धपराहू अर्धे सोरापुम्प्राते संघेर्ध्वि अ ॥
 पञ्चमो वैऋतराहरे महारा परिधीयते ।^३

उपर्युक्त पंक्तियों में ब्रह्ममुहूर्त से लेकर रावि बना तक भैरव रामदरी

१ वैदिक कवि सोचन—राम तरंगिणी

—पृष्ठ १३१ १३२ (दरभद्रो रात्र प्रग)

२ 'रंघमूषी मृगाज्ञाया जाननेयो न विद्व'—

—(राग तरंगिणी)

३ सोचन रामतरंगिणी पृष्ठ १३२

विशाल सुमग टोपी संगर बगड़ी भासावरी काफ़ी चारों गट मासक घीरी
 कस्याम केबाध कर्नाट धारठ, मस्तार धादि रागों का मान-समय कवि द्वारा प्रदान
 किया गया है। विविष्ट राग के लिए विविष्ट समय के संकेत का कारण स्वयं सोचन
 कवि ने गन्तरविनी में नहीं दिया है। इससे प्रतीत होता है कि कवि ने विविधता में
 भी राग का दाम्बुतिक सू-काण्ड रखा है। वेप वेप के समान प्रचलित परिपाटी को
 निषिद्ध कर दिया।

उपर्युक्त तथ्यों के धारार पर यही कहा जा सकता है कि रागों के पान के
 सम्बन्ध में संकीर्ण धारार के तथ्यों में कोई विधान निर्धारित नहीं हुआ था। अथवा
 उसका उल्लेख प्रबन्ध में नहीं। इस सम्बन्ध में परम्परा-मान ही प्रचलन रही।^१
 समस्तक्य राम-काल निर्धारण के सम्बन्ध में श्रीभातकण्ठे जी ने कुछ सिद्धान्त बनाए,
 जो धारार के संगीत के विद्वानों को भी मान्य हैं। इस सम्बन्ध में यह कहना अनुचित
 न होगा कि श्रीभातकण्ठे जी ने एतत्सम्बन्धी परम्परागत तथ्यों की ज़ेदा नहीं की
 है। इसी से धारारिक मपीत के राम-काल की कर्तीटी का बहुत कुछ समान उनमें
 सिद्धान्तों में मिल जाता है। रामबहादुर बिष्णु स्वयं (Theory of India
 music) मुद्रित प्रकाश (हिन्दुस्तानी संगीत प्रवेशिका भाग २) एच ए० पीपसे
 (The music of India) जी एच यूनाने (Hindustani Music)
 एलेन जनीलर (Northern Indian Music) भोम्कारनाथ ठाकुर (संगीत
 ज्ञानि भाग ३) ने रामकाल के सम्बन्ध में श्रीभातकण्ठे जी के सिद्धान्तों का उल्लेख
 किया है।

इस स्वर पर भातकण्ठे जी के तथ्यों का उल्लेख परभावक है क्योंकि उन्हीं
 के प्रथम से दो तुलसीदास की पेश-प्रसामी में प्रयुक्त राम-काल के सम्बन्ध में कोई
 निर्देश किया जा सकता।

वे राम को पूर्वाय (म से सतक) में बायीं स्वर रखते हैं न पूर्व राग कहे जाते
 हैं और उनका गान काम मध्याह्न से मध्य रात्रि तक घीर जिन रागों के उत्तराह्न
 (प से सतक) में बायीं स्वर होते हैं वे उत्तर राग कहे जाते हैं। इनका पान काल

१ प्राचीन काल से गान-विद्या के समय निर्धारित होते आए हैं। बह्म-याया
 विक के विद्येय प्रबन्धों पर लामगात करने वाले सामक भी प्राठ सतक
 मध्याह्न सतक घीर राग कथन—ऐसे तीन काल विभागी में विन्म-विन्म
 प्रकार का गान मात के। जब से राम-परम्परा का धारण हुआ है तब
 से किस समय पर कौन-सा राग गाया बजाया जाय इतका उल्लेख तथ्यों
 में पाया जाता है। समय की सर्वाथा निर्धारित करने में किसी विधाय
 नियम का परिपालन होता था या नहीं यह सन्देह का विषय है।

मध्य रात्रि से लेकर मध्याह्न तक होता है। इनके प्रतिरिक्त प्रातः सायं यात्रि निषिद्ध बेसा के रागों को सन्धिप्रकाश राग कहा जाता है इनमें प्रातः सन्धिप्रकाश रागों में शब्द 'म' और सायं के सन्धिप्रकाश रागों में तीव्र 'म' रहता है। उपर्युक्त के प्रतिरिक्त श्री भातखण्डे ने इन सिद्धांतों का भी उल्लेख किया है—

१ प्रबोधदय और सूर्यास्त बेसा के सन्धिप्रकाश रागों में 'रि' 'य' कोमल रहते हैं।

२ मध्याह्न और मध्यरात्रि के रागों में 'य' और 'नि' कोमल रहते हैं।

३ त्रिज रागों में रि ग ध नि शब्द रहते हैं व सन्धिप्रकाश व रागों के धन पार दिन या रात्रि व प्रथम प्रहर के राग हैं।

४ दिन या रात्रि के मन्दिम प्रहर के रागों में 'स' 'म' 'य' का प्रापह रहता है।

धाम बेसा के सन्धिप्रकाश रागों में 'ग' 'नि' और प्रातःकालीन सन्धिप्रकाश रागों में 'रि' 'य' का होना आवश्यक ही नहीं समझाया है।^१

उपर्युक्त सिद्धांतों तथा संगीत-परम्पराओं के माध्यम से श्री० तुमसीदास के रागों का जन्म काल निर्धारण होता है—

१ उत्तर राग—(घ) प्रथम प्रहर—(६ बजे से ९ बजे तक प्रातः) बिभास भैरव भासाबरी

(पा) द्वितीय प्रहर (९ बजे से १२ बजे तक प्रातः) तोड़ी भैरवी सारंग सूर्यो बिभास सूर्यो बिभासम।

२ गृह राग—(घ) दिन तृतीय प्रहर (१२ बजे से ३ बजे तक अपराह्न) धमाभी

(पा) रात्रि प्रथम प्रहर (६ बजे से ९ बजे तक) कल्याण बिबारा

(इ) रात्रि द्वितीय प्रहर (९ बजे से १२ बजे तक) नट सोरठ बिहाग कागहव

३ सन्धिप्रकाश राग (घ) (प्रातः बेसा) सतिव रामकरी

(पा) (सम्या बेसा) माक गौरी जैतभी

४ ऋतु राग—(घ) बसन्त ऋतु, बसन्त बंधरी

(पा) वर्षा ऋतु, मसहार

तुमसी के तीना गीत बाध्यों के उपर्युक्त राग परम्परागत वास्तवीय धापार पर ही निर्मित हैं। इनमें उनमें गान गान का कोई व्यतिरिक्त प्रस्तुत नहीं होता है।

३ राग रस

राग गगिनी में रस-तत्त्व भी शास्त्रीय संगीत का एक अभिन्न अंग है। काव्य में समान लगीत में भी रसों की माप्यता है। यदि प्रथम क प्रस्तरीय रस का मान्यता मान-गत है तो द्वितीय में स्वर-गन। संगीत में स्वरों की तीव्रता और कीममता के प्रतिरिक्त रस-तत्त्व महार भेद अन्वार-भेद लज भेद गमके तात् प्रादि पर भी निर्भर करता है।

मरत में अपने 'नाट्य-शास्त्र' में शृंगार, हास्य कदम रीत्र कीर, समानक शीरुप्त धदभुत प्रादि प्राठ रसों को अपने अस्नेक का विषय बनाया था। धनस्तर मनीषियो ने 'शास्त्र' नामक एक मनीन रस निरूपित किया। इस समय काव्य में बात्मस्य गाम के एक रसक रस की भी माप्यता हो उठी है।

जैसा कहा जा चुका है कि काव्य का रस भाव के धाभित है। भाव की माप्यता संगीत में भी है। इसी में भावनुकूल रान में स्वर-निर्धारण होता है। स्वरों के माप्यम से रस-निष्पत्ति क सम्भव में प्राचार्य मरत का निम्न निष्ठाप्त मपीत में माप्य रहा है—

बाधप्रयोगविहितान् स्वरांश्चैव निबोधत् ।
 हास्वशृङ्गारयो कायो स्वरो मध्यमश्चमो ॥
 पञ्चमो च कर्तव्यो बीररीत्राङ्गुतेष्वच ॥
 पाण्चारश्च निपाद्यश्च कर्तव्यो कुरुषे रसे ।
 शैवतश्च प्रयोज्यतव्यां बीमत्सं सममानके ॥

—(मा धा० २६ १६ १८)

उपर्यक्त क प्राचार पर धम्य स्वरो के भाव मध्यम और पचम स्वरों पर विशेष बल हास्य और शृंगार में पञ्च और ऋषम पर बीर रीत्र तथा धदभुत रस में पाण्चार और निपाद्य पर कुरुष रस में और शैवत पर बीमत्स और समानक रस में करना चाहिये।

ठीक उपर्यक्त क समान रस निष्ठाप्त यद्दोबल पण्डित ने अपने संगीत पारिषाठ' में विवेचित किया है।

स जो हास्ये च शृङ्गारे स्वरो स्मरतां तथा चमो ।
 यो बीमत्से तथा देव्ये भवानक रसे भवेत् ॥
 रसे शृङ्गारके रि स्माषाण्चारो हास्यको पुन ।
 नीलो बीरेङ्गुने रोत्रे हास्ये तीव्रतरा स्वरा ॥
 तात्तररेषुपि शृङ्गारे रसे मध्यम ईरित ।
 तीव्रतमश्च शृङ्गारे मनु जो हास्यके रसे ॥
 एवं रस विभाव' स्यात्तरीवु सप्तनु श्रुषम् ॥

—(६७-६७)

रागों के विविध स्वरों पर ही रागा के पूर्व स्वरूप^१ के विवरण का संगीत माध्य में उपलब्ध है। रागा का मूल स्वरूप संगीत के स्म-निरूपण का प्रथम माध्यन रहा है। संगीत कला की इस विशिष्ट प्रकृति का त्याग मुसलमानों में पूरक तक प्रकाशित है। अन्तर्गत भारतीय संघोत कला में मुसलमानों प्रभाव के कारण बर्तन गहरता के प्रथम होत ही इस प्रकृति का उन्मूलन हो उठा। दूसरे दृष्टि में यह भी कहा जा सकता है कि मुसलमानों में पूति भाव का प्रभाव या स्मय प्रथा के शास्त्रीय संगीत के इस तत्त्व का कम उपयुक्त समझत। फिर शास्त्रीय शक्ति उनका साथ या इसमें उन्मूलन उसकी उपस्था करने में ही प्रथम यह का सुगमन समझत। अन्तर्गत संगीत का माधना प्रथम यह प्रथम विशिष्टता ही प्रथम। हिन्दू संघोतकों में भी मुसलमानों प्रभाव के समझ प्रथम शक्ति में इसका संरक्षण की कोई बुद्धता नहीं दिखलाई।

इस प्रकार नव रागों का स्वरूप कायम के प्रथम संगीत कला में भी सम्मान प्राप्त रहा है। इतर भी भातर्क्य जो न शृंगार कल्प प्रीय शान्त इन तीनों रागों की सभी रागों को समाविष्ट कर दिया है। मुसलमानों तक तक यह है कि नव रागों की प्रथम स्थान रहा है और शक्ति कलाप्रदा में उन्हीं के विभाव अनुभाव शक्ति प्रीय स्वर्गीय भाव मिलत रहे है। उन्हीं नव रागों की स्थापना ही संगीत में भी रही है किन्तु यही यह उन्मूलन कर बना अनुचित न हागा कि संगीत में स्म निरूपित प्रथम कलाओं की प्रथमता कुछ पुष्कर है। जब तक संगीत में स्म के लिए कबस स्वर की प्रयोग करता है और उन्हीं की साधना करता है 'स्म' तत्त्व प्राप्त कर मना शक्ति है किन्तु काय का साधारण प्रथम पर भावनाएँ उसकी महाप्रथम बन जानी है। फिर

१. प्रथम स्म-निरूपण-शुभाश्री भालम्बन लोभिन शान्ति स्मि । शिवाय हस्तो श्रुतमपिन्द्र म श्रुतौ यः शक्तिता मुनाश्रु ।

—(शास्त्रनिरूपणम् पृष्ठ १३)

प्रा-हेम प्रभाया सुरभूयगा न शीतं शिवाय न तुगा शान्तौ शान्ते ममीने नमनीय कष्टा मानोप्रता शमदती मनयम् । —(संगीत श्रवण २६)

इ-शुभार कुशोऽग्निदेहयष्टि-शान्तीश्रुतपूर शिवाय शान्ति ।

शिवायशान्ता हरिण शान्त शीवायगा शान्ति शान्तिश्रुतम् ॥

—(संगीत श्रवण २७)

श्रुतपान शान्तिश्रुतक शान्ते सुरभूयगा मम श्रुत । प्रथम श्रुत शिवाय शान्त शान्ति शान्ति शान्ति शान्ति ।

—(शास्त्रनिरूपणम् पृष्ठ १४)

के साहित्यों में हुआ। उनके साहित्यिकों में भी मनीष प्रयोग करके भाषी साहित्य के लिए सम्पन्न पृष्ठ-भूमि छोड़ी। ये परम्पराएँ और प्रयोग बिना से लेकर धार्मिक बेसी भाषाओं के पृष्ठ-भूमि में पढ़ने वाले अग्रजों के साहित्य में समाहित हैं इस सम्पूर्ण साहित्य का उत्सव और विचारण इस प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में जहाँ पद्य-परम्परा का घोष किया गया है प्रस्तुत है।

हिन्दी मध्यकाल की परम्पराएँ

हिन्दी के मध्यकाल की परम्पराएँ उसक 'भाषि' या 'बीरगाथाकाव्य' के काव्य और उसकी स्वयं की परम्पराएँ 'अपभ्रंश काव्य' पर आधारित हैं। इस तथ्य से मध्यकाल की परम्पराएँ अपभ्रंश की उपलब्ध परम्पराओं की श्रेणी हैं। यहाँ मध्यकाल की परम्पराओं में गो तुलसीदास के पद्य-काव्य का हम निधारण कर उससे पूर्व अपभ्रंश काव्य की परम्पराओं का विचार कर लेना उचित है। क्योंकि वे ही बीरगाथाकाव्य के काव्य में होती हुई 'मध्यकाल' के काव्य में प्रतिष्ठित हो उठी हैं।

अपभ्रंश काव्य के अनुकरण पर हिन्दी में केवल काव्य ही नहीं लिख गए किन्तु उनकी विविध परम्पराओं को भी ग्रहण किया गया। बेनिया की बरिष्ठ-शैली में हिन्दी के 'रामचरित मानस' बीरचरित केव चरित सुखाना चरित मुजान चरित प्रादि लिखे गए। उनमें जैन चरित काव्यों की सम्पूर्ण परम्पराएँ समाहित मिलेंगी। जैन प्रभावपूर्ण काव्य-सुवसन चरित से सुफियों के प्रेम प्रधान काव्यों को प्रेरणाएँ मिली हैं। हिन्दी के बीरगाथाकाव्य के हमीरचरित कुम्भाचरित परमान रासो पृष्णीराज रासो प्रादि अपभ्रंश के रासक काव्यों की परम्परा में लिख गए हैं किन्तु उनमें रासो के चरित बर्णित होने के कारण वे भी चरित-काव्य की श्रेणी में ही रखे जा सकते हैं। अन्तर है तो इतना ही है कि जैन-चरितों में शान्त रस का प्रस्फुटन है और अधिक विकास में वे प्राप्यारिभक हैं जब कि इन रासो ग्रन्थों में बीरत्व और नायक नायिका के अयोग-विमोघ शृंगार के विविध विषय हैं। इससे इनमें अपभ्रंश की बीर और शृंगार परम्परा का पालन मानना ही उचित है। बज्रयात्री सम्प्रदाय की विराय प्रदान भावनाएँ नाथ सम्प्रदाय और धनन्तर कबीर की ज्ञानाभ्यासी भाषा में प्रस्फुटित हो उठी हैं। अर्थात् 'नाथ' और 'ज्ञानाभ्यासी सम्प्रदायों की मूल भावनाएँ सिद्ध सम्प्रदाय के समान बीरगाव्य प्रधान ही हैं किन्तु योरजनाथ ने उसे योग परक और कबीर ने सामयिक हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समिश्रण को ध्यान में रख कर उसे भक्ति समन्वित अर्थ परक बनाया।

अपभ्रंश का अस्तुर्द्विमान विरचित 'सन्देश रासक' एक विरह प्रधान लोक गाथा है इसकी परम्परा में ही हिन्दी में 'बीरसन्देश रासो' और 'कोला याक रासो' विरह-नायक उपलब्ध हैं।

संयुक्त काव्यों की परम्पराओं के अनुकरण में अपभ्रंश काव्यों में अंगलाकरण

नरस्वती बन्धना लज्जित प्रमत्ता घमच्छतता निम्ना बन्धि का घातम निबन्धन घाति
मियत है। संस्कृत के प्रबन्ध काव्यो के समान इनमें भी ऊपा सुबोधय माप्या काव्या-
व्य ऋगु, रात्रि पवन उद्याम लरी बरत बुद्ध नाभर घादि क बर्धन विविध किए
गए हैं। इन सभी में संस्कृत काव्यो के विधान का ही अनुकरण है। किन्तु फिर भी
बन्धि की घपनी भावनाओं के समावेश में मौल्यता प्रस्तुत हो गई है। ये परम्पराएँ
घाते चमकर हिन्दी-महाकाव्यो में रुढ़ि हो गई है और पृथ्वीराज रामो पद्मावत राम
चरितमालम रामचरितका घाति सभी में उनका सम्यक वासन हुआ है।

संस्कृत की रत्नावली नाटिका एवं प्राकृत की 'भीलावती कथा वानो की
नादिकाएँ सिंहल की थीं। भक्तिमयल कहा 'करकण्डचरित' 'विबरतचरित' घाति
के घपप्रसंग काव्यो में समुद्र यात्राया का बयन है जिसमें नायका में सिंहलद्वीप की
मुन्दरिपो प्राप्त की है। करकण्ड चरित में विवरतयान और बुध-धरवध में प्रेम जायुन
होता है। सुलबाली बचालक रुद्रि मुबधु की बामबधला और बाब की बारम्बरी में
बहीत है। उपर्युक्त मध्ययुग परम्पराएँ जायमो के पद्यावत में घरीत हुई हैं।

वैतन साहित्य में मध्ययुग के परमचरित एव 'हरिबंदा पुराय हिन्दी की राम
घोर कृष्ण काव्य घागघा को बचा-कुल की प्रथमा प्रदान करत है। इनमें भक्ति
भावना भी बहु प्रवृत्ति घपय महा है। आ भक्ति-नाय में 'सुरमापर' और 'रामचरित
मानस' में उपलब्ध है। किन्तु कथा का एक विविध स्वरूप तो उनमें समाहित
है ही।

वैतनो के परमचरित भक्तिमयल कहा घदि प्रबन्ध-काव्य मणिया एव
'करकण्ड चरित' पोरभ्यो में विभक्त है। मणियाँ संस्कृत के प्रबन्ध-काव्यो की सग
क्यति का अनुकरण है। ये मणियाँ कडबका में विभक्त है। जिसमें एक एक का
निर्वाह होता है और पला रगने की परिपाटी है। अन्धम काव्य की कडबक और
पला की परम्परा हिन्दी में बून बच में घपनाई गई है। सुनी बन्धि कृतुबन मयन
जायमी वेगलकी घादि और राम-काव्य में तुलसी में बीवाँ और बीजा के पला को
स्वीकार किया है। जायमी के कडबक में मात घपतिव्या और तुलसी में घाड घपति
मियाँ के उपरान्त दोहा का पला दिया है। सुरमुख्य ने घपना 'घनुगय बीसुनी में
दोहा के पला पर गारठा का पला दिया है।

विद्व-साहित्य में विद्व मला में अन्ध घातिक बर्धारा में विभिन्न गद-गयनिया
की प्रतिष्ठित विद्या है। ये पीत-पीली नाय और 'शामाघरी मयप्रशाया में भी उन्ध
की घर्त। हममें वैदिकी घपना और हिन्दी की पर-परम्पराएँ उन्ध-मिनी रही है। इन
प्रकार मध्ययुग का अनुभव केर काव्य विद्व का पीत-पीली का ही घामाटी है।

'गान्धोदिना' के अन्ध में कृष्ण-मीनाया के उाक गथा के परमोदा स्वरूप
की प्रतिष्ठा कर 'मापुव भाव का लच प्रथम बीज-बयन किया है। जिसमें रिदावनि
और बन्धोनाम मयान रूप में घभिरेणित हुए है। घाट बचकर लभी कृष्णायन मयनादा

में इसी माधुर्यभाव की मात्मता हुई है। यहाँ तक तुलसीदास के अनन्तर रामीया बना म भी उसकी प्रतिष्ठा हो उठी है।

अपभ्रंश काव्यो में पादाकुसुम कविस्त परम्पटिका हरिपीठ भुजंग प्रपाठ ताटक क्षुप्य रीता शोहा सौरठा धादि कृत्वा का प्रयोग मिलता है। हिन्दी के प्राचि काव्य (बीरमाहाकाव्य) और मध्यकाल में इन सभी छन्दों का ग्रहण हुआ है। पनासरी और सबैबा अपभ्रंश में अक्षर्य उपसर्ग नहीं हैं। ये हिन्दी की अपनी रचनाएँ हैं।

उपयुक्त विवेचन में हमने यह देखा है कि अपभ्रंश काव्य में काव्य वस्तु, मात्र काव्य रूप एक हीनी के सम्मन्ध में विविध प्रयोग किए गए थे जो हिन्दी की बीरमाहा काव्य और मध्य काल के लिए परम्परा प्रस्तुत करने में समर्थ हुए। यहीं से अभिप्रेरित हो पद-सीली की कविशिक्षा परम्परा चल उठी है जो 'ताम सम्प्रदाय' ज्ञानाश्रमी छासा एवं 'कृष्णावत सम्प्रदाय' में पम्नवित और पुष्ट हुई, इसी को तुलसी ने श्री कृष्णगीतावली कीतावली और दिनमपविका नाम काव्यों के लिए चुना था। उनका वस्तुतः यह बहुत बड़ा काम था कि विविध शैलियाँ की उन्होंने काव्यों के लिए ग्रहण कर राष्ट्र ममात्र परिवार और व्यक्ति कोन्समन्ध का समर सम्बेस प्रदान किया। उनल पूर्व कबीर ने बाहा और पद सीली की अपने काव्यों के लिए चुना था जिस पर म्परा का पामन ज्ञानाश्रमी छासा के समग्र कवियों ने किया है। कृष्णावत सम्प्रदायों में तो माधुर्य भाव के पोषण के लिए केवल पद-सीली का ही ग्रहण हुआ है। इस प्रकार हम यह देखते हैं कि मध्यकाल के कवियों ने एक या दो काव्य-शैलियाँ ही ग्रहण की हैं जब कि तुलसी ने बाहा चौपाई, पनासरी छन्द्य बरबं सोहर और पद धादि विविध शैलियों को चुना और सफल रचनाएँ प्रस्तुत की यह तुलसी जैसे प्रतिभा सम्पन्न महाकवि से ही सम्भव था अन्य से नहीं।

यह तुलसी के पद्य काव्यो की वस्तु मात्र पयता प्राचि क. सम्बन्ध में विचार कर यह देखना है कि मध्यकाल के काव्यों में उनकी क्या स्थिति है। इससे तुलसी के कवि-हृदय की उपसर्ग को समझने में सुविधा होगी।

तुलसी-पद्य-साहित्य की वस्तु

श्री कृष्णगीतावली—तुलसी प्रास्तिक भावना के समुत्त व। इसी से राम के प्रथम प्रकल हंठ हुए भी देवताओं और प्रकतारों के प्रति उनकी हृदय की निष्ठा और पुष्प भावनाएँ व्यक्त हुई हैं। राम के समान कृष्ण में भी उनकी व्यतुरक्ति थी इसका प्रतीक ही उनकी 'श्री कृष्णगीतावली है।

तुलसी ने पूर्व कृष्ण परक पद-साहित्य पर्याप्त मात्रा में निमित्त हुआ चुका था जिसका विविध कृष्णावत सम्प्रदाय अपने अपने प्यारे माधव के कौतल-याग में उपयोग करते थे—नाथ ही कृष्ण जल-कवि कृष्ण की नीनाभा का पाप कर तम परम्परा

को चिरजीव भी बनाए हुए व तुलसी को यह सब ज्ञात रहा होगा। उनक जीवन
काल में यह धारणा है कि उन्होंने 'मकरमास' के रक्षितता आभावासे स मेट करने व
मिसे ब्रह्म-पात्रा की भी त्रिमम उन्हें हृष्य के प्रेम-भाषुरी से सिकत ब्रह्म मूमि हेमन
की मिसी। उनका मानस हृष्य की सीसा-भाषुरी का गान करने के लिए मसर
उठा फनरबकूप उन्होंने उनक मम्बम्ब के स्पुट पर रब डाम और उनका मपर ही

तुलसी में धरन इन काव्य में हृष्य काव्य को परम्परा का अनुकरण किया है
यह सत्य है किन्तु उनसे माप यह कहा जाता है कि इस काव्य पर पूरा काव्य का
प्रभाव है यह पूर्ण धरत्य है। इसमें तुलसी की प्रतिभा और बलिबत पर स्पष्ट धारणे
है। उपर्युक्त तथ्य के समथन में मूरसागर' के व पर जो म्पा-क-त्या भी हृष्यगीता
बनी में उपनम्ब है प्रस्तुत किए जात है। इस परसता स का' भी उपयुक्त का
विश्वास करने लगता है आ धरत्य और धरिबबस्त है।

यदि यह मान भी लिया जा कि तुलसी ने मूरसागर का अनुकरण किया
है तो यह प्रश्न उठता है कि व कथितम स्थल हो एक म क्या है? थी हृष्यगीताबसी
के मयूप पर धरबा धरिबग पर एक स क्या तही है? क्या उम्हा स्थला के लिए
तुलसी की प्रतिभा मुप-न और कबि हृष्य मित्थिय हा गया का त्रिषक लिए औरकमें
करने का उन्हें प्रभूत हाता पडा। फिर तुलसी के गीताबसी और 'बिनयपत्रिका' धर्य
भी दो गीत-नाम्न है व ता उनरी प्रतिभा प्रमाथित करत है। गीताबसी में भी लेम
कुछ स्थल है आ मूरसागर में उद्भूत है इनमें यदि उन भी मन्दिष्य मान लिया जाए
ता 'बिनयपत्रिका' ही उनक गेय काव्य के बसिष्य को प्रमाथित करन में पर्याप्त है
उसमें तुलसी की प्रतिभा का पूर्ण परिषय परिसणित हाता है। फिर त्रिम महाकवि के
मानस से 'रामचरित मानस' को धरर बापों निमूत हुई हो बहु भला दूसरे काव्य को
धरनाकर धरता धाधायन क्या धियमाने मया। इनमें थी हृष्यगीताबसी गीताबसी
के के स्वयं शेषकरारा हाता मयाधियट किए हुए शेषक है। उपर्युक्त विवेचन व
समर्थन में यह तथ्य और स्या आ मरता है कि यदि तुलसी ने मूरसागर का अनुकरण
किया हाता तो वह राधा को छोड़ नहीं पाए। मूरसागर में राधा हृष्य का धरिष्य
हाता बलित हुई है वनन उपरा काई तो रूप थी हृष्यगीताबसी में हाता। मब
तो यह है कि तत्कालीन हृष्य-नाम्न में धरिष्यरित होकर उम्हाने इन काव्य व लिए
'मागजन' का धरना उपर्युक्त बनाया मूरसागर का हृष्यकन मय्यसाय के किरी
धर्य काव्य को तरी।

थी हृष्यगीताबसी में आ कुल है वे सब भाग्यत व अनुकरण में है। तन्मा
ने उनको ब/। में लिया और धरन स्पुट पर रब डाम। मूर के 'मूरसागर' व मया
उद्भूत काव्य व हाता बिची हृष्यकन मय्यसाय का पात्र ना बनता ही नहीं का
पतत भावना व वला म बर उलटकर का कात वम्बु तुलसी की पर स्पष्ट

और स्वतन्त्र रचना है। हिन्दी के किन्हीं कृष्ण-काव्य का अनुकरण और अनुसरण नहीं।

कृष्ण के प्रति यमारा के वात्सल्य और गोपिमा के प्रेम से भावबल से प्रेरित माधुर्य तथा को तुलसी ने ज्यों-का-त्यों अपना काव्य में उतार दिया है। स्वयं स्वयं पर उनकी सीला पाल के नाम बहु उत्कृष्ट भक्तभाव रूप के प्रति अपनी मूर्ति धीरे धीरे व्यक्त करत भले हैं। राम के प्रति प्रयुक्त उनकी बृत्ति यहाँ भी चरित्रार्थ हो उठी है। यह तुलसी कृष्ण की व्यापकता और सम्बन्ध की सबसे भावना है।

गीत बहो—तुलसी से पूर्व रामचरित-काव्य की कोई भी परम्परा हिन्दी में विद्यमान नहीं है। विशिष्टाद्वैती सम्प्रदाय में परम्परागत भी धीरे धीरे ताराशम की उपासना के स्थान पर अब रामानन्द द्वारा सीला राम की प्रतिष्ठा कर दी गई तब सर्वप्रथम तुलसी ने ही रामचरित पाल कर उस भावना को व्यावहारिकता प्रदान की। इस कारण मध्यकाल में राम काव्य की परम्परा के धीरे-धीरे का अर्थ उन्हीं को है।

रामचरित की प्रवृत्त-भावना की योजना उन्हीं सर्वप्रथम कवितावली में फिर गीतावली में और अन्त में 'रामचरित मानस' में की है। यह तो यह है कि प्रथम बोधा काव्यो में उस सम्बन्ध के अपने प्रयोगों को वह लीन रहे व अन्तर उसका उल्लेख स्वयं को ही बहु मानस में समाहित करने में सफल हुए। भारतीय जीवन के विविध क्षेत्रों में निहित वैषम्यो की बहु मानस में जितना समन्वित कर दिखाना सके है उतना उक्त दोनों रामचरित काव्यो में नहीं। उसमें राम-कथा और उसका साथ महाकाव्य की परम्पराओं का अन्त पामन बिल रूप में है वह अपूर्ण है। यह तो यह है कि मानस जिस रूप से अपने चरितनायक को प्रस्तुत करता है वैसे रूप में तो अन्तर के राम-काव्यो में है और न हिन्दी के अन्य किसी काव्य में।

गीतावली स्पृष्ट-काव्य रहा है। इसका मध्य ९ १६२८ वि० में और मानस का निर्माण ९ १६३१ वि० में हुआ है।^१ दोनों काव्यो के निर्माण में ३ वर्ष का अन्तर अन्तर है किन्तु इसमें यह नहीं सोचा जा सकता है कि दोनों की विचार भूमि अलग-अलग रही होगी। गीतावली में श्रीकृष्ण का घर माँगना राम रावण युद्ध आदि प्रमुख बृत्तों के इतिहास मान है और इसका साथ राम का बाल-वर्धन जीवन्त्या का वात्सल्य उदारकाव्य में राम का धर्मोप्यायुरी के पाम धीरे अन्त के समारोहों में सहयोग देना आदि विषय वर्णन हैं। उपर्युक्त के अतिरिक्त गीतावली

१ अध्याय १ में रचनाकाल का विवरण देखिए।

मन्त्र गारुड भी इकट्ठीसा करके कहा हरि पद परि गोमा।

गीतो भीमवार मधुबाना पदमपुरी बहु चरित प्रकाशा ॥

धीर मानस की मूम कथा एक ही है। मानस की तुलना म योगावली में आ परिवर्तन धीर परिवर्तन हैं वह बहुत कुछ उमरक मय काव्य होने के कारण है। यह सब कहन का मेरा ध्यान यह है कि भले ही योगावली के कृता में कुछ विविधताएँ हों किन्तु उनकी विचार भूमि एक ही रही है। इससे समर्थन में यह भी सोचने की बात है कि मानस की रचना के लिए उद्देश्य क्यों उन्की रूपरेखा सोची होनी यदि यह भी मरय न हो तो यह मानना पड़ेगा कि उन्की रचना के लिए उन्हें अपने पिछले अध्ययन का गहनयोग प्रबन्ध मना पड़ा है। आ होता काव्या के लिए उपयुगी रहा है। 'मानस का कस्तु के लिए तुलसी ने बाणबाण्ड में कहा है—

नामापुराणनिगमायम सम्मत्तं यद्—

शमायन निगदितं कविचिदपतोऽपि ।

स्वात्म मुखाय तुभ्यं (रघुनाथनाया

भावाभिवाचयति संक्रममातनोति ।

यस कथन में यह मित्र है कि मानस की रचना के लिए वह विविध पुराण नियम धीर धागम का सम्मेलन रूप आ काव्यीति शमायन में बर्णित है उसके तथा व्यय स्वभा के धामारी है। यह मध्य आ मानस के माय मरय है वही कविनाथनी धीर योगावली के माय भी। इस प्रकार योगावली की कस्तु स्पष्ट रूप में काव्यीति शमायन की धामारी है। मानस में काव्यीति शमायन का कृती है किन्तु अपने स्वयं तथा व्यय समन्वयधारी विचारों के लिए वह अध्यात्म शमायन महाराजायम विद्यपुत्राय भवतुर्गीता भागवत इतुमस टक बाणकव नैति धारि के धामारी है।

योगावली धीर 'मानस' होने की काव्य कस्तु देखने में यह स्पष्ट है कि मानस के समान योगावली में दर्शन तथा विविध विद्याया का प्रतिपादन नहीं है। उन्की मापी मापी कथा है जिसको तुलसी ने अपने भावक हृदय की मधुरिमा में मिला करने का किया है। इस प्रकार योगावली की कस्तु स्पष्ट रूप में काव्यीति शमायन की धामारी है। मानस में काव्यीति शमायन का कृती है किन्तु अपने स्वयं तथा व्यय समन्वयधारी विचारों के लिए वह अध्यात्म शमायन महाराजायम विद्यपुत्राय भवतुर्गीता भागवत इतुमस टक बाणकव नैति धारि के धामारी है।

तुलसी ने मुरदास के 'मुरमाग' में धनिप्रस्था भन ही भी है। किन्तु उन्की धनुहरण नहीं थी नहीं किया है। योगावली में मुरमाग के मय कवनों का देणकर यदि कोई मरुदय इस प्रकार की काव्या कथाका है तो वह धिबिब है। मय के बात-बचन कोठ्या के बाणमय में तुलसी के कवि-हृदय के मिदाल्य विरोध हुए मित्रे। कथन उन्ही धिभिरणा ही जाता आ मरगा धनुहरण नहीं। योगावली के उत्तरबाण्ड के कथन धीर फाम के बर्णन जिसमें राज-नीता धीर धनुत्र-मरगा धारि म्मिदित है। मुरमाग के धनुहरण में है। यह बात जाता है किन्तु इनके मरुदय में एक समम रगता धारि कि कृता की काव्यीतिना के समान मय का मापुवी पदना भी प्रगति पर थी। कथन केने स्वयं उन्की उन्की कल्पना के प्रतिपादन भी इतुमगातिना थी निषयतिना थी मीमगमदिना थी कुम्भदिना धारि में

सभी परिस्थितियों पर प्रभाव पड़ा। सामिक कट्टरता और भांग्तीयों के प्रति काफिर कुल की भाषनाओं के कारण सबसे भीर उदार भारतीय संस्कृति के समझ में घटित रहे। इसी से देश में इनका अस्तित्व घटगुण्य बना रहा।

ऐसी ही स्थिति में हमारे साहित्य का 'मध्यकाल' अथवा 'भक्तिकाल' का मूलपाठ हो उठा। हिन्दू और इस्लामी दो संस्कृतियों के मिश्रण से निर्जुनोपासना का प्राबल्य हुआ जिसके अन्तर्गत कबीर की मयम्बववादी ज्ञानधरणी और सूफियों की प्रेमाश्रयी छायाएँ परिलक्षित हुईं। कबीर के अन्त-सम्प्रदाय में प्राबल्य भारतीय अष्टौतवादी सिद्धान्त थे किन्तु सूफी धर्म में तो सभी विदेशी धारक और सिद्धान्त थे। निर्जुनोपासना के विपरीत भारतीय संस्कृति के पोषकों ने अनुजुनोपासना का प्रचार किया जिसमें राम भक्ति और कृष्ण भक्ति शामिल प्रस्तुत हो चलीं। दोनों में ही अन्तर्द्वारी भावना की प्रतिष्ठा थी। इससे देश में इन सम्प्रदायों के विकास में कोई अन्तर्बाध प्रस्तुत नहीं हुआ।

जैन बौद्ध और नाथ सम्प्रदायों की धारम-निष्कृति का नाथ इन जनीन सम्प्रदायों में भी प्रतिष्ठित हुआ। कबीर के सिद्धान्तों की आधार शिक्षा उन्हीं पर स्थिर है। उनमें रामानन्दी भक्ति और सूफियों का प्रेम-तरंग का भी सम्मिश्रण था, इससे यदि उन्होंने बहुत विषयक अष्टौतवादी भावनाएँ व्यक्त की हैं तो इनके साथ भक्ति और प्रेम के साथ भी पर्याप्त मात्रा में प्रतिष्ठित है। उनके सम्प्रदाय में जीवन माया अज्ञान आदि को लेकर बहुत कुछ कहा गया है। इसी प्रकार कृष्ण की अनुजुनोपासना के अन्तर्गत भी धारम-निवेदन की प्रतिष्ठा है। रामानन्ध में भी रामान्ध सम्प्रदाय में इस प्रकार की भावनाएँ व्यक्त की हैं किन्तु वे मूल हैं। इस प्रकार अथवा काव्य के अन्तर्गत 'मध्यकाल' के काव्य में धारम निवेदन की परम्पराएँ अद्युण्य बनी हुई हैं जिनके मेल में ही 'विनयपत्रिका' का काव्य प्रस्तुत हुआ। अथ विनयपत्रिका से पूर्व मध्यकाल की इस परम्परा पर दृष्टिपाठ कर लेना भी उचित है।

नामदेव अद्युण्य और निर्जुनोपासक महाराष्ट्री अन्त थे किन्तु उनमें 'धारम बोध' धारमनिवेदन की परम्परा थी जिसकी उन्होंने अपनी पद्यावली में प्रतिष्ठा की है—

काहे रे मन विषया बन जाइ ।
मूली रे ठम मूरी जाइ ॥
बैते भीम पानी नहि रहै ।
काल-काल को मुनि नहि लहै ॥
बिहवा-नवाही लीलति लोहै ।

ऐतै कतक कायिनी जाँयो मोह ॥ — (संत सुधासार नामदेव १)

इन वक्तव्यों में मन को सम्बोधन कर उसकी स्थिति का उल्लेख है तो निम्न शीत में 'नर्मदा' में धारम-निवेदन भी करते हैं—

मोहो तू न बिसारि तू न बिसारि तू न बिसारि रमेया ।
 तेरे बनही लाज बाहिपो मुझ ऊरर सब कीपिता ॥ —(बही नामदेव २)
 कबीर की बाणियो में भी उपर्युक्त परम्परा विद्यमान है—
 इयमय छाड़ि दे मम बोरा ।

प्रब ती बरे बरे बनि घाबे लीग्हो हाथ तिपोरा ॥—(बही—कबीर २६)
 म बन भूसा तू समझाइ ।
 बित बंभस रहै न घटकपो बिदे-बन कू जाइ ॥

संसार सागर माहि मूफ्यो बकयी करत जपाइ ।
 मोहिमी माया बाणियो प राजिले रामराइ ॥
 गोपाल मुनि एक बीनति मुमति तब टहराइ ।
 कहै कबीर मह काम रिटु है मारै सब कू डाइ ॥

—(बही—कबीर, ३८)

सम्प सम्प्रदाय के अन्तर्गत कबीर ने प्रतिरिक्त धर्म सम्प भक्तों में भी यह
 भावना विद्यमान है—

ऐसो साज तुझ किनु लीन करे ।
 गरौब निबाऊ गुतया मेरे माये पन बर ॥
 जाली छोति जगत की लार्य तापर तुही बरे ।
 नोबहि अंब करे बैरा नोबिनु काहू ते न बरे ॥

—(सम्पुपामार, रैदान ४)

माई रे भीत करहु प्रभु तोइ ।
 माया मोह परीति भिगु मुजी न शीमे कोइ ॥
 दाता दाता तोलबत निरयलु रुप अयाइ ।
 सखा सहाई प्रति बड़ा अंबा बड़ा अयाइ ॥
 बालक बिरयि न बापीए निहचनु तिसु बरवाइ ।
 जो मंगीऐ तोइ बाइए निरपारा साबाइ ॥

—(बही—गुरु अर्जुनदेव—११)

गुण बेति रे कहि क्या साया ।
 इनमें बंटा कूतिकर त बैली साया ॥
 तू जिनि जान तन धम देरा मूरिल बैति मुनाया ।
 धात्रि कालि बलि आवे देही ऐनी मुन्दर दयाया ॥
 राम नाम निज लोत्रिये में कहि समझया ।
 बाहु हरि ही सेवा कोत्र मुन्दर ताज मियाया ॥

—(बही—स्वामी बाकूनाथ ३०)

सम्प सम्प्रदाय में त्रिपुगीनामता के कारण साध्व्य के बलि को बार्द प्रजप्य

नहीं होती है। फलतः बड़ा जीव भाषा संसार आदि विषयों पर सन्त मन्त्र अथि काविक कहने के लिए प्रवकाश प्राप्त कर लेता है। बस्तुतः महत्तुलसी की विनयपत्रिका की सबसे परम्परा है जिसका पोषण इस सम्प्रदाय के मन्त्र कवियों ने किया है। संत सम्प्रदाय के अतिरिक्त सूक्तियों में उपर्युक्त विषयों के विवरण तो हैं। किन्तु वे कथा उत्पन्न के अन्तर्गत उपलब्ध हैं। उनमें कवच और शैली का यह स्वरूप नहीं है। इससे उन्हें विनयपत्रिका में स्वीकृत परम्परा का पोषण नहीं कहा जा सकता।

उपर्युक्त के अतिरिक्त सयुगीपासना के अन्तर्गत रामावत और कृष्णावत सम्प्रदायों में भी इस परम्परा का पोषण उपलब्ध है। इनमें 'चरित' की प्रतिष्ठा होने के कारण उस प्रकार की भावनाओं को यह मुक्तक शैली में ही व्यक्त करते हैं।

सुझाईत सम्प्रदाय में हीनचित्त होने से पूर्व मूरदास ने विनय के पद लिखे थे जो उनके मूरदास के प्रथम स्कन्ध में सप्रहीत है। माधुर्य भाव के उपाधिक होने पर भी विनय की इस पदावली में उनकी वात्स्यायिका ही प्रतिष्ठित है।

बिनती करत मरत हीं लाज ।

नक सिद्ध लीं मेरी यह देही है पाप की जहाज ।

× × ×

घब के राखि सेहु भयबाज ।

हो प्रताप बँठयो हुय-हरिया पारधि साये बाल ॥

× × ×

दुख्य की कबहुँ करनि छयी ।

बिनु गोदास बिबा या तन की कैसे जाति कटी ॥

मूर बीबन की विविध परिस्थितियों का उल्लेख अपने धाराध्य के समस्त प्रस्तुत करते हैं। किन्तु अब उनसे उन्हें किसी प्रकार की कथा उपलब्ध नहीं होती है। तब निम्न भावनाओं द्वारा अपनी विवशता भी प्रकट कर देते हैं।

बी अप और बियो लौज पाई ।

तो हीं बिनती बार-बार करि धनु तुमहि मुनाई ॥

तिव बिरंघि मुर-मनुर नाग-मुनि त तो बींकि बन प्रायो ।

मृद्वी भ्रम्यी तुवातुर मुय लीं काहुँ जम म पैबासी ॥

बीरव-रहित अजित इगिनि बस उयी मज पंक पर्यो ।

बिषयासक्त नदी के कपि शर्मा बोड-बोड कइती करयो ॥

अष्टाष्टा के धर्म कवियों में भी उपर्युक्त परम्परा का प्राप्त उपलब्ध है। धर्म कृष्ण मन्त्र भी ध्यात-निवेदन के रूप में अपनी भावनाओं को व्यक्त करते हैं।

बी मज ह्याम-सरोवरि ग्राहि ॥

बहुत दिनन की कर्पी कर्पी तू तबही जसे तिराहि ॥

स्वामी हरिदास भोजन की समारंभता बिबिध प्रकार के मद और लोभ के
 ध्वंस समस्त हुए धन मन का हरि भजन का मन्त्रेण प्रणाम करने हैं ।
 जोसों जीब तौसों हरि मजु रे मन धीर जात सब जादि ।
 दिबति बारि की हुला-मला तू कही लैइयाँ सादि ॥
 माया मह गुन मर भोजन-मर भूम्यो मर बिवादि ।
 कहि हरिदास लोभ भरपट भयो काहे को लागि फिरादि ॥

—, ब्रजभाषुरीमार स्वामी हरिदास (१)
 परम्परा का स्वरूप रामानन्द सम्प्रदाय व प्रकृतक रामानन्द की पत्नीवती म भी बिच
 मान है—

हरि बिज जनम बुधा पोयो रे ।
 कहा भयो प्रति मान बड़ ई धन मह धंभ प्रति सोयो रे ॥
 सुधिरन मजन साध की संगति धंतरि मन मन न पोयो रे ।
 रामानन्द रतन जम बास धीपति पर काहे बोयो रे ॥

—, रामानन्द की शिषी रत्नाएँ पर (१)

इस प्रकार धनप्रशक्तान से लेकर भक्ति-नाम तक सम्प्रदाय के सल मतों
 ने अपने धाराध्य से माया की प्रकृता समार के प्रलोभन बिबिध प्रकार क मद
 धादि का कथन किया है । धाराध्य क प्रसु रूप से कारण उनकी प्राप्तिय मान के
 साध भक्त कबियों ने अपने सांसारिक कष्ट व निवारणार्थ उनसे मिरलर अनुत्प
 विनय भी की है । भक्त को धाराध्य वा ही बड़ा बि-बान होता है इन्हीं से बड़ उक्त
 कर्मों को बिबिध प्रकार से उनके समक्ष रतता जाता है ।

गोस्वामी गुप्तसीराम ने धारम-निकेतन की अव्यक्त धरिषदय परम्परा की ही
 अपनी बिनयपत्रिका की काव्य-वस्तु से सिद्ध युता है । बिषय साम्य होने हुए भी बड़
 अपने इस काव्य से मौनिक है । धादि से लेकर धन तक सभी धारमनिरान एव
 पत्रिका के रूप से प्रतिष्ठ है और धन में बड़ बड़ी बिभ्रता के माक धाराध्य राम
 के समक्ष प्रस्तुत कर ही गई है । उन्होने अपने पापना के अभिमत पर बिनयपत्रिका
 र 'छही' कर दी है । गुप्तसीराम ने यही तो बाहने थे—उन्हें उनकी पति-बिधि प्रकृत
 तो गई यही उनके लिए पर्वण है । सब वा यह है कि मक्ति भावना का लैया मटीक
 धीर ध्यानक स्वरूप न तो गुप्तसीराम के धरिषदय साहित्य में है और न वेग शिरी काव्य
 में । 'मानस' में भक्ति है धरम बिनु बड़ राम-क्या के प्रगाह में डबडी उतराती
 प्रीति होती है । भक्त के लिए जैसा मध्यक समयों का धारम है बड़ वा इमी काव्य
 में है ।

बिनयपत्रिका क मुक्तक-नाम्य होने से कुछ सहृदय इसे अनुत्प र्ण का संवह
 मान मानते हैं । काव्य की प्रत्यर्थ पदों व मध्य म समस्तजना व कारण इस प्रकार

का उनका विशेष स्वभाविक है। किन्तु कवि के उद्देश्य के अनुकूल भावभावों के प्रवाह पर मनन करने से उक्त भावोंप निर्मूल सिद्ध होता है। रचना मने ही स्फुट क्यों न रही हो किन्तु उन्होंने इसके निर्माण में पूर्ण निर्गीत काव्य की रूपरेखा में किसी प्रकार का बिन्द्वेद नहीं प्रस्तुत होने दिया। फलस्वरूप काव्य के सभी पद रामोन्मुख हैं। वह चाहे मण्ड की स्तुति कर रहे हों चाहे सूर्य की चाहे शिव की चाहे जानकी की चाहे हनुमान का—सभी से अपनी बात को श्रीराम के चरणों तक पहुँचा देने के लिए प्रार्थना करते हैं।

कबहुँक धरं सबसर पाइ ।

मेरिप्री तुपि छाहूँकी कहुँ करम कया बताइ ॥

जानकी सब जननि जन किए बचन सहाइ ।

तरं तुलसीदास नव तब नव गुन-जन गाइ ॥

—(विनयपत्रिका सीता स्तुति ४१)

विनयपत्रिका के प्रारम्भिक ६२ पदों में संस्कृत की स्तोत्र-मदति का अनुकरण है। भाषा स्वभावतः कुछ और सिस्य हो गई है। फलस्वरूप काव्य में अनुनास स्वरूप भालम्बन राम के महत्वों और अपने वैय तथा अभावों के उल्लेख समाहित होते चले हैं जिससे काव्य निरिच्छत लक्ष्य की ओर अग्रसर होता हुआ हनुमान के हाथ से लही हो जाने पर समाप्त हो गया है।

तुलसी एक स्मार्त वैष्णव के इतने विष्णु, शिव, बुद्ध, सूर्य, मनेस आदि में उनकी प्रास्था स्वभाविक थी। अपनी पूज्य भावना के कारण उन्होंने उन सभी को प्रतिष्ठित किया है। इन सभी का इस प्रकार का समिश्रण उनके प्रकटिष्ट काव्यों में नहीं है। इसका एकमात्र कारण यही है कि तुलसी की भक्ति भावना यहाँ एक निरिच्छत स्वरूप प्राप्त करती है। इतने इनके समिश्रण का 'विनयपत्रिका' में ही समुचित व्यवस्था का अर्थ है।

रस परम्परा—सम्प्रदाय का सम्पूर्ण साहित्य विविध सम्प्रदायों के सन्तों द्वारा विरचित है। ये लोग गृह-स्थायी संसार से विरक्त थे। फलस्वरूप परमार्थ-साधन ही इनका प्रमुख लक्ष्य था। इनसे इनके काव्यों में सार्व रस का ही प्राचाप्य है। इसके अतिरिक्त अग्य रसों का समावेश प्रसङ्ग विशेष के कारण हो गया है।

निर्गुणोपासना के अन्तर्गत कबीर और उनकी शिष्य परम्परा सिद्ध कुछ वाद्वेदमात्र आदि सभी की भावियों में स्वामी भाव निर्बन्ध भी संसार-विरक्ति है। संसार की प्रसारता अथवा परमात्मा का स्वरूप भालम्बन विभाव है। अथि आदि के पवित्र प्राप्य साधु लक्षण उपदेश आदि उद्दीपन विभाव हैं। रोमांच हृदय आदि अनुभाव हैं। निर्बन्ध हृदय स्मरण प्राणियों पर अथवा आदि संघारी भाव है। कृपावत् सम्प्रदायों के सम्पूर्ण सन्तों में हृदय की अति सम्बन्धी पदावधियों के अतिरिक्त अथवा पदावधियों में इती रस की निष्पत्ति हुई है। कबीर में रामानन्दी भक्ति और श्रुतियों की प्रेम

मासुरी के भी तरह स। इसमें पत्र तब तक बाध्य म भक्ति और शृंगार क तरह भी प्रकट उठे हैं।

समुदायमानता क चलनगत कृष्णायन सम्प्रदाया म चरनारी कृष्ण की ही पारा बना है। इनमें मुझाईती सम्प्रदाय म कृष्ण की लीलाया की भी माण्यता है इसमें धार्मिक रूप म धर्म म भी प्रतिष्ठित हो उठे। मुझाईती सम्प्रदाय के प्रतिरिक्त राधाकल्पनीय गौरीय हरिदासी धारि सम्प्रदाया म मासुर तत्व की प्रगलता के कारण शृंगार रस की ही उपमन्त्रि है। धर्म रस उपेक्षित है। मुझाईती सम्प्रदाय क चलनगत मूरदाय उनके प्रतिनिधि बनि है। उनक बाध्य म बात्मस्य और शृंगार का बाहुस्य है उनकी विविध परिमितिवा का उनक काध्य म समावग है। हास्य कर्म गीत और मयातक बीमय घदमन धारि रगो की उनक मूरमाग म निष्पत्ति है किन्तु बहुत प्रथम रूप से। धर्म कृष्णायन सम्प्रदाय कवन शृंगार तक हा सीमित हाऊन रस गण !

रस की उपर्युक्त सभी परम्पराएँ तुमसी मे प्रकट धपता मिष्ट रूप प्रस्तुत कर दी थीं। विनयपत्रिका म भक्ति रस का प्रापाम्य है। इसका स्थायी भाव राम क धर्मय प्रेम है राम इसके धारम्भक है। राम-मभा क पावद और इना इगठ पम है। इस प्रकार वाल ममगिन भक्ति रस विनयपत्रिका म प्रगल्य है। 'श्री कृष्णयोठावली' और वीतावली दोनों करित बाध्य है। हाण और गम दोनों धरतारी करित दुर्लभ का हन कर ममार म मुय गानि की ध्यम्या करने बाये है। किन्तु दोनों देव काध्य रहे हैं इससे इनम मासुर भाव का ही विनिष्ट गमाग उतग्य है। दोनों काध्यों में शृंगार और बात्मस्य क सपोय और विविध परक पर्याय स्थल हैं। हास्य कवन और धारि धर्म रगो के भी कविपय स्थल है किन्तु उनका बाहुस्य रही है। रीत मयातक बीमय और धर्ममन रस का इन काध्य म पूर्ण मभाय है।

वैति-परम्परा—वैति-तरक देव काध्य की परम्परा धारि क मम्भ म प्रसूत रूप से विद्यमे धप्याया म विवेकन प्रस्तुत किया जा चुरा है। मगोतामभवता धारमाभिर्भवन संक्षिप्तता और भावों की लकता ही देव काध्य क तरह है विनया इन वीती क काध्य म प्रहा होना रहा है। इस वीती क दाहा म धार्याभिर्भवन की भावना प्रमुग रानी है विनयो बहु किमी राग रान्ति क प्रथम मे प्रसूति कर उठे है। काल इन वीती म भावोमिया की गरगता म मत्रानता और मरमता उनस्य हा जाती है। मुत्रा-काध्य की वीतिया म गण ठा यह है वि गीत-वीती

वैति-परम्परा प्राणीय काध्य म क-भाव म ही धर्म-ध धार करार प्रसूत रूप हा है। धारम ग काध्य की परम्परायो ग विना भाग्य और का-प्रभाविष्ठ है। इससे उनकी भाव पादा और विविध काव्य वीतियां हि। म प्रस्तुत हो रहा है

इस सम्बन्ध में इस धर्मशास्त्र के प्रारम्भ में उल्लेख किया जा चुका है। इस समय बौद्ध धर्म के सङ्घर्षवादी सिद्धांतों में वर्धापरा और बौद्ध धर्मियों में पद्म वाचरि, रासक प्रादि काव्यों के द्वारा भीत-दौरी को एक सुनिश्चित रूप देखा प्रदान की है। यह भीत-दौरी नाम सम्प्रदाय में भी स्वीकृत है। अतएव और-बाबा कास में भीसत देवरासो परमाभरासो या भास्वहृत्त होसा माक रा बुद्धा के कारण सप्राण बनी हुई मध्यकाल में जाकर प्रस्तुति हो उठी है। आनाथकी छाया और कृष्णावत सम्प्रदायों में इसका मुक्त प्रयोग हुआ है। कृष्णावत सम्प्रदायों में माधुर्य तथा के प्राणायाम के कारण यह दौरी ही विशेष रूप से प्रतिष्ठित हुई है। अन्य धर्मियों उपेक्षित ही रही है।

तुमसी को अपने से पूर्व भीत-दौरी की धर्मिकतः परम्परा मिली है। स्वयं रामानन्द के द्वारा भी इस दौरी के रचना प्रस्तुत की जा चुकी थी। अतएव उन्होंने भी इसे ग्रहण कर भी कृष्णावतीवाकली शिवावती और विनयपत्रिका तीन वेग काव्य रूप दाने। इन रचनाओं में छास्वीय धर्मों की प्रथम दौरी का ग्रहण है और उनी पद्धति के अन्तर्गत विविध राग-रागिनियों का प्रयोग किया गया है।

समीत का साफल्य माधुर्य और कारुण्य पर ही आधारित है। परन्तु और कटु तथा इसमें उपेक्षित ही रहते हैं। इस तथ्य को लेकर अब हम तुमसी के वेग काव्य पर विचार करते हैं। तब उसमें भी वह तथ्य बड़े सिद्ध होते हैं। श्री कृष्णावतीवाकली और 'गीतावती' दोनों काव्यों में कारुण्य और श्रुतार के समान और विनय दोनों की विविध परिस्थितियाँ समाहित मिलेंगी। अपनी दौरी की पुष्टि के लिए उन्होंने गीतावती में शैली का कर पाणना राम रावण युद्ध प्रादि दौरी कटु और परम घटनाएँ, जो राम-वर्णित में मुख्य हैं, बरिखत कर दी हैं। अन्य भावनाओं का इन काव्यों में ग्रहण हुआ भी है। तो बहुत कम। विनयपत्रिका में तो प्रादि से अन्त तक अति समन्वित घाल रत ही विद्यमान है। अति भावना का काव्य होने के कारण उसमें अन्य रनों की सम्भावना भी नहीं की जा सकती है। इस प्रकार उन्होंने अपने वेग काव्यों में काव्य वस्तु समीत के अनुकूल ही रखा है।

वेग काव्य के विविध तथ्यों को ध्यान में रत कर अब हम तुमसी के वेग काव्यों की नेयता पर विचार करते हैं। तो वह उसमें भी सफल सिद्ध होते हैं। अतएव भारतीय धर्मों की प्रथम दौरी संवीत के धर्म रीति-धर्मों में प्रतिपादित मूर और तुमसी की तुमनामक नेयता के सम्बन्ध में—धी धिपरवण और 'मूर एक धर्मधर्म' में निम्न विवेचन प्रस्तुत करते हैं—

वहाँ तुमसी की संस्कृत परावती संवीत के माधुर्य को किन्ही धर्मों में बय कर दी है। वहाँ मूर की प्रकृति रूप से प्रसवित होने वाली धर्म सङ्घों स्वाना विद्वता सादरी भस्वहृत्त और प्रसाद की समान रूप से लिए हुए धर्म बढती है। तुमसी के धर्मधर्मक रूप से प्रयुक्त बड़े-बड़े रूप भी संवीत-लाहरी में धर्मधर्म

प्रस्तुत करते हैं पर मूर के रूपक छोटे पात्ररयक पत्रक हुए सरस प्रार्थक और समीप के लिए उपयुक्त हैं। इमोजिन तुलसी मगाठ का बहु माधुम न सा सन जो उसका मूपाव है। ऐसा करम में मूर ममम ही मरु हैं। उन्होने समीप की स्वर लहरी को मरमता भावुकता प्रवणता और रचना के माय प्रवाहित किया है।

मूर की गमता के सम्बन्ध में डा हृदयवसान दासों के मूर और उमका साहित्य में निम्न विचार है— $\times \times \times$ धाकार की दृष्टि से वही-वही मूर के पद मीठ-बाध की मर्यादा का उम्बधन कर पाए हैं परन्तु एसा उम्ही स्वता पर हुमा है वही कवि बना के तारतम्य का धक्षुण्य रसने के लिए बटमासा का मथम करता है। ऐस पद धापिक सम्बन्ध में भी नहीं। हुमरी बात जो मूर के पदा में पटवती है बहु पीराधिक प्रसमा के सकता का भरमार तथा बध्य विषय भाषा धानि की पुनरुक्ति है। कहीं-कहीं पात्ररयकता से धबिक धमबारा के भार से दयी हुई उनकी भारती धपनी बीषा के ताग का भङ्गन करम में भी धपन को धसमर्भ-सी पाती है। परन्तु उनके उस पतिरोध में भी बिजोपम सौम्य है जिसमें मूर बीबन का धचार स्पष्ट बोध पड़ता है।

उपयुक्त उन्पूठ धषा की धावभाषो पर अब हम बिचार करते हैं तब यह स्पष्ट हो जाता है राम रागनिवा के सशधा के धनुमार निर्मित मीठ समीप के धनु मूर भावनाएँ बजभाषा धारिक का धहृष है। यही सब बाणें तुलसी के पुरं के मीठ काष्प में भी निहित हुई हैं। इसमें उनका मेव काष्प में मयता की दम्दिग्यता रह ही नहीं जाती है।

यह धवरप सत्य है कि तुलसी बिगिप्टाईती मग्ग्याय की मर्यादा परक बात्य भावता के अकत्र कवि थे। जिसका प्रभाव उसके धन्य काव्यो के समान एत मेव काष्पो पर भी है। इसका धतिरिक्त धाचार और कर्तव्य निष्ठा भाव-भाग्नीर्य भाषा में परिनिष्ठित तरह धारिक अभी धान उनक समय काष्पा में उभरण्य है। इन तथ्यों के कारण धरि उनक मीठ काष्पा में भी गम्भीरता और मुग्गा समहित हा उठे हो तो इसमें मदेह ही क्या? कुछ महूबम बिबधक तुलसी-मीनि-बाष्प में मयता का प्रभाव मिड करत है जो धनुबिध है और उनका निर्मय पधनाठ पूष है। मैं उनक बिबेधका में यह पूछता हूँ कि अब उनके मेव काष्प में उमने सब तरह बिदमान है धिर उनरी मयता वही जिमुल हा गई है? बिजयविजया के प्रारम्भ में ११ पद संसुठ की एगोन बद्धि पर रचित है उनका निगप्ट हाता स्वाभाबिक है बिन्तु के धपय नहीं है यह सत्य है। काष्प में धपयन भी तम्भ-मग्भ मीठ है या महूदया की पदा देने है—एत तथ्या के कारण ही धरि तुलसी पर हम धानेन कर बंटे तो यह पूरं बिबेध नहीं है। अब उनक मीनि-बाष्पा में मर्भा मीठि-नरु है तब ता में उग्द पयता में पूष हो बट्टा। मथ तो यह है कि उनके रजन प्राज बन के लिए हमें धाने को उम स्तर तक न जाने की धावदधता है। धरि हम यह मरी कर पाड है

तो हमारा यह भ्रम है और वैसे धारण करने का हमें कोई अधिकार नहीं है।

श्री विश्वरामदास जीन अपने कथन में जिस तथ्यों को लेकर तुमसी पर धारण करते हैं वे तथ्य डा० हरबंसमाल सर्मा के विचारानुसार धूर-काव्य में भी निहित हैं। इस प्रकार श्री जीन का तुमसी के सम्बन्ध में निर्णय पक्षपात पूर्ण ही कहा जावेगा।

अब तो यह है कि तुमसी के सम्पूर्ण गेय काव्यों में गेयता है। यह प्रथम सत्य है कि उनके छोटे-छोटे पद जिनमें स्वच्छन्द आत्माभिष्यन्त है वे उनके सम्बन्ध में गीतों से अधिक मधुर और सजीव हैं। उनके वे गीत भी निःश्राव्य नहीं हैं उनमें सा बीजल के लिए शिबं तत्त्व समाहित है। इस प्रकार उनके गेय काव्यों में गेयता है और पूर्व कथ्य है।

तुमसी गायक नहीं वे क्योंकि इस सम्बन्ध का कोई भी अर्थ या बहिः साध्य उपलब्ध नहीं है। कबीर, सूर आदि के याम करते हुए जिस प्रकार बिज्र मिसते हैं वैसे तुमसी से सम्बन्धित अभी तक कोई बिज्र भी नहीं मिला है। फलतः यह स्पष्ट है कि अपने गेय काव्य के निर्माण के लिए उन्होंने सजीव का प्रयत्न किया और जब वह उसके निर्माण में प्रवृत्त हुए तब वह अपने महाकवि के हृदय को घोष्ठम न कर सके। एक ही धैमी में रचना करने जैसे त्रिप्यास धूर भसे ही किसी को तुमसी से धारण जाते हुए प्रभवतः हों किन्तु जिसने किञ्चिद् धैमियो के साथ सफल पीठ धैली में भी राष्ट्र और व्यक्ति को धमर सन्देश सुनाया हो उसकी भूरि भूरि प्रशंसा करना ही पड़ेगी। कृष्टि विषय के कारण यदि यह तथ्य किसी को स्पष्ट न हो तो यह तथ्य का शोध नहीं है व्यक्ति का है।

तुलसी के अनन्तर राम पद काव्य परम्परा

विषय प्रयोग

रामायण द्वारा रामायणता के प्रकटन के लिए ज्ञान पर रामायण सम्प्रदाय में गोस्वामी तुलसीदास का ही योग्य है कि उन्होंने अनेक समाहित अपनी भाषा में राम नाम को व्यापक किया जिसके फलस्वरूप तथा पुरपातम रूप समाप्त हुआ उनका सोच रसक और सोच रसक जीवन की सीमाओं के प्रति भागा को धारणा बड़ी और उनके चरित्र की हिन्दू-मात्र के घर में प्रतिष्ठा हुई। उनकी तीसरी में तुलसी ने सामान्य सोच धर्म का मोहकम देगा जिसके द्वारा भारतीय समाज जीवन में बहु कल्प और मर्यादा को निष्ठा जायुक्त कर सके।

तुलसी का उद्देश्य महान् था जिसकी पूर्ति में उनका सम्पूर्ण काव्य निमग्न है। अपने धारात्म्य के स्वतन्त्रता और कतिपय को उन्होंने बड़ी रचना मही होने दिया जैसा मध्यकाल के कल्पक कवियों ने अपने धारात्म्य के साथ किया। राम के समान कल्प भी सोचदमों से पूरा सोच रसक और सोच-रसक रहे हैं किन्तु उनके उपासकों ने महाभारत में उनका उस स्वरूप के स्थान पर भागवत में प्रतिपादित उनके मधुर स्वरूप को ही प्रपातता को जिससे उनका पूर्ण रूप प्रचार में आ गया। यदि उन्होंने कविता-सीमा-सीधर्म से मुक्त अपने धारात्म्य के पूर्ण रूप को बिना दिया होता तो वह भी तुलसी के राम के समान समस्त जीवन का प्रतिनिधित्व करता किन्तु साम्प्रदायिक सीमाओं के बाहर जाता उनका लिए सम्भव न हो सता। इन तथ्य से तुलसी के चरित्र की व्यापकता और उपासकता स्वतः ही स्पष्ट हो जाती है।

राम की धारणा धार्मिक निष्ठा और भक्ति भावना के तन्त्र रामायण द्वारा धारण प्रतिपादित है, किन्तु उनके चरित्र की समन्वयकारी धारण भूमिका का व्यावहारिक निर्देशन तुलसी को ही प्रतिष्ठा का काम था। उनका गमन मंदिर बीड़ जैन साहित्य के ऐतिहासिक तथा वास्तवीक ज्ञानिधाम और भवभूति धारण के साहित्यिक राम का रूप विद्यमान था। जहाँ से उनका सामान्य स्वरूप और चरित्र को लेकर 'मामापुत्रनिषमामम' की भावनाओं को उन्होंने उगम मनुस्मृतन किया था जिससे वेद और समाज को धर्मवृत्त बल और चरित्रा निर्माता तथा धर्म और साहित्य दोनों धारणी हुए, बलुत्त मह तुलसी की बहूत बड़ा दन की।

तुलसी ने राम भक्ति की परम्परागत मर्यादा और प्रवृत्ति को अपनी कृतियों

में प्रबलता हो है, जिसके आधार पर आराध्य राम के अनुकूल बने रहने संरक्षण करते प्रथम आस्था रखने अङ्गुली कुमा प्राप्त करण आदि की प्रतिबन्धित में उनकी बाकी समान रही है। इन्हीं के साथ अपनी दण्य और प्रभावता सिद्ध करने और आराध्य के प्रतिफल भावनाओं का परिचाय रखने का भी यह प्रतिपादन करते चले हैं। इन्हीं से निर्मित काव्य पत्र पर चलते हुए उन्होंने भारतीय जीवन की सांत्विक और सांत्विक आश्वासनाओं का समेटा है जिससे समन्वयकारी रूप स्वतः ही उनके काव्यों में अभिव्यक्त होना चले है।

तुलसी की उपर्युक्त स्थापनाओं और प्रयोगों की परम्परा का कोई भी रूप हिन्दू धर्म और हिन्दी-काव्य में न उनसे पूर्व उदभव है और न उनके अनन्तर ही अनुभव रह सका है। कृष्ण भक्ति-काव्य में उसके माधुर्य तब तक ही सीमित रह जाने के कारण उसमें उसको प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं उठता स्वयं रामावत सम्प्रदाय का कवि भी उनके प्रतिपादित आदर्श को सुरक्षित न रख सके। फलतः तुलसी अपने पत्र के अन्दर ही पवित्र रहे हैं और आज भी उनका काव्य प्रकाश-स्तम्भ के समान साहित्य समाज और धर्म के पत्र पर अपनी आभा बिखीर करती हुआ उन्हें अप्रसर रखने के लिए प्रतिप्रवृत्त करता है।

तो तुलसीदास के अनन्तर राय-पीठ काव्य की परम्परा आज तक उपलब्ध है। हम सरलता से उसके दो विवेक कर सकते हैं—

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत-काव्य।

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य।

(आ) काव्य-शैली की साहित्यिक रचनाओं में गीत-काव्य।

२ लोक-साहित्य में राम परक गीत काव्य।

ये दो आलोच्य-विषय केवल राम-पर परम्परा को प्रस्तुत कर रहा है इसके यहाँ उचित सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। काव्य का अकेले ही मिलेगा विवेचन नहीं।

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत काव्य

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य—रामावत सम्प्रदाय की प्रवृत्ति के सम्बन्ध में यह संवेत किया जा चुका है कि तुलसीदास के अनन्तर उसमें एक नवीन मोड़ समाविष्ट हो उठा है। उन तक बास्म भाव मर्यादा-तत्त्व कर्तव्य निष्ठा आदि सम्प्रदाय के आश्वासक भगवत् किन्तु अनन्तर के अनादिक हो उठे और उनके स्थान पर माधुर्य की सरलता और प्रेम को भावना ही पर्याप्त समझी जाने लगी। इसमें सम्प्रदाय वरि नवीन पत्र पर अप्रसर हो उठा हो तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ?

आश्चर्य अर्थात् अप्रसर और तुलसी में भी मन्-तत्र माधुर्य भाव आनुपदिक

रूप से आ गये हैं किन्तु उन लोगों ने सम्प्रदाय की मूल शक्तता का बड़ी भी अबाध और धूमिल मही हाज दिया। अन्तर उमर अनुयायियों ने हम नहीं समझा और उसकी परम्परागत वृत्ता और मासिकता की पूर्ण उपेक्षा कर दी। वे भागवत के प्रभाव से संश्लिष्ट कृष्ण के स्वरूप की ओर समक उठे और उनी को उन्मान अथवा आराध्य के लिए उचित समझ। फलतः राम भक्ति में भी रमिर भाव का प्राबल्य हा उठा। सम्प्रदाय की हम लकीन पद्धति के वापस में रमिर भक्ता का कुम्भोत्तर वाक्यादि आसवारों के भगवान और भक्त के पनि और पत्नी के स्वरूप में बड़ी अतिश्रुता हा। कृष्ण-काव्य में भाववत के प्रभाव के समान राम के रमिर भाव के सम्बन्ध में विश्व संहिता और हनुमत्संहिता आदि न भी प्रेरणाएँ दी और सम्प्रदाय लयमी जैसे आचार्य महाकवि के अभाव में अथमी दिना को बहमन के लिए बाध्य हा उठा। मन्त्र तो यह है कि सम्प्रदाय के परम्परागत राम के गायकशों के उपयोग का अयकाय न रह गया। उनके शक्ति-दीप्त सौन्दर्य न तोंत लम्बा के स्थान पर शक्ति और शक्ति निराहित हो गए और सौन्दर्य का उपयोग वहा ही अक्षयिष्ट रह गया। फलतः आधुनिक आदर्श के अभाव में सम्प्रदाय लफाकी और लकीर्ण हा गया।

रमिर भाव की उपासना के लिए सम्प्रदाय में वन या वान शीर्षी का ही अधिनाधिक प्रयोग हुआ है। अभी तक इन परम्परा के वापस भवन कथिया के सम्बन्ध में अधिन बात न हाज है उनही रचनाएँ भी अज्ञात हो गयीं किन्तु धी भूतल्लर नाय विश्व 'भाष्य' के राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना और हा भगवतोमिह के राम भक्ति में रमिर सम्प्रदाय शोध-अन्वेषा के प्रकाशनों में उनर साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश पडा है जिसमें सम्प्रदाय में अधिच्छिन्न गीत-यन्त्रण उपलब्ध हैं।

रमिर भक्तों के आधुनिक परक गीतों में सम्प्रदाय की यह भावना अधिनाधिक पुष्ट होनी गई। मानाशान के रामायण में अन्त पुत्र और राम के भाजन के समय मुख्य मन्त्रित आदि के मन्त्र बचन प्रस्तुत किए गए। बानहृत्वा धी कृपा निराग आदि के विविध काव्या में यह उपासना पुष्ट होनी गई। अन्तर जब राम अन्तराज का मन्त्र मिथु न वाक्यत्व भाव से प्ररित हा स्वमुगी और गयीं भार के आचार पर जब श्रीश राम ने 'शरमुगी' नाम की वागाएँ प्ररतित कीं तब तो राम भक्ति का यह रमिर सम्प्रदाय एक मुद्दु पद पर आकर आकर हा गया।^१

हेलो भूतल राघो डोल ।

अन्तर मुना लीन लंग लोमिन और स्वाम लन लोल ॥

हीरर वन्ना लाम, शिरोज्ज रत्न, लक्ष्मि, बपोल, १

कीर्त राम आनकी डोल बरं दुग्धी डोल ॥

हुँतत परररर प्रीतम प्यारी आनन् बड़पो लखोल ।

१ आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास ।

यं प्रधानता ही है जिससे घाघार पर घाराध्य राम के अनुकूल बने रहने संरक्षण करके अनन्य भावना रखने का हेतुकी कृपा प्राप्त करके घाघि की अभिव्यक्ति में उनकी बाकी संलग्न रही है। इन्हीं के साथ प्रपनी रम्य और प्रपानता सिद्ध करने और घाराध्य के प्रतिभूत भावनाओं का परिचय रखने का भी वह प्रतिपादन करते बने हैं। इन्हीं से निमित्त काव्य पत्र पर बसते हुए उन्होंने भारतीय जीवन की सांत्विक और सांत्विक भावनाओं को समेटा है जिससे समन्वयवादी तथ्य स्वतः ही उनके काव्या में विलीन होने बने हैं।

तुलसी की उपर्युक्त स्थापनाओं और प्रयोगों की परम्परा का कोई भी रूप हिन्दू धर्म और हिन्दी-काव्य में न उनके पूर्व उदभूत है और न उनके अनन्तर ही प्रकृत रह सका है। कृष्ण मन्दि-काव्य में उसके माधुर्य तब तक ही सीमित रह जाने के कारण उसमें उसको प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं उठता स्वयं रामावत सम्प्रदाय के कवि भी उनके प्रतिपादित धारणों को सुरक्षित न रख सके। अतः तुलसी प्रपन पत्र के प्रकृत ही पथिक रहे हैं और आज भी उनका काव्य प्रकाश-स्तम्भ के समान साहित्य सभाज और धर्म के पथ पर प्रपनी धामा विकीर्ण करता हुआ उन्हें प्रपन्न रहने के लिए प्रेरित करता है।

तो तुलसीदास के अनन्तर राम-गीति काव्य की परम्परा आज तक उपलब्ध है। इस सम्प्रदाय से उसके दो विभेद कर सकते हैं—

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत-काव्य।

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य।

(आ) काव्य-शैली की साहित्यिक रचनाओं में गीत-काव्य।

२ लोक-साहित्य में राम परक गीत काव्य।

मेरा धारणा-विषय केवल राम-पद परम्परा को प्रस्तुत कर रहा है इससे यहाँ उसी के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। अन्य का संकेत ही विवेक विवेक नहीं।

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत काव्य

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य—रामावत सम्प्रदाय की प्रगति के सम्बन्ध में यह उचित किया जा चुका है कि तुलसीदास के अनन्तर उसमें एक नवीन मोड़ समाविष्ट हो उठा है। उन तब काव्य भाव मर्यादा-वर्णन कर्तव्य सिद्ध घाघि सम्प्रदाय के धारणिक भग के किन्तु अनन्तर के धारणिक हो उठे और उनके स्वान पर माधुर्य की सरसता और प्रेम की भावकता ही पर्यन्त समझी जाने लगी। इसमें सम्प्रदाय यदि नवीन पत्र पर प्रपन्न हो उठा हो तो इसमें धारणिक ही क्या है ?

धामदार लता प्रपन्न और तुलसी में भी पत्र-तत्र माधुर्य भाव धानुपन्निक

नप से घा मये है किन्तु उन लोकों ने सम्प्रदाय की मूल ब्रतना का बही भी बरगुद
 और घूमिन नहीं होमे दिया । धनस्तर उमर अनुयायियों ने इस महा समझा और
 उसकी परम्परायत बृहता और मामिकता की पूर्ण उपेक्षा कर दी । वे भागवत के प्रभाव
 से संवरित कृष्ण के स्वस्व की ओर लमक उठे और उनी को उन्हांन ध्यान धारणाय
 के लिए उचित समझा । फलत राम भक्ति में भी रमिक भाव का प्राबल्य हा उठा ।
 सम्प्रदाय की इस लचील पद्धति के पापण में रमिक भक्ता का कुमशासन चरकाय धारि
 धामधारों के भगवान और भवन के पति और पत्नी के स्वरका न बही अभिप्रस्था हा ।
 कृष्ण-काव्य में भागवत के प्रभाव के समान राम के रमिक भाव के सम्बन्ध में विश
 सहिता और हनुमत्सहिता धारि न भी प्रेरणाएँ दी और सम्प्रदाय लक्ष्मी जैग धारण
 महाकवि के अभाव से अथमी दिया को बरसने के लिए काव्य हा उठा । मय तो यह
 है कि सम्प्रदाय के परम्परागत राम के गाथादत्तों के उपयोग का अथकाव न रह गया ।
 उनका दक्षिण-दीन सीन्दय इन तीन लक्ष्य के स्थान पर दक्षिण और दक्षिण निराहित
 हो गए और मोक्षय का उपयोग पर ही अक्षयिष्ट रह गया । फलत व्यावहारिक
 धारण के अभाव में सम्प्रदाय एकटकी और गकोर्ष हो गया ।

रमिक भाव की उपासना के लिए सम्प्रदाय में पण या गात शीमा का ही
 अतिरिक्त प्रयोग हुआ है । अथी लक्ष्य इन परम्परा के पापण यथन बरिया के सम्ब
 न्य में अतिरिक्त मात न हात से उनकी रचनाएँ भी अज्ञान हा रही किन्तु थी भुवनस्तर
 नाय विश्व भाषक के राम भक्ति साहित्य में मधुर उपासना और डा भगवतामिह
 के राम भक्ति में रमिक सम्प्रदाय ताप-अस्था के प्रभावानों में उनका साहित्य पर
 पर्याप्त प्रभाव पडा है किन्तु सम्प्रदाय में अतिरिक्त प्रीति-नरगण उपलब्ध हुई है ।

रमिक भक्तों के माधुर्य परक गीतों में सम्प्रदाय की मह भावना अतिरिक्त
 पुष्प होनी गई । माभावाग के रामायणाम में अस्त पुर और राम के भाजन के समय
 मृत्यु मन्हीत धारि के मरग वर्णन प्रस्तुत किए गए । बागवतण थी कृता निराग धारि
 के विविध काव्या में यह उपासना पुष्प होनी गई । धनस्तर जब राम लक्षणाम कल्प
 मिथु ने दागवत भाव से प्ररित हा स्वमुनी और गयी भाव के धारण पर जब जीया
 राम न 'हस्तमुनी नाम की धारणाएँ प्ररित की तब हा राम भक्ति का यह रमिक
 सम्प्रदाय एक मुनुङ्ग पय पर धारण धारण्ड हा गया ।^१

बैकी भुक्त राघो सोल ।

अनक मुना लीन लंग सोधित धोर ह्याम लक्ष लोल ॥

हीरा पन्ना लाल पिरोजा रतन लक्षित बमोल ।

बीड़त राम जानकी होऊ बर्र कुम्भी होल ॥

हूँतत परस्पर प्रीतन ध्यारो धामम्ब बड़ो लचील ।

में प्रधानता हो है जिसके आधार पर धाराध्य राम के अनुकूल बने रहने संरक्षण करने अनन्य भावना रखने यहैतुर्की कृपा प्राप्त करने धारि की प्रतिबन्धित में उनकी कामी संसन्न रही है। इन्हीं के साथ अपनी रीत्य और अपावता सिद्ध करने और धाराध्य के प्रतिकूल भावनाओं का परित्याग रखने का भी बहु प्रतिपादन करते बने है। इन्हीं से निर्मित काव्य पत्र पर बसते हुए उन्होंने भारतीय जीवन की सांख्यिक और सांख्यिक भावनाओं को समेटा है जिससे समन्वयवादी तत्त्व स्वतः ही उनके काव्यों में वन्दित होते बने है।

तुमसी की उपर्युक्त स्थापनाओं और प्रयोगों की परम्परा का कोई भी रूप हिन्दू धर्म और हिन्दी-काव्य में न उनसे पूर्व उपलब्ध है और न उनके अनन्तर ही अनुभव रह सका है। कृष्ण मन्त्रि-काव्य में उसके माधुर्य तब तक ही सीमित रह जाने के कारण उसमें उसको प्राप्त करने का प्रयत्न ही नहीं उठता स्वयं रामावत सम्प्रदाय के कवि भी उनके प्रतिपादित धार्यों को सुरक्षित न रख सके। फलतः तुमसी अपन पत्र के प्रकृति ही पथिक रहे हैं और आज भी उनका काव्य प्रकाश-संस्मरण के समान साहित्य सम्राट् और धर्म के पथ पर अपनी धामा विकीर्ण करता हुआ उन्हें धरमतर रहने के लिए अभिप्ररित करता है।

नो० तुमसीबास के अनन्तर राम-गीति काव्य की परम्परा आज तक उपलब्ध है। हम सरलता से उसके दो विभेद कर सकते हैं—

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत-काव्य।

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य।

(आ) काव्य-शैली की साहित्यिक रचनाओं में गीत-काव्य।

२ मोक्ष-साहित्य में राम परक गीत काव्य।

मेरा धामोध्य-विषय केवल राम-वद परम्परा को प्रस्तुत कर रहा है इससे यहाँ उसी के सम्बन्ध में विचार किया जा रहा है। काव्य का संकेत ही मिलेगा विवेचन नहीं।

१ शिष्ट साहित्य में राम परक गीत काव्य

(अ) रामावत सम्प्रदाय में भक्त कवियों का गीत-काव्य—रामावत सम्प्रदाय की प्रगति के सम्बन्ध में यह संकेत किया जा चुका है कि तुमसीबास के अनन्तर उसमें एक नवीन माङ्ग समाविष्ट हो उठा है। उन तक शक्य भाव मर्यादा-तब वर्तमान निष्ठा धारि सम्प्रदाय के भाववयव धर्म में किन्तु अनन्तर के धनावश्यक हो उठे और उनके स्थापन पर माधुर्य की सरलता और धर्म की मादकता ही पर्याप्त समझी जाने लगी। इनमें सम्प्रदाय धारि नवीन पत्र पर धरमतर हो उठा हो ता इसमें धारचर्य ही क्या है ?

धामधार सन्ता धरबास और तुमसी में भी यत्र-तत्र माधुर्य भाव धामुपल्लिख

रूप से घा मये हैं। किन्तु उन सोमा न सम्प्रदाय की मूल चेतना का कहीं भी प्रकट और जूमिस नहीं हुने दिया। अन्तर उमर अनुयायियों में हम महा गमना और उसकी परम्परागत बुद्धता और मार्मिकता की पूर्ण उपमा कर दी। वे मागधन के प्रभाव से संश्रित रूप के स्वरूप की धार समक उते और उमी को दर्शान धारन धारण्य के लिए उपिष्ठ समझ। फलत राम भक्ति में भी रगित भाव का प्रबल्य हा उगा। सम्प्रदाय की इस मशीन पद्धति के पापन में रमिक भक्ता का कृत्योपर्यन्त दर्शन्य धारि धारमचारों के भगवान और भक्त के पति और पत्नी के रूपका न कहीं अभिप्रेरणा दी। रूप-काव्य में भागवत के प्रभाव के समान राम के रगित भाव के सम्बन्ध में विश्व संहिता और हनुमत्संहिता धारि ने भी बरसाएँ दी और सम्प्रदाय नमगी त्रैम धारणं महाकवि के अभाव में अपनी दिशा को बहमन के लिए काव्य हा उटा। गद्य का यह है कि सम्प्रदाय के परम्परागत राम के गाथादर्शों के उपयोग का अयकाय न रह गया। उनके दक्षिण-दीर्घ मोक्ष्य इन तीन तरहका के स्थान पर दक्षिण और दाग निरोहित हो गए और मोक्ष्य का उपयोग परा ही अकटिष्ठ रह गया। फलत व्यावहारिक धारणं के अभाव में सम्प्रदाय एकत्री और मझार्य हा गया।

रमिक भाव की उपामना के लिए सम्प्रदाय में पर या गात धर्मों का ही अथिवाभिक प्रयोग हुआ है। धर्मी तक इन परम्परा के पापन भवा रक्षिधा के सम्बन्ध में अथिन अात न हुने में उनका रचनाएँ भी अज्ञान हा रही किन्तु भी भूतनद्वय माय विध 'मायक के राम भक्ति साहित्य में मधुर उपामना और हा अगवनागिह के राम भक्ति में रमिक सम्प्रदाय गोप-अथा के प्रकाशनो में उनके साहित्य पर पर्याप्त प्रकाश पड़ा है जिसमें सम्प्रदाय में अविशिष्ट मीति-नग्यपण उपलब्ध हुई है।

रमिक भक्तों के माधुर्य परक गीता में सम्प्रदाय का यह भावना अथिवाभिक पुष्ट हुनी गई। रामाशम के रामायण्यम में अल्ल पुर और राम के भाजन के गद्यय मूल्य मझीठ धारि के मरग बजन प्रस्तुत किए गए। बाणभूषण भी कृपा निराग धारि के विविध काव्या में यह उपामना पुष्ट हुनी गई। अन्तर जब राम अरण्याग रचना गिन्तु न दाम्भत्य भाव से प्ररिण हा स्वमुगी और मगी भाव के धारण पर जब अथा राम न 'तामुगी नाम की धारणाएँ प्ररतिन की तक ता राम भक्ति का यह रमिक सम्प्रदाय एक मुदुङ्ग पय पर धारण धारण्ड हा गया।^१

बेझी भूतत रायो शोल ।

अनक गुना लीन नंग सोभिन घोर हयाम तन लोल ॥

हीरा वग्ना लाल विरोडा रतन गचिन बमोल ।

कीकृत राम-आनकी दोऊ बर्ये कुदधो होन ॥

हुँगत परस्पर प्रीतन प्यारी धारण्ड बड़यो सखोल ।

धो अग्रदल्लो सुनि-सुनि पावति बोलहि मीठे बोल ॥

तुलसीदास ने अपनी लीलावली के उत्तरकाण्ड में राम सीता की बसन्त और पाग की श्रृङ्गारों में इसी प्रकार के प्रानन्द-विनास की व्यवस्था की है। वह स्वस तुलसी-काव्य में अपूर्व और विचित्र सपना है अग्रदास का यह पद भी रामसीता मर्यादा का मास के विरुद्ध निम्न स्तर पर उतरा हुआ है। राम-सीता की परस्पर श्री-हैसी भले ही सभी को आनन्दित करती हो किन्तु वह मर्यादा पुरुषोत्तम राम की हैसी नहीं है। उसमें धिर-परिचित गान्धीर्व नहीं है।

रामचरणदास द्वारा 'सबसुखी' शब्दा के स्थापित हो जाने पर उपासना के माधुर्य भाव को बड़ा बस मिला। उसके अनुयायियों ने अपने धाराध्य के प्रति अपने प्रान्तमूलक पत्नी भाव को व्यक्त करने में विशेष गुण की अनुभूति की। रामचरण दास रचित 'रसमामिका' में उन्होंने रसिक सम्प्रदाय के सिद्धान्तों का परिचय किया है उसमें उसका पत्नी भाव देखिए—

राम-नाम कर्षी पदवि मुख ते कहा न जाय ।

ज्यो तिय निज बति नाम को कहत बहुत सकुचाय ॥

इस प्रकृति और भाव के कारण उनके पद बड़े ही मधुर और रसपूर्ण हो गए हैं।

राज-रज्जा से युक्त राम-सीता शृंगार-विधि से रास-स्वस पर पवार रहे हैं। सखियों उनके समस्त विविध प्रकार की श्रृङ्गार प्रस्तुत करती चमती हैं।

घाबत राय बिहारी देखो सखि ।

सरपू तीर अंगार विधि ते प्रति अनुप खि ग्यारी ॥

सीताराम मनोहर खोरी बिलबल श्री बलिहारी ।

कंडल पलक हुलक गुलाब की बसकत हृदय हमारो ॥

संग लखी लोई मनबेनी बनी ठो खिकारी ।

मुमन सिंगार किए नख-शिख लो निजकर इयाम लंबारी ॥

प्रभु घामे सखि खेतत घासे फूलन सेव उजारी ।

धरि भूकि तैत परस्पर केकहि लखि अलगद विम प्यारी ॥

घाए कल्पति रामचरण सखि मुमन तियारी उतारी ।

नख-शिख मज्जिनुवक सिंगार करि सिहासन बंधारी ॥^१

इस पंक्तिओं में राम के स्वल्प का शेषन उपमोह-यत्न ही वर्णित है। अस्ति सीत-सीतर्व से युक्त उनके लोक बिहारी स्वल्प का स्थान पर रास-बिहारी का रूप ही प्रकटित रह गया है। दुर्जन के स्थान पर उज्ज्वल साधु, विप्र धारि पाप के स्थान पर पुष्य तप के स्थान पर बहु सामाजिक समाचार और कदाचार का स्थान

पर सदाचार की प्रतिष्ठा का कोई भी धारण राम ने इस कृत में नहीं है। यह चरित्र के प्रयत्न वगैरे से दून्य एकांगी है। राम का यह रूप सीधे-सीधे श्रृंगारिक भाव भावों को भक्त ही अनुभूति कर सक सार्वभौम विराहवाद को नहीं प्रदान कर सकता।

रामचरणदास की शिष्य-परम्परा में बीभाराम 'युवम प्रिया' जनकगण्ड विगोरी चरण 'उमिष्ठ धरणी' हरिदास धारि ने इस उपामना व सांख्यीय पद्य का नयी प्रकार पुष्ट किया है। 'युवमप्रिया' ने इसी में 'तस्मिन्नी' शायदा स्थापना की थी जिसके द्वारा इस उमिष्ठोपामना में 'परकीयाभाव' की उपामना का सूत्रपात हुआ।

बाहु मरी राम तुमरो नजरिया ।

बहि बितबत तेहि बत करि रागत सुखर इयाम राम धनु परिया ॥

बुलभम वत मुरा बाह प्रकाशत नातामनि सटकन मनहरिया ।

युवमप्रिया मिथिला बुर बातिन चँतो बाल बिच मानो महरिया । १

राम व सौम्य का यह प्रस्तुतन बहुत निम्न भावि का है। उमरी पृष्ठाभूमि में लोक-वर्ग की किसी भी प्रकार की प्रतिष्ठा न होने के कारण यह निराधार है। राम में सौम्य या किन्तु उतरी गतिन और मोटा के प्रभाव के कारण उनके गौरव में जो निवार घाना चाहिए या वह यहाँ नहीं है। राम का व्यवहार स्वल्प इस स्वयं पर विमुक्त ही उठा है। सब तो यह है कि राम व इस रूप में लार-रंजन का तत्त्व ही नहीं है।

राम ने धम के विपत्तियों के सहार के स्थान पर राम सीमा तथा ही धरने को सीमित कर लिया है। फलतः बाहर धोर भावुषों की मैत्रा के स्थान पर गिरीया अनुपधान की टंकार के स्थान पर बीजा मुरंग धारि की ध्वनि तथा देवताओं की जय जयकार के स्थान पर चण्डकला का गान ध्वनिगोचर होता है—

घात्र बत देवो रो घाली बीराय रसिक पिय रात रष्यो मुखदाई ।

रात भूयन बसन इयाम सतोने धंय लो मोस लो लंय लोनी घाली नमदाई ॥

बीजा मुरंग बुधंय बठतार धंय बाबत ईमन राम परम सोहाई ।

युवमप्रिया मान करहि चण्डकला लाल प्यारी उर्मपि तन दाई । २

जब भेठा ने राम के समस्त मुमनमानी बास का धमन राम धरनि करने की व्यवस्था कर दी गई है तब राम का ऐतिहासिक व्यवसाय तुलसी द्वारा प्रतिपादित पुराण-सम स्वरूप होने सुरक्षित रह सकता था।

रसीले लाला लागि गई लोनों प्रीति ।

त्रिय जानन बहिबानन प्रियनम बिरहिन रनि रधि रीति ॥

१ डा० मणवतीनिहू—'राम भक्ति में रसिक मन्त्राग्य कृष्ण ४२०

२ श्री भुवनेश्वरनाथ पिय—'राम भक्ति साहित्य में मधुर उदाहरण'—(पृष्ठा २१२)

३ श्री — बही — — (पृष्ठा २१५)

बाहू धबाहू हुमेब बड़त बित सचत न गज बिपरीत ।
 बाहू संघ रंग मिकठै नहि छोड़यो नीति धर्मीति ।
 मुपकै धनम्ब धरण पिति हौं प्रिय बड़ी प्रबल परतीति ॥^१

स्वामी युगमानव्यधरण 'हियलता' की उपर्युक्त पंक्तियों में मिरखू का परकीया भाव ही सुरक्षित है। सीता रामधरण 'रामरसरंगपवि' के धपनी 'प्रेम पदावली' के धम्यनत राम-सीता के मूमने के मनोहर रूप का निम्न पद में धरस बर्नन किया है—

भुक्ति भुक्ति सीताराम मु कूलै ।
 लाबन सरपू तत धनोद कम धन बरतत धनुकूलै ॥
 बल बामिनी कपौदा बलि बलि बोट बिधि हौंसि हौंसि हूलै ।
 मिलि मकार नाबत निय निय धबि सुनि सरतिम तन भूलै ॥
 धबल भास तुघारि तनेही लकि बर्नन दुग कूलै ।
 प्यारिहूँ धलघ तम्हरि लहै रस रंग मधी मुब मूल ॥^२

राम का यह रूप बहुत एकांगी और एक पत्नीय है। उनकी माधुर्योपासना के भूखे मकत-कवियों के समय ऐतिहासिक और साहित्यिक राम के विविध रूप बिध माल के स्वयं तुमसी का काव्य धनुकरण के लिए निधमान का किन्तु इन सखुदय मकत-कवियों को उनसे मस्हार मबाना का भला फिर के उनके लोक-धर्मों की धोर कैसे बृष्टि फेर पाठै। फलत राम के ध्यापक लोकाधर्मों का स्वसन हो जाना स्वाभाविक था।

राम की इस रतिकोपासना-परम्परा में इनी प्रकार की पदावधियाँ प्रस्तुत की जाती रही हैं। उनमें उपासना की रसिकता के सम्बन्ध में मने ही मुख मुख हो किन्तु राम के जीवन का मोह-महा पूर्ण रूप से बिलुप्त हो गया यह पूर्ण धरय है।

माधुर्य के कारण इस प्रकार के काव्य के धालम्बन राम में रति' स्वामी भाव की ही नाम प्रतिष्ठा हो सकी और धावि से धल तक शृंगार के ही बिभाव धनुभाव और संभारी भाव उधे पुष्ट करते रहे। फलत इन पदावधियों में शृंगार रस की ही प्रधानता है। बाल्य हास्य धादि धम्य र्यों का भी यत्र-तत्र समावेश है किन्तु इनकी प्रमुखता नहीं है।

धा—काव्य क्षेत्र की साहित्यिक रचनाधर्मों में नीत काव्य

तुमसीदास ने धनन्तर राम-काव्य की परम्परा धनुष्ठा रही है। उसके धर्म

१ यो भुबनेरधरनाथ निध—'रामभक्ति साहित्य में मधुर उपासना'

२ — (पृष्ठ २७०)

३ — (पृष्ठ २६०)

प्रपाद एक घंघ का बिबलन बिगन पृष्टा में किया जा चुका है। अब रहा घण्टे घण्टे निमयं काव्य लम्बा की प्रभुत्वता है। उस भी प्रभुत्व वर उसकी गीत परम्परा का घन धीमान करना आवश्यक है।

तुलसीनाम क समस्त केसवदास का रामचरितवा लतापति क 'बिबलन रस्ताकर' प्रसंगत 'राम रमायन' प्रयोष्यात्। उवाष्यात् का बीडेही बनबाग राम चरित उवाष्यात् का रामचरित बिलामधि रामनाय म्यानिपी का 'रामचन्द्रोदर मैबिलीयारण मुण्ड का 'सावन बगबैब प्रमाण' मिथ का सावन मन घादि राम पदक प्रभुत्व रचनाएँ हैं। गीत लम्बा क अन्वय म इन मगुण कृतिदा म बचन सावन घोर 'सावन मग' ही हमारी विचार-नीमा के भीतर घाते हैं। घण्टे रचनाओं के घण्टे घण्टिया का ही घण्टे हुआ है। इनसे उनको बिबलन का विषय नहीं बनाया गया है। फिर भी इस स्थान पर यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि इन रचनाओं द्वारा रामचरित के अतिरिक्त लम्बा घोर लम्बा का प्रभुत्व ज्ञाना गया है। घोर इनमें रामचरित लम्बा घोर एक पद्योप नहीं हो गया है। त्रैमा चरित परम्परा के अन्तर्गत अन्तर्गत हुआ है। यह प्रकृत मन्त्र है कि रामनाम तुलसीनाम क ममान इन बिबला न समन्वयकारी मायनाओं घोर लतापति का घण्टे काव्य उवाष्यात् क लप म नहीं खुल पाया है। इन्हीं में तुलसी काव्य क ममान के रत्न जीवन का बिबलन रत्न घोर लुप्टि करवाने में घममय रहे हैं।

भगवान् राम घोर पुराणम राम इन शान्त स्थानों को लतापति बनने में तुलसी ने स्तुत्य प्रमाण किया है। उन्हें सामान्य भूमि पर उतार कर भी उन्हींके उलट भगवान् लप को नहीं नी घूमित भीर स्पष्टित नहीं हीन किया। पर घमण्डित रूप में तुलसी की बहुत बड़ी प्रतिभा का काम था। उनसे घमण्डित घात्र तब बाँधी नहीं उतार महदुर्दय लप नहीं पशे मन्त्र है यह सावधान की बात है।

काव्य बन्धु घोर भाव का बन्धुत्व तो तुलसी में था ही। बिबु उन्हीं क अनुभव बिबिब काव्य लों घोर भाग-लौकी का घण्टे भी उन्हीं किया है। इसी में उनका मान किया हुआ रामचरित राजा में रत्न लप का समझे है। मन्त्र उस पदने घोर लुपत है तथा घण्टे लप क अनुमान ही उनसे रत्न घोर घात्र अनुभव करन है। इस प्रकार की मन्त्र-मुपमन तुलसी के समस्त क रामचरित-काव्य म लम्बा लप नहीं है। 'रामचरित' घोर रामचरणाय म बाधित्य है। 'राम रमायन म रीति वादीन बहि का बाँधी-बिबलन है। 'रामचरित बिलामधि में बचन-विषयता घोर 'बीडेही बनबाग 'सावन तथा 'सावन मन्त्र की काव्य बन्धु लतापति है। क मन्त्र घण्टे काव्य लपों को लेकर तुलसी लम्बा मन्त्रता नहीं प्राप्त कर लप है।

उपर्यक्त काव्यों में 'सावन' घोर 'सावन मन्त्र' शान्त लतापति 'उबिता घोर लप को बचन प्रमाणता देने के लिए लिखे गए हैं। इनके माध्यम में अतिरिक्त लतापति लपनाओं क अनुभव का अन्तर इन काव्यों में अतिरिक्त हुआ है। काव्य-वि घोर

तुमसी की उपेक्षित उमिमा बह गुप्त की प्रथिमा के बस पर बोम उठी लोचों को उसकी बायीं गुनकर बड़ा कीतुहल हुआ । रघुकुस की बहू का इतना मुस्करित होना जैसे ही मर्यादा की सीमाओं को तोड़ता प्रतीत हो किन्तु जीवन के बाह्य भावनों को सहन करती हुई वह मूक ही रही हो ऐसा भी ठो सम्भव नहीं है । इसी से गुप्त की ने घमस्त्वम की बात कहने की उसे पूर्ण स्वच्छन्दता दे दी है । इस धमिभार को प्राप्त कर उसने अपने मानस के सपन को मामिकता से धमिभ्यक्त किया है किन्तु कहीं-कहीं उसके कथन में प्राकृतिकता भी समाहित हो उठी है यही कुछ पसरता है ।

साकेत के नवम सर्ग में उमिमा की विरह-भ्यषा प्रस्फुटित हो उठी है । उसके लिए कवि ने ऊहारमक उक्तियों का भाषण न लेकर परिवार और संसार को उसके कथन का विषय बनाया है, जिनमें स्वामाभिकता की अनुमति होती है । गुप्त की उसके प्रति विशेष सहृदय हुए हैं इससे उन्होंने विप्रलम्भ के इस कथन स्पष्ट को मौं ही नहीं छोड़ दिया है ।

उमिमा के इस धारमाभिव्यञ्जन के लिए कवि गुप्त ने गीत लैली को ही उचित समझा है इसमें उनकी भावनाएँ अधिक मनोरम और मामिक हो उठी हैं । प्रियतम के विरह के उसके मानस पर अर्धवि-सिद्धा का शोक या जिसको अपनी धनु-बारा के प्रभाव से बह काट रही थी । उसका विरह की यह भ्यषा अन्तिम सर्प तक जहाँ मध्यम से उमिमा की भेंट हुई है वहाँ तक प्रवाहित रही है । 'प्रिय जीवन की वहाँ प्राज बह बड़की बेसा' में जीवन की विरह-बटना का उसे दुःख है । यह विरह-वनिता दुःख वर्णनातीत होने के कारण महाकवियों द्वारा काव्य का विषय नहीं बनाया गया बसुध उठी में उसकी भरिमा थी । साक्य में उसे सम्यक स्थान मिलने और उसकी धनुपारा के प्रवाहित करने पर भी गुप्त की का मानस प्रकृत्य ही रहा है ।

विरह-वेदना को उमिमा प्रिय समझ रही है । प्रियतम के प्रवास के कारण वह अपनी सम्पूर्ण इच्छाओं की उसी से पूर्ति देखती है । माता के समान वेदना भी उसे अपने बसास्वत से मगाएँ है इस प्रकार वेदना में निमग्न उसका समय कटता जाता जाता है—

बेचने तू भी बली बनी ।

पाईं मैंने प्राज तुम्ही में अपनी बाहु धनी ।

नई किरण छोड़ी है तूने तू बह 'हीर-रानी' ।

तजब रूँ में ताल हृदय में धो प्रिय विधिज-धनी ॥

ठंडी होगी बेह न मेरी रहे हृदय्यु धनी ।

तू हो जते उरक रसेमी मेरी तपन-धनी ॥

धा, धमाच की एक प्रतमज और प्रकृष्टि-धनी

तेरी ही छाती है लक्ष्मण उपमोक्षितरत्नी ।
 घरी वियोग-समाधि प्रमोणी तू क्या ठीक छो
 अपने को श्रिय को जगती को हैतू सिखी-सनी ।
 मन सा मानिक मूढ बिना है तुम्हमें जपल-जनी
 तुम्ह तभी छोड़ूँ जब लजनी पाऊँ प्राय्य बनी ।

बिरह के साथ बहु जीवन की प्रतिविमायां का भी अनुभव करती है । उसके
 अन्ततम में ही विमन का भाव व्यक्तित्व है । बिरह की कठोरता बने हो पीड़ित
 करे किन्तु जीवन के संयोग की सपुर स्थितियों सदैव स्मृति में छाती रहती है ।
 परिस्थितियां मानव जीवन का मातृका देनी हैं एनी से उसके लिए मृत्यु भी प्रिय
 हो जाती है । उमिता के निम्न तीन में विरायामाग की गुन्तर व्यक्तया है—

बिरह संग प्रभितार भी

भार कहाँ प्रानार भी ।

मैं निबद्ध में बड़ी हुई हूँ किन्तु लुप्ता है द्वार भी
 काल कठिन से क्यों न हो किन्तु है मेरे लिए उदर भी ।

कहाँ बिरह न बार दिया है किया कहाँ उपचार भी
 मुझ ब्रह्म हरनी किन्तु दिया है काल शान विचार भी ।

क्या दिया है उतने मूढको जन जीवन है भार भी
 घोर भरन ? बहु जन जाना है कभी द्विपे का द्वार भी ।

जाना मेरे इत डर में भी बचाना न। जनपार भी

प्रिय हो नहीं कहाँ मैं भी पो घोर एक लंकार भी ।

मनि रात्रि के घोरमन पर शीतक जनाकर प्रकाश की व्यक्तया करना चाहती
 है किन्तु निराशाओं के प्रथमार म बर प्रकाश को नहीं चाहती । प्रियतम को
 स्वप्न में ही नेग सफ इमने बहु खेदी निद्रिया का प्राणाय कर उठनी है किन्तु
 घन शीत गई स्वप्न भी नहीं घाया । घनन्तर प्रातः सौर दिन की परिस्थितियों से
 जूझने के लिए सज्ज हो उठी है ।

दिन की सभको बने घालि उने में प्रथम ही लूची

लुप्त भोगे है जन कुल भला क्यों न भोगूँकी ?

दिन की रात का इन घोरामन म उमिता का बिरह बचना ही गया है ।
 उमने पट श्रु के बन्ने घोर व्यथाओं को भी बिरहियां मानिजाया के समान उमनी
 बाधी भी प्रकित हा उठी है ।

का मतदानित लीन का यहाँ प्रथम का रात ।

मने न मू होकर बही मू प्रथम को घान ।

रात्रि मन्तु गुण्य मन पर उमने समीप प्रकर उमनी बिरह ज्ञाना
 से शय्य न हा उठे इमने उमने उमने बही में लीन जाने के लिए निवेदन दिया है ।

बसन्त ऋतु में कामदेव फलों के बाग से संसार पर आक्रमण कर देता है अपनी विद्योगिनी-स्विति में वह उससे सहृदय रहने के लिए प्रार्थना करती है। यन्त्रा रही कि वह अपना काम संयोगियों के लिए ही फैलाए, क्योंकि उस विरह-रक्षा में उसके प्रयत्न पूर्ण विफल होये।

मुझ फूल मन मारो ।

मे प्रबन्धा बाला विद्योगिनी दुःख तो क्या बिचारो ।

होकर सब के भीत सबन पटुं तुम कद्रु परस न मारो ।

बुझे बिकसता तुम्हे बिकसता धरुओ भव परिहारो ।

नहीं भोगिनी यह मे कोई जो तुम जान पतारो ।

बल हो तो सिम्हूर बिगु यह-यह हर-नेत्र निहारो ।

विरह में उसकी अभिलाषाएँ प्रियतम के सम्मिलन के लिए प्रातुर और प्राकुम होती रही हैं। अपने को मिटाकर भी वह उनको जाने के लिए सदाशापूर्ण है—

सब जो प्रियतम को पाऊँ ।

तो प्रकृष्टा है, उन बरबों की रज में प्राय रमाऊ ।

प्राय प्रबन्धि बन सखुं कहीं तो क्या कुछ बेर मगाऊ ।

मे अपन को प्राय मिटाकर जाकर उनको लाऊँ ।

विरह के कारण उसका मानस निरन्तर रदन करता है किन्तु उसकी बुद्धि ही तो यही कि उसकी बाणी उसके प्रियतम तक नहीं पहुँच पाती है। इस विषयता के कारण वह उस बन में जाकर रहना चाहती है जहाँ उसके प्रियतम अपने पवित्र कर्तव्य पत्र पर घाट्ट हैं। वहाँ आकर भी वह उनके व्रत में किसी प्रकार का व्यय जान नहीं डालना चाहती है किन्तु अपनी ध्वजा का समाधान चाहती है—

प्रिय के व्रत में बिग्न न डालूँ रहूँ निकट भी दूर ।

कथा रहे वर साव-साव ही समाधान भरपुर ॥

उमिता निम्न बीत में यौवन का घिमु के साव सावकन प्रस्तुत कर उससे प्राप्त रहने के लिए निवेदन करती है। उससे उसका कथन है कि वह बरे नहीं क्योंकि इस दुःखान बीतने पर सुकाम हाया और उसकी आनन्द मिल सकेगा। मन कपी पुजारी द्वारा उन कपी बाल में यौवन कपी साव जो प्रिय को भट देने के लिए वह सहेन रही है—

मेरे अपन यौवन-बाल ।

सबल संवल में बढ़ा तो संवल कर मत लाल ।

बीतन व रात होया सुप्रभात बिसाल ।

जलना फिर खेल मन के पहल क नयि माल ।

बक रहे हैं नाप्य-बल तीरे सुरग्य रसाल ।

वर न प्रबन्तर सा रहा है, का रहा है काल ।

मन प्रभारी घोर तन इत बुझिनी का बात ।

मेरे प्रिय क हेतु उसम एक तू ही साम ।

उमिता के बिरह में बँधविनकता है इसी से सारेण के ये सभी गीत उमो की व्यथा की समाहित किए हैं । उसके बिरह-बिसाप म समष्टि का ठरब उपसित ही रहा है । इसी से भारतीय साहित्य की ममत्वव्यवारी भावनाओं के समस्त बँधविनकता में परिपूर्ण उसका चरित्र विधिष्ण घोर बौद्धहनुम प्रतीत होता है ।

यह सत्य है कि गुप्त की मे राम के वृत्त को मानवतावादी शरीर दिया प्रधान की है । जिससे उमिता क प्रति हमारी बोधम घोर महद्वय पूर्ण भावनाओं का उत क स्वाभाविक है । किन्तु तुमसी गीति-नाम्य क समान उसमें सम्भरता मनागव्य विचारों की बोधमता आदि क अभाव की अनुमति ही होती है ।

सावत की उमिता के समान बनदेवप्रगाइ मिथ म 'सावत सन्त म भरत क चरित्र को प्रमुगता देने का प्रयत्न किया है । इस नाम्य म बँधेयी की बुद्धि करे जान क बँधी विधान का उस्तम्य हाकर बँधेयी घोर दगम्य के बिबाह क समय की उग घन का आधार बनाया गया है कि बँधेयी का प्रोगम पुत्र ही अयोध्या की राजगद्दी का अधिकारी घोषित हा । किन्तु राम क प्रति अत्यय बात्म्य क कारण बहु कम म कर सक तब उम रात को बायोविन करने क लिए भरत के मामा दुष्यजिन्ने बिबिध मुक्तियाँ अयगाईं घोर बहु भरत की बिबाधी अष्टाओं पर भी मफल हुए । इस प्रकार मिथ की म बँधेयी को निरकर्मक रखने का प्रयत्न किया है । भरत जब मानु-गृह से सीतलर अयोध्या आए तब उन राम का बनबाम घोर दगम्य का निघन आदि सभी पठित हो चुका था । अयत्र क प्रति अत्यय निष्ण घोर अयोध्या क राजदण क उत्तरा बिचार क बिधान के कारण बहु राज्य स्वीकृत न कर गये । बहु बिबाहुट गए किन्तु वहाँ मे निराम लीट आने पर उग्हान सग्न अाबन स्वीकार कर लिया । प्रजा-शोचन में बहु निरन्तर प्रवृत्त रहे अतन्तर सावत मे ही हनुमान घोर बगिष्ठ की निष्प दृष्टि द्वारा उगहे राम बिपदर सभी वृत्त मिलने रहे ।

भरत क आदर्श म मानवीय आत्मा की ही परिणति है । उग्हाने राम का बागी को ध्यात्र महिन मोटा दिया घोर स्वयं जीवन को दग्निक में निमग्न कर दिया ।

प्रभु अरुओं में अहित कर दो ध्यात्र महिन सारी पापी

आत्र भरत की परागागित में शान्ति स्वयं निमरो जाती ।

यह नाम्य बहुत कुछ सावत वृत्तों पर ही अपने अग्नितर को आपासित किए है । उनमें यदि उमिता को अभावना है तो अपर भरत को उमिता की बागा वहाँ यदि अविनित है तो यहाँ भरत का । राम के वृत्त जानने के लिए दोनों नाम्यों म एक ही मापन अयनाए गए है । इस प्रकार 'सावत गम्य मे सावत का अग्नु ही आधार हो उठी है । इस नाम्य में भी मानवीय बिचारवादाओं का हा आपासित किया है ।

सावत गम्य क १४ वें सर्ग मे मिथ की मे बुद्ध राती की क उमा आहुन ५१

है। हमने भारत की कानी अभिष्यञ्जित न होकर कवि द्वारा भारत भाष्यको हनुमान अभिष्य तना भारत के धारसों का नाम किया गया है।

काम्य न भारत के मायक होने के कारण भाष्यकी को कर्षों का विषय बनाया गया है। तब पर दो क्षारी के टुकड़े चार बुद्धिवाँ प्यारीं रहकर मित्र भी ने उठे प्राबुनिबता से निर्मुपित कर लिया है किन्तु फिर भी उसमें प्रभूर्त्त समय और पति सेवा की भावना है—

भारत की यह गारी ।

कल भी बघू प्राज भाता-सी बिष्य देखियौं हारी ॥

तब पर दो क्षारी के टुकड़े चार बुद्धिवाँ प्यारी ।

एक क्षत्र धातक की यह भी प्राचीं रहू तुलारी ॥

दोनों एक परम्तु बीब भी प्रतिबारा बहु भारी ।

बोवह कर्षों तक न भावना बिलने धण्य जिहारी ॥

उमिला का प्रिय बत में निमज्ज उससे कोसों दूर या इच्छे उसकी बिरह बेवना का निमूत हा उठ्या स्वाभाविक या फिर भी पत्नी की कामना लेकर बहु उससे समीप नहीं पहुँच सकती थी इस भावना को लेकर कवि ने उसमें चरित्र को उठाने का प्रयत्न किया है—

दूर उमिला का सागर था ।

देह महल में उड़ हुई थी वर न निवृत्त बिरह-निर्भर था ॥

भरां कर्षों न जल-भारार्से सख-सख कर्ष-कातर था ॥

किन्तु प्राणको को तो प्राणों का भरना भी बजिततर था ॥

सम्मुख है राकेय बकोरी पर न उपर निज नयन उठाये ।

बिबती प्रभा प्रभाकर की है पर न कमलिनि मीद बनाय ॥

बा बसंत घोषों के प्राये पर कीलित ही पिक का स्वर था ।

धरह ! मान्दबि को तो प्राणों का भरना बजिततर था ॥

जो है दूर उठि कि प्राणा रक कर मन सनभ्याया जाये ।

सकल तराहूँ में उत घन कि पात रहे वर पात न प्राये ॥

सलिन बिरह कि बज्ज न जिवने स्वत व्यात उठता बुनर था ।

धरह ! मान्दबि को तो प्राणों का भरना प्रि बजिततर था ॥

मान्दबी के समय भारत के साकु-बोधन की कति-विधि के प्रस्तुत रहने पर भी उनकी प्राणा पर निवृत्त उसकी कामना-मूमक निवृत्ति का ही चोटक है। प्रथमया इमक निवृत्त यही क्या बज लौनाय्य वा कि उचक पति उसने समया राग्य-नबासन दीर मीक-कस्यान में प्रवृत्त थे। वैयक्तिक वातना को कर्ष विषय बनाकर इस प्रकार बिज प्रस्तुत करने में धाज के मुप के मानक की सहृदयता भजे ही उचर प्राण विन हो उठे किन्तु रकु-भंदा की सम्भीर और धारसं धर्मावा के बिलाप में बहु

प्रवचय है यह प्रथम मध्य है। इसको ध्यान में रगकर ही बास्माकि घोर तुलसी इन चरित्रों के सम्बन्ध में पूर्ण मुक्त रहे थे।

हनुमान में सरमण गति धीरे राम की विज्ञानता का समाचार प्राप्त कर भरत संका जान के लिए मग्न हो गए। घोर बहु धरणी मानस-विक्रम के बन्धन उड़ने के लिए प्राणायाम में जा पहुँचे। किन्तु अभी गुरु बसिष्ठ ने उन्हें धामधर्म भविष्य देखने के लिए विषय दृष्टि प्रदान कर दी। भरत ने महा विषय के सुन्दर चित्र देखे और उन्होंने जीवन भर के महा-व्रत लिए घोर दुःख भोग रहने का संकल्प कर लिया—

गुरु बसिष्ठ उस ही क्षण प्राए।

मानस विद्युत् के साधक से जबकि भरत कथ पर मग्नरावे ॥

रोका उन्हें घोर गुरु बोले विषय दृष्टि देता हूँ देखा।

प्रभु की आज्ञा को मत्त राखो सो धामधर्म भविष्य सरेसो।

बल विद्युत्-से सम्मुख प्राए लला त्रय के विषय मुखाए।

तुलसी द्वारा राम-चरित का एक स्वरूप मानस बहिर्भावों घोर गीता बनी' द्वारा प्रस्तुत कर दिया गया था। उसी का तुलसी ने उत्तरकामीन बहिषा में परिवर्तन और परिवर्तन के माध्यम धामधर्म का विषय बनाया। रामचरित का 'कवित्त रत्नाकर' 'रामचरितोदय' 'रामचरित विष्णुमणि' आदि काव्यों में धर्मिक प्राणतन उत्पन्न है जबकि 'बैदहो बनबाम' 'सावत' घोर सावत-मन्त्र में प्राणतन बल के होमे पर भी कवि की भावनाओं में सुन्दर विद्या को प्रहृण करने का प्रयत्न किया है। इनमें 'सावत' घोर 'सावत मन्त्र' की सुन्दरतम उत्पत्ति पर धरना विद्याध्याय कर सके हैं। इसी से उनकी बस्तु हमारे कौतूहल का जाग्रत करती है। उनकी विद्यता का कारण यही है कि है।

उपर्युक्त होना काव्यों में गीत-उत्पत्तियों का भी योग्य हुआ है। किन्तु तुलसी के समान मात्र रंजक और समन्वयकारी गीत में काव्य प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। इनमें हमारी धर्मविरुद्ध घोर मनोवैयर्थ्य मूर्खता की भावनाओं की सृष्टि भन हो जा सके। किन्तु सावधोम भावनाओं का उनमें प्रभाव है। परन्तु इन काव्यों के भी तुलसी के गीतों की समता में स्थिर नहीं हो सके हैं।

इन काव्यों के गीत ध्यायावली काव्य के गीतों के अनुसरण पर निर्मित हुए हैं। इन गीतों में राम राधिका के नाम बहिषा द्वारा प्रकृत परिष्करण कर लिया गए हैं। किन्तु इनमें मध्या के सभी उत्पत्त उदभव हैं। गीतों में उनका माधुर्य घोर ध्यायन प्रकृत है। इन दृष्टि में ध्यायावली काव्य का सम्पूर्ण गीत गीतिय मध्यकामीन गीत गीतिय में बहिष्य गीत है। सावत घोर 'सावत मन्त्र' के गीत तुलसी के भी धरतन नहीं प्राप्त जा सके हैं। किन्तु उत्पत्त तुलसी के राम-चरित की गीत-उत्पत्तियों का धरतन प्रकृत किया है यह स्पष्ट है।

२ लोक-साहित्य में राम परक वीर काव्य

राम धार कृष्ण दोनों प्रवृत्तियों के अतिरिक्त अन्य प्रवृत्तियों की अपेक्षा हमारे जन-जीवन के अधिक समीप रहे हैं। प्रवृत्तार लेकर उन्होंने मानव के समान ही साधारण किया है। इससे उनके वृत्तों और घावघों का भारतीय जीवन में सरसता से गहन होता रहा है और उनकी परम्पराएँ उसकी अमिश्र घंघ बन गई हैं।

सम्प्रदायों और छिद्र काव्यों में उनके अतिरिक्त को लेकर विविध स्थापनाओं घावघों और भाग्यताओं का अभाव होता रहा है। राम के पुत्रपौत्रमत्स्य के साथ नववात् रूप मिश्रण इसी प्रकार की नवीन अमिश्रि रही है। साधारण जीवन में विविध सत्कारों और समारोहों के प्रसर पर उनके वृत्तों के मात से उनकी अति अमिश्र परम्परा बुझती नहीं या रही है। इसी से चौहुरों वैवाहिक समारोहों तथा सामाजिक उत्सवों घादि के प्रसरों पर मात में उनकी जीवन-सीमाओं का उपयोग किया जाता है।

लोक-जीवन की इस प्रवृत्ति से राम और कृष्ण दोनों की सीमाएँ अमिश्र रह सकी हैं। विशेष्य विषय के अनुसार हमारा सम्बन्ध लेखन राम के जीवन से ही है। इससे राम परक लोक-गीतों पर विचार करना ही इस स्थान पर उचित है।

पुत्र के प्रभाव से राजा बधरम ने तीम विवाह किए किन्तु फिर भी उनमें से किसी के भी पुत्र उत्पन्न नहीं हुआ। अन्त में कौशल्या ने सुभ स्वप्न देखे रातियाँ गर्भवती हुई और उनके पुत्र राम उत्पन्न हुए। राजा ने पुत्रों के उत्पन्न होने पर हीरा मोठी बाँटे और अन्त मनाया।

सोने के बहुरवा राजा बधरम बहुर बहुर बने ।

रानी होइवै अन्धिये में सोर की बिरवा रानी बहिनि ॥

राजा कहैवै बहुरा बिभहवा तउ हमरी बहिनि सँव ।

बहुरा बिभहवा राजा किहनि छठि माता तापनि ॥

रानी होइवै अन्धिये में भार बुभवे रानी बहिनि ।

राजा कहैवै बिभहवा बहुरे भोर बउ नाहि ।

तिहरा बिभहवा किहनि राजा छठि माता सापनि ।

रानी होइवै अन्धिये में भीर तिनि रानि बहिनि ।

बोधत छुनेउ मटरिया धपव एक देखेउ ।

राजा तबनेक करहु बिचार तबन बउ भुवर ।

बंया में बैकउ बनकन बमुना हुनोरत ।

राजा तहुर महर देखेउ तहनु तपन बउ भुवर ।

राजा पोबइ अ म क बरिये बान मीहि दीहानि ।

बुन रह बुन रह ए रानी बुनि न सुनई ।

रानी करिहै प्रजुषिया न सोर कौसिम्प रानी गरम सति ।
 होत बिहाग यह काटत राम जनम सिहै ।
 बहिनी बाज लागे बरही बजनबा उठन लाग सोहर ।
 कौसिम्प के जनमे ह राम सुमिप्रा के लक्ष्मिन ।
 रानी केई के भरत भुवाल तीतिउ घर सोहर ।
 हंसि हुलसि राजा बशरम हिरा मोती बाँटे ।
 जब बचपा क देह समीप प्रबषर मंगस ।
 जो यह मंगस माव गाइ मुनाबइ ।
 तो सो तुलसी जगत तरिजाइ प्रमर यह पाव ।

राम विषयक भुक्त-गीतों के सम्बन्ध में यह विचारणीय प्रश्न है कि उनरी गिता में प्रसिद्धात् 'तुलसी' का नाम ही मिलता है। क्या उन मातृ-गीतों के निर्माता 'मानस'-कार तुलसी ही हैं? इस सम्बन्ध में इतना ही कहना उचित है कि उनके रचयिता गोस्वामी तुलसीदास न होकर अन्य मातृ-कवि ही रहे हैं। तुलसी की सिद्धि से इन्होंने स्वयं लोक-गीत रचकर उनका नाम से प्रचलित कर दिए हैं।

राजा के सौभाग्य से पुत्रों का जन्म जन पर बंग की प्रप्रशासित प्रसिद्धि है। पतिजन और पुरजग के लिए प्रानन्दोन्मत्त का हमारे बड़कर प्रम्य कीन प्रसार सकता था। इन प्रबसर पर राजा के प्रानन्द समारोह में सम्मिलित होने के लिए शारियाँ बौड़ पड़ी। निम्नादिष्ट गीतों में पुत्र प्रभाव में गनिया का प्रभाव गोदान जन्म प्रानन्द-समारोह प्रादि के मार्मिक विषय प्रस्तुत है—

१ प्रग्या तो तजई कौसिम्प रानी पनिया न पाई
 राजा सोहि पर तजबे परान तो एर लगति बिन ।
 बाइड लागति गया डबड़िया प टाड़ो करे,
 रानी सइस्य पिताम्बर घोतिया बमन बहू सोप ॥
 लोम्ही है लागति गया डबड़िया प टाड़ि बिहो
 रानी लोगी पिताम्बर घोतिया बमन बहू सोप ।
 होत बिहाग यह काटत राम जनम सिहै
 बहिनी बाज लागे प्रानन बर्यया उठन लागे सोहर ॥
 मिलहुन सतिया सहेसरि मिलि जुनि अनिनिउ
 जहाँ राजा के जनम है राम कीरति नबदासरि ।
 सेउ लनि लिरी है बाजुवर सेउ बजराश
 बहिनी सेउ रे इतिनबीउ सोर कर नबदासरि ॥
 भितरा न निबसो कौसिम्प रानी प्रानन में टाड़ो भई
 रानी यह यह हिरिया मगाव कर नबदासरि ।
 रामा के प्रबसा जननरी बटन निर लाग ॥

सब बिहे है मुह ओ बसिष्ठ देवत निक लार्ग ॥
 राम के मचवा लहरिया बहुत निक लार्ग
 जैसे फूलहि क बिच कलिया देवत प्रबि लार्ग ।
 रामा के मचन रतनोरे कजर मल सोरुं,
 रचि बीही है फुला सुमदा नू पतरिम प्रगुरिमा ॥
 रामा क मोड़वा बुधुरवा बहुत निक लार्ग
 नाम्हे गोडवाई बलई देवई राजा बसरव ।
 जो यह मंसम गाई माइ सुनाये
 तो जो तुलसी जगत हरि बाइ धमर पर पाव ॥

- १ अंत क महिवा रामा प्रवच लहरिया हो
 राम जी सिद्धेन प्रवठार हो न ननरिया मोरी ।
 राजा के बुधुरवा रामा मोचत जाने हो
 बर बर मंसमचार हो ननरिया मोरी । —(रामजी सिद्धेन०)
 के तो लुटाये रामा धन बन तोनवा हो,
 के तो लुटाये लुतिपन बार हो ननरिया मोरी । —(रामजी सिद्धेन०)
 राजा जी लुटाये धन बन तोनवा हो
 रानी लुटाये सुधियन बार हा ननरिया मोरी । —(रामजी सिद्धेन०)
 सुर नर नृनि मिलि पावत बर्षवा रामा
 हरकित नूने सब लोक हो ननरिया मोरी । —(रामजी सिद्धेन०)

विश्वामित्र जी के साथ राम-नक्षत्रम बनकपुरी पहुँचे धीर अपने शीशुर्म के
 कारण बर्षा के नियम बन गए । उनके प्रप्रतिम शीशुर्म को देखकर सिद्धियों को विषय
 कीतुहस हुआ धीर ने उनका परिचय प्राप्त करने के लिए जिज्ञासु हो उठी—

मनि संम बालक काक छापी रतमार नना जाने
 राम लजन कोसिम्या के जाए बसरव नाम पिता क । —(रतमार०)
 कीट मुहुड मकराहत बुधुल बन्य बाब सिहे कर से । —(रतमार०)
 कर्म क हीर बरबपुरी नगरी इयाल मोर संय कैत । —(रतमार०)
 सिपा जी के साथ सभे सधि भाई भूजा करे उमा के । —(रतमार०)
 तुलसीदास कहूँ करबोरे संक सिखा विपनाक । —(रतमार०)

बिबाह-समारीह में शीपक की बत्ती मिसाने का एक संस्कार होता है । शीपर
 के घनतर बर बर के भीतर, जहाँ छाई भूबी जाती है शीर बेबी-बेबता की स्थापना
 कर दी जाती है न जाया जाता है । वहाँ शीपक में जलती हुई वो बत्तियाँ बर लोभे
 की लौक से मिजाता है । इस समय पर बर के साथ कन्या प्रसन्न की सिद्धियों को हाथ
 पहिहास करने की सुविधा रहती है । राम बत्ती मिसाने के लिए से जाए पाए हैं,
 किन्तु बापी राठ हो जाने पर अब वह बत्ती नहीं मिसा पाते हैं तो बनकपुर की

स्त्रियों परिहास मूसरु बापा म राम स बहनी है—

बीत गई घापी रात राम तुम कस म मिसाबहु बानी ।
 की घर मां भयिनी मिसावसि की बातो जाय ताती ।
 यह ल बहनु नपर प्रजुष्या मानु कोमिस्या ताकी ।
 हंसि ममुकाई बहनी रघुनगहन हमरे कुस म रोती ।
 सब मिसि सखियां तुमल होइके बोसी सब हमरे सग जाती ।
 जो कृष्ण भाँसि सो बेहु सलन व गज मुखता बहु भीती ।
 मोतिन की रच भालरि लाइहु बड़ि के प्रजुष्या की जाती ।

विवाह के उपरांत राम श्याम्या म मातिया की भासरि स मुदामित बीबी पर स्नान कर रहे है । सीता जो मुस्करा रही है । गणियां इस समय गीता जी से पूछ ही बैठी कि वे कौन व्रत-निमम है जिसस राम जैसा बर उग्ह प्राप्त हुया । सीता एकादशी व्रत भूषे बाइयों को भोजन कातिकर स्नान तुलसी व। दीपक यसाता माप-मास का स्नान रविवार का उपवास आदि व्रत नियम व नगबन्ध मे बन्धन करती है । ये वे व्रत निमम है जिसको हिन्दू-परिवारो की स्त्रियां घोर कुमारियां अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए प्राय भी मन्थन करती है—

बन्धन केरि बइकिया मोतिन सागि भालरि
 बहिनो तेही बड़ि राम नहाइ सोना रानी बिहैन ह ।
 मबियन बैठी सीता जो सखिन सब पुदरि
 तजो कवन किहुइ व्रत मम जो राम बर पावइ ॥
 भुकी रहेइ एकादशिया कुपारलि बारन
 सति मूलन बाइयन त्रियावइ रामवर वार्येइ ।
 कातिक मात नहोपेइ अगिन गहि ताप्येइ
 सति तुलसी क दिवना जलावइ रामवर पावइ ॥
 मार्ये मात नहानउ अगिन न ताप्येइ
 सति बिपि से रह्ये इतबार राम बर पावइ ।
 जो यह भंगन गाब पाइ तुलाबे
 तों सो तुलसी अवत तरि आई अमर पर पाव ॥

राम मउमग भरत दपुष्प तथा उमर अग्य मित पाप नपन के लिए अमरपुर म पपारे है । एउ पग म वे स्वयं है घोर कुमरे पग मे सीता जी को अग्य सगियां है । मबने हाप मे रस व। रिचकारिया है कुम-कुम भर हुन है । मुनाम उठ रहा है इसम धाराग घोर घृष्बी मभी माव बयं व हा रहे है—

सलन काम प्राय कुमार दकरय क जाये ।
 राम लरन कइ भरत सलन अक भूप मुनबाये ।

द्विती पद-परम्परा और तुलसीदास

प्रबन्धपुरी के राम रसिया संघ सखा सब साथे ।
किरत चारों इतराये ॥

सबके हावत रंग विचकारी कुम कुम भरि भरि साथे ।
सीता बी को कोई सहैसी घर से न निकसत पाये ।

निबिन्हापुरी की राती सुनपता रंग कुमुम्भी पुराये ॥
प्रबन्धपुरी को कोई बबेना बिन विचकारी छाये ।

उद्धत मुलास नास भये बाहर रंगमूमि पर साथे ।
गुलाल गालत मलबाये ॥

छंकरबाप राम बी ने तोरयो मनि जन संगत पाये ॥
जनकपुर बजत बबाये ॥

कृष्ण की छाप-कीड़ा जन-जीवन मे पुछी हुई है । उसी के अनुकरण पर
मोरु-कवि ने रामचरित के साथ भी उक्त कीड़ा का सामंजस्य बिठाने का प्रयत्न
किया है ।

कैटोपी के द्वारा राम-जनबास का बर माग लिए जाने पर वह जन के लिए
बस दिए । साथ मे उनके सहमन और सीता बी । वह धयोम्पा में माठाघों पिठा
बसरब भरत को रोठा-बिलपठा छोड़कर बस दिए । मार्ग मे उन्हें विविध प्रकार के
कष्ट सहन करते पड़े ।

जन को निकल घये रमुराई ।
घामे घाग राम बलत हे पाये लक्षित भाई ॥

बीनों बीबे मानु जातकी ओमा बरनि न लाई ।
पर में रोव मानु कौसिल्या द्वारे भारत भाई ॥

राज बसरब प्राण छत्रन हेँ केई मग बछ्छाई ।
रिमन्धिम रिमन्धिम सेह बरासे पवन बई बुरबाई ॥

कौनहु बिरिछ तर नीजत होइहेँ राम लखन बोज भाई ।
मूध लये भोजन कहेँ पइहेँ प्यास सय कहेँ पानी ॥

नीव लये डासन कहेँ पइहेँ कुषा काठ मड़िजाई ।
लक्षिमन साथे कह्य मूल फस सीता ने खेवन बनाई ॥

राम लक्षमन बबन बीठे तोभा बरनि न लाई ।
तुलसीदास बलि घास बरत की हरि बरतन चित लाई ॥

अर्थात्-पावन को वृष्टि मे सीता को बलबास से देने पर भी अस्वमेव यज्ञ
की बेला पर राम को उनकी धारमपता पड़ी । उन्होंने उनकी बुला माने के लिए
बुर बसिष्ठ को मेरा । सीता ने उनकी यथोचित धम्मपता की किन्तु वह सीटने के

लिए सहमत न हुई—

शैलइ की तिथि नबनी जि रामा जगि रोपई ।
 बहिनि बिनुरे सीतहि जग सुनी त के जग देखे ॥
 गुब तोहरे मनाप सीता मनिहू मनाइ सयाबहु ।
 प्रगवाँ जैसे हे सुम नउबा तो पिछवाँ बतिष्ठ मुनि ॥
 बहिनी सेहि पीछे जैसे है—सदिमन बैबरा सीता क मनाई ।
 गुब हेरुं जायें बिधि क मइया जहाँ सीता तप करै ॥
 नहाई शोरी सीता ठडि भइ भरोसबा नजर गई ।
 सदि य त बडि भागि हुमारी गुन हमरे प्राब ॥
 सोने की मारी में धारति साजिनि साजि उतारिनि ।
 सीता घोड़ति गुब जो क पाव तो माय बडाइनि ॥
 इतनी नु बुधि तिता तोहरे तु बुधिया में प्रापरि ।
 सीता रामक घोड़उ प्रबुधिया तुहँ बन सीबहु ॥
 हमरा कहा सीता करितिउ परग भुँइयाँ बलतिउ ।
 सीता उररी प्रबुधिया बसउनिउ घमरि बन प्रउतिउ ॥
 तोहरा कहा गुब करबे परग भुँइँ बलबे ।
 गुब नाहो प्रय प्रबुधिया संसत प्रब सहबे ॥
 एक बरि प्रधियाम नायन फिरि घँबजायनि ।
 गुब बडि बडि संसति कराइ तो बन क नितारेनि ॥
 गुब इतनी म बाउँ प्रबुधिया तो तुलसी प्रथम बनो ॥

राम-चरित के उपर्युक्त कुछ स्थानों को लेकर हमने यह देखा है कि उनकी अधिकतर परम्परा जन-जीवन में प्रचलित है। प्रथम के अनुसूय गीता को पाकर मुख्य सिद्धांत अपने समारोहों को मान्य मन्त्र करती हैं और इसमें वे बिनाय पुष्प का अनुसूय भी करती हैं।

तुलसी के अनन्तर के राम परत गीत काव्य का पथवेधान करके हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि राम गीत-काव्य की परम्परा प्रायः तब प्रचलित है। राम परत हीकर नारायण भी रहे हैं इसमें उनका अमित्र स्वयं भक्त माहिलियत और प्रामीण सभी को एक समान प्रिय रहा है। उनकी इस सर्व प्रियता व कारण बहि राम को अपनी काव्य बगु का विषय बनाना रहा है।

राम तुम्हारा वृत्त स्वयं ही काव्य है।

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है ॥

राम-चरित का लेकर काविक और माहिलियत क्षेत्र में विविध कवियों के गीत काव्यों का हमने विवरण का विषय बनाया है उनका नाम तुलसी को रखकर हमने यह निष्कर्ष प्राप्त के विचार किया है कि वे तुलसी व प्रायः तब ही पढ़े

सके हैं। यह अक्षरम सत्य है कि तुलसी और अनन्तर के कवियों की काम-यत्न परिस्थितियों में महान् अन्तर है किन्तु उनके अध्येयन प्रतिभा पाश्चित्य भारतीय जीवन की परब समन्वयवादिता धादि-भादि ऐसे तत्त्व हैं जिनको समाहित कर कोई कवि नहीं बन सका है। सच तो यह है कि तुलसी अपने स्थान पर अद्वितीय और अनुमनीय हैं।

गीत गीती के अतिरिक्त अन्य गीतियाँ में रचित उनके राम-काव्य की तुलना में भी हमको हिन्दी-साहित्य में किसी कवि का काव्य नहीं मिलता है। 'मानस' अपने प्रभाव और स्वरूप में हिन्दी की सभी रचनाओं में शीर्ष पर प्रतिष्ठित है।

तुलसी के स्थान पर हम किसी कवि को प्रतिष्ठित नहीं कर सकते हैं यह सच सत्य है। उनकी सभी प्रत्येक स्तर क मानव के लिये प्राप्त बाध्य है, इसी से हम तुलसी और उनके काव्य की किसी क्षण उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इसी से उनकी भावनाओं और विचारों का अनुकरण होता है और सद्बोध तबसे अपनी वृष्टि का मान्य-मान करते हैं।



तुलसी के पद-साहित्य का वैशिष्ट्य

तुलसी ने अपने समय के अस्त-व्यस्त भारतीय जीवन को सुस्थिर और समन्वित करने के लिए मर्यादा पुरवातम रामचरित का आदर्श व्यवहार समझा था जिसके माध्यम से उन्होंने हमारे पारिवारिक सामाजिक धार्मिक और राजनीतिक जीवन के लिए अविच्छिन्न धाराएँ प्रस्तुत किये। वे आदर्श तीन से अधिक शताब्दियों के उपरान्त प्रायः भी हमारे लिए उपयोगी और पूरा समुद्रमय हैं। हम सम्बन्ध में उनके महा कवि की प्रतिभा ही प्रतिफलित हो उठी है जो राम के उदात्त चरित्र के भाव में भारतीय जीवन के सामान्य स्वरूप का वे चित्रित नहीं कर पाये। इसी में प्रत्येक स्थिति और घेरी के व्यक्ति की जीवन विषयक किसी भी परिस्थिति का सम्बन्ध समाधान और सुष्टि तथा उनकी व्यापक विचारणाएँ और स्थापनाएँ उनके काव्य में विद्यमान हैं। इसमें उन्हें भारतीय संस्कृति के प्रतिनिधि होने की प्रतिष्ठा मरमता से मिल गई है।

बर्णाभम एक मारी आदि की व्यक्तियों के सम्बन्ध में उनके कविपय स्पष्ट भाव के सहृदय और बिबेकी को मर्जी और पशुपात पूर्ण लगते हैं। इसका कारण एकमात्र उनकी दृष्टि बिभेद है। ऐसे स्वभा को धार्मिक युग की प्रति-विधि व्यवहार और आचरण की दृष्टि में न रख कर कवि-जात की सामाजिक धार्मिक आदि राजनीतिक परिस्थितियों और बर्णाभमी परम्पराओं का ध्यान में रखकर विचार करना होगा। उस स्थिति में तुलसी के वे स्वयं भी नहीं और नरे उन्होंने प्रयोग हुए सम्पत्ता उनके साथ अविचार और अज्ञान हो जाने की सम्भावना है।

नामादास ने अपने 'भक्तमाल' में उनके व्यक्तिगत और इतिहास के सम्बन्ध में निम्न रूपसे प्रस्तुत किया है—

बैता काव्य निबन्ध करिष सत होति रसायन ।

इक अक्षर उद्धर बहु हृत्पादि पराजय ॥

अब भवनि लुप्त बैन बहुरि लीला विस्तारी ।

रामचरण रसमत्त रतत अहनिनि अत पारो ॥

संतार अवार के बार को सुखम रूप नबका लयो ।

कलि दुहित ओष निहार हिन बाहमीनि 'तलमो भयो ॥

भारतीय आचारण में पुनर्जन्म के विज्ञान की आवश्यकता होने हुए भी हमारे तुलसीदास का मर्यादावादी का अक्षर न माने बाह्यमूर्ति द्वारा 'कवि' मत्त होति रसायन के एक-एक अक्षर से अट्टहास के साथ ही सुविधा हो सकती है। १६ (चरित रूप-राज्य अत-वादि प्रविशन्तम्)। एक-कम-अक्षरें पूजा महापातकना-अक्षर—भी रामदास (ठाक) इतिहास-मानी माग-प्रदायिक आख्या मानकर हमारे उग पर विचारण न करें किन्तु तुलसी के द्वारा निहित राम-नाम मा १६५ तक वे मोक्षार्थी तथा अविश्व-सीत

सौन्दर्य से समाहित उनकी सीमाओं पराध्य राम में उनकी निष्ठा और अविचल मक्ति को ता मानने के लिये बाध्य होता ही पड़ेगा । वस्तुतः ये तथ्य ही उनको महाकवि की प्रतिष्ठा प्रदान करने और देश का सर्वोच्च कवि प्रमाणित करने के लिए बरस है ।

तुलसी की भावनाएँ व्यापक विचार बम्बीर और काव्य-रूप तथा भाषा-शैली सर्व-सुलभ रही हैं । वे विशेषतः उनके सम्पूर्ण काव्यों में बुझी-मिसी हैं । इसी से उनके पाठकों और विशेषताओं का सामान्य सवावैद्य उनमें उपलब्ध है । इस स्वभाव पर हमें उनके पर-साहित्य के वैशिष्ट्य का विश्लेषण करना है । फलतः उन्हें प्रस्तुत करने से पूर्व उनके काव्यों की सामान्य विशेषताओं पर दृष्टिपात करना भी समीचीन है ।

तुलसी काव्य की सामान्य विशेषताएँ

श्री हृदयगीतावली के प्रतिरिक्त उन्होंने अपने छेप काव्यों में राम-चरित की ही प्रमुखता दी है । माधुर्य भाव के कारण यदि कृष्ण में सौन्दर्य का प्राधान्य है तो राम में अविचल-धीम-सौन्दर्य यही का । राम के जीवन के ये तत्त्व प्रत्येक क्षेत्र के मर नारी को प्रपत्नी और आकर्षित किए हैं । इसी से पुरुषोत्तम राम में भगवत रूप की प्रतिष्ठा से उन्हें प्रपत्नी भक्ति भावना और जन-मान के संबन्ध के लिए धरलता से सब कास प्राण हो गया है । पत्नी विपत्ती सभी उनकी अनुकूलता की प्रेरणा करते हैं । रावण तक उनके हाथों से मृत्यु का आतिथ्य कर सक्षति चाहता है । इसी से हनुमान अक्षर मन्वोदरी घाटि के समझाने पर भी वह उसे बँर नहीं छोड़ता । अन्त में जन्मी के हाथों से उसका निबन्ध होता है और मन्वोदरी कह उठती है—

ग्रहह नाथ रघुनाथ तम कृपा सिन्धु की धान ।

मुनि कुलम को बरनवति लोहि होम्ह नमवान ॥

राम के समान कृष्ण भी सीताचारी भगवान् के रूप में ही विभित हैं ।

तुलसी के राम कर्तव्य और मर्यादावादी हैं । उन्होंने जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का स्वागत और उसी के अनुसार आचरण किया है—सिख बगुण तोड़ देने पर भी न उन्हें घाह्ना है और न ग्रहकार परपुराम के फूट होने पर भी न उन्हें आन है और न रोप रागवामिवेक के स्वान पर बतवास का आदेश प्राप्त करने पर भी न उन्हें दुःख है और न खिन्नता । अग्य स्वर्गों पर भी उनकी समदृष्टि रही है । उन्होंने सर्वत्र सम्भीरता से आचरण किया है । माता पिता अनुज पत्नी सखा सेवक घाटि सभी के साथ कर्तव्य और मर्यादा से परिपूर्ण उन्होंने व्यवहार किये हैं । इस प्रकार उनके व्यापक चरित में भारतीय जीवन की सम्भावित कल्पनाएँ आकर मर गई हैं जिससे मानव को समान परिस्थितियों में वैसा ही आचरण करने का मन्त्र मिलता है । केवल राम में ही मर्यादा पामन नहीं है उनसे संबंधित अन्ध भी उसी और अनुसृत रहे हैं । वधरथ, शौनसा मरठ मधमक सीता निपाह हनुमान आदि भी उसी में प्रकृत हैं । इस प्रकार राम तथा अग्य चरिता में सममानुभव वर्तव्य के मन्त्र उपलब्ध होने के कारण प्रत्येक भारतीय अपने जीवन की कितनी भी परिस्थिति का समानानुभव उनके काव्या से प्राप्त कर

सफ़टा है। सब तो यह है कि भारतीय जीवन की समझता उनमें प्रतिबिम्बित हो उठी है। तुलसी इस सम्बन्ध में अद्वितीय हैं। कामिनाम, मन्मथी कबीर, मुरारिग घाबि को भी इस व्यापक तथ्य की प्राण प्रतिष्ठा नहीं कर सका है।

राम राज्य की प्रतिष्ठा में राजा-प्रजा दोनों ही अयोग्याभिन हैं। बनबास के लिए राम की बिधा-बसा पर प्रजा राम का अनुगमन करने को प्रस्तुत है जो उनके अनुपाय का सबल प्रयोग है ता राम भी प्रजा के आशय से मीठा का परिष्कार करने को प्रस्तुत हैं जो उनकी प्रजावत्सलता का अमिट स्वरूप है।

हिन्दू धर्मों के परस्पर के वैपश्य को मिटाकर सर्वधर्म-समन्वय का समाज की पीम होती हुई अमि को पुन मन्मथ बना देना यह तुलसी जग महाकवि की अद्वितीय अकनता है। वेद का धर्म कोई भी कवि ऐसी व्यापक रचना को लेकर अद्वय नहीं हुए।

ज्ञान कर्म और भक्ति में उन्होंने भक्ति को ही सर्वोपरि माना है। इस कारण उनके सम्पूर्ण काव्यों में भक्ति ही प्रमुखता प्राप्त करती जाती है। यों ज्ञान कर्म में भी ईश्वर प्राप्ति हो सकती है किन्तु उनका मापन भक्ति है जबकि भक्ति का मापन मरत है। उसमें अपने आराध्य के प्रति अनन्य अनुगम ही पर्याप्त है। इस तथ्य के आधार पर ही उन्होंने मन्मथों के लिए भक्ति ही अयम्बर टहलाई है। उनका उन्होंने अपने काव्यों में पग-पग पर प्रतिपादन किया है और स्वयं भी राम की अनन्य भक्ति के लिए कामना करते असे हैं।

तुलसीदास के पद-साहित्य की बिधाबनाएँ—(१) राम और कृष्ण दोनों अकनता के प्रति उनके हृदय में समान निष्ठा और भक्ति है। 'गीताबनी' के पदों की अमि परकि से यदि राम भक्ति की भावना विरोधी हुई है तो 'भी कृष्णगीताबनी' के पदों में कृष्ण भक्ति की। इस रचापना में तुलसी का मान्य उदार और भावनाएँ व्यापक निष्ठ होती हैं।

(२) 'भी कृष्णगीताबनी' की रचापना में के भावगत में ही अमिप्रतिष्ठ रहे हैं कृष्ण के साथ गोविन्दों का तो असेय है किन्तु उनमें राधा को प्रतिष्ठा नहीं मिल सकती। कृष्ण और राधा की अभिन्नता का प्रतिपादन मध्ययान में पुष्टिमार्गीय हरिदासी गौड़ीय राधावत्सलीय आदि सम्प्रदायों ने किया था किन्तु तुलसी उनमें प्रभावि नहीं हुए हैं। राधा के अमाविष्ट न होना के सम्बन्ध में यह ठरना जा सकता है कि यह उनका स्तुत काव्य है किन्तु जब उस काव्य में गोविन्दों की और कृष्ण की मानाएँ हैं तब उन स्थितियों में तो राधा का अट अकनता अमि था। इसमें उपर्युक्त तर्क लखर है। अस्तुत इस सम्बन्ध में यह अद्वय ही मयत है कि उन्होंने अपनी इस रचना के लिए आमजन के आरतीय स्वरूप का ही अमि किया था अमि कृष्ण के साथ राधा की मान्यता नहीं है।

(३) 'भी कृष्णगीताबनी' और 'गीताबनी' में उनका अन्य काव्यों की असेय

भाव की प्रतिष्ठा है और हरिदासी सम्प्रदाय में सभी भाव की उपासना है। इस प्रकार सभी में माधुर्यभाव की ही प्रधानता है।

माधुर्योपासना की प्रमुखता के कारण इन सम्प्रदायों के अन्तर्गत सहस्रक भक्त कवियों ने कृष्ण राधा की मुखावस्था के रंजीते स्वभाव को ही अपनी पदावधियों का विषय बनाया है। सूरदास ने धरदय कृष्ण के वात्सल्य को प्रमुखता दी है। किन्तु राधा और गोपियों के समक्ष से प्रेम की लौक्य शक्ति को वहाँ बह भी नहीं कहा सके हैं। इस तथ्य से यह स्वतः स्पष्ट है कि भक्त कवियों द्वारा कृष्ण के एकांगी जीवन का ही प्रस्तुतन हो सका है धर्म जीवन का नहीं। इससे इन सम्प्रदायों में आचार्य धृतर के अनुसार 'सूरदास और कृष्ण भक्त कवियों की परावर्तनी' में 'भानन्द की सिद्धावस्था या उपभोग पक्ष' ही उपलब्ध है। इसके विपरीत तुलसी-साहित्य में भानन्द की साधनावस्था या प्रवर्तनपक्ष सम्मिश्रित है जिसमें उनके धारात्म्य जीवन की प्रत्येक परिस्थिति का उल्लास कर जन-जीवन से लिए व्यावहारिक धारण प्रस्तुत करते हैं। इस प्रकार तुलसी पद-साहित्य में राम के कर्मध्व जीवन के कारण कृष्णावत सम्प्रदायों के कृष्ण पद-साहित्य की धरोहर अधिक शिथिल-उत्पन्न है।

उपर्युक्त सभी सम्प्रदायों में भावनाओं की मायिकता और सङ्कीर्णतात्मकता के दृष्टिकोण से महाकवि सूरदास का दृष्टित्व ही सर्वोच्च है। इन विधिष्ठ मुण्डों के कारण किन्तु वही तुलसी के समस्त स्थिर हो सकते हैं अन्य नहीं। इससे उनकी तुलना कर लेना भी किसी संशय तक आवश्यक है।

सूरदास ठाण्ड रचित 'सूरदास' में विषय के पद तथा भावपक्ष के आधार पर सभी अवधारणों के अतिरिक्त चित्रित है। कृष्ण के धारात्म्य होने के कारण उनकी आत्मा जनका अति प्रस्तुत करने में विशेषरूपेण निमग्न हुई है। उक्त अति में भी उनकी दृष्टि उनके बाल और युवा जीवन पर ही अधिक टिकी है। अन्य स्वतंत्रों को उन्होंने ही अलग कर दिया है, जो दृष्टिमापीय सम्प्रदाय का स्पष्ट प्रभाव है। वहाँ तक माधुर्य भाव के प्रतिपादन और बाल तथा युवा जीवन के मनोरम विषयों का प्रवर्तन है हिन्दी का कोई भी काव्य सूरदास के समस्त स्थिर नहीं हो सकता। सूरदास इस सम्बन्ध में बेजोड़ है। तुलसी की गौतावसी और श्री कृष्णजीवावसी में वात्सल्य और माधुर्यभाव के पद सम्मिश्रित हैं किन्तु उनमें सूरदास के तत्सम्बन्धी स्वभावों के समस्त उदाहरण बेजोड़ और माधुर्य नहीं है। सब रहा सूरदास के विषय सम्बन्धी पदों का प्रवर्तन। इनको लेकर सूर तुलसी की 'विनयपाथिका' के समस्त धरदय स्थिर नहीं हो सकते सूर ही क्या हिन्दी का कोई भी कवि विनय की भावना में तुलसी से आगे नहीं जा सका है। यह तथ्य है कि सूर भी अपने विनय के पदों में वात्सल्यकोण को लेकर आगे हैं किन्तु उनमें तुलसी की धारा-व्यवस्था नहीं है। धारात्म्य के महात्त्व के साथ तुलसी का ईश्वर विषय रूप से चित्रित है। सूर के पदों में धरदय प्रभाव है।

तुलसी के सम्पूर्ण साहित्य के समस्त सूर के 'सूरदास' को न रत्नकर यदि बीता,

बन्दी के सामन ही रतकर—बिचार करें तो राम क जीवन की समग्रता के समस्त मूर के रूप वृष्णभूमि म जा पहुँके सकित-सीम-सीमन्व से मुक्त पीठाबन्दी क राम का सांस्कृतिक मर्यादा-प्राप्त जीवन की विविध परिस्थितियाँ में घादों साधन के समस्त रूप का माधुर्य भाव श्रीका धीर अनुपयोमी लयेया तुमसी के सोबादा क समस्त मूर राम्य का घादर्य गीय लगेया । इन विवेकताओं में तुमसी मूर से नहीं भावे हैं किन्तु वहीं मेयता धीर मानिक भाव-स्वयंजना की बात है मूर का व तुमसी से नहीं उल्लेख है । मूर के पत्रों का मा सरम प्रबाह धीर ममत्प्राप्तिता तुमसी क बन्द में नहीं है । ये प्रायः उनकी सम्भोर भाव-स्वयंजना धीर परिशिष्टित भाषा-सीमी के कारण बोधिम ह्ये है ।

तुमसी क घनन्तर भी रामावत सम्प्रदाय में वन्द-साहित्य की रचना हुई है किन्तु उनमें सम्प्रशयगत दास्य भाव मर्यादा-उल्लेख कलस्मिन्पिष्ठा घादि न हीकर उच्छेद पोपकों की दृष्टि वृष्णावन सम्प्रदाय क समान केवल माधुर्यभाव तक ही समिति रह गई है । फलतः धारात्म्य क समस्त जीवन का समावेश न ह्ये तरन के कारण राम-सीता के जीवन से विनाम धीर धामन के तत्व ही प्रस्तुति हो गये हैं व्यावहारिक घादना नहीं । जब से रामचरमदाय ने साम्यत्व भाव म प्ररित हो 'स्वमुयी' धीर मयी भाव प्ररित हो जीवाराय ने 'तासुयी' नाम की घादाएँ प्ररित की हैं तब से तो सम्प्रदाय में जीवन-व्याप्ति भावनाओं क लिए कोई व्यवसाय ही नहीं रह गया । तुमसी के घनन्तर सम्प्रदाय की व्यवसायों का बहु घामून परिवर्तन कारण म डाल देता है । उनकी परम्पराओं को घण्टर करने में कोई भी व्यवसाय म ह्ये सका । फलतः सम्प्रदाय के इस लवीन उमेय के घनन्तर्गत रची हुई पञ्चमसिदा तुमसी के वन्द-वाम्भीय के समस्त स्थिर नहीं हो पायी हैं ।

माधुनिक युग की परिस्थितियाँ 'मध्यकाल की स्थितियों से पर्याप्त भिन्न है । इसे पारचात्य ने काफ़ी अज्ञावित किया है जिससे बरिचयीय घाचार-बिचार ह्वारे उमात्र धीर साहित्य में सन्निहित हो उठे हैं । इस मन्वय की स्पष्ट प्रतिविद्या भार वेन्दु युग से साहित्य क्षेत्र में प्रतिफलित हुई 'नी वनी पुन' म पुन हुई धीर दादाशारी युग में तो साकार ही हायरी । वेवविजता इनकी विविष्ट प्रकृति की विसन इन युग का नीतिकार मूर्त क स्थान पर घमूर्त का समीट क स्थान पर घादि का धीर प्रस्तुत के स्थान पर घमस्तुत का उपासक बन गया । इनमें इन युग क साम्य म धर्म, समाज घादि संस्माओं क लिए विव-तत्व क प्रस्तुत का व्यवसाय ही नहीं रह गया जिससे कवि की घारम-निष्ठा इन लयी का वृष्णभूमि म कर घन प्ररान क लिए घण्टर हो उठी है ।

दादाशारी युग में वैधिमोचन युग मुकुटकर घादय प्रणा वन निराता महादवी घादि क प्रयीत मुक्तक अधिकाधिक संरना में प्ररता म घना है । वैधिरिक लयी के प्रबाय क कारण इनम वन्द घाकाभिष्यंजक वृष्ण ही ररणा धीर लवरीय है । इनके प्रबाय से 'सावन धीर वामावनी भी वन्दन नहीं है । उन उमिता धीर

मनु अपनी-अपनी गमस्वार्थों में ही डूबते-उतराते हैं। फलतः तुलसी के काव्य बीजा जीवन का उच्च और स्थापक भावार्थ उनमें नहीं है।

छायावादी काव्य की प्रतिबिम्बा को विभावों में प्रस्तुति हुई—प्रथम में साम्यवादी जीवन-दर्शन का बाहुल्य रहा जो अपने उद्देश्य में पूर्णतः सामाजिक और राजनीतिक है। ऐसे काव्य को 'प्रगतिवादी' कहा गया। द्वितीय में साहित्यिक स्वल्प की साम्यता रही जो काव्य की परम्परागत वस्तु और रीति के स्थान पर नवीन प्रयोग करने के उद्देश्य से प्रयत्न हुई। उसे 'प्रयोगवादी' कहा गया। समष्टिवादी शर्तों के कारण ये काव्य जन-जीवन के अधिक समीप प्रवेश पाये किन्तु उनके मूल में प्रचार और विज्ञापन की बिदेसी भावनाएँ ही रही हैं फलतः भारतीय जीवन को सुस्तिर रखने की पुष्ट नींव उनमें नहीं है।

प्रगतिवादी काव्य का निश्चित स्वरूप है किन्तु प्रयोगवादी काव्य की सीमाएँ और क्षेत्र तो भाव तक अनिश्चित हैं। यह शक्ति प्रायेश और वैविध्य की अनुमति प्रदान करके रह जाता है। परम्परागत कवियों के विरोधी होने के कारण उनमें मुक्तक शब्द का अधिकारिक प्रहम हो उठा है। फलतः छायावादी काव्य की अपेक्षा इनमें प्रवीण मुक्तक का प्रयोग बहुत मूल्य रह गया है। उपर्युक्त तथ्यों से यह स्पष्ट है कि ये दोनों काव्य परधियाँ हमारे जीवन के मूल में नहीं हैं फलतः इन काव्यों में जीवन के लिये कोई स्थापक संदेश नहीं है। इससे तुलसी के चिरन्तन भावार्थों के समस्त उनकी भावना बहुत मूल्य और निम्न है।

सामान्यतः हिन्दी के सम्पूर्ण नीति-काव्य को तुलसी-नीति-काव्य के समस्त रख कर अपने विचार किया है। उसके विवेक भावार्थों और काव्यात्मक विवेकताओं के कारण हिन्दी में किसी भी कवि का येम काव्य उसकी तुलना में नहीं आता है। भावार्थ और उद्देश्य के सम्बन्ध में मूल भी तुलसी से पिछड़े हैं किन्तु उनके नीति काव्य की सामाजिक भावनाएँ और वेमता भाव ही कुछ ऐसे तल हैं जिनमें यह तुलसी से आये हैं। फलतः इस तथ्य के बल पर ही मूल का यह तुलसी के समस्त प्रथम है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि गोरवामी तुलसीदास की दृष्टि बड़ी वैनी और सक्रिय रही है। तत्कालीन लक्ष्यज्ञात हुए भारतीय समाज को उन्होंने सम्यक रीतियों के काव्यों के समस्त अपनी पर-रीति के काव्यों से भी भाववस्तु किया है जिससे हमारी संस्कृति और लोकदर्शन भाव भी अभिप्रति है। उन की कपरेखा उन्हें प्रबल विधिष्टा ईटी सम्प्रदाय से मिली थी किन्तु कवि मुसल भावनाओं के रंगों का धरना उनकी अपनी प्रतिभा बिहता और अध्ययन की मीतिकता थी। तब तो यह है कि उन्होंने हमारे धर्म समाज और साहित्य को इतना दिया है कि जीवन की किसी स्थिति में हम उनके व्यक्तित्व और इतिवत् को विलुप्त नहीं कर सकते। हम इतार्थ हैं जो गोरवामी तुलसी-दास जैसे महाकवि और महाभक्त ने हमारे देश में जन्म लेकर हमें प्रामाणी बनाया।

परिगिष्ट—१
सहायक ग्रन्थ-सूची

ग्रन्थ

- १ अथर्वण साहित्य—डा० हरबंग कोछड़
- २ अष्टाध्याय धीर बन्धन गम्प्रशाय—डा० शानरवाम गुप्त
- ३ उत्तरी भारत की सन्त परम्परा—पद्मगुराम अनुजोशी
- ४ कबीर की विचारधारा—डा० गोविन्द त्रिमूणायात
- ५ कबीर एक विवेचन—डा० सरनामसिंह तर्पा
- ६ कबीर ग्रन्थावली—डा० दयामुन्दरदास
- ७ काव्यारस—दण्डी (श्रीधरदा विद्या भवन वाराणसी)
- ८ कृष्णमोक्षावली—तुलसीदास
- ९ कवितावली—तुलसीदास
- १० कविप्रिया—विद्यादास
- ११ गाथा सप्तशती—निर्णयमाधर प्रथम बम्बई
- १२ गौरतन्त्री—डा० दीनानन्दरत्न बड़व्यान
- १३ गीतगोविन्द—जयदेव
- १४ गीतावली—तुलसीदास
- १५ गौडवामी तुलसीदास—डा० दयामुन्दरदास
- १६ बीजा माह राहु ब्रूहा—माधरी प्रचारिणी मन्ना बायी
- १७ तुलसीदास—डा० माताप्रसाद शुक्ल
- १८ तुलसी-दर्शन-मीमांसा—डा० उदयभानुशिर
- १९ तुलसी दर्शन—डा० बसदेवप्रसाद मिश्र
- २० तुलसीदास—रामचन्द्र गुप्त
- २१ तुलसी और उमरा साहित्य—ग० विमलकुमार जैन
- २२ तुलसी और उमरा युग—डा० राजरत्न शर्मा
- २३ पर गाथा
- २४ बेरी गाथा
- २५ धरती माती है—दयानन्द मन्नाजी

- २९ पाणि-साहित्य का इतिहास—भरतसिंह उपाध्याय
 २० पाणि-साहित्य की ममीसा—डा० सरनामसिंह सर्मा
 २० नाय-सम्प्रदाय—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी
 २६ बीसमदेव रासो—नागरी प्रचारिणी सभा काशी
 ३० बंमसा की उतका साहित्य—हंसकुमार त्रिपाठी
 ३१ भारतीय धार्मिक भाषा की इतिहास—डा० सुनीलकुमार चटर्जी
 ३२ भारतीय संगीत का इतिहास—जयस कोशी
 ३३ भारतीय दर्शन शास्त्र का इतिहास—डा० इन्दरनाथ
 ३४ मध्ययुगीन बौद्ध संस्कृत की तुलसीदास—डा० रामरत्न भटनायर
 ३५ मध्यकालीन प्रेम साधना—परशुराम चतुर्वेदी
 ३६ मीरा की पद-संग्रह—पद्मनाभती घननम
 ३७ राम चरित्र—विभिन्न कवि भोजन (दरभग राज प्रेस)
 ३८ रामचरित साहित्य में मधुर उपासना—मुबनेश्वर मिश्र
 ३९ रामचरितमानस—तुलसीदास
 ४० रामचरित में रसिक सम्प्रदाय—डा० धर्मवीरसिंह
 ४१ विनयपत्रिका—तुलसीदास
 ४२ विनयपत्रिका-समीक्षा—दामनहाडुर पाठक
 ४३ विद्यापति की पद-संग्रह—डा० सुभद्र भद्र
 ४४ वेदार्थ संग्रह—रामानुजाचार्य
 ४५ साहित्य कर्षक—विश्वनाथ
 ४६ शास्त्र की इतिहास—महादेवी वर्मा
 ४७ साहित्य शास्त्र—डा० रामकुमार वर्मा
 ४८ सन्देस शास्त्र—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी
 ४९ सप्त सुभाषण—विद्योपी हरि
 ५० संगीत रत्नाकर—छाद्मदेव (The Adyar Library Series)
 ५१ संगीत दर्शनम्—दामोदर
 ५२ संगीत शास्त्र—बासुदेव शास्त्री
 ५३ गुरुसागर—डॉ० गणेशधर बाजपेयी
 ५४ सपीताम्बुसि भाग १—धोम्कारनाथ ठाकुर
 ५५ हिन्दी भाषा—डा० दयानन्दसरदाश
 ५६ हिन्दी भाषा का इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा
 ५७ हिन्दी साहित्य की इतिहास—डा० धीरेन्द्र वर्मा
 ५८ हिन्दी साहित्य का सांस्कृतिक इतिहास—डा० रामकुमार वर्मा
 ५९ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

- १० हिन्दी काव्यपाठ—राहुल सांकृत्यायन
 ११ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—डा० दशरथ घोसा
 १२ हिन्दी साहित्य—डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी

पत्र-पत्रिकाएँ

- १ नागरी प्रचारिणी पत्रिका—वाराणसी ।
 २ चरखनी-महान—आगरा ।
 ३ समामोचक—आगरा ।
 ४ धानाचना—दिल्ली ।
 ५ हरिवाम धरु—मगीठ कार्यालय हाथरस ।
 ६ सम्मेलन पत्रिका—आपाव ।
 ७ साहित्य मन्थन—आगरा ।
 ८ कल्याण—गोरखपुर ।

ग्रन्थो

- 1 Encyclopaedia Britannica Eleventh Edition Vol. VII
 2 The New Popular Encyclopaedia Vol VIII
 3 Golden Treasury—F T Palgrave
 4 A Sanskrit English Dictionary—Monier Williams.
 5 Ballads—M J C Hodgart
 6 The Origin & Development of the Bengali Language—Dr S K Chatterjee
 7 Indian Theatre—Dr Chander Bhan Gupta.
 8 A short Historical Survey of the Music of upper India—Bhatkhande
 9 Ragas and Paganis—G C Gangoly
 10 Treatise of Hindustan—Captain Willard.
 11 Anecdotes of Indian Music—Sir W Csle
 12. The Music of India—H A Popley
 13 Northern Indian Music—Main Danielou
 14 Theory of Indian Music—R B BishanSwroop

शुद्धिपत्र

पृष्ठ	मंथित सङ्ख्या	अशुद्ध	शुद्ध
४	१३	परिनिष्पिन	परिनिष्पिन
५	०१	मायबबद	मायबबद
७	३	माहृति	माहृति
७	१८	मागधी	मागधी
८	८	मोः	मोः
८	६	मैत्रमूल	मैत्रमूल
८	०१	मूममूल	मूममूल
९		मृचकोः	मृचकोः
९	६	माया	माया
९	-	मात्रितायस्त्रयम	मात्रिताय स्त्रयम
९	१७	मददबहा	मीदबहा
९	०८	माया	माया
१	७	बाबद	बाबद
१		मूर्ध्या	मूर्ध्या
१	१	दोम्बिया	दोम्बिया
११	०८	तद्यो	तद्यो
१२	६	त्रिमया	त्रिमयी
१२	०३	मन्मिन्नाबिदिन्नामयादिद	मन्मिन्नाबिदिन्नामयादिद
१२	२७	मुपाय	मुपाय
१३		कामल	कृतामल
१३	८	बी	बी
१३	४	ममगम्भदिमा	ममगम्भदिमा
१३	११	बी	बी
१६		उद्योती	उद्योती
१६	८	पदि	पदि
१६	१८	घगाः	घगाः
१६	१६	नबम	नेब न
१६	०६	पन्दिदि	पन्दिदि
१६	३८	बाने	बाने
१७	१	मागने	मागने
१८		नय	नाय
१८	१७	दुर्धमनीः	दुर्धमनीः
१८	३	मन्मिन्ना	मन्मिन्ना
२०	१	मुपाय	मायो
२	७	संमिन्ना	संमिन्ना
२०		मददबहा	मीदबहा
२६	१८	पुन्दि	पुन्दि
२४	०८	मान	मान

१	१७	धरबोई	धरबोई
३४	२८	मम	गान
३५	३	मौमिट	मौखिक
३५	१६	कवि	धी
३६	२४	धनुष्य	धनुष्य
३६	८	माना	सगा
३८	२	भरबरी गाभाएँ	भरबरी की गाभाएँ
३८	२९	पञ्चताम	पञ्चतीय
४१	२८	thay	They
४३	१४	ऐमन	ऐमन
४४	५	बबाब	बबाना
४४	२३	बारीक	बरीका
४५	१४	कन्हाहि	कन्हाई
४५	१८	ठाडी	ठाड़ी
४६	११	पैत्रियाँ	पैत्रियाँ
४६	२२	भोर मिनरुवा	भोरमिनसरवा
४७	२७	भइया	भइया
४८	१५	निरयघो	निरयघो
५०	२८	innocent	Innocent
५४	१८	गेयकुम्भार रास	गयकुम्भार रास
५६	११	wearing	Wearing
५७	४	ऐतिहासिक	ऐतिहासिक
५७	१६	बेबी	बीबी
५८	२१	बिभरयेन	बिभानन
५८	२२	बिमुक्तिहम्	बिमुक्तिकम्
५८	३०	तदुदबमानुवत	तदुदयानुवत
५८	११	मुल	मुल
५८	१६	नखिन	नाखेन
५८	२१	बबाजनसं	दनागमसं
५८	२३	बिबराभाजेअं	बिबराभाजीअं
६०	१५	पइव	पइव
६१	८	पाइव	घोइव
६१	१	पाइव	पाइव
६२	८	कीचिका	कीचिधी
६२	११	बेलाबली	बेलाबली
६२	१७	पचयो	पचयो
६२	१८	ईमानाबराभासरगो	ईमानाबराभासेसरगो
६२	२७	पचमगना	पचमागना
६३	१५	मम्मेसद	ममम् सना
६४	१३	महुजभापी	महुजयमी
६५	२	मान	गान
६६	२८	म्बर ही बभा	एक ही बबन
७०	४	मिस्तरीय	मिस्तरीय
८	१	विष्णात	विष्णात

७०	२८	भरतकण्ठे	भारतकण्ठे
७२	२	ममुग्धबा	ममुग्धबा
७२	२१	उगागानि	उगागानि
७२	७०	बकीय	प्रकोप
७२	९७	बानबाड्डानि	बानबाड्डानि
७३	६३	बरास्त्रीय	परमिचय
७३	३२	गगिया	गगिया
७६	३४	रबरमना	मन्वरना
७८	२७	भी	भी
७९	१४	माई	माई
७९	१७	बैम	बैम
८	४	रमिफ	रिफ
८	१६	माधना	माधन
८३	१९	सगीन	इतिग
८६	६	प्रमुग्ध	प्रमुग्ध
८६	१	भम	भुम
९	२	यविपमाडु व	यविभागार्डन
९२	१	मोह्यपमी	माह्यपमी
९०	५६	गर्बर्नी	भर्गर्नी
९३	२५	अय	अय
९४	१६	भाबता	मानब
९५	१४	घसम्बद्ध	मम्बद्ध
९६	३३	बी	बी
९९	५	मम	गम
९९	१८	मानो	माना
९९	२९	विमुक्त	विमुक्त
१०६	२४	दबाब	दबाब
१०८	३	हुररिम	हुररिम
१०८	१८	घका	घमो
१११	१७	राम	राग
१११		महात्म्य	माहात्म्य
१११	२३	घमया	घमया
१११	२६	गमि	गमि
११२	६	परिधा	परिधा
११२	२	का	बी
११२	०	घोर विषय बडा	घोर विषय का विषय बडी
११६	३	विश्विप्रस्तुती	विश्विप्रस्तुती
११५	२	मय	माम
११५	०	नरम	नरम
११६	२	घाघरागिर	घाघरागिर
११६	०१	विपबिर	विपबिर
११६	५	प्रकार है	प्रकार का है
११६	६	अभिगत	अभिगत
१२	१	बरण	बरण

१२	१७	की	ही
१२	३	बिष्णु ब्रह्मबगल्पन	बिष्णुरूपा ब्रह्मबगल्पन
१२१	१६	प्रपाबिन बीया	प्रपबिनबीया
१२२	७	ठाठ कछू	ठाठ ना कछू
१२४	१३	रामानन्द	रामानन्दी
१२५	७	सम्मोहित	सम्मोपित
१२५	१३	घाबर्ष	घाबर्ष
१२५	३	प्रमुर	प्रमुर
१२६	२४	रचने राचार्यबर्षन	रचने राचार्यबोबर्षन
१२६	३२	बहुते	बयते
१२६	१	जयदेव पंडितकवे	जयदेव पंडित कवे
१२८	१४	माघवि	माघवि
१२८	२३	जयदेव	जयदेव
१२८	२३	शबनमपिघाति	शबनमपिघाति
१३	१३ एब १४	मेम	मेम
१३२	१२	उत्पेक्षा	उत्प्रक्षा
१३२	३२	कर	मर
१३४	६	मय	मय
१३४	२६	माहि	माहि
१३५	१	हो	हो
१३७	५	उसि	उसि
१४	१	को	के
१४१	६	जिय	जिय
१४१	३१	कल्पना	कल्पना
१४२	२	किया होने मे	किए
१४३	३१	पटनयो	ठठनयो
१४८	६	समय	समय
१४६	२७	उराठ	उराठ
१४६	३१	मेरी	मेरे
१५४	२२	बुडा	बुठा
१५८	११	सख्या	सखनू
१६३	१३	माथी	माथी
१६४	१७	बरीन	बुरीन
१६७	१२	दुमरी बिबि	दुमरी न बिबि
१६७	२८	सब	सब
१७३	६	सब	सब
१७३	३२	उपयुक्त	उपयुक्त
१७७	१७	मई	मई
१८	४	कहानी	कहती
१८१	१६	राजी	राजी
१८१	२०	मी	बा
१८२	९	जाबगत	बीबन्त
१८३	१३	तसखू	तनकहू
१८३	३४	घनन्द	घानन्द

१८४	२१	घानुप	घनुप
१८५	२५	सदस	सदन
१८६	३१	पति	मति
१८७	३२	पहियाह	पहिराह
१८८	६	घाण	छाण
१८९	१७	धमहरति	धनुहरति
१९०	२८	धंफ	धम
१९१	६	मन्वर	मुन्वर
१९२	२५	तारिका	मरिका
१९३	२६	पर	पर
१९४	७	मान	गान
१९५	३३	भोमिह	भोमिह
१९६	३२	परिहरे	परिहरे
१९७	१४	पुण्य	पण्य
१९८	२६	नारण	कदण
१९९	१६	मान	जान
२००	६	घाभार	घाभार
२०१	१८	को	क
२०२	७	न	ने
२०३	२५	मी	पा
२०४	१३	उोसा	घोसा
२०५	१६	मवा	मकी
२०६	२१	मकोष	मकन
२०७	४	धन्नाई	धन्नाया क
२०८	५	हुई है	हूा है
२०९	७	गई है	गा है
२१०	३	धम	धम
२११	२७	धमिय	धमिय
२१२	३	धाराई	धाराई
२१३	८	विभुजिन	विभुजिन
२१४	१४	नार	नर
२१५	२	मुनिवर बरि	मुनिवट बरि
२१६	२२	करे	पर
२१७	३४	प्रबाम	प्रबाम
२१८	११	मकन	मग
२१९	१६	टयोरी	डयोरी
२२०	३०	बीन	बीन
२२१	६	गाउं प्यारे	गाउं मेरे प्यार
२२२	१८	मान	नान
२२३	२	पठ	पठ
२२४	३१	मीनादिधि	मीनादिधि
२२५	८	उगा बडा	उगे बरी
२२६	७	बिनो	बिने
२२७	११	बी	बी

२१६	१३	प्रागका	प्रासकी
२१६	२२	रामानुजी	रागानुगा
२२२	१४	लनै	सरौ
२२२	१५	निन्दै	निररी
२२३	२७	घौर	घौर
२२६	२१	अलदावतनु	अलदावतनु
२३१	१	बिदिग्याईठी	बिदिग्याईठ
२३१	३	मागे	मोरे
२३३	११	सिठ	सिठ
२३४	२६	महृषारियो	महृषारियो
२३८	३१	भसना	भासठो
२४	१७	मीलता	सीठारबन
२४४	६	हासा	हास्य
२४४	२१	छ्यत	छुवठ
२४६	२	मगापो	पराम्यो
२४६	८	भय	ठाय
२४६	११	वय	वरन
२४१	२१	जान	जन
२४१	२३	वाइ	वमाई
२४३	१७	o।	o।
२४६	१	धुमपुस्तुवराभो	धुमपुस्तुवरासी
२४६	२	घाट	घाट
२४६	२३	सम्मिधन	समिधन
२४८	१	संवीय	संवीत
२४६	२	उरकुंका	उपमुक्त
२६	४	बब	बब
२६	८	उहफठ	उहफठ
२६४	२	पोम्मास	पोठाठ
२६४	३	रुन	रुन
२६४	८	कमाई	कनई
२६४	२६	नलिन	पंकित
२६६	२६	बिठफ	बिछुरन
२६८	६	घंमोसुह	भनोबह
२६८	८	उरनि	उरनि
२७	१६	ममस्थ	समरय
२७	२६	मिहारे	सिहोरे
२७	४	मा	हमी
२७	३	भरतानुब	भरतानुब
२७	३१	म्यध्यापी	म्यध्यापी
२६	६	वा	नी
२७६	३३	रागा	Raga
२७७	२८	परकवियों	परकवियों
२७	६	कुचिन	कुचिन
२८३	२१	प्रति	कुचिन

२८८	२२	यावच्छर्गा	यावच्छर्गा
२८८	२४	प्रातमयस्तु	प्रातमयस्तु
२८७	२४	पटसञ्जरी	पटसञ्जरी
२८६	४	हरिसय की सन्देश	हरिसयमी
		घापाङ्क दुहृत् तक का	एकादशी तक
२६०	१३	राम काल	राग काल
२६०	१४	Inbha	Indian
२६१	२३	राम	राग
२६२	४	मह्वार	सप्तक
२६२	१४	स्वरावर्षव	स्वरावर्षव
२६	२६	बीरेभूते	बीरेभूते
२६३	२१	बृपभाषिष्ठ	बृपभाषिष्ठ
६४	२३	in	in
२६४	२३	Rasag	Rasas
६४	२६	Anudharen	Anubhavas
२६४	२६	Btaua	Bhava
	२६	Santiment	Sentiment
२६४	२८	Aurblaves	Anubhavas
२६४	२६	Hence	Hence
२६४	२६	VecaSasitn	necessity
६४		घापाङ्क	घापाङ्क
१६७	१४ १६	पञ्चमचरित	पञ्चमचरित
२६७	२८	धर्मावशा	धर्मावशा
२६८	१	भुजमप्रपाठ	भुजमप्रपाठ
२६८	६	बिबिध	बिबिध
१०१	६	धम्मपम	धम्मपम
३ १	१०	कश्चिदपतो	कश्चिदपतो
३ २	१७	गम्भोपित	गम्भोपित
१०२	६	बिबिनी	बिबिनी
३ ६	१७	कश्चुं	कश्चुं
११२	१३	कश्च	काल
६१४	६	उत्तम	उत्तम
३१५	१३	उत्तमोग	उत्तमोग
११५	१४	उत्तमी	उत्तमी
११५	२२	गमात्पाम	गमात्पाम
११५	२६	दीर	दीर
११६	१६		

३१७	२६	राम	राम
३१७	२७	पुरपोत्तम	पुरपोत्तम
३१८	१	सभन	सभत
३१८	३	पुमस	कुमस
३२	६	सभन	इवन
३२	३२	इगम्बु	इगम्बु
३२०	३४	धारमज	धारमजे
३२१	२९	को भी	को भी
३२२	१	फला	उहन किम्मा है ।
३२३	२	मेरे	फुलो
३२३	३१	का	मेट
३२४	१८	निसइ	की
३२४	२५	उमि	निसइ
३२४	२६ २७	कि	उसी
२२४	२८	उठना	की
३२४	२९	मि	उठना
३२४	३३	बिलोप	भी
२२६	१	घार	बिलोम
३२६	२१	बाफिन्हि	घीर
३२६	२४ २७	मोर	बाफिन्हि
३२७	१	न	सोर
३२७	१	कीसिस्द	न
३२७	२६	यह	कीसिस्वा
३ ९ /	१६	अइकिवा	यह
३३३	२९	रमायन	अइकिवा
३३९	८	परिमिच्छि	रमायन
"	१४	माब मे	परिमिच्छि
"	१६	जीवन ध्यापि	माब से

परिमिच्छि—१

१	१६	बोलामाऊ	राह डूहा	शाला माऊ रा डूहा
२	३७	परमग		परमंगा
३	९	प्रपात		प्रपाथ
४	११	Calo		Calo

